121 पंचम पुरस्कार साइकिलें
165 षष्ठम पुरस्कार वाटर प्यूरीफायर
220 सप्तम पुरस्कार सूटकेस
385

2-13
VIII
p to XII)

प्रोबेशन बोर्ड को देनी
जयंती बनर्जी ने कहा
की संस्कृति स्वयं में
अध्यक्षता गोरखपुर
पूर्व कुलपति प्रो.
ी। स्वागत प्रो. डीपी
राजू मांझी व धन्यंवाद
र ने किया।

मानव उत...

वाराणसी : मानवाधिकार जननिगरानी समिति के बैनर तले विश्व मानवाधिकार दिवस पर शनिवार को यातना व संगठित हिंसा के खिलाफ रैली निकाली गयी। यह रैली सर्किट हाउस, कमिश्नरी, जेपी मेहता इंटर कॉलेज, अम्बेडकर चौराहा, गोलघर

...न जिला ...
होते हुए ...
समाप्त हु...
अध्यक्ष ...
के दुर्योध...
लेनिन, ज...
शिरीन अ...

जिला विधिक सेवा
ाइटी ऑफ कंजर्वेशन
ॉफ कल्चरल हेरिटेज
मानवाधिकार संगठन
विधान में प्राथमिक
(लमही) में संगोष्ठी
क्षरता शिविर/माइक्रो

लीगल लिटरेसी कैंप का आयोजन किया गया। संगोष्ठी में मुख्य अतिथि स्थायी लोक अदालत की सदस्य अर्चना श्रीवास्तव ने मानवाधिकार व स्थायी लोक अदालत के माध्यम से न्याय प्रक्रिया के बारे में जानकारी दी। विशिष्ट अतिथि प्यारेमोहन एडवोकेट ने बाल

श्रम, म...
पंजीयन...
वाले ल...
सुविधाअ...
श्रीवास्त...
पीएलवी...
कुमार ...

...क्ति को मिले अधिकार

...ग मानवाधिकार दिवस

जन लोकपाल... गांव-गांव में ज...

...दे का विरोध

...हान पर निकले
...न के कार्यकर्ता

...: समाजर...
...गांव-गांव...

शिवराजविजय के प्रणेता अम्बिकादत्त व्यास जी है।
[handwritten signature]

वर्णने समासाभावः, यथा—'क्व सम्प्रति तीर्थे घण्टानादः, क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः। अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथिषु विक्षिप्यन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते······' इति। शृङ्गारे करुणे च वैदर्भीविलासः, भीते रौद्रे च गौडीगम्भीरता। यथा—'अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः, धर्मोद्धारधौरेयैः सोत्साहासाहसचञ्चच्चन्द्रहासैः······' इति। व्याकरणे पटुरयं गद्यकारोऽतो नाऽवलोक्यन्तेऽपाणिनीयाः प्रयोगाः। समासेन भाषा सरसा, सरला, सुबोधा, ओजस्विनी यथावसरं कोमला च।

शैली—महाकवेः शैली प्रवाहपूर्णा। पात्राणां चरित्रं चित्रमिव सुस्पष्टतां याति। वातावरणदेशकालसंस्कृतिभावभङ्गिमाकुलशीलादिष्वनने शैली सक्षमा। नेयं बाण इव समासविकटा न वा सुबन्धुरिव प्रत्यक्षरश्लेषा। अलङ्करण-विधानं नवीनं कल्पनाऽप्यभिनवा।

रसः—रसोऽत्र वीरः। शृङ्गारकरुणादयश्चाङ्गभूताः। हास्य-शान्तयोरपि वर्णनमत्राक्षिपथमायाति। अफजलवधप्रसङ्गे बीभत्सदर्शनमपि सम्मिलति।

अलङ्कारः—गद्यकाव्येऽस्मिन् साधर्म्यबोधिका उपमा, अभेदबोधको रूपकः, उपरि प्रेक्षणात्मिका उत्प्रेक्षा तु मिलत्येव, परं परिसङ्ख्यानुप्रासादयोऽप्यलङ्काराः सन्दृश्यन्ते।

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति

निखिलविश्वसाहित्ये गद्याभ्युदयः पद्यानन्तरमेव समवलोक्यते। अत्रापि तादृश्येव संस्थितिः। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयसंहितायामेव गद्यस्य प्रथमं दर्शनं भवतीति बलदेवोपाध्यायः। गैरोलामहोदयोऽपीदमेवाऽङ्गीकरोति। तदनु दृश्यते ब्राह्मणे उपनिषत्सु निरुक्तमहाभारतमहाभाष्यादिषु। कात्यायनपतञ्जलिबाण-धनपालादिसूचिताः गद्यबन्धाः शिलालेखखचिताश्च सूचयन्ति महनीयां गद्य-परम्पराम्। दण्डी प्रथमो गद्यकार इति बहवो जनाः स्वीकुर्वन्ति। तदनु सुबन्धुः, तदनु बाण इति केचन मन्यन्ते। तदनु धनपालः, वादीभसिंहः, सोढलः, अगस्त्य-प्रभृतयश्च। गतशताब्द्यां च मिलति अम्बिकादत्तव्यासः।

गद्यलेखनं कविप्रतिभापरीक्षणस्थलम्, यथा सुवर्णपरीक्षणस्थलं निकषम्। यथा निकषोपले कषिता सुवर्णस्यैका रेखा एव पश्यतोहरान् सूचयति सर्वं वैशिष्ट्यं स्वीयं तथैव गद्यस्य एका एव पङ्क्तिः कवे रससिद्धतां वचनवक्रतां निरीक्षणपटुतां समायोजनकुशलतां चिन्तनपरम्परां विद्याध्ययनसरणिं च चारु-

तया संसूचयति । छन्दः कवचगूढां स्वीयामपटुतां कवयिता तलस्पर्शिसमीक्षक-दृष्टिपातात् प्राक् शोषयति । गद्यकवेस्तु प्रथम एव पादविक्षेपो विजयाय पराजयाय वा भवति । पद्यापेक्षया गद्यं ध्वननातिरेकं सम्पद्यते । यथाऽपटोर्नर्तकस्य प्रत्येकः पादविक्षेपो दर्शकचेतसि विरसतामादधति, विरक्तश्च ततः परावर्तते, तथैव गद्यकारस्यापटोरक्षरयोजनं वीक्ष्य पाठको विरागायते गद्याध्ययनाच्च विरमति । अत एवोक्तं 'गद्यं कवीनां निकषमि'ति । शिवराजविजये पं० अम्बिकादत्तव्यासोऽस्याः सूक्तेः सार्थकतां सर्वथा सप्रमाणं समुपपादयति ।

पुस्तकस्यास्य प्रणयनकाले सत्परामर्शदानार्थं डॉ० श्रीभाष्यमपाण्डेय-महोदयाय, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालये कार्यरताय श्रीवल्लभदासशाह-महोदयाय च शतशः साधुवादान् वितरामि । नैकविधसाहाय्यसमुत्साहसंवर्द्धनार्थञ्च डॉ० नागेशपतित्रिपाठिमहोदयाय शुभाशंसापुरस्सरं शुभाशिषा संयुनज्मि । यद्येतेन मत्प्रयासेन छात्राणां पाठकानाञ्च किञ्चिदपि हितं सेत्स्यति चेत्स्वकीयं श्रमं सफलं मंस्ये—इति निगद्य विरमामीति शम् ।

गुरुपूर्णिमा, वि० सं० २०५०
सी० के० ६४/३६ ए० हीरापुरा
जालपादेवी रोड, वाराणसी

विदुषामाश्रवः
डॉ० रमाशङ्कर मिश्रः

भूमिका

मानव संवेदनशील प्राणी है। उसके आसपास का वातावरण एवं परिस्थितियाँ उसके मानस को प्रभावित करके भावों तथा विचारों को जन्म देती हैं, जिन्हें वह शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। सामान्य जन किसी बात को साधारण ढंग से कह देता है, परन्तु कवि निजवैशिष्ट्य और प्रतिभा के कारण उस कथन को इस रूप में संप्रस्तुत करता है कि उसका प्रभाव श्रोता या दर्शक या पाठक पर तत्क्षण होता है। उसके शब्द-चयन में चमत्कार तथा अद्भुत विलक्षणता होती है। कवि प्रजापति है, संसार का निर्माण करनेवाला है। कवि की रुचि के अनुकूल ही उसकी सृष्टि बन जाती है। यथा—

'अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते'॥

(अग्निपुराण ३३६।१०)

काव्य शब्द का सम्बन्ध कवि शब्द से है। व्याकरण की दृष्टि से कवि का भाव या कर्म ही काव्य कहलाने का अधिकारी है। 'कवेरिदं कर्म भावो वा काव्यम्'। कवि शब्द भारतीय साहित्य में बड़ा ही व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। निरुक्तकार महर्षि यास्क ने 'कवयः क्रान्तदर्शिनः' कहकर सुस्पष्ट क्रान्तदर्शी के रूप में स्मरण किया है। 'कवयोऽप्यत्र मोहिताः' (गीता ४।१६); 'संन्यासं कवयो विदुः' (गीता १६।२) आदि रूप से उल्लेख कर गीता में इसे विशेषवेत्ता के रूप में स्मरण किया गया है। अमरकोषकार ने 'संख्यावान् पण्डितः कविः' लिखकर कवि को पण्डित के रूप में जाना है।

भारतीय परम्परा के अनुसार सभी विद्याओं के मूलस्रोत वेद हैं। सभी की उत्पत्ति और विकास के मूल तत्त्वों का अनुसन्धान वेद में ही किया जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने भी ऋग्वेद को ही विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ स्वीकार किया है। यद्यपि साहित्यशास्त्र का वेदों से कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं दीखता और न उसे वेदाङ्गों में ही परिगणित किया गया है, फिर भी वेद को देव (ईश्वर) का अमर काव्य कहा जाता है। यथा—'देवस्य पश्य

काव्यं न ममार न जीर्यति' । ब्रह्मा को, जिनके निःश्वासभूत वेद हैं, कवि की संज्ञा दी जाती है—'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः' अर्थात् कवि की कृति ही काव्य कहलाती है। आचार्यों ने शब्द और अर्थ को काव्य का शरीर कहा है। वे दोनों अभिन्न-से हैं। पण्डितराज जगन्नाथ को छोड़कर प्रायः सभी आचार्य शब्द, अर्थ दोनों को काव्य मानते हैं।

काव्य का स्वरूप या तो गद्यमय होता है या पद्यमय अथवा गद्य-पद्य-मिश्रित। इनमें गद्य ही प्रधान है, क्योंकि गद्य मानव की प्रारम्भिक भाषा है। मानव जब बोलना प्रारम्भ करता है, तब पहले गद्य ही बोलता है। वह अपने भावों को जितनी स्पष्टता से गद्य में व्यक्त कर पाता है उतनी पद्य में नहीं। दूसरे पद्य-रचना सबके लिये सम्भव नहीं है। उसके लिए प्रतिभा, शक्ति, संस्कार और अभ्यास की आवश्यकता होती है। यद्यपि सभी गद्य भी काव्य नहीं कहे जा सकते हैं। पद्य के एक पद में भी चमत्कार हो तो पूरा पद्य चमत्कारी मान लिया जाता है, किन्तु गद्य की यह स्थिति नहीं है। उसका प्रत्येक शब्द कुछ न कुछ विशेष चमत्कार लिये होना चाहिए, तभी वह उत्तम माना जाता है। इसीलिये गद्यकाव्य को कवियों की कसौटी कहा गया है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'।

काव्य के भेद

इन्द्रियों को प्रभावित करने के आधार पर काव्य के दो भेद किये गये हैं—दृश्य और श्रव्य। दृश्यकाव्य में श्रवणपथ से शब्दों के द्वारा तथा नेत्रपथ से देखे जाने वाले दृश्यों द्वारा दर्शकों के हृदय में रस का सञ्चार किया जाता है। श्रव्य का प्रयोग सम्भवतः उस काल से किया जाता है, जब मुद्रण के अभाव में लोगों के समक्ष काव्यग्रन्थ सुनाये जाते थे। दृश्यकाव्य में रूपक तथा उपरूपक का ग्रहण होता है। ये अभिनेय होते हैं। अभिनेता अभिनय की अवस्था में अपने ऊपर नाटकीय पात्र के स्वरूप का आरोप कर लेता है। अतः नाटक को रूपक कहा जाता है।

श्रव्यकाव्य में शब्दों द्वारा चाहे वे स्वयं पढ़े जायें अथवा अन्य के मुख से श्रवण किये जायें, पाठकों तथा श्रोताओं के हृदय में रस का सञ्चार होता है। श्रवण-योग्य रसात्मक वाक्य श्रव्यकाव्य है। इस श्रव्यकाव्य के पद्य और गद्य दो भेद हैं। पद्यात्मक काव्य वह है जिसके पद छन्दोबद्ध हुआ करते हैं। वह

Harivansh Shukla

पद्यात्मक काव्य तीन प्रकार का होता है—१. महाकाव्य, २. खण्डकाव्य, ३. उपकाव्य ।

महाकाव्य—

'सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।
सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
एकवंशभवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।
शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते ॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः' । इत्यादि ।

यथा—रघुवंश, कुमारसम्भव, शिशुपालवधादि ।

खण्डकाव्य—'खण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारि च' ।

यथा—मेघदूत, ऋतुसंहार आदि ।

उपकाव्य—'गीततालानुविद्धं यदुपकाव्यमितीष्यते' ।

यथा—गीतगोविन्द आदि उपकाव्य हैं ।

पद्य के छः भेद होते हैं—मुक्तक, युगलक, गुणवती, प्रभद्रक, बाणावली और करहाटक । इनके लक्षण इस प्रकार हैं—

'एकः श्लोको मुक्तकं स्याद् द्वाभ्यां युगलकं स्मृतम् ।
त्रिभिर्गुणवती प्रोक्ता चतुर्भिस्तु प्रभद्रकम् ॥
बाणावली पञ्चभिः स्यात् षड्भिस्तु करहाटकः' ।

आचार्य विश्वनाथ इसके पाँच ही भेद मानते हैं—मुक्तक, युग्मक, सान्दानितक (विशेषक या तिलक), कपालक और कुलक—

'छन्दोबद्धपदं पद्यं तेन मुक्तेन मुक्तकम् ।
द्वाभ्यां तु युग्मकं सान्दानितकं त्रिभिरिष्यते ॥
कपालकं चतुर्भिश्च पञ्चभिः कुलकं मतम्' ।

गद्य वह शब्दार्थ-योजना है, जो छन्दोबद्ध न हो । गद्य चार प्रकार का होता है—१. मुक्तक, २. वृत्तगन्धि, ३. उत्कलिकाप्रायः, ४. चूर्णक । यथा—

'वृत्तगन्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च ।
भवेदुत्कलिकाप्रायं चूर्णकं च चतुर्विधम्' ॥

१. मुक्तक वह गद्यबन्ध है, जो असमस्त पदों में रचा जाता है ।

२. वृत्तगन्धि वह गद्य-प्रकार है, जिसमें वृत्तों के अंश यत्र-तत्र प्रतीत हुआ करते हैं ।

३. उत्कलिकाप्राय: वह गद्यभेद हैं, जो लम्बे-लम्बे समस्त पदों में रचा गया होता है।

४. चूर्णक वह गद्य-रचना है, जिसमें छोटे-छोटे समस्त पदों का उपनिबन्ध हुआ करता है।

गद्यकाव्य के पाँच भेद होते हैं—आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा और कथालिका। यथा—

'आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा।
कथालिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा'॥

(अग्निपुराण ३३६।१२)

दण्डी आदि आचार्यों ने गद्यकाव्य के दो ही भेद किये हैं—कथा और आख्यायिका। यथा—

'अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातय:'।

(काव्यादर्श १।२८)

संस्कृत गद्यकाव्य का विकास

सुबन्धु—सम्प्रति समुपलब्ध गद्यकाव्यों में सुबन्धु की वासवदत्ता ही सबसे प्राचीनतम प्रतीत होती है। बाण ने हर्षचरित में सम्मानपूर्वक सुबन्धु का समुल्लेख किया है। हर्ष के सभापण्डित होने से बाण का स्थितिकाल सप्तम शती ई० प्राय: सुनिश्चित है। अत: सुबन्धु को इतिहासविदों ने छठी शती ई० का माना है।

सुबन्धु की रचना संस्कृत गद्यकाव्य का एक उत्कृष्ट आदर्श है। वासवदत्ता की स्वल्प कथावस्तु को अपने वर्णन-वैचित्र्य से एक पूर्ण काव्य का रूप दिया है। इनके काव्य में प्रत्येक अक्षर में श्लेष है, जिसे वे स्वयं कहते हैं—

'प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रपञ्चं विन्यासवैदग्ध्यनिधिप्रलम्बम्।
सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः'॥

यद्यपि इनका काव्य गौड़ी रीतिप्रधान होने से क्लिष्ट है, प्रसाद और माधुर्य की न्यूनता के कारण स्वाभाविकता भी उसमें उतनी नहीं है, फिर भी कवि का अपना अप्रतिम पाण्डित्य और विचित्र वर्णन-क्षमता इस एक ही काव्य उसे महाकवि पद पर समासीन कर देती है।

बाण

सुवन्धु के बाद दूसरे गद्यकार बाण हैं। संस्कृत गद्यकाव्य में बाण अनुपम हैं। इनके नाम से पाँच रचनाएँ प्रकाशित हैं—हर्षचरित, कादम्बरी, पार्वती-परिणयनाटक, चण्डीशतक और मुकुटताडितक। हर्षचरित में बाण ने अपना और अपने वंश का समग्र विवरण दिया है। हर्ष के सभापण्डित होने के कारण प्रायः इनका भी स्थितिकाल सप्तम शती निश्चित है। इनकी कादम्बरी विश्व-साहित्य में अनुपम और समस्त दृष्टियों से उन्नतकोटि का गद्यकाव्य स्वीकार किया गया है। बाण की सहज प्रफुल्लित प्रकृति, चित्रग्राहिणी प्रतिभा, कल्पना-शील मन और असाधारण पाण्डित्य का जो प्रदर्शन हमें हर्षचरित में दृष्टिगोचर होता है, वह कादम्बरी में नितान्त परिपक्व और पुष्ट होकर निखर उठता है। अर्थ के अनुरूप शब्द की योजना, घटना के अनुसार असमास, अल्पसमास या दीर्घसमास की संरचना, प्रकृति का तद्रूप निरूपण एवं पात्रों का सटीक चरित्र-चित्रण करने की अद्भुत क्षमता बाण में हैं। पाञ्चाली रीति और ओज गुण के लिए विख्यात बाण काव्य की सभी विधाओं में निष्णात हैं।

दण्डी

बाण के अनन्तर प्रसिद्ध गद्यकार दण्डी हैं। दण्डी संस्कृत-वाङ्मय के विश्रुत महाकवि भारवि के प्रपौत्र थे। इनकी विद्वत्ता की इतनी ख्याति थी कि वाल्मीकि और व्यास की कोटि में इन्हें गिना जाता था। इनका स्थिति-काल बाण के पश्चात् अर्थात् सातवीं शती ई० का अन्तिम चरण और आठवीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। क्योंकि नवम शताब्दी के ग्रन्थकारों ने इनका उल्लेख किया है और अपने काव्यादर्श में दण्डी ने राजवर्मा का उल्लेख किया है। पल्लवराज नरसिंह वर्मा द्वितीय का उपनाम राजवर्मा था और उसका शासनकाल ६९०-७१५ ई० है। 'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः' राजशेखर की इस उक्ति से ज्ञात होता है कि दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की, जो निम्न हैं—१. काव्यादर्श, २. अवन्तिसुन्दरीकथा, ३. दशकुमार-चरित। 'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' इनका यह वाक्य उनके प्रखर गद्यकार होने का साक्षी है।

इनके अतिरिक्त धनपाल की तिलकमञ्जरी, वादीभसिंह का गद्यचिन्ता-मणि, वामनभट्ट बाण का वेमभूपालचरित, पर्वतीय विश्वेश्वर पाण्डेय की मन्दारमञ्जरी—ये प्रसिद्ध गद्यकाव्य देखने को मिलते हैं। मन्दारमञ्जरी

१८वीं शती की रचना है । इसके बाद पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का शिवराज-विजय ही उल्लेखनीय गद्यकाव्य कहा जा सकता है ।

ग्रन्थकार श्रीमदम्बिकादत्त व्यास का जीवन-परिचय

आधुनिक संस्कृत-रचनाकारों में सर्वाधिक ख्यातिप्राप्त एवं अलौकिक प्रतिभासम्पन्न साहित्याचार्य श्रीअम्बिकादत्त व्यासजी ही हैं । आपने 'बिहारी बिहार' में संक्षिप्त निज-वृत्तान्त स्वयं लिखा है । जिसके अनुसार राजस्थान में जयपुर से करीब २२ मील पूर्व की ओर 'रावतजी का धूला' नामक अत्यन्त प्रसिद्ध गाँव है । वह गांव चारों ओर से पर्वतों से घिरा है तथा प्राकृतिक वातावरण से सुसम्पन्न है । राजा मानसिंह के दूसरे पुत्र दुर्जनसिंह ने धूला को ही अपने राज्य की राजधानी बनाया था । इसी ठाकुर वंश में आगे चलकर एक राजा दलेलसिंह हुए । इनके राज्यपण्डित श्रीगोविन्दरामजी थे । ये सुसंस्कृतज्ञ तथा प्रतिभा के धनी थे । आप आदि गौड़ पराशरगोत्रीय यजुर्वेदी, त्रिप्रवर तथा भींडा वंश से सम्बन्धित थे । आपके प्रपौत्र पं० राजारामजी को तीर्थयात्रा तथा देशाटन विशेष प्रिय था । सम्पूर्ण भारत भ्रमण करते हुए पं० राजारामजी काशी पहुँचे । वहाँ के पण्डित-मण्डली में पं० राजारामजी शीघ्र ही अत्यन्त लोकप्रिय हो गये । आपसे काशी के पण्डित इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने आपको वापस धूला नहीं जाने दिया । अतः आप काशी के मानमन्दिर मुहल्ले में रहने लगे । पं० राजारामजी ज्योतिष के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे, अतः आपने ज्योतिष व पौरोहित्य को अपनी जीविकोपार्जन का साधन बनाया । इसके अतिरिक्त आप कुछ लेन-देन का भी काम करने लगे । किन्तु व्यवहारकुशलता की कमी के कारण आप इस व्यवसाय में सफल न हो सके ।

पं० राजारामजी के दो पुत्र थे—दुर्गादत्त और देवीदत्त । पण्डित अम्बिकादत्त व्यास के पिताजी का नाम दुर्गादत्त था । वे कभी जयपुर रहते थे, कभी बनारस । व्यासजी का जन्म जयपुर में ही चैत्र शुक्ल अष्टमी सं० १९१५ में हुआ । आप प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे । संस्कृत व हिन्दी में आपकी विशेष रुचि थी । उन दिनों बालविवाह-प्रथा विशेष रूप से प्रचलित थी । अतः आपका भी विवाह १३ वर्ष की अल्पायु में ही हो गया ।

पं० व्यासजी के पिताजी कवि, विद्वान् और व्यवहारकुशल व्यक्ति थे ।

अतः उन्होंने व्यासजी को बाल्यकाल से ही अक्षरारम्भ के साथ ही उन्हें अमरकोष, शब्दधातुरूपावली और व्यावहारिक पदार्थों के संस्कृत नाम मौखिक रूप से कण्ठस्थ कराने प्रारम्भ कर दिये। वे स्वयं भी कुशाग्र बुद्धि और विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे, अतः शीघ्र ही संस्कृत में इनका ज्ञान प्रौढ़ होता गया। फलतः १० वर्ष की अवस्था से ही वे कविता करने लगे। पिताजी स्वयं विख्यात कवि थे, एतावता उनके साथ रहने से अन्य कवियों से भी इनका सम्पर्क बढ़ा। इसी सिलसिले में वे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के सम्पर्क में आये। उन्होंने इनका इतना उत्साह-संवर्धन किया कि वे सुकवि नाम से विख्यात हो गये। शास्त्रों का अध्ययन करते हुए कथावाचन और शास्त्रार्थ में रुचि लेने से इनके पाण्डित्य में चार चाँद लगने लगे। इनके ११ वर्ष की अवस्था में माता का तथा १७वें वर्ष में पिता का देहान्त होने से व्यासजी पर गृहस्थी का भार आ पड़ा। संवत् १९३७ में इन्होंने साहित्याचार्य परीक्षा उत्तीर्ण की, साथ ही अँग्रेजी का भी प्रौढ़ ज्ञान अर्जित किया। वक्तृता, शास्त्रार्थ और कविता करने में व्यासजी को इतना अभ्यास हो गया था कि वे एक घड़ी (२४ मिनट) में १०० श्लोक बना लेते थे। इसलिये सं० १९३८ में काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा में इन्हें 'घटिका-शतक' की उपाधि प्रदान की। सं० १९४० में मधुबनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष होकर बिहार गये। वहाँ मैथिली भाषा का अध्ययन किया। संस्कृत सीखने की अभिनव प्रणाली का आविष्कार किया। बिहार-संस्कृत-समाज की स्थापना की, जो आज भी संस्कृत के क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है। सं० १९४३ में ये मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के हेडपण्डित होकर गये, सं० १९४४ में भागलपुर के। सं० १९५० में ये छुट्टी लेकर भारत-भ्रमण पर निकले। पूरे देश में इनके सम्मान में सभाएँ हुईं। अन्त में काशी की महासभा में इन्हें भारतरत्न की उपाधि मिली। इनके घटिका-शतक और शतावधान की विलक्षण शक्ति से बड़े-बड़े विद्वान् भी चमत्कृत रह जाते थे। इसके बाद ये छपरा में अध्यापन करने लगे और सं० १९५७ में इनका देहावसान हो गया।

शिवराजविजय

शिवराजविजय का कथानक ऐतिहासिक हैं। इसमें महाराष्ट्र-केशरी वीर शिवाजी के चरित्र का कुशलतापूर्ण चित्रण है, अतः इसे आख्यायिका कहा जा सकता है। किन्तु शैली में यह 'हर्षचरित' (बाणकृत आख्यायिका) की

अपेक्षा 'कादम्बरी' (कथा) के अधिक समीप है। वैसे लेखक ने इसे गद्य-काव्य ही कहा है। क्योंकि यह गद्यकाव्य के समस्त गुणों से ओतप्रोत है। इसकी भाषा तथा शैली-प्रवाह रोचकता से परिपूर्ण है, अतः इसे गद्यकाव्य के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यास कहना समीचीन है। कादम्बरी तथा शिवराज-विजय में एक बड़ा अन्तर यह है कि जहाँ कादम्बरी के सुदीर्घ वर्णन पाठक के मन में कभी-कभी अरुचि उत्पन्न कर देते हैं, वहाँ 'शिवराजविजय' के वर्णन सर्वथा औचित्यपूर्ण हैं तथा कथा के प्रवाह में बाधक नहीं बनते। पाठक का आदि से अन्त तक कहीं चित्त ऊबता नहीं। अतः यह बीसवीं शताब्दी का एक सफल संस्कृत उपन्यास है।

इस ग्रन्थ को पढ़ने पर प्रतीत होता है कि व्यासजी महाकवि बाण से अधिक प्रभावित हैं। जैसे कादम्बरी में वैशम्पायन, कादम्बरी-चन्द्रापीड और महाश्वेता-पुण्डरीक की तीन कथाएँ एक साथ चलती हैं, परस्पर स्वतन्त्र होने पर भी कवि ने उन्हें आगे रचना-कौशल से ऐसे मिला दिया है कि वह सम्पूर्ण कथा एक ही प्रतीत होती है; इसी प्रकार व्यासजी ने भी शिवाजी और रघुवीर सिंह की दो पृथक् कथाओं को इस प्रकार मिला दिया है कि वह एक ही कथा मालूम पड़ती है। बाण के सभी पात्र कल्पित हैं, किन्तु व्यासजी के पात्रों का ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। व्यासजी की रचना का चमत्कार यह है कि उनकी कल्पना से न तो ऐतिहासिक घटनाक्रम में कोई विकृति आई है और न केवल घटना मात्र के वर्णन की नीरसता से काव्यत्व को कोई क्षति पहुँची है।

शिवराजविजय का साहित्यिक मूल्याङ्कन

शिवराजविजय व्यासजी की लोकविख्यात एवं लोकप्रिय गद्य-रचना है, जिसे संस्कृत-वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास होने का सौभाग्य प्राप्त है। शिवराजविजय का वाक्य-विन्यास अनुपम तथा अलंकार युक्त रूपशिल्प पाश्चात्य उपन्यासों तथा वंग उपन्यासों से समता रखनेवाला है। शिवराज-विजय पं० अम्बिकादत्त व्यास की कला की सुन्दर सृष्टि है। यह लेखक की परिपक्व प्रज्ञा तथा प्रौढ़ प्रतिभा का परिचायक ग्रन्थ है। साहित्यिक दृष्टि से शिवराजविजय में अनेक महत्त्वपूर्ण गुणों का समावेश दृष्टिगोचर होता है। उन गुणों का वर्णन क्रमशः निम्नलिखित हैं—

विस्तार का सर्वथा परित्याग किया गया है। संवादों में भाषा इतनी चुस्त तथा मुहावरेदार है कि वह विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है। यथा—

'दौवारिकः—आम् ! अग्रे कथ्यताम्।

संन्यासी—वयं च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः।

दौवारिकः—स्यादेवम् ! अग्रे अग्रे !!' इत्यादि।

(६) रस-अलंकार—काव्य में रससंयोजन-व्यापार के लिए सर्वाधिक आवश्यक वस्तु स्वाभाविकता है। जिस ग्रन्थकार के ग्रन्थ में जितनी अधिक स्वाभाविकता होगी, उसमें उतनी ही अधिक रसमयता होगी।

शिवराजविजय में पं० अम्बिकादत्त व्यास ने सर्वाधिक प्रश्रय नैसर्गिकता को दिया है। यही कारण है कि उनकी कृति आदि से अंत तक निर्बाध रूप से रसास्वादन कराती है। शिवराजविजय वीररसप्रधान गद्यकाव्य है। वीर रस, जिसका कि संस्कृत-साहित्य में सर्वथा अभाव-सा है, वह इस उपन्यास का प्रमुख रस है। जहाँ युद्ध आदि के प्रसंग आये हैं, वहाँ वीर रस के साथ-साथ रौद्र, भयानक, बीभत्स तथा अद्भुत रस स्वतः आविर्भूत हो उठे हैं। जहाँ कहीं शृङ्गार रस का वर्णन आया है, वहाँ वह सात्त्विक तथा पूर्ण संयत है और इसमें स्वस्थ प्रेम के दर्शन होते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि शिवराजविजय में नवों रस बड़ी चारुता तथा दक्षता से रक्खे गये हैं। शृङ्गारिक वर्णनों में कहीं भी अश्लीलता की गन्ध नहीं आती।

पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अलंकारों का प्रयोग एक कलाकार की भाँति किया है। स्थान-स्थान पर अलंकारों की छटा के दर्शन होते हैं, किन्तु अलंकारों का प्रयोग सर्वथा स्वाभाविक रूप में हुआ है, कवि को इनके लिए यत्न नहीं करना पड़ा है। अनुप्रास का एक स्वाभाविक प्रयोग देखिये—'मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकल-कालन-करालः कालः' इत्यादि।

अतः अलङ्कारों के प्रयोग में पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपनी सूक्ष्म मर्मज्ञता का परिचय दिया है। उनका गद्य अत्यधिक अलङ्कारों के भार से समाक्रान्त कामिनी की भाँति मन्द मन्थर गति से चलने वाला नहीं है, अपितु अपने सहज सौन्दर्य से सदस्यों के चित्त को समाकृष्ट करने वाला है। उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त आदि अलंकारों के प्रयोग में उनकी दक्षता एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मिलता है। यमक तथा श्लेष से काव्य में क्लिष्टता तथा कृत्रिमता

आ जाती है तथा रङ्गभङ्ग होने की आशंका रहती है, अतः लेखक ने उसका क्वचित् ही प्रयोग किया है।

(७) **सामाजिक चित्रण**—पं० अम्बिकादत्त व्यास ने अपने ग्रन्थ शिवराजविजय में तत्कालिक सामाजिक व्यवस्था का सफल चित्रण किया है। हिन्दू जाति की दयनीय स्थिति, मुसलमानों के अत्याचारों, दमनकारी प्रवृत्तियों आदि का यथार्थ चित्रण हुआ है। प्रथम उच्छ्वास से ही एक मुसलमान युवक द्वारा एक ब्राह्मण-कन्या का अपहरण तत्कालीन दुर्व्यवस्था तथा असीम अत्याचारों का परिचय कराता है। मुसलमानों द्वारा किये गये अत्याचारों का एक सफल चित्र प्रस्तुत है—

'अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्यानि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते, क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचित् धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचित् आर्तनादः, क्वचित् रुधिरधाराः, क्वचित् अग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः' इत्यादि।

शिवराजविजय का कथासार

शिवराजविजय की कथावस्तु तीन विरामों में संविभक्त है। प्रत्येक विराम में चार निश्वास हैं। अत्यन्त संक्षेप में कथानक निम्न प्रकार है—

दक्षिण में यवनों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न वीर शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष प्रारम्भ किया। उस काल में दो-दो कोस पर आश्रम निर्मित थे, जो यवनों (मुसलमानों) की गतिविधि का परिचय प्राप्त करते थे। शिवाजी की निरन्तर विजय से समुद्विग्न होकर बीजापुर के शासक ने उनसे संग्राम करने के लिए अफजलखान को प्रेषित किया। उस समय शिवाजी प्रताप दुर्ग में थे। अफजलखान ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर अपना शिविर डाल दिया। बीजापुर के शासक सन्धि के बहाने वीर शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे। किन्तु उनकी इस गुप्त योजना को शिवाजी ने पता लगा लिया। एक यवन गुप्तचर बीजापुर से पत्र लेकर जा रहा था। रास्ते में उसने एक विप्रकन्या का अपहरण किया। किन्तु वह कन्या एक आश्रम के अध्यक्ष—ब्रह्मचारीगुरु के शिष्यों—अर्थात् गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गई और यवन गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया। बीजापुर का गुप्त संदेशपत्र उसके वस्त्रों में से अन्वेषण कर गौरसिंह ने प्राप्त किया।

उस पत्र द्वारा बीजापुर के गुप्त दुरभिसन्धि को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजलखान को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धि-प्रस्ताव लेकर भेजे गये पण्डित गोपीनाथ द्वारा प्रताप दुर्ग की तलहटी में अफजलखान से मिलने का शिवाजी का प्रबन्ध किया गया। गौरसिंह भी गायक के वेष में अफजलखान के शिविर में जाकर निखिल वृत्तान्त का पता लगा लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगलों में तथा अफजलखान के शिविर के आस-पास छिपा दी। प्रातःकाल अफजलखान शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने वस्त्रों के अन्दर कवच तथा हाथों में बघनखा पहनकर गये। परस्पर आलिङ्गन करने पर शिवाजी ने अफजलखाँ के कन्धों और गर्दन को फाड़कर भूमि पर उसे पटक दिया तथा उसकी सेना ने यवनों (मुसलमानों) की सेना को मारकर भगा दिया।

गौरसिंह द्वारा जिस विप्रकन्या की रक्षा की गई थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर यह रहस्योद्घाटन हुआ कि वह कन्या गौर-सिंह और श्यामसिंह की बहन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देवशर्मा है। तदनन्तर ब्रह्मचारि गुरु के अनुरोध पर गौरसिंह ने निज-वृत्तान्त इस प्रकार सुनाया—

वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता के परलोकगमन के बाद तीनों बहिन-भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहते लगे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़ लिये गये। किन्तु किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़कर भाग निकले और एक हनुमान् मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। वहाँ भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ता खाँ पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंहदुर्ग में अपना एक संदेश रघुवीर सिंह द्वारा तोरण दुर्ग के अध्यक्ष के पास प्रेषित किया। आँधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण दुर्ग पहुँचकर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान् मन्दिर में ठहरा। इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देखकर रघुवीर सिंह के हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जा[illegible]हुई। शिवाजी के आदेशानुसार रघुवीर सिंह शाइस्ता खाँ के साथ होने वा[illegible]द्ध के

भविष्य को पूछने के लिए देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिलाकर गले में एक माला पहनवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृत्तान्त सुनाने के लिए कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और 'यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में 'पराजय' यह भविष्य जानकर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी सौवर्णी से पुनः भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान्-जी का प्रसाद लेकर सिंहदुर्ग की ओर चल पड़ा।

एक बार शिवाजी पण्डित के वेष में माल्यश्रीक के साथ शाइस्ता खाँ के साथ पूना जाकर गुप्त रूप से वहाँ का निरीक्षण कर आये और सन्देह करने पर पीछा करने वाला चाँद खाँ शिवाजी के द्वारा मारा गया। शिवाजी ने यशवन्त सिंह को पूना से दूर रहने के लिए अनुरोध करके कुछ चुने हुए साथियों के साथ बारात के बहाने पूना में प्रवेश किया और शाइस्ता खाँ के निवास पर आक्रमण कर दिया। चाँद खाँ और शाइस्ता खाँ के पुत्र रघुवीर सिंह द्वारा मारे गये। शाइस्ता खाँ अपनी घायल उँगली के साथ खिड़की से कूदकर बाहर भाग गया। दूसरी ओर इसके पूर्व ही रघुवीर सिंह ने औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा को गिरफ्तार कर लिया था।

एक समय ब्रह्मचारिगुरु ने गौरसिंह से अपना और अपने पुत्र वीरेन्द्र सिंह का पूर्व वृत्तान्त बतलाया। उधर रघुवीर सिंह की प्रेयसी सौवर्णी ने क्रूरसिंह द्वारा किये जाने वाले अपने अपमान की बात बतलाई। तभी संयोगवश क्रूरसिंह की नियुक्ति अन्यत्र हो गई और उसका कष्ट दूर हो गया।

इधर रोशनआरा अपना प्रेम शिवाजी से प्रकट कर रही थी, किन्तु उन्होंने कह दिया कि वे उसे पिता द्वारा दिये जाने पर ही स्वीकार कर सकते हैं। तभी जयसिंह ने सैन्य-आक्रमण कर दिया। शिवाजी ने उसके मन में हिन्दुत्व की भावना जाग्रत करने का प्रयास किया, परन्तु असफल रहने पर कुछ कारणों से उसने मुगलों की कुछ शर्तें मानकर सन्धि करने को विवश हुए। इसी सन्धि के अनुसार रोशनआरा और मुअज्जम को वापस कर दिया।

तदनन्तर बीजापुर के एक किले पर आक्रमण करके रघुवीर सिंह की सहायता से शिवाजी ने विजय प्राप्त की और रहमत खाँ को जीवित पकड़ लिया, परन्तु रहमत खाँ और क्रूरसिंह द्वारा रघुवीर सिंह को राजद्रोही

बतलाये जाने पर शिवाजी ने उसे निष्कासित कर दिया। बाद में ज्ञात हुआ कि राजद्रोही वास्तव में क्रूरसिंह ही था।

अपमानित रघुवीर सिंह राधास्वामी का वेष धारण कर शिवाजी का उपकार करता रहा और सौवर्णी के अपहरण करने की इच्छा वाले क्रूरसिंह का वध कर दिया। जयसिंह की सन्धि के अनुसार शिवाजी १६६६ में औरंगजेब के राजदरबार दिल्ली में उपस्थित हुए। मार्ग में राधास्वामी (रघुवीर सिंह) के कई बार रोकने का प्रयास करने पर भी शिवाजी नहीं माने।

दरबार में उपस्थित होने के अनन्तर औरंगजेब ने शिवाजी को नजरबन्द करवा दिया और मकान के चारों ओर पहरा बैठा दिया। परन्तु स्वयं की योजना तथा रघुवीर सिंह के सहयोग से शिवाजी अपने साथियों के साथ भाग निकलने में सफल हो गये। तदनन्तर यह जानकर कि राधास्वामी ही रघुवीर सिंह हैं, शिवाजी ने क्षमा-याचना की।

इसके बाद रघुवीर सिंह भी शिवाजी के साथ वापस लौट जाता है। उसे मण्डलेश्वर पद प्रदान किया गया तथा सौवर्णी के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने विवाह में सम्मिलित होकर आशीर्वाद प्रदान किया। उधर दूतों ने सूचना दी कि सन्धि में मुगलों को दिये गये सभी किले जीत लिये गये हैं।

बाद में शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बनाकर रहने लगे और धीरे-धीरे कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया तथा औरंगजेब द्वारा प्रेषित सेनापति मोहम्मद खाँ भगा दिया गया।

पात्रों के चरित्र-चित्रण

पं० अम्बिकादत्त व्यासजी ने शिवराज-विजय में पात्रों का जो चरित्र-चित्रण किया है, उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह नितान्त स्वाभाविक है। उसमें कहीं लेशमात्र भी कृत्रिमता नहीं है। फलतः उनका प्रत्येक पात्र अपने में पूर्णतः जीवन्त और प्रभावी है। योगिराज, ब्रह्मचारी गुरु और आश्रम के ब्रह्मचारी सब अपने कर्तव्य के लिए प्रतिबद्ध हैं। इस गद्यकाव्य [illegible]ायक शिवाजी हैं।

शिवाजी—शिवाजी भारतीय संस्कृति और आदर्शों के प्रतिनिधिस्वरूप हैं। वे सनातन धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करते हैं। वे अप्रतिम वीर हैं। उनका नाम सुनते ही शत्रुओं के मानस भय से परिपूर्ण हो उठते हैं। वे नितान्त देशभक्त हैं। उन्हें दुःख है कि समस्त हिन्दू भूपति-गण एकता में बँधकर यवनों (मुसलमानों) को यहाँ से क्यों भगा नहीं देते। उन्हें साम्राज्य की अभिलाषा नहीं है। वे किसी भी हिन्दू राजा से मिलने को तत्पर हैं, किन्तु अत्याचारी यवनों से किसी प्रकार भी सन्धि करने को तैयार नहीं हैं। वे राजनीति में निष्णात हैं और शठों के प्रति शठता करने में उन्हें कोई संकोच नहीं है। उनकी व्यवस्था ऐसी है कि उनके शासन में प्रत्येक जन अपने को राष्ट्र के प्रति समर्पित समझता है। उस समय मुनियों के आश्रमों में भी राजनीति की शिक्षा दी जाती थी। प्रत्येक दो-दो कोस के बीच सनातन धर्म की रक्षा का व्रत लिये मुनियों के आश्रम विनिर्मित थे। उनके छप्परों और ओरियों में अस्त्र-शस्त्र छिपाये रहते हैं। कभी भी किसी प्रकार के संकट का सामना करने की प्रत्येक व्यक्ति तैयारी रखता है। गुप्तचरों का ऐसा जाल बिछा रहता है कि शत्रुओं की कोई भी सोच इन तक पहुँच जाती है। शिवाजी का प्रत्येक कर्मचारी उनके प्रति इतना निष्ठावान् है कि वह उन्हें ही ईश्वर समझता है। संन्यासी वेश में गौरसिंह द्वारा द्वारपाल की परीक्षा, रघुवीर सिंह का भयंकर आँधी-तूफान की परवाह न कर तोरण दुर्ग पहुँचना आदि कई प्रसङ्ग ऐसे हैं, जिनसे उनकी कुशल राजनीतिज्ञता का बोध होता है। शिवाजी की वीरता और उनके सिपाहियों की निर्भीकता एवं रण-कौशल से शत्रुसेना सदैव भयाक्रान्त रहती है।

गौरसिंह और श्यामसिंह—ये दोनों राजपूत युवक किन परिस्थितियों में अपनी मातृभूमि त्याग कर कोंकण तक पहुँचते हैं और यहाँ शिवाजी के आश्रम में क्या-क्या चमत्कार कर दिखलाते हैं, इसका चित्रण व्यासजी ने जिस रूप में किया है, वह अद्भुत है। गौरसिंह कन्या का अपहरण करने वाले युवक की हत्या कर उसकी जेब से पत्र निकालता है, जिससे अफजल खाँ की योजना का पता लग जाता है। गौरसिंह वेश बदलने में अत्यन्त निपुण है। वह क्षणभर में गायक बन जाता है, तुरन्त सैनिक और पलभर में संन्यासी गुप्तचर। वह इतना निर्भीक है कि अकेला शत्रु के शिविर में जाकर सारा भेद ले लेता है और उसके सामने शिवाजी की वीरता बखानता है और अफजल-

खान पर अपनी छाप छोड़ जाता है। वह संगीत का ऐसा ज्ञाता है कि शत्रु और उसके सभी गायक उसके सामने हतप्रभ हो जाते हैं। अपनी यात्रा का ऐसा वर्णन करता है कि जैसे अभी-अभी वहाँ से आ रहा हो। संन्यासी बनकर द्वारपाल की परीक्षा लेता है। महाव्रताश्रमों की सारी व्यवस्था का संचालन और निरीक्षण करता है। छाया की तरह शिवाजी के साथ भी रहता है। सौवर्णी और देवशर्मा पुरोहित को देखकर उसके उद्‌गार देखते ही बनते हैं।

रघुवीर सिंह—यह षोडशवर्षीय राजपूत युवक शिवाजी का विश्वस्त दूत है, इस पर स्वयं तोरण के दुर्गाध्यक्ष को आश्चर्य होता है। वह विभिन्न कष्टों को सहकर तोरण दुर्ग की यात्रा करता है और मुख्य द्वार बन्द होने से पूर्व ही वहाँ पहुँच जाता है। 'इतने स्वल्प समय में इतनी दूर आ गये' यह पूछने पर उत्तर देता है—'प्रभु (शिवाजी) का ऐसा ही आदेश था'। आशय यह है कि शिवाजी के सेवक अपने प्राणों को तुच्छ समझ कर भी उनके आदेश को पूरा करते हैं। सौवर्णी का संगीत सुनकर और उसे देखकर रघुवीर सिंह का मन समुद्वेलित होता है, परन्तु वह शीघ्र ही मन पर अधिकार कर लेता है। पुजारी द्वारा सौवर्णी से रघुवीर को माला तथा प्रसाद दिलाते समय दोनों का एक-दूसरे के प्रति पुनः आकर्षण बढ़ता है, फिर भी सौवर्णी की मोती की लड़ वह किस शिष्टता से उसके गले में डाल देता है।

अफजलखान—अफजल खाँ को बीजापुर के नवाब शाइस्ता खाँ ने शिवाजी को जीतने के लिए प्रेषित किया है। यह वहाँ प्रतिज्ञा करके आया है कि मैं शिवाजी को जीवित ही पकड़ कर ले आऊँगा, किन्तु वह अपनी संस्कृति के अनुरूप विलासी, अदूरदर्शी, आत्मश्लाघी तथा राजनीतिज्ञता से अनभिज्ञ है। वह तानरंग (गौरसिंह) के सामने ही अपने सेनानायकों को आदेश देता हुआ सारी योजना उगल देता है। जिसके फलस्वरूप वह छल से मारा जाता है।

इस ग्रन्थ के प्रणयन में हमारे विद्यालय के अध्यापक श्रेष्ठ श्रीसेतुबन्ध पाण्डेय और लिपिक-वर श्रीजनार्दन यादव ने समय-समय पर सत्परामर्श देकर हमें अनुगृहीत किया है। एतावता उन लोगों के प्रति साधुवाद प्रदान करते हुए लेखनी को यहीं विश्राम देता हूँ।

विदुषां विधेयः
डॉ० रमाशंकर मिश्र

॥ श्रीः ॥

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितः

शिवराजविजयः

(ऐतिहासिक उपन्यासः)

प्रथमो बिरामः

"विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत् ।" (भागवतम् १०।१।२५)

"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ।"
(भागवतम् १०।७।३१)

व्याख्या—विष्णोः=जगद्व्यापकस्य, नारायणस्य, माया=एतन्नामिका सत्त्वप्रधाना शक्तिः, भगवती=अशेषषड्गुणसमन्विता, ऐश्वर्यशालिनी वा, विद्यत इति शेषः । यया=सत्त्वप्रधानभूतया शक्त्या, माययेति शेषः, जगत्=निखिलं भुवनं, सम्मोहितम्=चारुतया मोहेन वशीकृतम् ।

हिंस्रः=हिंसनशीलः, खलः=दुर्जनः, स्वपापेन=निजेन पातकेन, विहिंसितः=घातितः, साधुः=सन्मानवः, समत्वेन=रागद्वेषादिविरहितया समत्वभावनया, भयाद्=भीतेः, विमुच्यते=मुक्तिरधिगम्यते । सज्जनः सत्कर्मणाऽपगतभयो भवतीति भावः ।

समासः—वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरात्मकं प्रपञ्चमिति विष्णुः, तस्य विष्णोः । भगोऽस्या अस्तीति भगवती । गच्छतीति जगत् । स्वं पापं स्वपापम्, तेन स्वपापेन । साध्नोति परकार्यमिति साधुः ।

कोषः—'विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरश्रवाः' इत्यमरः । 'अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः । 'दरस्त्रासोभीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—भग+मतुप्+ङीप् । सम्+मुह+क्त । वि+हिंस+क्तः । वि+मुच्+कर्मणि लट् ।

शब्दार्थ—विष्णोः=भगवान् विष्णु की, माया—सत्त्वप्रधानात्मिका माया नामिका शक्ति, भगवती=निखिल षड्गुणसम्पन्न ऐश्वर्यशालिनी है, यया=जिस माया शक्ति के द्वारा, जगत्=अशेष भुवन, सम्मोहितम्=मोह में डालकर अपने अधीन किया गया है। हिंस्रः=हिंसनशील, स्वपापेन=निज पातक से, विहिंसितः=मारा गया, साधुः=सत्पुरुष, समत्वेन=समत्व बुद्धि के कारण, भयाद्=भीति से, विमुच्यते=मुक्त हो जाता है।

हिन्दी—भगवान् विष्णु की सत्त्वप्रधानात्मिका शक्ति माया सर्वगुणसम्पन्ना तथा ऐश्वर्यशालिनी है, जिसके द्वारा अशेष जगत् सम्यग रूप से मोहित किया गया है। (भागवत १०।१।२५)

दुष्ट हिंसक जन अपने पातक से ही मारा गया और सत्पुरुष अपने समत्व-बुद्धि के कारण भीति से मुक्त हो गया। (भागवत १०।७।३१)

टिप्पणी—ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम यहाँ भागवत की दो सूक्तियों को समुद्धृत किया है। प्रथम सूक्ति शुक परीक्षित परिसंवाद के अवसर पर दुर्विनीत अन्यायी राजाओं के भारबाहुल्य से सम्पीडित धरा के दुःखमोचन हेतु ब्रह्मा द्वारा विनिर्दिष्ट उपायभूत है। सम्पूर्ण श्लोक निम्न प्रकार है—

'विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितं जगत्।
आदिष्टा प्रभुणांशेन कार्यार्थे सम्भविष्यति'॥

इसमें भगवान् विष्णु की मायाशक्ति का प्रभाव वर्णित है। प्रारम्भ में विष्णु के नामग्रहण से मङ्गलाचरण का भी सूचक है। भगवती शब्द से सर्वविध ऐश्वर्यसमन्विता और सकलगुणसम्पन्नता अभिप्रेत है। विद्वानों ने भगवत्ता का वर्णन अधोलिखित रूप में किया है—

'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरिणा'॥

द्वितीय सूक्ति बालकरूप में भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा चक्रवातरूप धारण करने वाले तृणावर्त नामक दैत्य के विनाश के अनन्तर प्रसन्नचित्त नन्द आदि गोप-गोपिकाओं के मुखारविन्द से समुच्चरित है। पूरा श्लोक इस प्रकार है—

'अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात् पुनः।
हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते॥

यह सूक्ति भविष्य में होने वाले ग्रन्थ-नायक शिवराज के विजय और यवन-शासक के विनाश को भी संसूचित करती है।

"अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोक-विमोकः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्द्धसङ्ख्या, असावेव चर्कर्त्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीराम-चन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामि"ति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन् निज-पर्णकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवनपटुर्विप्रबटुः।

व्याख्या—पूर्वस्यां = प्राच्यां, भगवतः=ऐश्वर्यसम्पन्नस्य, मरीचिमालिनः= भास्करस्य, एषः = अयम्, अरुणः = लोहितः, प्रकाशः = द्योत, विद्यत इति शेषः। एषः = पुरोदृश्यमानः, भगवान् = दिवाकरः, आकाशमण्डलस्य = गगन-मण्डलस्य, मणिः = रत्नम्। खेचरचक्रस्य = तारासमुदायस्य, चक्रवर्ती = सार्व-भौमो नृपः, आखण्डलदिशः = पुरन्दरकाष्ठायाः, प्राच्या इति भावः, कुण्डलम् = कर्णवेष्टनम्, ब्रह्माण्डभाण्डस्य = ब्रह्माण्डभवनस्य, ब्रह्माण्डपात्रस्य वा, दीपकः= प्रकाशकः, पुण्डरीकपटलस्य = सिताम्भोजसमूहस्य, प्रेयान् = नितान्तप्रियः, कोकलोकस्य = चक्रवाकनिवहस्य, शोकविमोकः = कष्टहरः, रोलम्बकदम्बस्य= द्विरेफव्रातस्य, अवलम्बः = आश्रयः, सर्वव्यवहारस्य = सांसारिकाशेषव्यापारस्य, सूत्रधारः = प्रवर्त्तयिता, दिनस्य = वासरस्य, इनः = स्वामी, विद्यत इति शेषः। अयमेव = भगवान् भास्कर एव, अहोरात्रं = नक्तन्दिवं, जनयति = विदधाति, अयमेव = सूर्य एव, वत्सरम् = अब्दं, द्वादशसु= द्वादशसङ्ख्यकेषु, भागेषु = खण्डेषु, मेषादिमासरूपेष्विति भावः, विभनक्ति = विभजते, अयमेव = रविरेव, षण्णा-मृतूनाम् = वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराख्यानां षट्संख्यकानामृतूनाम्, कारणं = हेतुः, एष एव = भगवान् विवस्वान् एव, उत्तरम् = उदीचीं, दक्षिणम् = अवाचीं च, अयनं = स्वीयं मार्गम्, अङ्गीकरोति = स्वीकरोति, एनेनैव = भगवता भास्करेणैव, युगभेदाः = सत्ययुगत्रेताद्वापरकलिरित्येवम्प्रकारकाः युग-

विभागाः, सम्पादिताः=विहिताः, एनेनैव=सूर्येणैव, कल्पभेदाः=द्विसहस्र-देवयुगात्मकाः कालभेदाः, कृताः=व्यवस्थापिताः, एनमेव=विवस्वन्तमेव, आश्रित्य=अवलम्ब्य, परमेष्ठिनः=जगत्स्रष्टुर्ब्रह्मणः, परार्द्धसङ्ख्या=चरमा परार्द्धनाम्ना प्रथिता सङ्ख्या, भवति=सम्पूर्णतामेति, असौ=सविता, एव=निश्चयेन, जगत्=निखिलं भुवनं, चर्कर्ति=पुनः पुनः करोति, बर्भर्ति=पुनः पुनः भरति, जर्हर्ति=पुनः पुनः हरति च, वेदाः=ऋग्यजुःसामाथर्वाख्याः, एतस्यैव=भगवतो भास्करस्यैव, वन्दिनः=स्तुतिवाचकाः, गायत्री=एतन्नामिका देवी, अमुमेव=भास्करमेव, गायति=गानं कुरुते, ब्रह्मनिष्ठाः=वेदपारगाः, ब्रह्मणि रताश्च, ब्राह्मणाः=विप्राः, अमुमेव=आदित्यमेव, अहरहः=प्रतिदिनम्, उपतिष्ठन्ते=सपर्यां विदधति, उपासते वा। श्रीरामचन्द्रस्य=दशरथात्मजस्य, कूलमूलं=वंशाग्रजः, एषः=विवस्वान्, धन्यः=प्रशंसार्हः, एषः=अयं सूर्यः, विश्वेषां=समेषां जनानां कृते, प्रणम्यः=वन्दनीयः, इति=अस्माद्धेतोः=एवंरीत्या विचार्य, उदेष्यन्तम्=उदीयमानं, भास्वन्तम्=अर्यमणं, प्रणमन्=प्रणामं विदधन्, निजपर्णकुटीरात्=स्वपत्रोटजात्, कश्चित्=अज्ञातनामा, गुरुसेवनपटुः=गुरुशुश्रूषानिपुणः, विप्रवटुः=द्विजबालकः, निश्चक्राम=निर्जगाम।

समासः—मरीचीनां मालाऽस्यास्तीति मरीचिमाली, तस्य मरीचिमालिनः। खे नभसि चरन्तीति खेचराः, तेषां चक्रः खेचरचक्रस्तस्य खेचरचक्रस्य। ब्रह्माण्डमेव भाण्डं ब्रह्माण्डभाण्डं, तस्य ब्रह्माण्डभाण्डस्य। पुण्डरीकाणां पटलं पुण्डरीकपटलं, तस्य पुण्डरीकपटलस्य। रोलम्बानां कदम्बः रोलम्बकदम्बः, तस्य रोलम्बकदम्बस्य। अहश्च रात्रिश्च अहोरात्रम्। कल्पानां भेदाः कल्पभेदाः। ब्रह्मणि निष्ठा येषां ते ब्रह्मनिष्ठाः। पर्णानां कुटीरः पर्णकुटीरः, निजस्य पर्णकुटीरः निजपर्णकुटीरः, तस्मात् निजपर्णकुटीरात्। गुरुसेवने पटुः गुरुसेवनपटुः। विप्रश्चासौ वटुः विप्रवटुः, अथवा विप्रस्य वटुः विप्रवटुः।

कोषः—'चक्रः कोके पुमान् क्लीबं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः। राष्ट्रे दम्भान्तरे कुम्भकारोपकरणास्त्रयोः। जलावर्तेऽपि' इति मेदिनी। 'स्याद् भाण्डमश्वाभरणेऽमत्रे मूलवणिग्धने' इत्यमरः। 'छदिर्नेत्ररुजोः क्लीबं समूहे पटलं न ना' इत्यमरः। 'इनः सूर्ये प्रभौ' इत्यमरः। 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इति चामरः।

व्याकरणम्—जनयति—जन्+णिच्+लट्+तिप् ('बुधयुधनशजनेङ्-

प्रुद्रुस्नुभ्यो णेः' (१।३।८६) इत्यनेन परस्मैपदम्)। विभनक्ति—विभञ्ज + लट् + तिप्। आश्रित्य—आङ् + श्रिञ् + क्त्वा + ल्यप्। चर्कर्ति—'डुकृञ् करणे + यङ् (लुक्) + लट् + तिप्। वर्भर्ति—भृञ् + यङ् (लुक्) + लट् + तिप्। जर्हर्ति—हृञ् + यङ् (लुक्) + लट् + तिप्। गायति—गै शब्दे + लट् + तिप्। उपतिष्ठन्ते—उप + स्था + लट् + झ ('उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वक्तव्यम्' इत्यनेन वार्तिकेनात्मनेपदम्)। प्रणम्यः—प्र + णम् + यत्। प्रणमन्—प्र + णम् + शतृ। कुटीरः—'ह्रस्वा कुटी' इत्यस्मिन्नर्थे 'कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः' (पा० ५।३।८८) इत्यनेन र प्रत्ययः। निश्चक्राम—निर् + क्रमु पादविक्षेपे + लिट्।

शब्दार्थ—पूर्वस्यां = पूर्व दिशा में, भगवतः = ऐश्वर्ययुत, मरीचिमालिनः = भगवान् सूर्य का, एषः = यह, अरुणः = कुछ लाल वर्ण का, प्रकाशः = प्रकाश (ज्योति) है। एष भगवान् = यह भगवान्, आकाशमण्डलस्य = वियन्मण्डल के, मणिः = रत्न हैं, खेचरचक्रस्य = तारासमूह के, चक्रवर्ती = सार्वभौम नृपति हैं, आखण्डलदिशः = देवाधिराज इन्द्र की दिशा प्राची के, कुण्डलम् = कर्णाभूषण हैं, ब्रह्माण्डभाण्डस्य = ब्रह्माण्डरूपी भवन, अथवा ब्रह्माण्डरूपी पात्र के, दीपकः = प्रकाशक हैं, पुण्डरीकपटलस्य = श्वेतकमलसमूह के, प्रेयान् = अतिशय प्रिय हैं, कोकलोकस्य = चक्रवाकसमुदाय के, शोकविमोकः = दुःखहर्ता है, रोलम्बकदम्बस्य = भ्रमरसमूह के, अवलम्बः = आश्रय हैं, सर्वव्यवहारस्य = सांसारिक अशेष व्यवहार के, सूत्रधारः = प्रवर्तक हैं, च = और, दिनस्य = दिवस के, इनः = स्वामी हैं। अयमेव = यही भगवान्, अहोरात्रं = दिन-रात, जनयति = उत्पन्न करते हैं, अयमेव = यही, वत्सरं = वर्ष को, द्वादशसु भागेषु = बारह भागों में, विभनक्ति = विभक्त करते हैं, अयमेव = यही, षण्णामृतूनां = वसन्तादि षड् ऋतुओं के, कारणं = हेतु हैं, एष एव = यही भगवान्, उत्तरं दक्षिणं चायनं = उत्तरायण और दक्षिणायन रूप अपने मार्ग को, अङ्गीकरोति = स्वीकार करते हैं, एनेनैव = इन्हीं भगवान् सूर्य के द्वारा, युगभेदाः = सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—इस प्रकार के युगों के भेद, सम्पादिताः = किये गये हैं, एनेनैव = इन्हीं भगवान् के द्वारा, कल्पभेदाः = कल्पों का विभाजन, कृताः = किया गया है, एनमेवाश्रित्य = इन्हीं भगवान् सूर्य का ही आश्रयण कर, परमेष्ठिनः = विधाता की, परार्द्धसङ्ख्या भवति = अन्तिमा परार्द्ध नाम्नी संख्या पूरी होती है, असावेव = यही भगवान् सूर्य, जगत् = सम्पूर्ण संसार को, चर्कर्ति =

पुनः-पुनः उत्पन्न करते हैं, बभर्ति=पुनः-पुनः भरण-पोषण करते हैं, जहर्ति= पुनः-पुनः संहार करते हैं, वेदाः=ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, एतस्यैव=इन्हीं भगवान् सूर्य के, वन्दिनः=स्तुतिवाचक हैं, गायत्री=गायत्री नाम की देवी, अमुमेव=भगवान् सूर्य का ही, गायति=गान करती है, ब्रह्म-निष्ठब्राह्मणाः=ब्रह्मनिष्ठ विप्रगण, अमुमेव=भगवान् सूर्य की ही, अहरहः= प्रतिदिनं, उपतिष्ठन्ते=उपासना करते हैं, श्रीरामचन्द्रस्य=भगवान् राम के, कूलमूलं=आदिवंशप्रवर्तक, एषः=भगवान् सूर्य, धन्यः=धन्य हैं, एषः=यह भगवान् सूर्य, विश्वेषां=सम्पूर्ण जनों के लिए, प्रणम्यः=प्रणाम करने योग्य हैं, इति=इस प्रकार से विचार कर, उदेष्यन्तं भास्वन्तं=उदीयमान भगवान् सूर्य को, प्रणमन्=प्रणाम करता हुआ, निजपर्णकुटीरात्=अपने छोटे पर्णकुटी से, कश्चित्=कोई, गुरुसेवनपटुः=गुरु की सेवा में निपुण, विप्रवटुः=ब्राह्मण का बालक, निश्चक्राम=निकला।

हिन्दी—प्राची में भगवान् सूर्य का यह रक्तिम प्रकाश है। यह भगवान् भास्कर गगनमण्डल के मणि, नक्षत्र-समुदाय के चक्रवर्ती नृपति, पुरन्दर दिशा प्राचीरूपी नायिका के कुण्डल, ब्रह्माण्डरूपी भवन के प्रकाशक, कमल-समूह के अतिशय प्रिय, चक्रवाकव्रात के शोक का अपसारण करने वाले, द्विरेफ-समूह के आश्रय, निखिल व्यवहार के प्रवर्तक और दिवस के स्वामी हैं। यही भगवान् दिन और रात के जनक हैं। ये ही वर्ष को बारह भागों में विभक्त करते हैं। वसन्तादि षड् ऋतुओं के ये ही कारणभूत हैं। ये ही उत्तरायण और दक्षिणा-यनरूप सूर्यमार्ग का अवलम्बन करते हैं। इन्होंने ही चतुर्युगों (सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग) का विभेद सम्पादित किया है। इन्होंने ही कल्पों का विभाजन किया है। इन्हीं को आधारभूत बनाकर विधाता की अन्तिमा परार्द्ध-संख्या पूर्णता को प्राप्त करती है। ये ही भगवान् अशेष संसार का पुनः-पुनः सृजन, पालन और संहार करते हैं। वेद इन्हीं की स्तुति करते हैं। गायत्री देवी इन्हीं का गान करती हैं। ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हीं की अर्चना करते हैं। श्रीरामचन्द्र के कुल के मूल ये भगवान् सूर्य धन्य हैं। ये समस्त जनों के लिये वन्दनीय हैं—ऐसा सोचकर उदय होते हुए भगवान् सूर्य को प्रणाम करता हुआ, गुरुसेवा में दक्ष कोई विप्र-बालक अपनी पर्णकुटी से बाहर निकला।

टिप्पणी—ब्रह्मा की दिन-रात मनुष्यों का कल्प अर्थात् स्थिति और प्रलयकाल है। जैसा कि अमरकोषकार ने कहा है—

'मासेन स्यादहोरात्रः पैत्रः वर्षेण दैवतः।
दैवे युगसहस्रे द्वे ब्राह्मः कल्पौ तु तौ नृणाम्॥
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।
संवर्तः प्रलयः कल्पः क्षयः कल्पान्त इत्यपि॥

—अ० १।४।२१-२२॥ १॥

"अहो! चिररात्राय सुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महान् पुण्यमयः समयोऽतिवाहितः, सन्ध्योपासन-समयोऽयमस्मद्गुरुचरणानाम्, तत् सपदि अवचिनोमि कुसुमानि" इति चिन्तयन् कदलीदलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचयं कर्त्तुमारेभे।

व्याख्या—अहो!=विस्मयान्विते विषादे, चिररात्राय=चिरकालं यावद्, अहं=विप्रवटुः, सुप्तः=शयितः, स्वप्नजालपरतन्त्रेण=निद्राऽऽनायवशीभूतेन, एव=निश्चयेन, महान् पुण्यमयः=अतिसुकृतसमन्वितः, समयः=कालः, अतिवाहितः=व्ययीकृतः, अस्मद्गुरुचरणानां=मदीयाचार्यपादानाम्, अयं=एषः, सन्ध्योपासनसमयः=सन्ध्यासम्पादनकालः, तत्=तस्माद्धेतोः, सपदि=सत्वरम्, कुसुमानि=प्रसूनानि, अवचिनोमि=सङ्कलयामि, इति=एवम्प्रकारेण, चिन्तयन्=मनसि विचारयन्, एकम्=एकसङ्ख्यकम्, कदलीदलम्=काष्ठीलापर्णम्, आकुञ्च्य=आच्छिद्य, तृणशकलैः=बालतृणखण्डैः, सन्धाय=संयोज्य, पुटकम्=कुसुमस्थापनाय पात्रम्, 'दोना' इति मातृभाषायाम्, विधाय=कृत्वा, पुष्पावचयं=कुसुमलवनम्, एकत्रीकरणं वा, कर्तुम्=विधातुम्, आरेभे=समारब्धवान्।

समासः—स्वप्न एव जालम्, तस्य परतन्त्रेण स्वप्नजालपरतन्त्रेण। कदल्याः दलं कदलीदलम्। तृणानां शकलाः, तृणशकलास्तैः तृणशकलैः। पुष्पाणाम् अवचयः पुष्पावचयस्तं पुष्पावचयम्।

कोषः—'चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थकाः' इत्यमरः। 'स्यान्निद्रा शयनं स्वापः स्वप्नः संवेश इत्यपि'। 'आनायः पुंसि जालं स्यात्'। 'परतन्त्रः पराधीनः परवान्नाथवानपि। अधीनो निघ्न आयत्तोऽस्वच्छन्दो गृह्यकोऽप्यसौ'।

'स्रग्झटित्यञ्जसाऽह्नाय द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुते'। 'सद्यः सपदि तत्क्षणे'। 'कदली वारणबुसा रम्भा मोचांशुमत्फला। काष्ठीला'। 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्'। 'भिन्नं शकलखण्डे वा पुंस्यर्धोऽर्धं समेंऽशके' इत्यमरः।

व्याकरणम्—सुप्तः—स्वप्+क्त। पुण्यमयः—पुण्य+मयट्। अवचिनोमि—अव+चिञ्+लट्+मिप्। चिन्तयन्—चिन्त+शतृ। आकुञ्च्य—आ+कुञ्च+क्त्वा=ल्यप्। सन्धाय—सम्+धा+क्त्वा+ल्यप्। आरेभे—आङ्+रम्भ्+लिट्+तिप्।

शब्दार्थ—अहो !=आश्चर्ययुक्त खेद है, चिररात्राय=बहुत देर तक, अहम्=द्विजबालक मैं, सुप्तः=शयन करता रहा, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव=निद्रारूपी जाल के अधीन होने से ही, महान् पुण्यमयः=अत्यन्त सुकृतयुक्त, समयः=काल, अतिवाहितः=व्यर्थं नष्ट कर दिया, अस्मद्गुरुचरणानाम्=हमारे आचार्यपाद का, अयम्=यह, सन्ध्योपासनसमयः=सन्ध्या करने का समय है, तत्=इसलिये, सपदि=शीघ्र, कुसुमानि=फूलों को, अवचिनोमि=तोड़कर संकलित करता हूँ, इति=इस प्रकार से, चिन्तयन्=मन में विचार करता हुआ, एकम्=एक, कदलीदलम्=केले के पत्ते को, आकुञ्च्य=तोड़कर, तृणशकलैः=बालतृण के खण्डों (टुकड़ों) से, सन्धाय=संयोजित कर, पुटकं=पुष्पों को रखने के लिए पात्र अर्थात् दोना, विधाय=बनाकर, पुष्पावचयं=फूलों का चयन, कर्तुम्=करने के लिए, आरेभे=आरम्भ किया।

हिन्दी—ओह ! खेद है, मैं चिरकाल तक शयन करता रहा। निद्रारूपी जाल के अधीन होकर मैंने अत्यन्त पुण्यमय काल व्यर्थं व्यतीत कर दिया। हमारे आचार्यपाद का यह सन्ध्या-सम्पादन का समय है। अतः शीघ्र ही फूलों का चयन करता हूँ। इस प्रकार वह विप्रबालक मन में सोचता हुआ एक केले के पत्ते को तोड़कर, बालतृणों के टुकड़ों से उसे जोड़कर, पुष्पों को रखने के लिये दोना बनाकर प्रसूनों का चयन करना आरम्भ कर दिया।

टिप्पणी—भारतीय संस्कृति में ब्राह्म मुहूर्त में उठने का बड़ा ही महत्त्व है। जैसा कि मनु ने स्वयं कहा है—

'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेदि'ति।

सन्ध्या-वन्दनादि भी नित्य करणीय हैं। जैसा कि किसी मनीषी ने कहा है—

'नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः' ॥

इन्हीं सब तथ्यों को मन में रखकर विप्रबालक देर से उठने पर यहाँ पश्चात्ताप कर रहा है ॥ २ ॥

बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चाऽऽसीत् ।

व्याख्या—असौ = पूर्ववर्णितः, बटुः = ब्रह्मचारी, आकृत्या = आकारेण; 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इत्यनेन तृतीया, सुन्दरः = मनोहरः, वर्णेन = रङ्गेण, गौरः = धवलवर्णः, जटाभिः = सटाभिः, ब्रह्मचारी = बटुः, वयसा = अवस्थया, षोडशवर्षदेशीयः = ईषदसमाप्तषोडशवर्षः, कम्बुकण्ठः = शङ्खग्रीवः, आयतललाटः = दीर्घललाटफलकः, सुबाहुः = शोभनभुजः, विशाललोचनः = दीर्घायतनयनः, च = पुनः, आसीत् ।

समासः—कम्बुरिव कण्ठो यस्य सः कम्बुकण्ठः । आयतं ललाटं यस्यासौ आयतललाटः । शोभनौ बाहू यस्य सः सुबाहुः । विशाले लोचने यस्य सः विशाललोचनः ।

कोषः—'शङ्खः स्यात् कम्बुरस्त्रियाम्' इत्यमरः । 'कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायां शिरोधिः कन्धरेत्यपि' । 'ललाटमलिकं गोधिः' इत्यमरः । 'भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' इत्यमरः । लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी' इत्यमरः । 'दीर्घमायतम्' इति चामरः ।

व्याकरणम्—षोडशवर्षदेशीयः—षोडशवर्ष + देशीयः, ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इत्यनेन देशीयर् प्रत्ययः । जटाभिः—जटा + भिस्, 'इत्थम्भूतलक्षणे' इत्यनेन तृतीया ।

शब्दार्थ—असौ = वह, बटुः = ब्रह्मचारी, आकृत्या = आकार से, सुन्दरः = रमणीय, वर्णेन = रङ्ग से, गौरः = धवलवर्ण, जटाभिः = जटाओं के द्वारा, ब्रह्मचारी = विप्र-बालक, वयसा = अवस्था से, षोडशवर्षदेशीयः = ईषद् असमाप्त सोलहवर्ष वाला, कम्बुकण्ठः = शंख के समान ग्रीवावाला, आयतललाटः = चौड़े ललाटवाला, सुबाहुः = सुन्दर भुजाओं वाला, विशाललोचनः = दीर्घ नेत्रों वाला, च = और, आसीत् = था ।

हिन्दी—वह ब्रह्मचारी बालक आकृति से सुन्दर था और वह गौर वर्ण का था। जटाओं से वह ब्रह्मचारी मालूम होता था। उसकी अवस्था अभी सोलह वर्ष पूर्ण नहीं हुई थी। वह शंख के समान सुन्दर कण्ठ वाला, विस्तीर्ण ललाट से युक्त, रमणीय भुजाओं वाला तथा विशाल नयनों वाला था।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'कम्बुकण्ठः' इस स्थल पर लुप्तोपमालंकार है। इसमें ब्रह्मचारी के सुन्दर अवयवों का स्वाभाविक एवं उदात्त चित्रण किया गया है, अतः उदात्तालंकार का भी दिग्दर्शन होता है॥ ३॥

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित-पूजितं पयःपूरितं सर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झर-झर्झर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-चञ्चु-पतङ्गकुलाऽऽक्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्दर-कन्दरः पर्वतखण्ड आसीत्।

व्याख्या—कदलीदलकुञ्जायितस्य=रम्भापलाशकुञ्जीभूतस्य, एतत्कुटीरस्य=एतत्पर्णोटजस्य, समन्तात्=परितः, पुष्पवाटिका=कुसुमोद्यानम्, पूर्वतः=प्राच्याम्, परमपवित्रपानीयं=नितान्तपूतजलम्, परसहस्रपुण्डरीक-पटलपरिलसितम्=सहस्राधिकश्वेतकमलसमूहोपशोभितम्, पतत्रिकुलकूजित-पूजितम्=पक्षिगणशब्दराजितम्, पयःपूरितम्=जलभरितम्, सः=कासारः, जलाशयो वा, आसीत्=विद्यते स्म। दक्षिणतः=दक्षिणस्यां दिशि, च, एकः, निर्झर-झर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः=वारिप्रवाहझर्झरनादनिनादितदिगन्तरः, फलपटला-स्वादचपलितचञ्चुपतङ्गकुलाक्रमणाधिकविनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः=फलसमूह-भक्षणचञ्चलमुखभागपतगनिवहाक्रमणातीवनम्रीभूतशिखावृक्षसमावृतः, सुन्दर-कन्दरः=शोभनदरः, पर्वतखण्डः=शिलाभागः, आसीत्=वर्तते स्म।

समासः—कुञ्ज इव आचरतीति कुञ्जायते, कदलीनां दलैः कुञ्जायितः (कुटीरः), तस्य कदलीदलकुञ्जायितस्य। पुष्पाणां वाटिका पुष्पवाटिका। परमं पवित्रं पानीयं (जलं) यस्य तत् परमपवित्रपानीयम्। परःसहस्रैः सहस्राधिकैः पुण्डरीकाणां श्वेतकमलानां पटलेन समूहेन परितः लसितं शोभितम् इति परःसहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितम्। पतत्रिणः पक्षिणः, तेषां कुलं समूहः, तस्य कूजितेन शब्देन, कलरवेणेत्याशयः, पूजितम् शोभमानम्, इति पतत्रिकुल-

कूजितपूजितम् । पयसः जलस्य पूरः ओघः प्राचुर्यं, तेन पूरितं पूर्णम् इति पयःपूरपूरितम् । निर्झरस्य वारिप्रवाहस्य झर्झरध्वनिः निनादः, तेन ध्वनितानि दिगन्तराणि दिशाभागाः येन सः निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः । फलानां पटलं गणः, तस्य आस्वादः भक्षणं, तेन चपलिताः चञ्चलीकृताः, चञ्चवः, येषां ते च पतङ्गाः पक्षिणः, तेषां कुलस्य समूहस्य आक्रमणेन अधिकं विनताः नम्रीभूताः शाखाः, येषां ते च शाखिनः तरवः, तेषां समूहेन व्याप्तः इति फलपटलास्वादचपलितचञ्चुपतङ्गकुलाक्रमणाधिकविनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः । सुन्दराः रमणीयाः कन्दराः गुहाः यस्य सः सुन्दरकन्दरः । पर्वतस्य गिरेः खण्डः शकलम् इति पर्वतखण्डः ।

कोषः—'कदली वारणबुसा रम्भा मोचांशुमत्फला । काष्ठीला' इत्यमरः । 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्' इत्यमरः । 'अम्भोऽर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्' इत्यमरः । 'पुण्डरीकं सिताम्भोजम्' इत्यमरः । 'छदिर्नेत्ररुजोः क्लीवं समूहे पटलं न ना' इत्यमरः । 'पतत्त्रिपत्त्रिपतगपतत्पत्त्ररथाण्डजाः' इत्यमरः । 'वारिप्रवाहो निर्झरो झरः' इत्यमरः । 'चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियौ' इत्यमरः । 'पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च' इत्यमरः । 'शिखा शाखा शिफालता' इत्यमरः । 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः' इत्यमरः । 'दरी तु कन्दरो वा स्त्री' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—कुञ्जायित—कुञ्ज + क्यङ् + क्त, 'कर्तुः क्यङ् सलोपश्च' इत्यनेन क्तप्रत्ययः । पूर्वतः—पूर्व + तस् 'तसिलादिष्वाकृत्वसुचः' इत्यनेन पुंवत्त्वम् । दक्षिणतः—दक्षिण + तस् । चपलित—चपल + इतच् । विनत—वि + नम् + क्त । शाखिनः—शाखा + इनि ।

शब्दार्थ—कदलीदलकुञ्जायितस्य = केला के पत्तों (वृक्षों) से घिरे होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाली, एतत्कुटीरस्य = इस कुटिया के, समन्तात् = चारों ओर, पुष्पवाटिका = प्रसूनों का उद्यान, पूर्वतः = पूर्व की ओर, परमपवित्रपानीयं = अत्यन्त पवित्र जलवाला, परस्सहस्रपुण्डरीकपटलपरिलसितम् = हजारों श्वेतकमलों के समूह से सुशोभित, पतत्रिकुलकूजितपूजितम् = पक्षियों के समूह के कलरव से अलंकृत, पयःपूरपूरितम् = जल के प्राचुर्य से भरा हुआ, सरः = तालाब, आसीत् = था । दक्षिणतः = दक्षिण की ओर, निर्झरझर्झरध्वनिध्वनितदिगन्तरः = झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को शब्दायमान करने वाला, फलपटलास्वादचपलितचञ्चुपतङ्ग-

कुलाक्रमणाधिकविनतशाखशाखिसमूहव्याप्तः=फलों के समूह के भक्षण से चञ्चल चोचों वाले पक्षि-समूह के आक्रमण से झुकी हुई शाखाओं वाले पादपों के समूह से व्याप्त, सुन्दरकन्दरः=सुन्दर गुफाओं वाला, पर्वतखण्डः=पहाड़ का टुकड़ा अर्थात् पहाड़ी, आसीत्=थी।

हिन्दी—केले के वृक्षों से घिरी होने के कारण कुञ्ज के समान प्रतीत होने वाली इस कुटिया के चारों ओर एक पुष्पों का उद्यान था। पूर्व की ओर नितान्त पवित्र जलवाला, हजारों श्वेतकमलों से समलङ्कृत, पक्षि-समुदाय के कलरव से शोभायमान, जलाधिक्य से सम्पूरित, सरोवर (तालाब) था। दक्षिण की ओर झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को गुञ्जित करने वाली, फल-समूह के भक्षण से चञ्चल चञ्चुवाले पक्षियों के फुदक-फुदक कर बैठने के आक्रमण से अधिक झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षों से समावृत सुन्दर गुफाओं वाली एक पहाड़ी (पर्वत का टुकड़ा) थी।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में कुटीर को कदलीदल के कुञ्ज के समान माना गया है, अतः यहाँ लुप्तोपमा अलंकार है। अनुप्रास की छटा प्रायः प्रत्येक पंक्ति में समधिक चित्ताकर्षक है। प्रकृति की सुरम्य सुषमा का चित्रण करते हुए गद्यकार ने यहाँ शब्द-योजना के अनुसार गौड़ी रीति का प्रयोग किया है॥ ४॥

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जमुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनोति; तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु-रूषित इव श्यामः, चन्दन-चर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोद-च्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्ध-पटलैरुन्निद्रयन्निव निद्रा-मन्थराणि कोरक-निकुरम्बकान्तराल-सुप्तानि मिलिन्द-वृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरवटुमेवमवादीत्—

व्याख्या—यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, एषः=पूर्ववर्णितः, ब्रह्मचारी=ब्रह्मव्रती, वटुः=ब्रह्मचारी, अलिपुञ्जम्=भ्रमरकुलम्, उद्धूय=निवार्य, कुसुमकोरकान्=प्रसूनकुड्मलान्, अवचिनोति=सङ्कलयति, तावत्=तस्मिन्नेव काले, तस्यैव=वटोरेव, सतीर्थ्यः=सहाध्यायी, अपरः=द्वितीयः, तत्समान-वयाः=तत्समवयस्कः, कस्तूरिकारेणुरूषितः=मृगनाभिरजश्छुरितः, इव=यथा, श्यामः=श्यामलवर्णः, चन्दनचर्चितभालः=गन्धसारलिप्तललाटः, कर्पूरा-

गुरुक्षोदच्छुरितवक्षोबाहुदण्डः = घनसारागुरुचूर्णलिप्तवक्षःस्थलभुजदण्डः, सुगन्धपटलैः = सौरभसमूहैः, उन्निद्रयन्निव = जागरयन्निव, निद्रामन्थराणि = तन्द्रालसितानि, कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि = कलिकासमूहाभ्यन्तरनिद्राधिगतानि, मिलिन्दवृन्दानि = भ्रमरकुलानि, झटिति = शीघ्रम्, समुपसृत्य = समागत्य, निवारयन् = वर्जयन्, गौरवटुम् = धवलवर्णब्रह्मचारिणम्, एवम् = अनेन प्रकारेण, अवादीत् = न्यगादीत् ।

समासः—ब्रह्म वेदः, तदध्ययनाय व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरति करोतीति ब्रह्मचारी, ताच्छील्ये णिनि प्रत्ययः । अलीनां भ्रमराणां पुञ्जः समूहः, तम् अलिपुञ्जम् । कुसुमानां कोरकान् कुसुमकोरकान् । समाने तीर्थे गुरौ वसतीति सतीर्थ्यः, यत् प्रत्ययः । तेन समानं वयः (अवस्था) यस्य सः तत्समानवयाः । कस्तूरिकायाः रेणुभिः रूषितः कस्तूरिकारेणुरूषितः । चन्दनेन चर्चितं लिप्तं भालं ललाटं यस्य सः चन्दनचर्चितभालः । कर्पूरेण मिश्रितस्य अगुरोः क्षोदः चूर्णं तेन छुरितं व्याप्तं लिप्तं वक्षोबाहुदण्डम् उरोभुजद्वयं यस्य सः कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरितवक्षोबाहुदण्डः । सुगन्धस्य पटलैः सुगन्धपटलैः । निद्रया मन्थराणि अलसानि निद्रामन्थराणि । कोरकानां कलिकानां निकुरम्बकं समूहः, तस्य अन्तराले अभ्यन्तरे सुप्तानि कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुप्तानि । मिलिन्दाः भ्रमराः, तेषां वृन्दानि मिलिन्दवृन्दानि ।

कोषः—'मधुव्रतो मधुकरो मधुलिण्मधुपालिनः । द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' । इत्यमरः । 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्' इत्यमरः । 'कलिका कोरकः पुमान्' इत्यमरः । 'स्यान्निकायः पुञ्जराशिः' इत्यमरः । 'सतीर्थ्यास्त्वेकगुरवः' इत्यमरः । 'स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—उद्धूय—उद् + धूञ् + ल्यप् । अवचिनोति—अव + चिञ् + लट् + तिप् । सतीर्थ्यः—'समानतीर्थे वासी'ति यत्प्रत्यये, 'तीर्थे ये' इत्यनेन सादेशः । उन्निद्रयन्—उद् + निद्र + णिच्=शतृ । 'तत्करोति तदाचष्टे' इत्यनेन णिचि । समुपसृत्य—सम् + सृज् + ल्यप् । निवारयन्—नि + वृ + णिच् + शतृ । अवादीत्—वद् + लुङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—यावत् = जब तक, एषः = पूर्ववर्णित यह, ब्रह्मचारी वटुः = ब्रह्मचारी बालक, अलिपुञ्जम् = भ्रमर-समूह को, उद्धूय = उड़ाकर, कुसुमकोरकान् = पुष्प-कलियों को, अवचिनोति = संकलित करता है, तावत् = तब

तक, तस्यैव=उसी का, सतीर्थ्यः=सहाध्यायी, अपरः=दूसरा, बालक, तत्समानवयाः=उसके समान अवस्था वाला, कस्तूरिकारेणुरूषित इव=कस्तूरी के चूर्ण से लिप्त हुए के समान, श्यामः=कृष्णवर्ण चन्दनचर्चितभालः=चन्दन के लेप से सुशोभित ललाटवाला, कर्पूरागुरुक्षोदच्छुरितवक्षोबाहुदण्डः = कर्पूर मिश्रित अगरु के चूर्ण से अनुलिप्त वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, सुगन्धपटलैः= सौरभ-समूह से, उन्निद्रयन्निव=जगाता हुआ-सा, निद्रामन्थराणि - निद्रा से अलसाये हुए, कोरकनिकुरम्बकान्तरालसुमानि = कलियों के समूह के अन्दर सोये हुए, मिलिन्दवृन्दानि=भ्रमर-समूहों को, झटिति=शीघ्र, समुपसृत्य — समीप आकर, निवारयन्=पुष्पचयन के लिए मना करता हुआ, गौरवटुम्= शुभ्रवर्ण के बालक से, एवम्=इस प्रकार, अवादीत्=बोला।

हिन्दी—ज्यों ही यह ब्रह्मचारी बालक भ्रमर-समूह को उड़ाकर पुष्पों की कलियों को चुनता है, त्यों ही उसी का सहपाठी, समान अवस्था वाला दूसरा ब्रह्मचारी, कस्तूरिका के चूर्ण के लेप से सना हुआ-सा श्यामवर्ण वाला, ललाट पर चन्दन लगाये हुए, कर्पूर-मिश्रित अगरु के चूर्ण से सुशोभित वक्षःस्थल एवं भुजाओं वाला, (वह) निद्रा से अलसाये हुए, कलियों के समूह के भीतर सोये हुए भ्रमर-समूह को जगाता हुआ-सा शीघ्रता से समीप आकर उस गौर ब्रह्मचारी बालक से पुष्प-चयन के लिए मना करता हुआ इस प्रकार बोला।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में गद्यकार ने 'कस्तूरिकारेणुरूषित इव श्यामः' 'सुगन्धपटलैरुन्निद्रयन्निव' इत्यादि स्थलों पर उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया है। यहाँ 'इव' उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। अनुप्रास की सुषमा भी यहाँ पर प्रशंसनीय है। श्यामवटु के शरीर में लगे हुए चन्दन, कर्पूर, अगरु और कस्तूरी की सुगन्ध को सूँघकर भ्रमर-समूह प्रसूनों से उड़कर उसके शरीर की ओर दौड़ने लगे, यह वर्णन नितान्त स्वाभाविक है॥ ५॥

"अलं भो अलम्! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यावनत्रासेन निःशब्दं रुदतीम्, परम-सुन्दरीम्, कलित-मानव-देहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन् मरन्द-मधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया याम-

त्रयमनैषीः; सेयमधुना स्वपिति, उद्बुद्धय च पुनस्तथैव रोदिष्यति, तत् परिमार्गणीयान्येतस्याः पितरौ गृहं च—"

इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद् वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टिः।

व्याख्या—अलं भो अलम् !=भो सुहृद्वर ! पुष्पावचयेनालम्, मयैव= श्यामवटुनैव, पूर्वम् =आदौ, कुसुमानि=प्रसूनानि, अवचितानि=सङ्कलितानि, त्वं तु=गौरवटुस्तु, चिरम्=बहुकालम्, रात्रौ -रजन्याम् अजागरीः= जागरणं विहितवानसि, इति=अस्माद्धेतोः, क्षिप्रं=शीघ्रम्, न=नहि, उत्थापितः=जागरितः, गुरुचरणाः=पूज्याः, गुरवः, अत्र=इह, तडागतटे= सरोवरतटे, सन्ध्याम्=प्रातःकालिकं पूजनम्, उपासते=समाचरन्ति, संस्थापिता=समुपकल्पिता, मया=श्यामवटुना, निखिला=समस्ताः, सामग्री= पूजावश्यकवस्तुनिचयः, तेषां=गुरुचरणानां, समीपे=निकटे। यां=पूर्वदृष्टां श्रुतां सेवितां, च=पुनः, सप्तवर्षकल्पाम्=सप्तवर्षदेशीयाम्, यावनत्रासेन= यवनभयेन, निःशब्दं=शब्दरहितम्, रुदतीम्=विलपन्तीम्, परमसुन्दरीम्= नितान्तरूपराशिसमन्वितां, कलितमानवदेहाम्=धृतनरविग्रहाम्, इव=यथा, सरस्वतीं=शारदां, सान्त्वयन्=समाश्वासयन्, मरन्दमधुराः=पुष्परससरसाः, अपः=जलानि, पाययन्=गलबिलं प्रावेशयन्, कन्दखण्डानि=मुनीनां खाद्यविशेषाणां भागान्, भोजयन्=भक्षयन्, त्वं=भवान् गौरवटुः, त्रियामायाः= निशायाः, यामत्रयम्=प्रहरत्रयम्, अनैषीः=यापितवानसि, सेयम्=सा बालिका, अधुना=इदानीम्, स्वपिति=शेते, उद्बुद्धय च=उन्निद्रय पुनः, पुनः=भूयः, तथैव=तेनैव प्रकारेण, रोदिष्यति=विलपिष्यति, तत्=तस्मात् कारणात्, परिमार्गणीयानि=अन्वेष्टव्यानि, एतस्याः=यवनत्रस्तबालिकायाः, पितरौ=माता पिता च, गृहं च=गेहं च। इति=एवम्, संश्रुत्य=समाकर्ण्य, उष्णं निःश्वस्य=अशीतमुच्छ्वस्य, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, सोऽपि= गौरवटुरपि, किञ्चिद्, वक्तुं=कथयितुम्, इयेष=इच्छति स्म, तावत्= तावत्कालपर्यन्तं, तदैव वा, अकस्मात्=सहसा, पर्वतशिखरे=पर्वतशृङ्गे, उभयोः=गौरवटुश्यामवट्वोः, दृष्टिः=वीक्षणं, निपपात=अपतत्।

समासः—तडागस्य तटे तडागतटे। यवनेभ्य आगत यावनः, यावनश्चासौ त्रासः यावनत्रासः, तेन यावनत्रासेन। परमा चासौ सुन्दरी च, तां परमसुन्द-

रीम् । कलितः धृतः मानवो देहः शरीरं यया सा तां कलितमानवदेहाम् । मरन्देन पुष्परसेन मकरन्देन मधुराः मिष्टाः मरन्दमधुराः । कन्दानां खण्डानि कन्दखण्डानि । त्रयो यामा यस्यां सा त्रियामा, तस्याः त्रियामायाः । त्रयः अवयवाः अस्येति त्रयम्, यामानां प्रहराणां त्रयं यामत्रयम् । पर्वतस्य शिखरं पर्वतशिखरं, तस्मिन् पर्वतशिखरे ।

कोषः—'शीघ्रं त्वरितं लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बित-माशु च' ॥ इत्यमरः । 'कूलं रोधश्च तीरञ्च प्रतीरञ्च तटं त्रिषु' इत्यमरः । 'पद्मा-करस्तडागोऽस्त्री' इत्यमरः । 'शर्वरी । निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा । विभावरी-तमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी' ॥ इत्यमरः । 'अथ समं सर्वम् । विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम् । समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके' ॥ इत्यमरः । 'शालूकं कन्दमौत्पलम्' 'कन्दमस्त्री मूल-सस्यम्' इति वैजयन्ती ।

व्याकरणम्—अवचितानि—अव + चिञ् + क्त । अजागरीः—जागृ + लुङ् + सिप् (म० पु० ए० व०)। उत्थापितः—उत् + स्था + पुक् + णिच् + क्त । उपासते—उप + आस् + लट् (त) आत्मनेपद । संस्थापिता—सम् + स्था + णिच् + पुक् + क्त (स्त्रीलि०)। सप्तवर्षकल्पाम्—'ईषद् असमाप्ति' अर्थ में 'ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः' इस सूत्र से कल्पप् प्रत्यय । पाययन्—पा + णिच् + शतृ । रुदतीम्—रुद् + शतृ + ङीप् । (स्त्री० द्वि० ए० व०)। भोजयन्—भुज् + णिच् + शतृ । अनैषीः—नी + लुङ् + सिप् (म० पु० ए० व०)। उद्बुद्ध्य—उद् + बुध + क्त्वा + ल्यप् । परिमार्गणीयानि—परि + मृज् + अनीयर् (ब० व०)। संश्रुत्य—सम् + श्रु + ल्यप् । निःश्वस्य—निः + श्वस् + ल्यप् । वक्तुम्—वच् + तुमुन् । इयेष—इष् + लिट् + तिप् । दृष्टिः—दृश् + क्तिन् । निपपात—नि + पत् + लिट् + तिप् ।

शब्दार्थः—अलं भो अलम् = पर्याप्त हो गया है, अब बस करो । मयैव = मेरे द्वारा ही, पूर्वम् = पहले, कुसुमानि = फूल, अवचितानि = चुन लिये गये हैं, त्वं तु = तुम तो, चिरम् = देर तक, रात्रौ = रात में, अजागरीः = जागते रहे, इति = इसलिये, क्षिप्रं = शीघ्र अर्थात् प्रातः, नोत्थापितः = नहीं उठाये गये । गुरुचरणाः = पूज्यपाद गुरुजी, अत्र = इस, तडागतटे = कमलों से भरे हुए सरोवर के तट पर, सन्ध्याम् = प्रातःकालीन पूजा, उपासते = सम्पादित कर रहे हैं. मया = मेरे द्वारा, निखिला = सम्पूर्ण, सामग्री = पूजनसामग्री, तेषां

समीपे=उनके निकट, संस्थापिता=रख दी गई है। यां च=जिस बालिका को, सप्तवर्षकल्पाम्=लगभग सात वर्ष की अवस्था वाली, यावनत्रासेन= यवन (मुगल) के भय से, निःशब्दं=शब्दरहित अर्थात् आवाज को बाहर निकाले बिना रुदतीम्=सिसकियाँ भरकर रोती हुई, परमसुन्दरीम्=अतिशय सौन्दर्य को धारण करने वाली, कलितमानवदेहाम्=मानव-शरीर को धारण किये हुए, सरस्वतीं=सरस्वती जैसी को, सान्त्वयन्=धैर्य बँधाते हुए, मरन्द-मधुराः=पुष्पों के रस से मिश्रित होने के कारण मीठा, अपः=जल को, पाययन्=पिलाते हुए, कन्दखण्डानि=कन्द के खण्डों को, कन्द मुनियों का एक विशेष प्रकार का भोजन है, भोजयन्=खिलाते हुए, त्वं=तुम, त्रियामायाः=रात्रि के, यामत्रयम्=तीन प्रहर को, अनैषी=बिता दिये, सेयम्= वह यह, स्वपिति=सो रही है, उद्‌बुद्धय च=जागकर, पुनः=फिर, तथैव= उसी प्रकार, रोदिष्यति=रोयेगी, तत्=इसलिये, परिमार्गणीयानि=खोजे जाने चाहिए, एतस्याः=इसके, पितरौ=माता-पिता को, गृहञ्च=और घर को, इति=ऐसा, संश्रुत्य=सुनकर, उष्णं=गरम, निःश्वस्य=निःश्वास लेकर, यावत्=जब तक, सोऽपि=वह भी, किञ्चित्=कुछ, वक्तुं=कहने के लिए, इयेष=इच्छा किया, तावत्=तब तक, अकस्मात्=सहसा, पर्वत-शिखरे=पर्वत के चोटी पर, उभयोः=उन दोनों की, दृष्टिः=आँखें, निपपात=पड़ी।

हिन्दी—'बस भाई बस। मैंने पहले ही पुष्पों का चयन कर लिया है। तुम रात्रि में देर तक जागते रहे थे, अतः मैंने तुम्हें इससे पहले प्रातःकाल नहीं जगाया। गुरुदेव यहाँ तालाब के किनारे सन्ध्योपासन कर रहे हैं। मैंने पूजन की सारी सामग्री उनके पास रख दी है। और जिस, लगभग सात वर्ष वाली, यवनों के भय से शब्दरहित सिसक-सिसक कर रोती हुई, अत्यन्त सुन्दरी, मानव-शरीर धारण किये हुये सरस्वती जैसी, पुष्परस-मिश्रित मीठा जल पिलाते हुए, कन्दों के टुकड़ों को खिलाते हुए तुमने रात्रि के तीन प्रहर बिता दिये थे, वह इस समय सो रही है, जागकर फिर उसी प्रकार रोयेगी। अतः उसके माता-पिता और घर का पता लगाना चाहिये'। यह सुनकर गरम साँस लेकर जैसे ही उसने (गौरबटु ने) भी कुछ कहना चाहा, तब तक त्यों ही अकस्मात् उन दोनों की दृष्टि पर्वत की चोटी पर पड़ी।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में वृत्तक नामक गद्य का प्रयोग किया गया है।

यथा—'अकठोराक्षरं स्वल्पसमासं वृत्तकं मतम्। एतदेव चूर्णकमुच्यते'—यथा च वामनसूत्रे—'अनाविद्धपदं चूर्णम्' इति ॥ ६ ॥

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान् कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूजयन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च। तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म। स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारि-बटुभ्यामदर्शि।

व्याख्या—तस्मिन्=पूर्वकथिते, पर्वते=शैलशिखरे, आसीत्=समभूत्, एकः=एकसङ्ख्याकः, महान्=विशालः, कन्दरः=गुहा, तस्मिन्नेव=गुहायामेव, एकः=एकसङ्ख्याकः, महामुनिः=महर्षिः, समाधौ=चित्तवृत्तिनिरोधात्मके योगे, तिष्ठतिस्म=संस्थित आसीत्। कदा=कस्मिन् काले, सः=पूर्वोक्तः ऋषिः, समाधिं=योगम्, अङ्गीकृतवान्=स्वीकृतवान्, इति=इमां वार्तां, कोऽपि=कश्चिदपि, न=नहि, वेत्ति=जानाति, ग्रामणीग्रामीणग्रामाः=ग्रामाधिपग्रामवासिनां निवहाः, समागत्य=समुपेत्य, मध्ये मध्ये=अन्तराले अन्तराले, तं=समाधिनिरतं मुनिम्, पूजयन्ति=सपर्यां कुर्वन्ति, प्रणमन्ति=नमन्ति, स्तुवन्ति=स्तुतिं सम्पादयन्ति, च=पुनः, तं=समाधिनिरतं योगिराजम्, केचित्=केचन जनाः, कपिलः=एतन्नामा मुनिः, इति=इत्येवम्प्रकारेण, अपरे=अन्ये जनाः, लोमशः=एतन्नामा, इति=इत्येवम्प्रकारेण, इतरे=अपरे, जैगीषव्यः=एतन्नामा, इति, अन्ये=इतरे जनाः, मार्कण्डेयः=एतन्नामा, इति =इत्यादीनि विविधनामानि योगिराजस्य, विश्वसन्ति स्म=विश्वासं कुर्वन्ति स्म। स एव=तादृशो महामुनिरेव, अयम्=एषः, अधुना=साम्प्रतम्, शिखरात्=अचलशृङ्गात्, अवतरन्=नीचैरागच्छन्, ब्रह्मचारिबटुभ्याम्=गौरबटुश्यामबटुभ्याम्, अदर्शि=दृष्टः।

समासः—महांश्चासौ मुनिः महामुनिः। ग्रामण्यः ग्रामाधिपाः, ग्रामीणाः ग्रामवासिनस्तेषां ग्रामाः समूहा इति ग्रामणीग्रामीणग्रामाः।

कोषः—'दरी तु कन्दरो वा स्त्री देवखातबिले गुहा। गह्वरम्' इत्यमरः। 'कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्गम्' इत्यमरः। 'शब्दादिपूर्वे वृन्देऽपि ग्रामः' इत्यमरः। 'समौ संवसथग्रामौ' इति चामरः। 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा'

इत्यमरः । 'महीध्रे शिखरिक्ष्माभृदहार्यधरपर्वताः । अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः' ।। इत्यमरः ।

व्याकरणम्—वेत्ति—विद्+लट्+तिप् । ग्रामणी—ग्राम+नी+क्विप् । ग्रामीणः—ग्रामे भव इति ग्रामीणः, ग्राम+खञ्, 'ग्रामाद्यखञौ' इत्यनेन सूत्रेण । अदर्शि—दृश्+कर्मवाच्य में लुङ्, प्रथमपु० एकवचन ।

शब्दार्थ तस्मिन्=उस, पर्वते=पर्वत पर, एकः=एक, महान्=विशाल, कन्दरः=गुफा, आसीत्=थी, तस्मिन्नेव=उस गुफा में ही, एकः=एक महामुनिः=महर्षि, समाधौ=चित्तवृत्तिनिरोधात्मक योग में, तिष्ठति स्म=बैठे थे, सः=वह महर्षि, कदा=किस समय, समाधिम्=समाधि को, अङ्गीकृतवान्=स्वीकार किया, इति=यह, कोऽपि=कोई भी, नं=नहीं; वेत्ति=जानता है । ग्रामणी-ग्रामीणग्रामाः=ग्राम के प्रधान तथा ग्रामवासियों का समूह, मध्ये मध्ये=बीच-बीच में, समागत्य=आकर, तम्=उस समाधिनिरत योगिराज को, पूजयन्ति=पूजा करते हैं, प्रणमन्ति=प्रणाम करते हैं, च=और, स्तुवन्ति=स्तुति करते हैं, तं=उन्हें, केचित्=कुछ लोग, कपिल इति=कपिल मुनि हैं ऐसा, अन्ये=अन्य जन, लोमश इति=लोमश ऋषि हैं ऐसा, इतरे=इतर लोग, जैगीषव्य इति=जैगीषव्य मुनि हैं ऐसा, अन्ये च=और अपर लोग, मार्कण्डेय इति=मार्कण्डेय मुनि हैं ऐसा, विश्वसन्ति स्म=विश्वास करते थे । स एव=वहीं, अयम्=यह मुनि, अधुना=इस समय, शिखरात्=पर्वत-चोटी से, अवतरन्=उतरते हुए, ब्रह्मचारिबटुभ्याम्=गौरबटु और श्यामबटु के द्वारा, अदर्शि=देखे गये ।

हिन्दी—उस पर्वत पर एक विशाल गुफा थी । उसी गुफा में एक महामुनि समाधि लगाये हुए बैठे थे । उन्होंने कब समाधि अङ्गीकार की, यह कोई नहीं जानता था । गाँव के मुखिया तथा अन्य निवासीजन बीच-बीच में कभी-कभी आकर उनकी पूजा, प्रणाम तथा स्तुति कर आते थे । कोई उन्हें कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य तथा अन्य जन उन्हें मार्कण्डेय मानते थे । वहीं महामुनि इस समय पर्वतशिखर से उतरते हुए ब्रह्मचारी बालक गौरबटु और श्यामबटु के द्वारा देखे गये ।

टिप्पणी—यहाँ से प्रथम निश्वास की समाप्ति तक कुछ विशेष स्थलों को छोड़कर प्रायः 'चूर्णक' नामक गद्य है । यथा—'आनाविद्धपदं चूर्णम्' (वामनसूत्र) । अन्यत्र—'तुर्यम् (चूर्णकं) अल्पसमासकम्' । कपिल, लोमश, जैगीष-

व्य और मार्कण्डेय आदि चिरंजीवी महर्षियों के नाम का उल्लेख है। अतः 'बहुभिर्वहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते' इस नियम के अनुसार यहाँ उल्लेखालंकार है ॥ ७ ॥

"अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धो मुनिः ! इत एवाऽऽगच्छति, इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम् सत्कार्योऽयम्" इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः ।

अथ समापित-सन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञया नित्यनियम-सम्पादनाय प्रयाते गौरबटौ, छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत-सामग्रीषु, "इत आगम्यतां सनाथ्यतामेष आश्रमः" इति सप्रणाममभिगम्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्ट-काष्ठ-पीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च ।

व्याख्या—अहो=इति साश्चर्यखेदे, प्रबुद्धः=जागृतः, मुनिः=ऋषिः, प्रबुद्धः=जागृतः, मुनिः=ऋषिः, इत एव=आश्रमाभिमुखमेव, आगच्छति=आयाति, इत एव=आश्रमाभिमुखमेव, आगच्छति=आयाति, सत्कार्योऽयम्=सत्कारयोग्योऽयं, सत्कार्योऽयम्=सत्कारार्होऽयं महर्षिः, इति=एवम्, तौ=ब्रह्मचारिणौ, सम्भ्रान्तौ=क्षुभितौ, बभूवतुः=जातौ ।

अथ=तदनन्तरम्, समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये=विहितसन्ध्यावन्दनादिक्रियाकलापे, समायाते=समागते, गुरौ=मुनौ, तदाज्ञया=मुनेराज्ञया, नित्यनियमसम्पादनाय=आह्निकसन्ध्यावन्दनादिविधातुम्, प्रयाते=गते, गौरबटौ=श्वेतब्रह्मचारिणि, छात्रगणसहकारेण=शिष्यसमुदायसाहाय्येन, प्रस्तुतासु च=समुपकल्पितासु च, स्वागतसामग्रीषु=उपचारद्रव्येषु, 'इतः=अत्र, आगम्यताम्=आयातु, सनाथ्यताम्=समलङ्क्रियताम्, एषः=अयम्, आश्रमः=तपस्विनां स्थानम्' इति=एवम्प्रकारेण, सप्रणामम्=प्रणामपुरस्सरम्, अभिगम्य=समागत्य, वदत्सु=कथयत्सु, निखिलेषु=समुपस्थितेषु सर्वेषु, योगिराजः=महामुनिः, आगत्य=समागम्य, तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम्=मुनिसङ्केतितदारुनिर्मितचतुष्पादिकाम्, भास्वान्=भास्करः, इव=यथा, उदयगिरिम्=उदयाचलम्, आरुरोह=अधिशिश्रिये, उपाविशत् च=आसितवांश्च ।

समासः—समापिताः सन्ध्यावन्दनादिक्रिया येन सः तथाभूते समापित-

सन्ध्यावन्दनादिक्रिये। नित्या ये नियमाः, तेषां सम्पादनाय नित्यनियमसम्पादनाय। छात्राणां गणः, तस्य सहकारेण छात्रगणसहकारेण। स्वागताय सामग्री स्वागतसामग्री, तासु स्वागतसामग्रीषु। तैः निर्दिष्टं काष्ठपीठं तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम्।

कोषः—'अथ समं सर्वम्। विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्। समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके' ॥ इत्यमरः। 'सूर्-सूर्यार्यमाऽऽदित्यद्वादशात्मदिवाकराः। भास्कराऽहस्करब्रध्नप्रभाकरविभाकराः ॥ भास्वद्-विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः। विकर्तनाऽर्कमार्तण्डमिहिराऽरुण-पूषणः' ॥ इत्यमरः।

व्याकरणम्—समापिता—सम्+आप्+णिच्+क्त+टाप्। समायाते—सम्+आ+या+क्त; 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इत्यनेन सप्तमी। प्रस्तुतासु—प्र+स्तु+क्त+टाप्+सुप्। अभिगम्य—अभि+गम्+क्त्वा+ल्यप्। वदत्सु—वद्+शतृ (सप्तमी बहुवचन)। आगत्य—आ+गम्+क्त्वा+ल्यप्।

शब्दार्थ—अहो=आश्चर्य और प्रसन्नता का सूचक है, प्रबुद्धो मुनिः=जग गये महर्षि, प्रबुद्धो मुनिः=जग गये महर्षि, इत एव आगच्छति=इधर को ही आ रहे हैं, इत एव आगच्छति=इधर को ही आ रहे हैं, सत्कार्योऽयम्=यह सत्कार के योग्य हैं, सत्कार्योऽयम्=यह सत्कार के योग्य हैं, इति=इस प्रकार से, तौ=वे दोनों, सम्भ्रान्तौ=हर्ष से व्याकुल, बभूवतुः=हो गये।

अथ=तदनन्तर, समापितसन्ध्यावन्दनादिक्रिये=सन्ध्या-वन्दनादि क्रिया को समाप्त कर चुके हुए, गुरौ=गुरुजी के, समायाते=आने पर, तदाज्ञया=उनकी आज्ञा से, नित्यनियमसम्पादनाय=नित्य नियम सन्ध्या-वन्दनादि करने के लिए, गौरवटौ=गौरवटु के, प्रयाते=चले जाने पर, छात्रगणसहकारेण=शिष्य-समुदाय की सहायता से, स्वागतसामग्रीषु=स्वागत योग्य सामग्रियों के, प्रस्तुतासु=समुपस्थित हो जाने पर, इत आगम्यताम्=इधर आइये, सनाथ्यताम् एष आश्रमः=इस आश्रम को समलंकृत कीजिए, इति=इस प्रकार से, सप्रणामम्=प्रणामपूर्वक, अभिगम्य=पास आकर, निखिलेषु=सबों के, वदत्सु=कहने पर, योगिराजः=श्रेष्ठ महर्षि, आगत्य=आकर, तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठम्=मुनि के संकेतित चौकी पर, भास्वान् इव=सूर्य के

समान, उदयगिरिम्=उदयाचल पर, जिस प्रकार प्रातःकाल सूर्य उदित होते हैं, आरुरोह=चढ़ गये, उपाविशत् च=और बैठ गये।

हिन्दी—अहो ! मुनि जग गये, मुनि जग गये। इधर ही आ रहे हैं, इधर ही आ रहे हैं। इनका सत्कार करना चाहिए, इनका सत्कार करना चाहिए। इस प्रकार कहते हुए वे दोनों बटु हर्ष से व्याकुल हो गये।

तदनन्तर सन्ध्योपासनादि कृत्य समाप्त करके गुरुजी के आ जाने पर तथा उनकी आज्ञा से गौरवटु के नित्यकर्म-सम्पादन के लिए चले जाने पर, शिष्य-समुदाय की सहायता से स्वागत-सामग्री के प्रस्तुत हो जाने पर, योगिराज के समीप जाकर समुपस्थित समस्त जनों के द्वारा 'इधर आइये, इस आश्रम को सनाथ कीजिए' इस प्रकार कहे जाने पर योगिराज आकर मुनि के द्वारा निर्दिष्ट काष्ठ-विनिर्मित चौकी पर उदयाचल पर सूर्यदेव की भाँति चढ़कर बैठ गये।

टिप्पणी—योगिराज शब्द की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से होती है—'योग अस्ति अस्मिन् इति योगी, तेषां राजा इति योगिराजः'। 'राजाहःसखिभ्य-ष्टच्' इस सूत्र से 'टच्' प्रत्यय होता है। इस गद्यखण्ड में बहुत काल के अनन्तर समाधि के बाद योगिराज के उठने पर आश्रमवासियों में प्रसन्नता की लहर छा गई है, इसका दिग्दर्शन कराया गया है। चौकी पर बैठने वाले मुनि की उपमा उदयाचल पर समुदित होनेवाले सूर्यदेव से दी गई है, अतः यहाँ उपमालंकार है ॥ ८ ॥

तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित" इति "आयात" इति च आकर्ण्य कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीरां च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

व्याख्या—तस्मिन्=योगिराजे, पूज्यमाने=समर्च्यमाने, योगिराडुत्थित इति=महामुनिः समुत्थित इति, आयात इति=सम्प्राप्त इति, च=पुनः, आकर्ण्य=निशम्य, कर्णपरम्परया=श्रुतिसरण्या, बहवो जनाः=अनेके मानवाः, परितः=सर्वतः, स्थिताः=सम्प्राप्ताः, सुघटितं=शोभनाङ्गसंस्थानम्, शरीरं=वपुः, सान्द्रां=घनाम्, जटाम्=सटाम्, विशालान्यङ्गानि=दीर्घायतावयवान्, अङ्गारप्रतिमे=अङ्गारसदृशे, नयने=लोचने, मधुराम्=मनोहराम्, गम्भी-

राम्=गभीराम्, च, वाचम्=वाणीम्, वर्णयन्तः=प्रशंसयन्तः, चकिताः=आश्चर्यान्विताः इव, सञ्जाताः=बभूवुः।

समासः—योगिनां राजा इति योगिराट्। कर्णयोः परम्परया कर्णपरम्परया। अङ्गारः प्रतिमा उपमानं ययोस्ते (नयने) अङ्गारप्रतिमे।

कोषः—'कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः। 'लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी। दृग्दृष्टी च' इत्यमरः। 'अङ्गं प्रतीकोऽवयवोऽपघनोऽथ' इत्यमरः। 'अथ कलेवरम्। गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः। कायो देहः क्लीवपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनूस्तनूः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—योगिराट्—योगिन्+राज+क्विप्। पूज्यमाने—पूज्+य+शानच्। उत्थितः—उत्+स्था+क्त। आयातः—आ+या+क्त। वर्णयन्तः—वर्ण+णिच्+शतृ। सञ्जाताः—सम्+जन्+(जनी प्रादुर्भावे)+क्त।

शब्दार्थ—तस्मिन् पूज्यमाने=जब उनकी पूजा हो रही थी, योगिराड्=महामुनि, उत्थितः=उठ गये हैं, इति=ऐसा, आयातः=आये हुए हैं, इति=ऐसा, कर्णपरम्परया=एक कान से दूसरे कान तक, अर्थात् कानों कान, आकर्ण्य=सुनकर, बहवो जनाः=बहुत-से मनुष्य, परितः=चारों ओर, स्थिताः=एकत्र हो गये। सुघटितं=सुगठित, शरीरम्=देह को, सान्द्रां=घनी, जटाम्=जटा को, विशालान्यङ्गानि=विशाल अङ्गों को, अङ्गारप्रतिमे=अङ्गार (स्फुलिङ्ग) सदृश, नयने=नेत्रों, मधुरां=मीठी, च=और, गम्भीरां=गम्भीर, वाचं=वाणी की वर्णयन्तः=प्रशंसा करते हुए, चकिता इव=आश्चर्यान्वित-से, सञ्जाताः=हो गये।

हिन्दी—उस योगिराज के पूजन के समय ही 'महामुनि उठ गये हैं और यहाँ आये हुए हैं' यह वृत्तान्त क्रमशः एक-दूसरे के कर्णपरम्परा से सुनकर वहाँ चारों ओर बहुत-से लोग एकत्रित हो गये। उन महामुनि के सुगठित शरीर, घनी जटा, विशाल अङ्गों, अङ्गार-सदृश दोनों नेत्रों तथा मधुर और गम्भीर वाणी की प्रशंसा करते हुए लोग आश्चर्यचकित-से हो गये।

टिप्पणी—'अङ्गार-सदृश नेत्र थे' इस वाक्य में प्रतिम शब्द के उपमावाचक होने से उपमालंकार है। 'चकिता इव' यहाँ पर 'इव' के उत्प्रेक्षावाचक होने से उत्प्रेक्षालंकार है॥ ९॥

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्।

ततः "किमिति ? कुत इति ? केयमिति ? कथमिति ?" पृच्छापरवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटुमादिश्य कथितम्—

व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, योगिराजम् = योगिवरं, सम्पूज्य = समर्च्य, किमपि = किञ्चिदपि, आलपितुम् = कथयितुम्, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, ईहितम् = चेष्टितम्, तावत् = तस्मिन्नेव समये, कुटीरात् = उटजात्, तस्या एव = पूर्ववर्णितायाः कन्याया एव, सकरुणरोदनम् = सशोकविलापम्, अश्रूयत = श्रवणविषयतामापतत् ।

ततः = कन्यकारोदनश्रवणानन्तरम्, किमिति = किमर्थं क्रन्दनमिति, कुत इति = कस्मात् प्रदेशात् क्रन्दनध्वनिरिति, केयमिति = क्रन्दनकारिणी नारी बाला का ? कथमिति = क्रन्दकस्य किं कारणमिति, पृच्छापरवशे = प्रश्नपरतन्त्रे, योगिराजे = योगिवरे, ब्रह्मचारिगुरुणा = गौरश्यामबटुशिक्षकेन मुनिना, बालिकां = विलापकारिणीं कन्यकाम्, सान्त्वयितुम् = समाश्वासयितुं, श्यामबटुं = श्यामलवर्णब्रह्मचारिणम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, कथितम् = अग्रे वक्ष्यमाणं वाक्यमुक्तम् ।

समासः—करुणया सहितम् इति सकरुणम्, सकरुणं च तद् रोदनमिति सकरुणरोदनम् । पृच्छा जिज्ञासा, तस्याः परवशः अधीनः, तस्मिन् पृच्छापरवशे । ब्रह्मचारिणां गुरुरिति ब्रह्मचारीगुरुः, तेन ब्रह्मचारिगुरुणा ।

कोषः—'वासः कुटी द्वयोः शाला सभा सञ्जवनं त्विदम् । चतुःशालं मुनीनां तु पर्णशालोटजोऽस्त्रियाम्' ॥ इत्यमरः । 'चास्रु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमश्रु च' 'कुन्दनं योधसंरावः' इति चामरः ।

व्याकरणम्—सम्पूज्य—सम् + पूज् + क्त्वा + ल्यप् । ईहितम्—ईह् चेष्टायाम् + क्त । अश्रूयत—श्रु + कर्मणि यक् + लङ्, प्र० पु० ए० व० । रोदनम्—रुदिर् अश्रुविमोचने + भावे ल्युट् । सान्त्वयितुम्—सान्त्व + णिच् + तुमुन् । आदिश्य—आ + दिश् + क्त्वा + ल्यप् ।

शब्दार्थ—अथ = अनन्तर, योगिराजम् = योगिराज का, सम्पूज्य = स्वागत-सत्कार करके, यावत् = ज्यों ही, ईहितम् = चेष्टा किया, किमपि = कुछ भी, आलपितुम् = कहने के लिए, तावत् = त्यों ही, कुटीरात् = कुटी से, अश्रूयत = सुनाई पड़ा, तस्या एव = उस पूर्ववर्णित, बालिकायाः = कन्या का ही, सकरुणरोदनम् = सशोक विलाप ।

ततः किमिति=तदनन्तर यह क्या है ? कुत इति=कहाँ से आ रहा है ? केयमिति=कौन है यह ? कथमिति=यह क्यों रो रही है ? इति=इस प्रकार से, पृच्छापरवशे=जिज्ञासा के अधीन होने पर, योगिराजे=योगिराज के, ब्रह्मचारिगुरुणा=ब्रह्मचारी गुरु के द्वारा, बालिकां=कन्या को, सान्त्वयितुं=शान्त करने के लिए, श्यामबटुम्=श्याम वर्णवाले ब्रह्मचारी को, आदिश्य=आदेश देकर, कथितम्=वक्ष्यमाण रीति से कहा।

हिन्दी—तदनन्तर योगिराज का विधिवत् स्वागत-सत्कार करके ब्रह्मचारियों के गुरु ने जैसे ही योगिराज से कुछ बात करने की इच्छा की, वैसे ही कुटिया से उसी पूर्ववर्णित बालिका का करुण-विलाप सुनाई पड़ा।

तब योगिराज के 'यह क्या है ? यह कहाँ से आई है ? यह कौन है ? यह कैसे आई है ?' यह पूछने पर ब्रह्मचारियों के गुरु ने कन्या को शान्त करने के लिए श्याम वटु को आदेश देकर यह कहना प्रारम्भ किया।

टिप्पणी—इन स्थलों में सर्वत्र चूर्णक नामक गद्य है। यथा—'अकठोराक्षरं स्वल्पसमासं चूर्णकं मतम्' इति ।। १० ।।

"भगवन् ! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि, परितः समासीनेषु छात्रवर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु, समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-निःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतं क्रन्दनमश्रौषम्।

व्याख्या—भगवन् !=ऐश्वर्यसम्पन्नमहर्षे ! यदि=चेत्, कुतूहलम्=वृत्तान्तज्ञानकौतुकं, (तर्हि) श्रूयताम्=समाकर्ण्यताम्, ह्यः=गतवासरे, सम्पादितसायन्तनकृत्ये=विहितसान्ध्यकार्ये, अत्रैव=अस्मिन्नेव स्थाने, कुशास्तरणमधिष्ठिते=दर्भासनसंस्थिते, मयि=गौरश्यामबटुशिक्षके मुनौ, परितः=समन्तात्, समासीनेषु=समुपविष्टेषु, छात्रवर्गेषु=शिष्यसमुदायेषु, धीरसमीर-स्पर्शेन=मन्दपवनसम्पर्केण, मन्दमन्दम्=शनैः शनैः, आन्दोल्यमानासु=सञ्चाल्यमानासु, व्रततिषु=लतासु, समुदिते=उदयमधिगते, यामिनीकामिनी-

चन्दनबिन्दौ = रजनीकान्ताललाटतिलके, इव = यथा, इन्दौ=चन्द्रमसि, कौमुदी-कपटेन = ज्योत्स्नाव्याजेन, सुधाधारामिव = पीयूषप्रवाहमिव, वर्षति = वृष्टिं विदधति, गगने = आकाशे, अस्मन्नीतिवार्ताम् = ब्रह्मचारिगुरुनयकथनम्, शुश्रूषुषु = श्रोतुमिच्छुषु, इव = यथा, मौनमाकलयत्सु = मूकतां धारयत्सु, पतग-कुलेषु = पक्षिनिवहेषु, कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु = कुमुदप्रफुल्लनमोदाविर्भावशब्दायमानेषु, चञ्चरीकेषु = भ्रमरेषु, अस्पष्टाक्षरम् = अस्फुटवर्णम्, कम्पमाननिःश्वासम् = वेपमाननिःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम् = स्तम्भितगलम्; घर्घरितस्वनम् = घर्घरध्वनिमिश्रितनादम्, चीत्कारमात्रम्=चीत्कारमयम्, दीनतामयम् = कातरतासमन्वितम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठतम् = विशेषावधानश्रवणार्हत्वादनुमितदूरत्वम्, क्रन्दनम् = रोदनम्, अश्रौषम् = अशृणवम् ।

समासः—सम्पादितानि सायन्तनानि कृत्यानि येन, तस्मिन् सम्पादित-सायन्तनकृत्ये । कुशानाम् आस्तरणं कुशास्तरणम् । छात्राणां वर्गेषु छात्रवर्गेषु । धीरः समीरः धीरसमीरः, तस्य स्पर्शेन धीरसमीरस्पर्शेन । यामिनी एव कामिनी, तस्याः चन्दनबिन्दौ यामिनीकामिनीचन्दनबिन्दौ । कौमुद्याः कपटेन कौमुदी-कपटेन । अस्माकं नीतेः वार्ता अस्मन्नीतिवार्ता, तां श्रोतुमिच्छुः अस्मन्नीति-वार्ताशुश्रूषुः, तेषु अस्मन्नीतिवार्ताशुश्रूषुषु । पतगानां कुलेषु पतगकुलेषु । कैरवाणां विकाशः, तेन हर्षप्रकाशः, तेन मुखरेषु कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु । अस्पष्टानि अक्षराणि यत्र तत् अस्पष्टाक्षरम् । कम्पमाना निःश्वासा यस्मिन् तत् कम्पमाननिःश्वासम् । अत्यवधानेन श्रव्यम्, तस्य भावस्तत्त्वम्, तस्मात् अत्यवधानश्रव्यत्वात् । अतिशयेन दूरं दविष्ठता, अनुमिता दविष्ठता यस्य तत् अनुमितदविष्ठतम् ।

कोषः—'कौतूहलं कौतुकञ्च कुतुकञ्च कुतूहलम्' इत्यमरः । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः । 'श्वसनः स्पर्शनो वायुर्मातरिश्वा सदागतिः । पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहाऽनिलाशुगाः ॥ समीरमारुतमरुज्जगत्प्राण-समीरणाः । नभस्वद्वातपवनपवमानप्रभञ्जनाः' ॥ इत्यमरः । 'वल्ली तु व्रततिर्लता । लता प्रतानिनी वीरुद्गुल्मिन्युलप इत्यपि' ॥ इत्यमरः । 'विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी' इत्यमरः । 'विशेषास्त्वङ्गना भीरुः कामिनी वामलोचना' इत्यमरः । 'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्र इन्दुः कुमुदबान्धवः' इत्यमरः । 'चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना' इत्यमरः । 'इन्दिन्दिरो मधुकरश्चञ्चरीको मधुव्रतः' इति वैजयन्ती ।

व्याकरणम्—श्रूयताम्—श्रु+कर्मवाच्य, लोट् लकार, प्र० पु० ए० व०। सम्पादितम्—सम्+पद्+णिच्+क्त। सायन्तनम्—सायं भवमिति सायन्तनम्; सायम्+ट्युल् अथवा ट्यु, तुट् का आगम, 'सायंचिरंप्राह्णे प्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च' इत्यनेन सूत्रेण। कुशास्तरणम्—इत्यत्र 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इत्यनेन सूत्रेण कर्म। अधिष्ठिते—अधि+स्था+क्त। समासीनेषु—सम्+आस् उपवेशने+शानच्; अत्र 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इत्यनेन सप्तमी। शुश्रूषुः—श्रु+सन्+'सनाशंसभिक्ष उः' इत्यनेन उ। आकलयत्सु—आ+कल+णिच्+शतृ। क्रन्दनम्—क्रदि+भावे ल्युट्। अश्रौषम्—श्रु+लुङ्, उत्तमपुरुष एकवचन।

शब्दार्थ—भगवन्!=ऐश्वर्यसम्पन्न! यदि कुतूहलम्=यदि उत्कण्ठा है तो, श्रूयताम्=सुने, ह्यः=कल, सम्पादितसायन्तनकृत्ये=सायंकालिक क्रियाओं को समाप्त कर चुकने पर, अत्रैव=यहीं, कुशास्तरणमधिष्ठिते मयि=मेरे कुशासन पर बैठने पर, परितः=चारों ओर, समासीनेषु छात्रवर्गेषु=छात्रवृन्द के बैठे हुए होने पर, धीरसमीरस्पर्शेन=मन्द वायु के स्पर्श से, मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु=धीरे-धीरे लताओं के कम्पित होने पर, समुदिते यामिनीकामिनीचन्दनबिन्दौ इव इन्दौ=रात्रिरूपी नायिका के चन्दन-बिन्दु के समान चन्द्रमा के समुदित होने पर, कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने=चन्द्रज्योत्स्ना के बहाने आकाश द्वारा मानो अमृत की वर्षा करने पर, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतगकुलेषु=हमारी नीतिसम्बन्धी चर्चा को सुनने की इच्छा से मानो पक्षियों के समूह को मौन धारण करने पर, कैरवविकाशहर्षप्रकाशमुखरेषु चञ्चरीकेषु=कुमुदों के खिलने की अभिव्यक्ति के कारण भ्रमरों के मुखरित होने पर, अस्पष्टाक्षरम्=अव्यक्त अक्षरोंवाला, कम्पमाननिःश्वासम्=काँपती हुई श्वासवाला, श्लथत्कण्ठम्=रुँधे हुए गले वाला, घर्घरितस्वनम्='घर-घर' शब्द से समन्वित, चीत्कारमात्रम्=चिल्लाना मात्र था जिसमें, दीनतामयम्=दीनता से युक्त, अत्यवधानश्रव्यत्वात्=विशेष ध्यान से सुनाई पड़ने के कारण, अनुमितदविष्ठतम्=बहुत दूर होने का अनुमान किया जानेवाला, क्रन्दनम्=विलाप या रोदन को, अश्रौषम्=सुना।

हिन्दी—भगवन्! यदि जानने की ही उत्कण्ठा है तो सुनों। कल मैं सायंकालीन क्रियाओं को समाप्त करके यहीं कुशासन पर बैठा हुआ था, मेरे

चारों ओर शिष्य-समुदाय समासीन थे, मन्द-मन्द वायु के संस्पर्श से लताएँ धीरे-धीरे हिल रही थीं, निशा रूपी नायिका के मस्तक पर चन्दन के तिलक के समान चन्द्रमा जब समुदित हो चुका था, आकाश चाँदनी के व्याज से अमृत की वर्षा-सी कर रहा था, हमारी नीति-सम्बन्धी चर्चा को सुनने की इच्छा से पक्षि-समुदाय ने मानो मौन धारण कर लिया था, कुमुदिनी के प्रसूनों के खिल जाने से समुत्पन्न हर्ष को प्रकट करते हुए भ्रमर-वृन्द गुनगुनाने लगे थे, उसी समय मैंने अस्पष्ट अक्षरों वाला, काँपती हुई साँसों से युक्त, रुँधे हुए गलेवाला, घरघराते हुए शब्द से समन्वित, केवल चीत्कार मात्र, दीनतापूर्ण, विशेष ध्यान से सुनने के कारण जिसके अत्यन्त दूर होने का अनुमान होता था, ऐसे विलाप या रोदन को सुना।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'समुदिते' से प्रारम्भ कर 'पेतगकुलेषु' पर्यन्त आये हुए 'इव' शब्द उत्प्रेक्षावाचक है। चन्द्रमा में चन्दनबिन्दु की, आकाश से अमृतधारा बरसने की और पक्षियों में नीतिवार्ता सुनने की सम्भावना की गई है। अतः इन स्थलों पर उत्प्रेक्षालंकार है। 'यामिनी-कामिनी' में रात्रि के ऊपर कामिनी का आरोप किया गया है, अतः यहाँ 'रूपकालंकार' है। पूर्व की पंक्तियों में प्रसाद गुण तथा शान्त रस है। अन्त में करुण रस भी विद्यमान है। यहाँ 'चूर्णक' नामक गद्य तथा वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है ॥ ११ ॥

तत्क्षणमेव च "कुत इदम्? किमिदमिति दृश्यतां ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भयभीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निःश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रुप्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरान्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। तां च चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्दकोरकाग्रदतीं सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं निरोद्धुं नयनबाष्पाणि।

व्याख्या—तत्क्षणमेव = सद्य एव, च = पुनः, कुतः = कस्मात् स्थानात्, इदम् = रोदनम्, किमिदम् = किं कारणं चास्य ध्वनेः, इति = एवम्प्रकारेण, दृश्यताम् = अवलोक्यताम्, ज्ञायताम् = अवगम्यताम्, इति = इत्थम्, आदिश्य = आज्ञाप्य, छात्रेषु = शिष्येषु, विसृष्टेषु = प्रेषितेषु, क्षणानन्तरम् = पलादूर्ध्वम्,

छात्रेणैकेन=शिष्येणैकेन, भयभीता=भयाक्रान्ता, सवेगम्=तीव्रम्, अत्युष्णम्=बहुसन्तप्तम्, दीर्घम्=पृथुलम्, निःश्वसती=श्वासग्रहणं कुर्वती, मृगीव=हरिणीव, व्याघ्राऽऽघ्राता=सिंहाऽऽक्रान्ता, अश्रुप्रवाहैः=नयनबाष्पैः, स्नाता=विहितस्नाना, सवेपथुः=सकम्पा, कन्यकैका=एका बाला, अङ्के=क्रोडे, निधाय=संस्थाप्य, समानीता=आनीता, चिरान्वेषणेनापि=बहुगवेषणयाऽपि, च=पुनः, तस्याः=अधिगतबालिकायाः, सहचरी=सखी, सहचरो वा=सखा वा, न प्राप्तः=न समवाप्तः, ताम्=रोदनविलन्नबालिकाम्, च, चन्द्रकलयेव=हिमांशुलेखयेव, निर्मिताम्=रचिताम्, नवनीतेनेव=हैयङ्गवीनेनेव, रचिताम्=कृताम्, मृणालगौरीम्=कमलदण्डधवलाम्, कुन्दकोरकाग्रदतीम्=माध्यकलिकाग्रदशनाम्, सक्षोभं=ससाध्वसम्, रुदतीम्=विलपन्तीम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, अस्माभिरपि=आश्रमवासिभिरपि, मादृशैरित्याशयः, न=नहि, पारितम्=शक्तम्, निरोद्धुं=अवरोद्धुं, नयनबाष्पाणि=लोचनाश्रूणि ।

समासः—वेगेन सहितं सवेगम् । व्याघ्रेण आघ्राता व्याघ्राऽऽघ्राता । अश्रूणां प्रवाहैः अश्रुप्रवाहैः । चन्द्रस्य कला चन्द्रकला, तया चन्द्रकलया । मृणालस्य इव गौरीं मृणालगौरीम् । कुन्दस्य कोरकाणाम् अग्राणि इव दन्ताः यस्याः सा, तां कुन्दकोरकाग्रदतीम् । क्षोभेन सहितं सक्षोभम् । नयनस्य बाष्पाणि नयनबाष्पाणि ।

कोषः—'दरस्त्रासो भीतिर्भीः साध्वसं भयम्' इत्यमरः । 'सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चास्यो हर्यक्षः केसरी हरिः । कण्ठीरवो मृगरिपुर्मृगदृष्टिर्मृगाशनः ॥ शार्दूलद्वीपिनौ व्याघ्रे तरक्षुस्तु मृगादनः' । इत्यमरः । 'उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः' इत्यमरः । 'नवनीतं नवोद्धृतम् । तत्तु हैयङ्गवीनं यद्ध्योगोदोहोद्भवं घृतम्' ॥ इत्यमरः । 'चास्तु नेत्राम्बु रोदनं चास्रमश्रु च' इत्यमरः । 'बाष्पमुष्माश्रु' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—दृश्यताम्—दृश्+कर्मणि यक्, लोट् प्र० पु० ए० व० । ज्ञायताम्—ज्ञा अवबोधने+कर्मणि यक्, लोट् प्र० पु० ए० व० । विसृष्टेषु—वि+सृज्+क्त । भीता—भी+क्त+टाप् । निःश्वसती—निस्+श्वस्+शतृ+ङीप् । सवेपथुः—स+वेपृ कम्पने+भावे अथुच् प्रत्ययः । स्नाता—स्ना+क्त+टाप् । निधाय—नि+धा+ल्यप् । समानीता—सम्+आ+नी+क्त+टाप् । अन्वेषण—अनु+इष्+ल्युट् । सहचरी—सह चरतीति—सह+चर+अच्+स्त्रियां ङीष् । प्राप्तः—प्र+अप्+क्त । रुदतीम्—रुद्+शतृ+ङीप् । निरोद्धुम्—नि+रुध्+तुमुन् ।

शब्दार्थ—तत्क्षणमेव=उसी समय, च=और, कुत इदम्=यह रोदन कहाँ से है, किमिदम्=किस कारण है, दृश्यताम्=देखिये, ज्ञायताम्=जानिये, इत्यादिश्य=इस प्रकार आदेश देकर, छात्रेषु विसृष्टेषु=छात्रों के भेजे जाने पर, क्षणानन्तरं=एक क्षण बाद, छात्रेणैकेन=एक छात्र के द्वारा, भयभीता=भय से डरी हुई, सवेगम्=जल्दी-जल्दी अथवा शीघ्रतापूर्वक, अत्युष्णं=अत्यन्त गरम, दीर्घम्=लम्बी, निःश्वसती=श्वास लेती हुई, मृगीव=हरिणी की तरह, व्याघ्राऽऽघ्राता=सिंह के द्वारा सूँघी गई, अश्रुप्रवाहैः=आँसुओं के प्रवाह से, स्नाता=नहाई हुई, सवेपथुः=काँपती हुई, कन्यकैका=एक बालिका, अङ्के=गोद में, निधाय=रखकर, समानीता=लाई गई। चिरान्वेषणेनापि=चिरकाल तक अन्वेषण करने पर भी, तस्याः=उसकी, सहचरी=सखी, सहचरो वा=अथवा साथी, न प्राप्तः=नहीं प्राप्त हुआ। ताम्=उस बालिका को, चन्द्रकलयेव=चन्द्रमा की कला की तरह, निर्मिताम्=बनी हुई, नवनीतेनेव=मक्खन के समान, रचिताम्=रची गई, मृणालगौरीम्=कमलनाल के समान गोरी, कुन्दकोरकाग्रदतीम्=कुन्द पुष्प के कली के अग्रभाग के समान दाँतो वाली, सक्षोभं=व्याकुलतापूर्ण, रुदतीम्=रोती हुई, अवलोक्य=देखकर, अस्माभिरपि=हम लोगों के द्वारा भी, न पारितं=पार नहीं पाया गया, निरोद्धुं=रोकने के लिए, नयनबाष्पाणि=आँसुओं को।

हिन्दी—उसी क्षण 'यह रोने का शब्द कहाँ से आ रहा है ? किस कारण से है ?' देखो, पता लगाओ—इस प्रकार आदेश देकर मेरे द्वारा छात्र-वृन्द को संप्रेषित कर दिये जाने पर, क्षण भर बाद ही एक छात्र के द्वारा डरी हुई, शीघ्रतापूर्वक लम्बी-लम्बी अत्यन्त गर्म साँसे लेती हुई, सिंह से सूँघी गई हरिणी के समान, अश्रुप्रवाह से स्नान की हुई, काँपती हुई एक बालिका गोद में उठाकर लाई गई। चिरकाल तक अन्वेषण करने पर भी उसकी कोई सखी या साथी प्राप्त नहीं हुआ। चन्द्रमा की कलाओं से रची हुई-सी, मक्खन से निर्मित-सी, कमलनाल के समान गोरे रंगवाली, कुन्द पुष्प की कलियों के अग्रभाग के समान नुकीले और श्वेत दाँतो वाली, व्याकुलता के साथ रोती हुई उस कन्या को देखकर हमलोग भी अपने आँसुओं को न रोक सके।

टिप्पणी—'चन्द्रकलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्—इन दो स्थलों पर चन्द्रकला अथवा मक्खन से बनी हुई होने की सम्भावना की गई है। अतः

यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। मृणाल के समान गोरी तथा कुन्दकलिका के अग्रभाग के समान श्वेत दाँतोवाली में लुप्तोपमालंकार है ॥

अथ "कन्यके ! मा भैषीः, पुत्रि ! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः" इति सहस्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, "बालिके ! कथय क्व ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता ? किं ते कष्टम् ? कथमरोदीः ? किं वाञ्छसि ? किं कुर्मः ?" इति पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्ध-कण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्—

"एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनया-ऽस्ति।)

व्याख्या—अथ=बालिकाविलोकनानन्तरम्, कन्यके=बाले ! मा भैषीः =भयं मा कुरु, पुत्रि=तनये ! त्वाम्=भवतीम्, मातुः=जनन्याः, समीपे= अन्तिके, प्रापयिष्यामः=प्रेषयिष्यामः, दुहितः=पुत्रि ! खेदं=कष्टम्, मा वह =न सन्धारय, भगवति !=ऐश्वर्यशालिनि ! भुङ्क्ष्व=भक्षय, किञ्चित्= ईषत्, पिब=पानं कुरु, पयः=दुग्धम्, एते=पुरो दृश्यमानाः, तव= भवत्याः, भ्रातरः=बान्धवाः, यत्=यत्किमपि, कथयिष्यसि=वक्ष्यसि, तदेव करिष्यामः=वयं तदेव सम्पादयिष्यामः, मा स्म, रोदनैः=विलपनैः, प्राणान् =असून्, संशयपदवीम्=सन्देहावस्थाम्, आरोपयः=समारोपयः, कोमलम्= सुकुमारम्, इदम्=एतत्, शरीरम्=देहम्, शोकज्वालावलीढं=दुःखाग्निपरि-व्याप्तम्, मा स्म कार्षीः=मा कुरु, इति=एवम्प्रकारेण, सहस्रधा=बहुधा, बोध-नेनं=सान्त्वनाप्रदानेन, कथमपि=केनापि प्रकारेण, सम्बुद्धा=बोधिता सती, किञ्चिद्=ईषद्, दुग्धं=पयः, पीतवती=स्वीचकार, अपिबदित्याशयः, ततश्च =पयःपानानन्तरम्, मया=ब्रह्मचारिशिक्षकेण, क्रोडे=अङ्के, उपवेश्य= =संस्थाप्य, बालिके=कन्यके, कथय=ब्रूहि, क्व=कुत्र, ते=तव, पितरौ =माता च पिता च, कथम्=केन प्रकारेण, अस्मिन्=एतस्मिन्, आश्रमप्रान्ते

=कुटीरसमीपे तपोवने वा, समायाता=समागता, किम्=किम्प्रकारकं, ते=तव, कष्टम्=दुःखम्, कथम्=केन कारणेन, (त्वम्) अरोदीः=रोदनमकरोः, किम्, वाञ्छसि=इच्छसि, किम्, कुर्मः=किं कुर्यामः, इति=एवम्प्रकारेण, पृष्टा=पृष्टे सति, मुग्धतया=सरलतया, अपरिकलितवाक्पाटवा=अज्ञात-भाषणचातुर्या, भयेन=भीत्या, विशिथिलवचनविन्यासा=अस्तव्यस्तभाषणा, लज्जया=व्रीडया, अतिमन्दस्वरा=बहुकोमलस्वरा, शोकेन=कष्टेन, रुद्ध-कण्ठा=स्तम्भितगलबिला, चकित-चकितेव=अतिभीतेव, कथं कथमपि=येन केनापि प्रकारेण, अबोधयद्=अज्ञापयत्, अस्मान्=आश्रमवासिनः, यत्, एषा=इयं बालिका, अस्मिन्=एतस्मिन्, नेदीयस्येव=अतिसमीप एव, ग्रामे=संवसथे, वसतः=निवसतः, कस्यापि=कस्यचिदपि, ब्राह्मणस्य=विप्रस्य, तनया=पुत्री, असि=वर्तते।

समासः—संशयस्य पदवीं संशयपदवीम्। शोकस्य ज्वालया अवलीढं शोक-ज्वालावलीढम्। आश्रमस्य प्रान्ते आश्रमप्रान्ते। पटोर्भावः पाटवं, कौशलमित्या-शयः, वाचि पाटवं वाक्पाटवम्, न परिकलितं विज्ञातं वाक्पाटवं भाषणचातुर्यं यया सा अपरिकलितवाक्पाटवा। विशेषेण शिथिलः वचनानां शब्दानां विन्यासः उच्चारणं यस्याः सा विशिथिलवचनविन्यासा। अतिमन्दः स्वरो यस्याः सा अतिमन्दस्वरा। रुद्धः कण्ठो यस्याः सा रुद्धकण्ठा।

कोषः—'मन्युशोकौ तु शुक् स्त्रियाम्' इत्यमरः। 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः। कायो देहः क्लीबपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः'॥ इत्यमरः। 'दुग्धं क्षीरं पयः समम्' इत्यमरः। 'न नाक्रोडं भुजान्ताम्' इत्यमरः। 'पुंसि भूम्न्यसवः प्राणान्' इत्यमरः। 'मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा' इत्यमरः।

व्याकरणम्—भैषीः—भी+लुङ्, मध्यमपुरुष एकवचन, 'मा' के योग में अडागमाभाव। प्रापयिष्यामः—प्र+आप्+णिच्+लृट्, उ० पु० ब० व०। भुङ्क्ष्व—भुज् आत्मनेपद, लोट्, म० पु० ए० व०। आरोपयः—'मा स्म' के योग में लङ्, मध्यमपुरुष एकवचन, 'स्मोत्तरे लङ् च'। अवलीढम्—अव+लिह्+क्त। मा कार्षीः—कृ+लुङ्, म० पु० ए० व०, 'मा' के योग में अडा-गमाभाव। पीतवती—पा पाने+क्तवतु+ङीप्। उपवेश्य—उप+विश्+णिच्+ल्यप्। अरोदीः—रुद्+लुङ्+सिप, म० पु० ए० व०। नेदीयसि—अन्तिक (समीप)+ईयसुन्। वसतः—वस्+शतृ, षष्ठी ए० व०।

शब्दार्थ—अथ=अनन्तर, कन्यके=पुत्रि! मा भैषीः=मत डरो, पुत्रि

=बालिके ! त्वाम्=तुमको, मातुः समीपे=माता के पास में, प्रापयिष्यामः =हम पहुँचा देंगें, दुहितः=पुत्रि ! खेदं मा वह=खेद मत करो, भगवति= ऐश्वर्यशालिनि बाले ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्=थोड़ा खाओ, पिब पयः=दूध पीओ, एते=ये सब, तव भ्रातरः=तुम्हारे भाई हैं, यत् कथयिष्यसि=जो कहोगी, तदेव करिष्यामः=वहीं करेंगें, रोदनैः=विलाप करने से, प्राणान्=प्राणों को, संशयपदवीम्=संदेह के मार्ग में, मा स्म आरोपय=मत डालो, कोमलमिदं शरीरम्=इस कोमल देह को, शोकज्वालावलीढं=दुःखाग्नि से व्याप्त, मा स्म कार्षीः=मत करो, इति=इस प्रकार, सहस्रधाबोधनेन=अनेक प्रकार समझाने से, कथमपि=किसी प्रकार, सम्बुद्धा=आश्वस्त होकर, किञ्चिद् दुग्धं पीतवती=थोड़ा दूध पीई, ततश्च=इसके बाद, मया=ब्रह्मचारि-गुरु के द्वारा, क्रोडे=गोद में, उपवेश्य=बैठाकर, बालिके=पुत्रि ! कथय=कहो, क्व ते पितरौ=तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं, कथम्=किस प्रकार, एतस्मिन् आश्रम-प्रान्ते=इस आश्रम के निकट अर्थात् तपोवन में, समायाता=आई, किं ते कष्टम्=तुम्हें क्या कष्ट है, कथमरोदीः=क्यों रोई ? किं वाञ्छसि=क्या चाहती हो, किं कुर्मः=हम सब क्या करें, इति=इस प्रकार, पृष्टा=पूछने पर, मुग्धतया=सरलता के कारण, अपरिकलितवाक्पाटवा=भाषण-चातुरी से अनभिज्ञ, भयेन=डर से, विशिथिलवचनविन्यासा=लड़खड़ाते हुए शब्दों में बोलनेवाली, लज्जया=लज्जा के कारण, अतिमन्दस्वरा=अत्यन्त धीमे स्वरों-वाली, शोकेन=शोक से, रुद्धकण्ठा=रुँधे हुए कण्ठवाली, चकितचकितेव= अत्यन्त चकित हुई-सी, कथं कथमपि=किसी-किसी प्रकार, अबोधयत्=बत-लाई, अस्मान्=हम सब आश्रमवासियों को, यत्=कि, एषा=यह, अस्मिन् नेदीयस्येव ग्रामे=इस अत्यन्त समीप के ग्राम में, वसतः=निवास करनेवाले, कस्यापि ब्राह्मणस्य=किसी ब्राह्मण की, तनया=पुत्री, अस्ति=है ।

हिन्दी—तदनन्तर पुत्रि ! डरो मत । बेटी ! हम सब तुम्हें माँ के पास पहुँचा देंगें, वत्से ! दुःखी मत होओ । देवि ! कुछ खाओ, दूध पीओ । ये सब तुम्हारे भाई हैं । जो कहोगी, वहीं करेंगें । विलाप करने से अपने प्राणों को संशय में मत डालो । इस कोमल शरीर को दुःखाग्नि से संतप्त मत करो । इस तरह अनेक प्रकार से समझाने पर किसी प्रकार आश्वस्त होकर उसने कुछ दूध पिया । तत्पश्चात् मेरे द्वारा गोद में बैठाकर 'वत्से ! बतलाओ, तुम्हारे माता-पिता कहाँ हैं ? इस आश्रम के पास कैसे आई ? तुम्हें क्या दुःख है ?' तुम क्यों

रो रही थी ? तुम क्या चाहती हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ? इस प्रकार पूछने पर अबोध बालिका होने के कारण भाषण-चातुरी से अनभिज्ञ, भय के कारण लड़खड़ाते हुए शब्दोंवाली, लज्जा के कारण अत्यन्त मन्द स्वरों में, शोक के कारण रुँधे गले से, डरी हुई-सी उसने किसी प्रकार हम आश्रमवासियों को बतलाया कि वह अत्यन्त समीप के ही ग्राम में निवास करनेवाले किसी ब्राह्मण की पुत्री है।

टिप्पणी—शोकज्वालावलीढम्—शोकरूपी ज्वाला से व्याप्त। यहाँ रूपकालङ्कार है। इस गद्यखण्ड में भयाकुल बालिका का सुन्दर चित्रण किया गया है।

एनां च सुदरीमाकलय्य कोऽपि यवन-तनयो नदीतटान्मातुर्हस्ता-दाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावद-सिधेनुकां सन्दर्श्य बिभीषिकयाऽस्याः क्रन्दन-कोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात् कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्तादुपाजगाम। दृष्ट्वैव यवन-तनयोऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेक-मारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाश-पलाशि-श्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुना रोदितुमारब्धवती, तावदस्मच्छा-श्रेणैवाऽऽनीते"ति।

व्याख्या—एनां = पूर्ववर्णितामिमां बालिकाम्, सुन्दरीम् = शोभनाङ्गीम्, आकलय्य = अवधार्य, कोऽपि = कश्चिदज्ञातकुलशीलः, यवनतनयः = यवनसुतः, नदीतटात् = सरित्कूलात्, मातुः = जनन्याः, हस्तात् = करात्, आच्छिद्य = बलादपहृत्य, क्रन्दन्तीम् = विलपन्तीम्, नीत्वा = आदाय, अपससार = पलायितवान्, ततः = पलायनानन्तरं, कञ्चिदध्वानम् = ईषत्पन्थानम्, अतिक्रम्य = गत्वा, यावत् = यावत्कालपर्यन्तम्, असिधेनुकां = छुरिकाम्, सन्दर्श्य = दर्शयित्वा, विभीषिकया = भीत्या, अस्याः = कुटीरस्थबालिकायाः, क्रन्दनकोलाहलं = रोदनध्वनिम्, शमयितुम् = शान्तं विधातुम्, इयेष = वाञ्छति स्म, तावत् = तावत्कालपर्यन्तम्, अकस्मात् = झटिति, कोऽपि, कालकम्बलः = यमकम्बलः, इव = यथा, भल्लूकः = ऋक्षः, वनान्तात् = काननप्रान्तात्, उपाजगाम = समीपमागतवान्, दृष्ट्वैव = विलोक्यैव, असौ = सः, यवनतनयः = यवनपुत्रः, तत्रैव = तस्मिन्नेव स्थाने, कन्यकामिमाम् = बालिकामेनाम्, त्यक्त्वा = परित्यज्य, शाल्मलितरुम् =

शाल्मलीवृक्षम्, एकम्, आरुरोह=आरोहितवान् । विप्रतनया=ब्राह्मण-पुत्री, च, इयम्=एषा, पलाशपलाशिश्रेण्यां=किंशुकविटपपङ्क्तौ, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, घुणाक्षरन्यायेन=काष्ठवेधकक्रमिन्यायेन, संयोगवशेनेति भावः, इत एव=आश्रमाभिमुखमेव, समायाता=समागता, यावद्, भयेन=भीत्या, पुनारोदितुम्=भूयः क्रन्दितुम्, आरब्धवती=समारेभे, तावत् एव, अस्मच्छात्रेण=मुनिशिष्येण, आनीता=समानीता, इति=बालिकासम्प्राप्तिवृत्तान्तम् ।

समासः—यवनस्य तनयः यवनतनयः । नद्याः तटं नदीतटं, तस्मात् नदीतटात् । क्रन्दनस्य कोलाहलं क्रन्दनकोलाहलम् । कालश्चासौ कम्वलश्च कालकम्वलः अथवा कालस्य कम्वलः कालकम्बलः । पलाशाः किंशुकाः, ते पलाशिनः वृक्षाः, तेषां श्रेणी, तस्यां पलाशपलाशिश्रेण्याम् । अस्माकं छात्रेण अस्मच्छात्रेण ।

कोषः—'आत्मजस्तनयः सूनुः सुतः पुत्रः स्त्रियां त्वमी ।' इत्यमरः । 'कूलं रोधश्च तीरञ्च प्रतीरञ्च तटं त्रिषु' इत्यमरः । 'अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः' इत्यमरः । 'छुरिका चासिधेनुका' इत्यमरः । 'पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान्' इत्यमरः । 'वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः । अनोकहः कुटः सालः पलाशी द्रुद्रुमागमाः ॥ इत्यमरः । 'पलाशे किंशुकः पर्णो वातपोथः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—आकलय्य—आ+कल+ल्यप् । आच्छिद्य—आ+छिद्+ल्यप् । क्रन्दन्तीम्—क्रन्द+शतृ (द्वि० एकवचन) । नीत्वा—नी+क्त्वा । अपससार—अप+सृ+लिट्+तिप् । अतिक्रम्य—अति+क्रम्+ल्यप् । सन्दर्श्य—सम्+दृश्+णि+ल्यप् । शमयितुम्—शम्+णि+तुमुन् । इयेष—इष् इच्छायां+लिट्+तिप् । उपाजगाम—उप+आ+गम्+लिट्+तिप् । त्यक्त्वा—त्यज्+क्त्वा । आरुरोह—आ+रुह+लिट्+तिप् । प्रविश्य—प्र+विश्+ल्यप् । समायाता—सम्+आ+या+क्त+टाप् । पुनारोदितुम्—'रो रि' इति लोपे, 'ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः' इति दीर्घे । रोदितुम्—रुद्+इ+तुमुन् । आरब्धवती—आ+रभ+क्तवतु+ङीप् । आनीता—आ+नी+क्त+टाप् ।

शब्दार्थ—एनाम्=उस पूर्ववर्णित कन्या को, सुन्दरीम्=शोभन अङ्गों वाली, आकलय्य=समझकर, कोऽपि=कोई, यवनतनयः=यवनपुत्र, नदीतटात्=नदी के तट से, मातुर्हस्तात्=माता के हाथ से, आच्छिद्य=छिनकर,

क्रन्दन्तीं=रोती हुई को, नीत्वा=लेकर, अपससार=भागा। ततः=तद-नन्तर, किञ्चिद्=कुछ, अध्वानम्=मार्ग को, अतिक्रम्य=पारकर, यावद्=जब तक, अकस्मात्=अचानक, असिधेनुकां=छूरी को, सन्दर्श्य=दिखाकर, विभीषिकया=डर से, अस्याः=इस बालिका को, क्रन्दनकोलाहलं=रोदन-ध्वनि को, शमयितुन्=शान्त करने की, इयेष=इच्छा की, तावत्=तब तक, अकस्मात्=अचानक, कोऽपि=कोई, कालकम्बल इव=काले कम्बल के समान अथवा यमराज के कम्बल के समान, भल्लूकः=भालू, वनान्तात्=वनप्रान्त से, उपाजगाम=पास आया। दृष्ट्वैव=देखकर ही, असौ=वह, यवन-तनयः=यवनात्मज, कन्यकामिमां=इस कन्या को, तत्रैव=वहीं पर, त्यक्त्वा=छोड़कर, शाल्मलितरुमेकं=एक शाल्मली वृक्ष पर, आरुरोह=चढ़ गया। विप्रतनया चेयं=और यह ब्राह्मणपुत्री, पलाशपलाशिश्रेण्याम्=पलाश वृक्षों के समूह में, प्रविश्य=प्रवेशकर, घुणाक्षरन्यायेन=संयोगवश, इत एव=इधर ही, समायाता=आ गई, यावत्=जब तक, भयेन=भय से, पुना रोदितुम्=फिर रोने के लिए, आरब्धवती=आरम्भ किया, तावत्=तब तक, अस्मच्छा-त्रेणैव=हमारे छात्र के द्वारा ही, आनीता=लाई गई। इति।

हिन्दी—इस कन्या को सुन्दर समझकर कोई मुसलमान लड़का नदी के तट से माता के हाथ से छीनकर रोती हुई बालिका को लेकर भागा। फिर कुछ दूर जाकर ज्यों ही उसने छूरा दिखलाकर भयभीत करके उसके रोने के शब्द को शान्त करना चाहा, त्यों ही अचानक कानन-प्रान्त से एक काले कम्बल जैसा भालू (रीछ) निकला। उसे देखते ही वह मुसलमान लड़का उस बालिका को वहीं छोड़कर सेमर के एक पेड़ पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण-पुत्री पलाश वृक्षों की पंक्ति में घुसकर संयोगवश इधर आ गई। फिर ज्यों ही इसने भय के कारण रोना आरम्भ किया, त्यों ही हमारा छात्र इसे यहाँ ले आया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'पलाशपलाशिश्रेण्याम्' स्थल पर यमकालंकार है। घुणाक्षरन्यायेन—जिस प्रकार घुन (काष्ठभेदक कीड़ा) जब कभी लकड़ी का भेदन करता है, तो कभी-कभी उसकी पंक्तियाँ अक्षर (क-ख) के रूप में जाती हैं, उसी प्रकार बिना सोचे हुए काम को अकस्मात् हो जाने को घुणा-क्षर न्याय कहते हैं।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच—"विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणामुपद्रवः ?"

ततः स उवाच—

"महात्मन् ! क्वाधुना विक्रमराज्यम् ? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरह्य्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनिः ? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादः ? क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यंते; "क्वचिन्मन्दिराणिं भिद्यन्ते, क्वचित् तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद् दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद् धनानि लुण्ठयन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिद् रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः" इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।

व्याख्या—तत्=ब्रह्मचारिगुरुवचनम्, आकर्ण्य=निशम्य, कोपज्वालाज्वलितः=क्रोधाग्निप्रदीप्तः, इव=यथा, योगी=योगसाधको महात्मा, प्रोवाच=निगदितवान्, विक्रमराज्येऽपि=विक्रमादित्यशासनेऽपि, कथमेषः=किमीदृग्विधः, पातकमयः=पापसङ्कुलः, दुराचाराणाम्=कुत्सिताचाराणाम्, उपद्रवः=विघ्नः। ततः=एतच्छ्रवणानन्तरम्, सः=ब्रह्मचारिगुरुः, उवाच=जगाद—महात्मन् !=योगिन् ! क्व=कुत्र, अधुना=सम्प्रति, विक्रमराज्यम्=विक्रमादित्यभूपतेः शासनकालः ? वीरविक्रमस्य तु=बलीविक्रमादित्यस्य तु, भारतभुवं=भारतभूमिम्, विरह्य्य=परित्यज्य, गतस्य=स्वर्गं प्रस्थितस्य, वर्षाणाम्=शरदाम्, सप्तदशशतकानि=सप्तदशशतवर्षाणि, व्यतीतानि=अतिक्रान्तानि, क्व=कुत्र, अधुना=इदानीम्, मन्दिरे मन्दिरे=प्रतिमन्दिरम्, जयजयध्वनिः=जयजयनादः, क्व=कुत्र, सम्प्रति=अधुना, तीर्थे तीर्थे=प्रतितीर्थम्, घण्टानादः=वाद्यमानघण्टाध्वनिः, क्व=कुत्र, अद्यापि=अस्मिन् दिवसेऽपि, साम्प्रतमपीति भावः, मठे मठे=प्रतिमठम्, वेदघोषः=श्रुतिपाठनादः, अद्य=अधुना, हि=निश्चयेन, वेदाः=श्रुतयः, विच्छिद्य=विपाटच, वीथीसु=वर्त्मसु, विक्षिप्यन्ते=विकीर्यन्ते, धर्मशास्त्राणि=मन्वादिप्रणीतस्मृतिवाङ्मयानि, उद्धूय=उत्तोल्य, धूमध्वजेषु=वह्निषु, ध्मायन्ते=अग्निसाद् विधीयन्ते, पुराणानि=वेदव्यासविरचितानि श्रीमद्भागवतादीनि, पिष्ट्वा=चूर्णीकृत्य, पानी-

येषु=जलेषु, पात्यन्ते=प्रक्षिप्यन्ते, भाष्याणि=सूत्रव्याख्यानानि महाभाष्यादीनि, भ्रंशयित्वा=चूर्णयित्वा, भ्राष्ट्रेषु=भर्जनपात्रेषु, भर्ज्यन्ते=वह्निना दह्यन्ते, क्वचित्=कुत्रचित्, मन्दिराणि=देवभवनानि, भिद्यन्ते=धूलिसात् विधीयन्ते, क्वचित्=कुत्रचित्, तुलसीवनानि=तुलसीतरुकाननानि, छिद्यन्ते =कर्त्यन्ते, क्वचित्=कुत्रचिद्, दाराः=भार्याः, अपह्रियन्ते=चोर्यन्ते, क्वचिद् =कुत्रचिद्, धनानि=द्रव्याणि सम्पदो वा, लुण्ठ्यन्ते=लुण्ठकैसंङ्गृह्यन्ते, क्वचिद्=कुत्रचिद्, आर्तनादाः=करुणक्रन्दनानि, क्वचिद्=कुत्रचिद्, रुधिरधाराः=शोणितप्रवाहाः, क्वचित्=कुत्रचिद्, अग्निदाहः=वह्निकाण्डम्, क्वचित्=कुत्रचिद्, गृहनिपातः=सद्मविनाशः, इत्येव=एवम्प्रकारक एव, श्रूयते=समाकर्ण्यते, अवलोक्यते=दृश्यते, च=पुनः, परितः=सर्वतश्चतुर्दिक्षु वा।

समासः—महान् आत्मा यस्य सः, तत्सम्बुद्धौ महात्मन्! विक्रमस्य राज्यं विक्रमराज्यम्। भारतस्य भूः भारतभूः, तां भारतभुवम्। घण्टायाः नादः घण्टानादः। कोपस्य ज्वालया ज्वलितः कोपज्वालाज्वलितः। धूम एव ध्वजो येषां, तेषु धूमध्वजेषु। तुलस्याः वनानि तुलसीवनानि। आर्तानां नादाः आर्तनादाः। रुधिरस्य धाराः रुधिरधाराः। अग्निना दाहः अग्निदाहः। गृहाणां गृहस्य वा निपातः गृहनिपातः।

कोषः—'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा'। 'शब्दे निनाद-निनद-ध्वनि-ध्वान-रवः-स्वनाः। स्वाननिर्घोषनिर्ह्रादनादनिस्वाननिस्वनाः॥ आरवाऽऽरावसंरावविरावाः' इत्यमरः। 'मठश्छात्रादिनिलयः' इत्यमरः। 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम्। पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्॥ कबन्धमुदकं पाथः पुष्करं सर्वतोमुखम्। अम्भोर्णस्तोयपानीयनीरक्षीराम्बुशम्बरम्॥' इत्यमरः। 'क्लीबेऽम्बरीषं भाष्ट्रो ना' इत्यमरः। 'गृहं गेहोद्वसितं वेश्म सद्म निकेतनम्' इत्यमरः।

व्याकरणम्—पातकमयः—पातक+मयट्। विरहय्य—वि+रह+ल्यप्। गतस्य—गम्+क्त(षष्ठी)। व्यतीतानि—वि+अत+क्त (नपुं०)। विच्छिद्य—वि+छिद्+ल्यप्। उद्धूय—उद्+धूञ्+ल्यप्। पिष्ट्वा—पिष्+क्त्वा। ध्मायन्ते—ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः से भावकर्म लट्। भर्ज्यन्ते—भृजी भर्जने+यक्, भावकर्म, लट्। भिद्यन्ते+भिद्+यक्+लट्। दाराः—दृ विदारणे+णि+घञ्। दारयति हृदयम् इति दाराः। स्त्रीवाचक

इस शब्द का प्रयोग 'दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वं च' इस सूत्र से नित्य बहुवचन पुल्लिङ्ग में होता है।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य=उसे सुनकर, कोपज्वालाज्वलित इव=क्रोधाग्नि की लपटों से जलते हुए के समान, योगी=योगसाधक मुनि, प्रोवाच=बोले। विक्रमराज्येऽपि=विक्रमादित्य के शासन में भी, कथमेष पातकमयः=क्यों इस पापमय, दुराचाराणामुपद्रवः=दुराचारियों का विघ्न है, ततः=तदनन्तर, सः =वह ब्रह्मचारीगुरु ने, उवाच=कहा। महात्मन् !=हे श्रेष्ठ आत्मावाले ! क्व=कहाँ, अधुना=इस समय, विक्रमराज्यम्=विक्रमादित्य का शासन है; वीरविक्रमस्य तु=महाबलशाली विक्रमादित्य के तो, भारतभुवं=भारतभूमि को, विरहय्य=छोड़कर, गतस्य=गये हुए, वर्षाणां सप्तदशशतकानि=सत्रह सौ वर्ष, व्यतीतानि=व्यतीत हो गये। क्व=कहाँ, अधुना=इस समय, मन्दिरे मन्दिरे=प्रत्येक मन्दिर में, जय-जयध्वनिः=जय-जयकार की ध्वनि हो रही है, क्व=कहाँ, सम्प्रति=अब, तीर्थे तीर्थे=प्रत्येक तीर्थ में, घण्टानादः= घण्टा का शब्द हो रहा है, क्व=कहाँ, अद्यापि=आज भी, मठे मठे=प्रत्येक छात्रगृहों में वेदघोषः=वेदों का समुच्चारण हो रहा है, अद्य=आज, हि= निश्चय ही, वेदाः=श्रुतियाँ, विच्छिद्य=फाड़कर, वीथीषु=गलियों में, विक्षिप्यन्ते=फेंके जाते हैं, धर्मशास्त्राणि=मन्वादि प्रणीत स्मृतियाँ, उद्धूय= उछालकर या उड़ाकर, धूमध्वजेषु=अग्नि में, ध्मायन्ते=झोंके जाते हैं; पुराणानि=श्रीमद्भागवतादि पुराणग्रन्थ, पिष्ट्वा=पीसकर, पानीयेषु=जल में, पात्यन्ते=डाले जाते हैं, भाष्याणि=सूत्रव्याख्यानात्मक भाष्यग्रन्थ, भ्रंशयित्वा=नष्टकर, भ्राष्ट्रेषु=भाड़ों में, भर्ज्यन्ते=जलाये जाते हैं, क्वचित्= कहीं, मन्दिराणि=देवताओं के निवासस्थान, भिद्यन्ते=तोड़े जाते हैं, क्वचित् =कहीं, तुलसीवनानि=तुलसीवृक्षसमूह, छिद्यन्ते=काटे जाते हैं, क्वचित्= कहीं, दाराः=स्त्रियाँ, अपह्रियन्ते=अपहरण की जाती हैं, क्वचित्=कहीं; धनानि=धन, लुण्ठयन्ते=लुटे जाते हैं, क्वचित्=कहीं, आर्तनादाः=करुण-क्रन्दन, क्वचित्=कहीं, रुधिरधाराः=खून की धारा, क्वचित्=कहीं, अग्निदाहः=वह्निकाण्ड, क्वचिद्=कहीं, गृहनिपातः=घरों का विनाश, इत्येव=यही, श्रूयते=सुनाई पड़ता है, अवलोक्यते च=और दिखलाई पड़ता है, परितः=चारों ओर।

हिन्दी—यह सुनकर क्रोधाग्नि की लपटों से जलते हुए के समान संतप्त

योगिराज बोले—विक्रमादित्य के राज्य में भी दुराचारियों का यह पातकपूर्ण उपद्रव कैसे हैं ? तब ब्रह्मचारीगुरु ने कहा—महात्मन् ! अब विक्रमादित्य का शासन कहाँ है ? वीर विक्रमादित्य को भारतभूमि को छोड़कर गये हुए सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब प्रत्येक मन्दिर में जय-जय का शब्द कहाँ ? आज तीर्थों में घण्टा-ध्वनि कहाँ सुनाई पड़ती है ? इस समय मठों (विद्यालयों) में वेदमन्त्रों की ध्वनि कहाँ ? आज तो वेदग्रन्थ फाड़कर गलियों में बिखेरे जाते हैं। धर्मशास्त्र उछालकर अग्नि में झोंके जाते हैं। श्रीमद्भागवतादि पुराण ग्रन्थ पीसकर पानी में फेंके जाते हैं। भाष्य ग्रन्थ नष्ट कर भाड़ों में जला दिये जाते हैं। कहीं मन्दिर तोड़े जाते हैं। कहीं तुलसी के वृक्ष काटे जा रहे हैं। कहीं स्त्रियों का अपहरण किया जाता है। कहीं धन-सम्पत्ति लूटी जाती है। कहीं करुण क्रन्दन है तो कहीं शोणित की धारा। कहीं अग्निकाण्ड हैं तो कहीं घरों का विध्वंस। इस समय यही चारों ओर सुनाई पड़ता है और दिखलाई पड़ता है।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'कोपज्वालाज्वलित इव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है। यहाँ प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।

तदाकर्ण्य दुःखितश्चकितश्च योगिराडुवाच—"कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान् विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रमः। अद्यापि तद्विजयपताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनापि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव, तत् कथमद्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि" इति ?

व्याख्या—तत्=ब्रह्मचारिगुरुकथनम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, दुःखितः=पीडितः, चकितश्च=साश्चर्यश्च, योगिराड्=महात्मा, उवाच=जगाद, कथमेतत्=एतत् तव वचनं कथं सङ्गच्छत इति भावः, ह्य एव=गतदिवस एव, पर्वतीयान्=शैलसंस्थितान्, शकान्=एतज्जातिशासकान्, विनिर्जित्य=जित्वा, महता=तारस्वरोत्थेन, जयघोषेण=जयजयेति शब्देन, स्वराजधानीम्=निज-प्रशासनकेन्द्रमुज्जयिनीम्, आयातः=समागतः, श्रीमान्=शोभासम्पन्नः, आदित्यपदलाञ्छनः=आदित्यपदविभूषितः, वीरविक्रमः=शूरः विक्रमादित्यः। अद्यापि=इदानीमपि, तद्विजयपताका=विक्रमविजयवैजयन्ती, मम=योगि-

राजस्य, चक्षुषोः=नयनयोः, अग्रत इव=पुरतः इव, समुद्धूयन्ते=समुच्छ्रियन्ते, अधुनापि=साम्प्रतमपि, तेषाम्=विक्रमसम्बन्धिनाम्, पटहगोमुखादीनाम्=आनकादिवाद्यविशेषाणाम्, निनादः=ध्वनिः, कर्णशष्कुलीं=श्रोत्रगह्वरम्, पूरयतीव=बिभर्तीव, तत् कथम्=तेन हेतुना केन प्रकारेण, अद्य=इदानीम्, वर्षाणां=शरदाम्, सप्तदशशतकानि=एतत्सङ्ख्यापरिमितानि, व्यतीतानि=जातानि, इति=इत्येवंरूपेण पृष्टवान् ।

समासः—जयस्य घोषेण जयघोषेण । आदित्यं पदलाञ्छनं यस्य स आदित्यपदलाञ्छनः । तस्य विजयस्य पताका तद्विजयपताका । पटहश्च गोमुखश्च आदिर्येषां, तेषां पटहगोमुखादीनाम् । कर्णस्य शष्कुलीं कर्णशष्कुलीम् ।

कोषः—'कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्' इत्यमरः । 'आनकः पटहोऽस्त्री' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—आकर्ण्य—आ+कर्ण+ल्यप् । पर्वतीयान्—पर्वत+छप्रत्यय+ईय, द्वि० वहु० । विनिर्जित्य—वि+निर्+जी+ल्यप् । समुद्धूयन्ते—सम्+उद्+धूञ्+लट् (आत्म०)।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य=यह सुनकर, दुःखितः=पीड़ित, चकितश्च=और आश्चर्यचकित, योगिराड्=महात्मा, उवाच=बोले, कथमेतत्=यह कैसे सम्भव है ? ह्य एव=गत दिवस ही, अर्थात् कल ही, पर्वतीयान्=पर्वत पर रहने वाले, शकान्=शकों को, विनिर्जित्य=जीतकर, महता जयघोषेण=अत्युन्नत जयघोष के साथ, स्वराजधानीम्=अपनी राजधानी उज्जयिनी, आयातः=आये, श्रीमान्=शोभासम्पन्न, आदित्यपदलाञ्छनः=आदित्यपद से विभूषित, वीरविक्रमः=महाबलशाली विक्रमादित्य । अद्यापि=आज भी, तद्विजयपताका=उसकी विजयध्वज की पताका, मम=मेरे, चक्षुषोः=आखों के, अग्रत इव=सम्मुख की तरह, समुद्धूयन्ते=उड़ रही है, अधुनाऽपि=इस समय भी, तेषां=उन सबके, पटहगोमुखादीनां=नगाड़ा और तुरही आदि की, निनादः=आवाज, कर्णशष्कुलीं=श्रोत्रविवर को, पूरयतीव=पूर्ण-सी कर रही है, तत्कथम्=तो कैसे, अद्य=आज, वर्षाणां सप्तदशशतकानि=सत्रह सौ वर्ष, व्यतीतानि=वीत गये, इति ।

हिन्दी—इस बात को सुनकर दुःखी और विस्मित होकर योगिराज बोले—यह कैसे ? कल ही तो आदित्य पद से विभूषित वीर विक्रम पर्वतीय शकों को जीतकर महान् जयघोष के साथ अपनी राजधानी आये थे । आज

भी मानों उनकी विजयपताकाएँ मेरी आँखों के सामने फहरा रही हैं। आज भी उनके नगाड़े, तुरही आदि के शब्द मानों मेरे कर्णविवरों को भर रहा है। तब फिर आज सत्रह सौ वर्ष कैसे बीत चुके ?

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'अद्यापि' से 'पूरयतीव' पर्यन्त उत्प्रेक्षा-लंकार है।

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम्—

"भगवन् ! बद्ध-सिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकै-र्विजितदशेन्द्रियैरनाहत-नाद-तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्र-मण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्या-नावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम् न सा संस्था नगराणाम्, न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामी भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति"।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरं, सर्वेषु=निखिलेषु जनेषु, स्तब्धेषु=शान्तेषु, चकितेषु च=आश्चर्यभूतेषु च, ब्रह्मचारिगुरुणा=आश्रमस्थमहर्षिणा, प्रणम्य=नमस्कृत्य, कथितम्=उक्तम्।

भगवन् !=महात्मन् ! बद्धसिद्धासनैः=गृहीतासनविशेषैः, निरुद्ध-निःश्वासैः=प्राणायामेनावरुद्धश्वसनक्रियाकलापैः, प्रबोधितकुण्डलिनीकैः=समुद्योतितकुण्डलिनीकैः, विजितदशेन्द्रियैः=वशीकृतदशेन्द्रियैः, अनाहतनाद-तन्तुम्=सुषुम्णामध्यस्थतुरीयपद्मोत्थशब्दम्, अवलम्ब्य=समाश्रित्य, आज्ञा-चक्रम्=भ्रूमध्यस्थद्विदलात्मकचक्रम्, संस्पृश्य=सम्यक् स्पृष्ट्वा, चन्द्रमण्डलम्=शशिबिम्बम्, भित्त्वा=द्विदलात्मकचक्रपरवर्तिषोडशदलात्मकचक्रं विभिद्य, तेजः-पुञ्जम्=सोमचक्रवर्तिमहाप्रकाशम्, अविगणय्य=अवमत्य, सहस्रदलकमल-स्यान्तः=ब्रह्मरन्ध्रवर्तिसहस्रारचक्रस्याभ्यन्तरम्, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, परमात्मानम्=परं ब्रह्म, साक्षात्कृत्य=दृष्ट्वा, तत्रैव=परब्रह्मणि, रममाणैः=विहरणशीलैः, मृत्युञ्जयैः=कालजयैः, आनन्दमात्रस्वरूपैः=चिन्मयस्वरूपै-रर्धद्व ब्रह्मरूपैः ध्यानावस्थितैः=आबद्धध्यानैः, भवादृशैः=योगिवर्यसदृशैः;

न=नहि, ज्ञायते=अवबुद्ध्यते, कालवेगः=समयचक्रः, तस्मिन् समये= तत्काले, भवता=श्रीमता योगिराजेन, ये पुरुषाः=ये जनाः, अवलोकिताः= दृष्टाः, तेषाम्=अवलोकितानां जनानाम्, पञ्चाशत्तमोऽपि=पञ्चाशत्सङ्ख्या-पूरकोऽपि, पुरुषः=मनुष्यः, मानवो वा, नावलोक्यते=नहि दृश्यते, अद्य= इदानीम्, न=नहि, तानि=भवता दृष्टानि, स्रोतांसि=धाराः, नदीनाम्= सरिताम्, न=नहि, सा=पुरावर्तिनी, संस्था=स्थितिः, नगराणाम्=जनपदा-नाम्, न=नहि, सा=पुरावर्ती, आकृतिः=स्वरूपः, गिरीणाम्=अचलानाम्, न=नहि, सा=पुरावलोकिता, सान्द्रता=गहनता, विपिनानाम्=वनानाम्, किमधिकं=कथमधिकम्, कथयामः=वर्णयामः, भारतवर्षम्=भारताख्यो देशः, अधुना=सम्प्रति, अन्यादृशमेव=पूर्वभिन्नमेव, सम्पन्नमस्ति=जातं विद्यते ।

समासः—बद्धं सिद्धासनं यैस्तैः बद्धसिद्धासनैः । निरुद्धा निःश्वासा यैस्तैः निरुद्धनिःश्वासैः । प्रबोधिता कुण्डलिनी यैस्तैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैः । विजि-तानि दशेन्द्रियाणि यैस्तैः विजितदशेन्द्रियैः । अनाहतश्चासौ नादश्च अनाहत-नादः, तस्य तन्तुम् अनाहतनादतन्तुम् । सहस्रदलं यत् कमलं, तस्य सहस्रदल-कमलस्य । आनन्दमात्रमेव स्वरूपं येषां, तैः आनन्दमात्रस्वरूपैः । ध्याने अवस्थिताः ध्यानावस्थिताः, तैः ध्यानावस्थितैः । भवान् इव दृश्यन्ते इति भवादृशाः, तैः भवादृशैः । अन्यदिव दृश्यते इति अन्यादृशम् ।

कोषः—'अथ समं सर्वम् । विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलानि निःशेषम् । समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके' ॥ इत्यमरः । 'कालो दिष्टो-ऽप्यनेहापि समयः' इत्यमरः । 'नदी सरित् । तरङ्गिणी शैवलिनी तटिनी ह्रादिनी धुनी । स्रोतस्वती द्वीपवती स्रवन्ती निम्नगाऽऽपगा ॥' इत्यमरः । 'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः' इत्यमरः । अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्' इत्यमरः । 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—निरुद्ध—नि + रुध् + क्त । संस्पृश्य—सम् + स्पृश् + क्त्वा + ल्यप् । भित्त्वा—भिदिर् विदारणे + क्त्वा । अविगणय्य—अ (=न) + वि + गण् + णिच् + ल्यप् । प्रविश्य—प्र + विश् + क्त्वा + ल्यप् । रममाणैः—रम + शानच् । मृत्युं जितवन्त इति मृत्युञ्जयाः, तैः मृत्युञ्जयैः—मृत्यु + जि + खच् + मुमागमः । संस्था—सम् + स्था + अङ् + टाप् । सान्द्रता—सान्द्र + भावे तल् + टाप् । सम्पन्नम्—सम् + पद गतौ + + क्त 'रदाभ्यां निष्ठा तो नः पूर्वस्य च दः' ।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, सर्वेषु=सभी जनों के, स्तब्धेषु=स्तब्ध, चकितेषु च=और चकित हो जाने पर, ब्रह्मचारिगुरुणा=ब्रह्मचारी गुरु ने, प्रणम्य=प्रणामकर, कथितम्=कहा। भगवन्=महात्मन्! बद्धसिद्धासनैः=सिद्धासन बाँधने वाले, निरुद्धनिःश्वासैः=श्वास-प्रक्रिया को रोकने वाले, प्रबोधितकुण्डलिनीकैः=कुण्डलिनी को जगाने वाले, विजितदशेन्द्रियैः=दशों इन्द्रियों को जीतने वाले, अनाहतनादतन्तुम्=अनाहतनाद के तन्तु का, अवलम्ब्य=अवलम्बन कर, आज्ञाचक्रम्=आज्ञाचक्र को, संस्पृश्य=संस्पर्श कर, चन्द्रमण्डलं=चन्द्रमण्डल को, भित्त्वा=भेदन करके, तेजःपुञ्जम्=चन्द्रमण्डल से सम्बन्धित महाप्रकाश को, अविगणय्य=तिरस्कार कर, सहस्रदलकमलस्यान्तः=सहस्रदल कमल के भीतर, प्रविश्य=प्रवेश कर, परमात्मानं=ब्रह्म का, साक्षात्कृत्य=साक्षात्कार करके, तत्रैव=ब्रह्म में ही, रममाणैः=रमण करने वाले, मृत्युञ्जयैः=मृत्यु को जीतने वाले, आनन्दमात्रस्वरूपैः=केवल आनन्दस्वरूप, ध्यानावस्थितैः=ध्यान अर्थात् समाधि में स्थित होने वाले, भवादृशैः=आप जैसों के द्वारा, न ज्ञायते=नहीं जाना जाता है, कालवेगः=समय की गति, तस्मिन् समये=उस काल में, भवता=आपके द्वारा, ये पुरुषाः=जो पुरुष, अवलोकिताः=देखे गये हैं, तेषां=उन सबमें, पञ्चाशत्तमोऽपि=पचासवाँ भी, पुरुषः=मनुष्य, अर्थात् आपके द्वारा देखे गये पचासवीं पीढ़ी का भी मानव, नावलोक्यते=नहीं दिखलाई पड़ता। अद्य=आज, न तानि=पूर्वदृष्ट वे नहीं, स्रोतांसि=धाराएँ हैं, न=नहीं, सा संस्था=वह स्थिति, नगराणाम्=नगरों की है, न=नहीं, साऽऽकृतिः=वैसी आकृति, गिरीणाम्=पर्वतों की है, न=नहीं, सा=वह, सान्द्रता=घनता, विपिनानाम्=जंगलों की है, किमधिकं कथयामः=अधिक क्या कहे, भारतवर्षम्=भारत देश, अधुना=इस समय, अन्यादृशमेव=अन्य प्रकार का ही, सम्पन्नमस्ति=हो गया है।

हिन्दी—योगिराज के वचन सुनने के अनन्तर सबके स्तब्ध एवं आश्चर्यचकित हो जाने पर ब्रह्मचारियों के गुरु ने प्रणाम कर कहा—'भगवन्! सिद्धासन लगाकर, साँस रोककर, कुण्डलिनी को जगाकर, दसों इन्द्रियों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय) को वश में करके, अनाहतनाद के तन्तु का अवलम्बन करके, आज्ञाचक्र को स्पर्श कर अर्थात् ध्यान का लक्ष्य बनाकर, चन्द्रमण्डल का भेदन करके, सोमचक्र में संस्थित महाप्रकाश को तिरस्कृत करके,

सहस्रार-चक्र के भीतर प्रवेश करके, परब्रह्म का साक्षाद् दर्शन करके उसी में रमण करने वाले, मृत्यु को जीतने वाले, आत्मा के आनन्दमय स्वरूप को प्राप्त हुए, ध्यानमग्न आप जैसे योगियों को समय की गति का पता नहीं चलता। उस समय जिन लोगों को आपने देखा था, उनकी पचासवीं पीढ़ी का पुरुष भी आज नहीं दिखलाई पड़ता। आज नदियों की वे धाराएँ नहीं हैं। नगरों की वह स्थिति नहीं, पर्वतों का वह आकार नहीं और न काननों की वह सघनता है। अधिक क्या कहें, इस समय भारत देश अन्य प्रकार का ही हो गया है'।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में लेखक ने गौड़ी रीति का प्रयोग किया है। शब्दयोजना और भावात्मकता—दोनों की दृष्टि से गद्य में विशेष प्रवाह है। इस गद्यांश में योगशास्त्रीय अनेक शब्दों का प्रयोग हुआ है। ये शब्द योगिराज की महत्ता को सुस्पष्ट करने के लिए प्रयुक्त हुए हैं। यथा—सिद्धासन, कुण्डलिनी, अनाहतनाद, आज्ञाचक्र, चन्द्रमण्डल और सहस्रदलकमल। छात्रों के ज्ञान के लिए इन सबका संक्षिप्त परिचय निम्न है—

सिद्धासन—ध्यान अर्थात् समाधि के सम्यक् स्थित होने के लिए साधकजन पद्मासन, सिद्धासन आदि आसनविशेष लगाकर बैठते हैं।

कुण्डलिनी—मूलाधार चक्र का सम्बन्ध गुदा से है। यहीं कुण्डलिनी शक्ति (जिसे सर्पिणी भी कहते हैं) का निवास है। योगीजन इसी शक्ति को जगाकर मस्तिष्क तक ले जाते हैं।

अनाहतनाद—हृदय में संस्थित द्वादश दल कमल से समाधि की अवस्था में अनुभूत होनेवाला शब्द या ध्वनि।

आज्ञाचक्र—इसकी स्थिति दोनों भौंहों के बीच मानी जाती है। यही सुषुम्ना का अन्त तथा मन, बुद्धि और अहंकार का निवास है।

चन्द्रमण्डल—आज्ञाचक्र में दृष्टि को निश्चल कर देने के पश्चात् योगी की चन्द्रमण्डल एवं सूर्यचन्द्र रूपी प्रकाशपुञ्ज में स्थिति होती है।

सहस्रारचक्र अथवा सहस्रदलकमल—इसकी स्थिति मस्तिष्क (शिर) में मानी गई है। यही परमात्मा का निवास माना जाता है। समाधि पूर्ण हो जाने पर योगी यहीं परमात्मा का साक्षात्कार करता हुआ आनन्दस्वरूप हो जाता है। यही ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥

इदमाकर्ण्य किञ्चित् स्मित्वेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद—

"सत्यं न लक्षितो मया समय-वेगः। यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधि-

रहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत् सङ्क्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति"—

व्याख्या—इदम् = ब्रह्मचारिगुरुवचनम्, आकर्ण्य = निशम्य, किञ्चित् = ईषत्, स्मित्वेव = विहस्य इव, परितः = सर्वतः, अवलोक्य = निर्वर्ण्य, च = पुनः, योगी = योगसाधको महात्मा, जगाद उवाच, सत्यम् = अवितथम्, न = नहि, लक्षितः = परिज्ञातः, मया = समाधिस्थेन योगिना, समयवेगः = कालप्रवाहः, यौधिष्ठिरे = युधिष्ठिरसम्बद्धे, समये = काले, कलितसमाधिः = धारितसमाधिः, अहं = योगसाधको महामुनिः, वैक्रमसमये = विक्रमादित्यकाले, उदस्थाम् = समाधिविरतोऽभूवम्, पुनश्च = भूयश्च, वैक्रमसमये = विक्रमादित्यशासनकाले, समाधिम् = ध्यानम्, आकलय्य = समालम्ब्य, अस्मिन् = एतस्मिन्, दुराचारमये = अत्याचारयुते, समये = काले, अहम् = योगी, उत्थितः = जागृतः अस्मि, अहम् = योगिराड्, पुनः = भूयः, गत्वा = यात्वा, समाधिमेव = ध्यानमेव, कलयिष्यामि = सन्धारयिष्यामि, किन्तु = परञ्च, तावत् = तावत्कालपर्यन्तं यावदहमत्र संस्थितोऽस्मि, सङ्क्षिप्य=समासेन, अनतिविस्तरेणेति भावः, कथ्यताम् = उच्यताम्, का दशा = कीदृशी अवस्था, भारतवर्षस्य = अस्माकं भारतदेशस्य, इति = एतत्।

समासः—युधिष्ठिरस्यायम् इति यौधिष्ठिरः, तस्मिन् यौधिष्ठिरे। कलितः समाधिः येन सः कलितसमाधिः। विक्रमस्यायमिति वैक्रमः, तस्मिन् समये वैक्रमसमये। दुष्टः आचारः दुराचारः, सः प्रचुरं यस्मिन् तादृशे दुराचारमये।

कोषः—'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः। 'कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः' इत्यमरः। 'सत्यं तथ्यमृतं सम्यग् अमूनि त्रिषु तद्वति' इत्यमरः। 'वितथं त्वनृतं वचः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—आकर्ण्य—आ + कर्ण + क्त्वा + ल्यप्। स्मित्वा—ष्मिङ् + क्त्वा। अवलोक्य—अव + लोक + क्त्वा + ल्यप्। जगाद—गद व्यक्तायां वाचि + लिट् + तिप्। यौधिष्ठिरे—युधिष्ठिरस्य अयं यौधिष्ठिरः (युधिष्ठिर + अण्), तस्मिन् यौधिष्ठिरे। वैक्रमसमये—विक्रमस्य अयम् इति (विक्रम + अण्) वैक्रमः, स चासौ समयः, तस्मिन् वैक्रमसमये। आकलय्य—आ + कल + ल्यप्। दुराचारमये—दुराचार + मयट्। उत्थितः—उद् + स्था + इट् + क्त। उद-

स्थाम् – उत् + स्था + लुङ्, उ० पु० ए० व० । गत्वा – गम् + क्त्वा । कलयिष्यामि –कल + लृट् + मिप् । संक्षिप्य सम् + क्षिप् + ल्यप् ।

शब्दार्थ इदम् = ब्रह्मचारीगुरु के कथन को, आकर्ण्य = सुनकर, किञ्चित् = थोडा-सा, स्मित्वेव = मानो मुस्कुरा कर, परितः = चारो ओर, अवलोक्य = देखकर, योगी = योगसाधक महामुनि जगाद = बोले, सत्यं = तथ्य है, मया = मैंने, समयवेगः = काल की गति को, न लक्षितः = नहीं समझा, यौधिष्ठिरे समये = युधिष्ठिर से सम्बद्ध काल में, कलितसमाधिः = समाधि धारण करने वाले, अहं = मैं, वैक्रमसमये विक्रमादित्य के शासनकाल में, उदस्थाम् = उठा, पुनश्च = और फिर, वैक्रमसमये = विक्रमादित्य के राज्य-काल में, समाधिमाकलय्य = ध्यान लगाकर, अस्मिन् = इस, दुराचारमये समये = दुराचारसमन्वित काल में, अहम् = मैं उत्थितोऽस्मि = उठा हूँ, अहं = मैं, पुनः = फिर, गत्वा = जाकर, समाधिमेव = समाधि को ही, कलयिष्यामि = धारण करूँगा, किन्तु = परन्तु, तावत् = तब तक, संक्षिप्य = संक्षेप करके, कथ्यताम् = कहिये, का दशा = क्या अवस्था है, भारतवर्षस्य = भारत देश की, इति = ऐसा ।

हिन्दी –यह सुनकर कुछ मुस्कुराते हुए-से चारो ओर देखकर योगिराज बोले—सचमुच मुझे समय के वेग की प्रतीति नहीं हुई । युधिष्ठिर के समय में समाधि लगाकर मैं विक्रमादित्य के समय में उठा था और विक्रमादित्य के समय में पुनः समाधि लगाकर इस दुराचारपूर्ण समय में जागा हूँ । मैं फिर जाकर समाधि ही लगाउँगा । किन्तु तब तक संक्षेप में बतलाइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है ? ॥ १८ ॥

तत् संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-सञ्जात-शोको हृदयस्थ-प्रसादसम्भारोद्गिरण-श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण "मा स्म धर्मध्वंसन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय" इति कण्ठं रुन्धतो बाष्पानविगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निःश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—

"भगवन् ! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुण-दानवोदन्तोदीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावनान् परस्सहस्रान् दुरा-

चारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति । धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्यवंश्यांश्चाऽभिमन्यामहे" ।

व्याख्या—तत् = योगिराजवचनम्, संश्रुत्य = निशम्य, भारतवर्षीयदशा-संस्मरणसञ्जातशोकः = भारतदेशीयावस्थासंस्मरणमात्रसमुत्पन्नकरुणाः, हृदय-स्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण = मानसप्रसन्नतासम्भारवमनपरिश्रमेण, इव = यथा, अतिमन्थरेण = नितान्तमन्देन, स्वरेण = ध्वनिना वाचा वा, मा स्म धर्मध्वंसनघोषणैः = मा स्म श्रुतिप्रतिपाद्यधर्मोन्मूलनकथनैः, योगिराजस्य = महामुनेः, धैर्यम् = धीरत्वम्, अवधीरय = अवनमय, इति = एवम्प्रकारेण, कण्ठं = गलविवरम्, रुन्धतः = अवरुन्धतः, वाष्पान् = अश्रुनिवहान्, अविगणय्य = समुपेक्ष्य, नेत्रे = लोचने, प्रमृज्य = स्वच्छे विधाय, उष्णं = निदाघयुतम्, निःश्वस्य = निःश्वासं समादाय, कातराभ्यामिव = सकरुणाभ्यामिव, नयनाभ्यां = लोचनाभ्यां, परितः = समन्ततः, अवलोक्य = वीक्ष्य, ब्रह्मचारिगुरुः = गौरश्यामवटुशिक्षकः, प्रवक्तुम् = कथयितुम्, आरभत = प्रारभत—

भगवन् = श्रीमन् महर्षे ! दम्भोलिघटिता = वज्रनिर्मिता, इयम् = एषा, रसना = जिह्वा, या = रसना, दारुणदानवोदन्तोदीरणैः = भीतिप्रदनिशाचर-कथाकथनैः, न = नहि, दीर्य्यते = बिभिद्यते, लोहसारमयं = कृष्णायसरचितम्, हृदयम् = मानसम्, यत् = चेतः, संस्मृत्य = स्मृत्वा, यावनान् = यवनविहितान्, परस्सहस्रान् = दशशताधिकान्, दुराचारान् = अत्याचारान्, शतधा = शत-खण्डेषु, न = नहि, भिद्यते = विदीर्य्यते, भस्मसाच्च = अग्निसाच्च, न = नहि, भवति = सञ्जायते, धिगस्मान् = धिक्कारं विद्यते मादृशान्, ये = वयम्, अद्यापि = इदानीमपि, जीवामः = जीवनं सन्धारयामः, श्वसिमः = श्वासं गृह्णीमः, विचरामः = चलामः, आत्मनः = अस्मान्, आर्य्यवंश्यांश्च = आर्यवंशोद्भवांश्च, अभिमन्यामहे = अङ्गीकुर्मः ।

समासः—भारतवर्षस्येति भारतवर्षीया, सा चासौ दशा, तस्याः संस्मरणेन सञ्जातः शोकः यस्य सः भारतवर्षीयदशासंस्मरणसञ्जातशोकः । हृदये तिष्ठतीति हृदयस्थः, हृदयस्थो यः प्रसादस्य सम्भारः, तस्य उद्गिरणे यः श्रमः, तेन हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेण । धर्मस्य ध्वंसनम्, तस्य घोषणैः धर्मध्वंसन-घोषणैः । दम्भोलिना घटिता दम्भोलिघटिता । दारुणानां दानवानाम् उदन्तस्य उदीरणैः दारुणदानवोदन्तोदीरणैः । लोहसारस्य विकारः लोहसारमयम् । सह-

स्रात् परा इति परस्सहस्राः, तान् परस्सहस्रान् । यवनानामिमे इति यावनाः, तान् यावनान् ।

कोषः—'पुरोगमः पुरोगामी मन्दगामी तु मन्थरः' इत्यमरः । 'लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी । दृग्दृष्टी च' इत्यमरः । 'ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः । शतकोटिः स्वरुः शम्बोः रम्भोलिरशनिर्द्वयोः' ॥ इत्यमरः । 'रसज्ञा रसना जिह्वा' इत्यमरः । 'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यात्' इत्यमरः । 'चित्तन्तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—संश्रुत्य—सम्+श्रु+क्त्वा+ल्यप् । उद्गिरण—उद्+गॄ+ल्युट् । अवधीरय—अव+धृ+लोट् । अविगणय्य—अ+वि+गण+ल्यप् । प्रमृज्य—प्र+मृज्+क्त्वा+ल्यप् । निःश्वस्य—निर्+श्वस्+क्त्वा+ल्यप् । प्रवक्तुम्—प्र+वच्+तुमुन् । आरभत—आ+रभ्+लङ्+तिप् । उदीरण—उद्+इर्+ल्युट्+अन् । दीर्य्यते—दृ+भावकर्म यक्+लट्+तिप् । यावनान्—यवन+अण् (द्वि० ब० व०) । संस्मृत्य—सम्+स्मृ+क्त्वा+ल्यप् । भस्मसात्—भस्मनः तुल्यम्, भस्म+सात्, 'विभाषा साति कार्त्स्न्यें' इति सूत्रेण । धिगस्मान्—धिक् के योग में द्वितीया 'उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु' ।

शब्दार्थ—तत्संश्रुत्य=यह सुनकर, भारतवर्षीयदशासंस्मरणसञ्जातशोकः =भारतवर्ष की दशा के स्मरण से समुत्पन्न शोकवाले, हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेणेव=मानस-संस्थित प्रसन्नता के समूह को उगलने के परिश्रम से मानो, अतिमन्थरेण स्वरेण=अत्यन्त धीमी वाणी से, मा स्म=निषेधवाचक अव्यय, (मा के योग में अट् अथवा आट् का आगम नहीं होता है तथा 'स्म' के प्रयोग होने पर 'स्मोत्तरे लङ् च' इस सूत्र से लुङ् अथवा लङ् लकार का प्रयोग होता है ।) धर्मध्वंसनघोषणैः=धर्म के विनाश के प्रकाशन से, योगिराजस्य=योगैसाधक महामुनि के, धैर्यम्=धीरता को, अवधीरय=विचलित करो, इति=इस प्रकार से, कण्ठं रुन्धतः=गलविवर को अवरुद्ध करनेवाले, बाष्पानविगणय्य=आँसुओं की परवाह न कर, नेत्रे प्रमृज्य=आँखों को पोंछकर, उष्णं निःश्वस्य=गर्म साँस लेकर, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां=मानो दीनतापूर्ण आँखों से, परितः=चारो ओर, अवलोक्य=देखकर, ब्रह्मचारिगुरुः=गौर-श्यामवटु के शिक्षक मुनि, प्रवक्तुम्=कहने के लिए, आरभत=आरम्भ किया—

भगवन् !=महर्षे ! दम्भोलिघटिता=वज्र से बनी हुई, इयं रसना=यह जिह्वा है, यः=जो, दारुणदानवोदन्तोदीरणैः=भयङ्कर दानवों के वृत्तान्त के कथन से, न दीर्य्यते=फट नहीं जाती, लोहसारमयं हृदयं=लोहे का बना हुआ यह हृदय है, यत्=जो, संस्मृत्य=स्मरण कर, यावनान्=यावनों के द्वारा किये हुए, परःसहस्रान्=हजारों से अधिक, दुराचारान्=अत्याचारों को, शतधा=सैकड़ों खण्ड, न भिद्यते=भिन्न-भिन्न नहीं हो जाता, भस्मसाच्च=और जलकर राख, न भवति=नहीं होता। धिगस्मान्=हमलोगों को धिक्कार है, योऽद्यापि=जो आज भी, जीवामः=जीवन धारण किये हुए हैं, श्वसिमः=साँस लेते हैं, विचरामः=विचरण करते हैं, आत्मनः=अपने को, आर्य्यवंश्यांश्च=आर्य्य वंश में समुत्पन्न होनेवाले, अभिमन्यामहे=मानते हैं।

हिन्दी—इसे सुनकर भारतवर्ष की दशा के स्मरण से समुत्पन्न शोकवाले ब्रह्मचारी गुरु ने, मानो हृदय में संस्थित प्रसन्नता को व्यक्त करने श्रम से नितान्त मन्द स्वर से 'धर्मविध्वंस की कथाओं से योगिराज के धैर्य को विचलित मत करो' इस प्रकार कहते हुए, गले को रुँधनेवाले आँसुओं की परवाह न करके, आँखों को पोंछकर, गरम साँस लेकर, कातरपूर्ण नयनों से चारों ओर देखकर कहना प्रारम्भ किया—

महर्षे ! यह मेरी जिह्वा वज्र से विनिर्मित है, जो भीषण दानवों के वृत्तान्त-वर्णन से विदीर्ण नहीं हो जाती। फौलाद (लोहा) से बना हुआ यह हृदय है, जो यवनों के द्वारा किये गये हजारों से अधिक दुराचारों को संस्मरण कर खण्ड-खण्ड नहीं हो जाता और जलकर राख नहीं बन जाता। हम सबको धिक्कार है, जो आज भी जीवन धारण कर रहे हैं, साँस ले रहे हैं, भ्रमण कर रहे हैं और अपने को आर्यवंश में समुत्पन्न होनेवाले मानते हैं।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'हृदयस्थप्रसादसम्भारोद्गिरणश्रमेणेव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है। 'कातराभ्यामिव' में उपमालंकार है। 'ये अद्यापि' से लेकर 'अभिमन्यामहे' पर्यन्त दीपकालंकार है। 'जीवामः' के पश्चात् 'श्वसिमः' कहने का आशय यह है कि वस्तुतः हम आर्यों का इस प्रकार का गर्हित जीवन बिताना जीना नहीं है, अपितु लोहार की धौंकनी के समान केवल साँस लेना मात्र है। कायरों की भाँति अधम जीवन है। यहाँ 'निर्वेद' नामक व्यभिचारीभाव समुद्वेलित होकर 'भाव' बन गया है॥ १९॥

उपक्रममनुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अञ्चित-रोमकञ्चुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानं च स्वरम्, अवागच्छत् "सकलानर्थमयः, सकल-वञ्चनामयः, सकलपापमयः, सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः"– इति, "अत एव तत्स्मरणमात्रेणापि खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखेदयिषामि" इति च विचिन्त्य—

"मुने ! विलक्षणोऽयं भगवान् सकल-कला-कलाप-कलनः सकल-कालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयः-पूर-पूरितान्यकूपार-तलानि मरूकरोति। सिंह-व्याघ्र-भल्लूक-गण्डक-फेरु-शश-सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर-प्रासाद-हर्म्य-शृङ्गाटक-चत्वरोद्यान-तडाग-गोष्ठमयानि नगराणि च काननीकरोति। निरीक्ष्यतां कदाचिदस्मिन्नेव भारते वर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्ष-वाताऽऽतप-हिम-सहानि तपांसि अतापिषत। सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते, स्मृतयः समृद्यन्ते, मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्यः पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते। सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्यातिसङ्क्षेपेण कथय यवनराज्य-वृत्तान्तम्। न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्"—इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे।

व्याख्या—उपक्रमम् = उपोद्घातम्, अमुम् = पूर्ववर्णितम्, आकर्ण्य = निशम्य, अवलोक्य = वीक्ष्य, च, मुनेः = ब्रह्मचारिगुरोः, विमनायमानम् = उन्मनायमानम्, हरिद्राद्रवक्षालितमिव = महारजनरसधौतमिव, वदनम् = आननम्, निपतद्वारिबिन्दुनी = प्रच्यवदश्रुकणे, नयने = लोचने, अञ्चितरोमकञ्चुकम् = सरोमाञ्चम्, शरीरं = वपुः, कम्पमानम् = वेपमानम्, अधरम् = ओष्ठः, भज्यमानं = त्रुट्यमानम्, च, स्वरम् = शब्दम्, अवागच्छत् = अजानात्, सकलानर्थमयः = निखिलपापमयः, सकलवञ्चनामयः = अशेषवञ्चनान्वितः, सकलपापमयः = समस्तवृजिनयुतः, सकलोपद्रवमयश्च = सम्पूर्णोपसर्गबहुलश्च, अयम् = एषः, वृत्तान्तः = कथानक इति, अत एव = अस्मात् कारणात्, तत्स्मरणमात्रेणापि = तत्पातकस्मृतिविषयत्वेनापि, खिद्यते = कष्टमनुभवति, एषः = ब्रह्म-

चारिगुरुः, हृदये=चेतसि, तत्=तस्मात्, अहं=योगिराट्, एनं=मुनिम्, निरर्थं=निष्प्रयोजनम्, न=नहि, जिग्लापयिष्यामि=ग्लापयितुमभिलषामि, न वा, चिखेदयिषामि=खेदयितुं वाञ्छामि, इति च=इत्येवम्प्रकारेण च, विचिन्त्य=विचार्य—('योगिराड् उवाच' इत्यग्रे योजयिष्यते)—

मुने !=ब्रह्मचारिगुरो ! विलक्षणः=विवेचनाक्षमः, अयम्=एषः, भगवान्=निखिलैश्वर्ययुतः, सकलकलाकलापकलनः=अशेषकलासन्दोहनिर्माता, सकलकालनः=समस्तजरयिता, करालः=भयङ्करः, कालः=महाकालः, स एव=तादृशो महाकाल एव, कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले, पयःपूरपूरितानि=वारिप्रवाहभरितानि, अकूपारतलानि=सागरतलानि, मरूकरोति=मरुस्थलं विदधाति, सिंहव्याघ्रभल्लूकगण्डकफेरुशशसहस्रव्याप्तानि=केसरीमृगपति-ऋक्षखड्गीजम्बूकहरिणसहस्रसमावृतानि, अरण्यानि=विपिनानि, जनपदीकरोति=नगरीकरोति, मन्दिरप्रासादहर्म्यशृङ्गाटकचत्वरोद्यानतडागगोष्ठमयानि=देवालयराजसदनधनिकावासचतुष्पथाङ्गणगोस्थानकप्रचुराणि, नगराणि=पुराणि, च, काननीकरोति=विपिनीकरोति, निरीक्ष्यताम्=अवलोक्यताम्, कदाचित्=कस्मिंश्चित् समये, अस्मिन्नेव=एतस्मिन्नेव, भारतवर्षे=भारताख्ये देशे, यायजूकैः=मखशीलैः, राजसूयादियज्ञाः=राजसूयप्रभृतिविविधयागाः, व्ययाजिषत=विहिताः, कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले, इहैव=अस्मिन्नेव भारतवर्षे, वर्षवातातपहिमसहानि=प्रावृट्पवनग्रीष्मशीतसहानि, तपांसि=कृच्छ्रादिकर्माणि च, अतापिषत=तप्तानि, सम्प्रति तु=अस्मिन् काले तु, म्लेच्छैः=यवनैः, गावः=धेनवः, हन्यन्ते=प्राणैर्वियुज्यन्ते, वेदाः=श्रुतयः, विदीर्यन्ते=विच्छिद्यन्ते, स्मृतयः=मन्वादिप्रणीतानि धर्मशास्त्राणि, समृद्यन्ते=मर्दितानि विधीयन्ते, मन्दिराणि=देवायतनानि, मन्दुरीक्रियन्ते=वाजिशालीक्रियन्ते, सत्यः=पतिव्रताः नार्यः, पात्यन्ते=पातिव्रत्यात् व्यभिचार्यन्ते, सन्तश्च=सज्जनाश्च, सन्ताप्यन्ते=सम्पीड्यन्ते, सर्वमेतत्=निखिलमिदम्, माहात्म्यम्=महत्त्वम्, तस्यैव=पूर्ववर्णितस्य, महाकालस्य=कालनाम्ना सम्प्रथितस्य. इति=इत्यस्मात् कारणात्, कथं=केन कारणेन, धीरधौरेयोऽपि=धीरधुरन्धरोऽपि, धैर्यं=धीरत्वम्. विधुरयसि=परित्यजसि, शान्तिमाकलय्य=शान्ति समाश्रित्य, अतिसङ्क्षेपेण=अतीवसमासेन, कथय=वद, यवनराज्यवृत्तान्तम्=यवनशासनकथानकम्, न=नहि, जाने=जानामि, किमिति=कथम्, अनावश्यकमपि=निष्प्रयोजनमपि, शुश्रूषते=श्रोतुमभिलषति, मे=

मम, हृदयम्=चित्तम्, इति=एवम्प्रकारेण, कथयित्वा=उक्त्वा, तूष्णीम्=मौनम्, अवतस्थे=बभूव ।

समास—हरिद्रायाः द्रवः रसः, तेन क्षालितं धौतम् इति हरिद्राद्रवक्षालितम् । निपतन्तः वारिणाम् अश्रूणां बिन्दवः, याभ्यां ते निपतद्वारिबिन्दुनी । रोमकञ्चुकाः रोमाञ्चाः, अञ्चिताः रोमकञ्चुकाः यस्मिन्, तत् अञ्चितरोमकञ्चुकम् । सकलानां कलानां कलापः समूहः, तस्य कलनः रचयिता इति सकलकलाकलापकलनः । पयसा पूरेण पूरितानि पयःपूरपूरितानि । अकूपाराणां तलानि अकूपारतलानि । अमरुं मरुं करोतीति मरूकरोति । सिंहानां व्याघ्राणां भल्लूकानां गण्डकानां फेरूणां शशानां च सहस्राणि, तैर्व्याप्तानि सिंहव्याघ्रभल्लूकगण्डकफेरुशशसहस्रव्याप्तानि । मन्दिरं च प्रासादश्च हर्म्यं च शृङ्गाटकं च चत्वरं च उद्यानं च तडागं च गोष्ठं च, तैः प्रचुराणि मन्दिरप्रासादहर्म्यशृङ्गाटकचत्वरोद्यानतडागगोष्ठमयानि । अमन्दुराः मन्दुराः क्रियन्ते इति मन्दुरीक्रियन्ते । धुरां वहतीति धौरेयः, धीराणां धीरेषु वा धौरेयः इति धीरधौरेयः ।

कोष—'निशाख्या काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णिनी' इत्यमरः । 'अथ कमलोत्तरम् । स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं महारजनमित्यपि' इत्यमरः । 'कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि' इत्यमरः । 'कालो मृत्यौ महाकाले' इति मेदिनी । 'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः । उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः' इत्यमरः । 'स्त्रियां शिवा भूरिमायगोमायुमृगधूर्तकाः । शृगालवञ्चकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बूकाः' ॥ इत्यमरः । 'हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम् । सौधोऽस्त्री राजसदनम्' इत्यमरः । 'शृङ्गाटकचतुष्पथे' इत्यमरः । 'अङ्गणं चत्वाराजिरे' इत्यमरः । 'पुमानाक्रीड उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम्' इत्यमरः । 'इज्याशीलो यायजूको यज्वा तु विधिगेष्टवान्' इत्यमरः । 'वाजिशाला तु मन्दुरा' इत्यमरः । 'वैकल्येऽपि च विश्लेषे विधुरं विकले त्रिषु' इति मेदिनीकोषः ।

व्याकरणम्—उपक्रमम्—उप+क्रम+भावे घञ् । विमनायमानम्—वि+मन+क्यच्+शानच् । कम्पमानम्—कम्प+शानच् । भज्यमानम्—भज्+यक्+शानच् । अवागच्छत्—अव+गम्+लङ्+तिप् । जिग्लापयिष्यामि—ग्लै हर्षक्षये+पुक्+णिच्+सन्+लट्+मिप् । चिखेदयिषामि—खिद्+णिच्+सन्+मिप् । विचिन्त्य—वि+चिन्त+ल्यप् । कलनः—कल+

ल्युट् । कालनः—कल + णिच् + ल्युट् । निरीक्ष्यताम्—निर + ईक्ष + कर्मणि यक्, लोट्, प्र० पु० ए० व० । यायजूकैः—पुनः पुनः भजते इति क्रियासमभिहारे यङ्, 'यजजपदशां यङः' इत्यूकः । व्ययाजिषत—वि + यज + कर्मणि लुङ्, प्र० पु० ब० व० । अतापिषत—तप + लुङ् + झ, भावकर्म । हन्यन्ते—हन् + यक् (भावकर्म) + लट् + झि । विदीर्यन्ते—वि + दृ + यक् + लट् + झि । आकलय्य—आ + कल् + ल्यप् । शुश्रूषते—श्रु + सन् + त, 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' इत्यात्मनेपदम् । अवतस्थे—अव + स्था + लिट् + त । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदम् ।

शब्दार्थ—उपक्रमम् = भूमिका को, अमुम् = इस, आकर्ण्य = सुनकर, अवलोक्य = = देखकर, च = और, मुनेः = ब्रह्मचारी गुरु का, विमनायमानं = उदास, दुःखी, हरिद्राद्रवक्षालितम् = हल्दी के रस से रँगे हुए के, इव = समान, बदनम् = मुख को, निपतद्वारिबिन्दुनी = अश्रुकण प्रवाहित करनेवाले, नयने = आँखो को, अञ्चितरोमकञ्चुकं = रोमाञ्च से युक्त, शरीरम् = देह, कम्पमानम् = काँपते हुए, अधरम् = ओठों को, भज्यमानम् = भङ्ग होता हुआ, टूटता हुआ, स्वरम् = शब्द, अवागच्छत् = जान गये, सकलानर्थमयः = सम्पूर्ण अनर्थों से समन्वित, सकलवञ्चनामयः = अशेष वञ्चनाओं से युक्त, सकलपापमयः = निखिल पातकों से भरा हुआ, सकलोपद्रवमयः = समस्त उपद्रवों से युक्त, च = और, अयं वृत्तान्तः = यह वृत्तान्त है, इति = ऐसा, अत एव = इसलिये, तत्स्मरणमात्रेणापि = उस घटना-क्रम के स्मरण मात्र से भी, खिद्यते = दुःखी हो रहे हैं, एषः = यह, हृदये = चित्त में, तत् = इसलिये, न = नहीं, अहम् = मैं, एनम् = इनको, निरर्थम् = निरर्थक, जिग्लापयिषामि = दुःखी नहीं करना चाहता हूँ, न वा चिखेदयिषामि = और नहीं खिन्न करना चाहता हूँ, इति = ऐसा, विचिन्त्य = विचार करके—मुने ! = हे महर्षि ! विलक्षणः = विचित्र, अद्भुत, अयं = यह, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्न, सकलकलाकलापकलनः = समस्त कलासमूह का रचयिता, सकलकालनः = सभी को नष्ट करनेवाला, करालः = भीषण, कालः = महाकाल है, स एव = वह ही, कदाचित् = कभी, पयःपूरपूरितानि = जलप्रवाह से परिपूर्ण, अकूपारतलानि = समुद्र को, मरूकरोति = रेगिस्तान बना देता है, सिंहव्याघ्रभल्लूकगण्डकफेरुशशसहस्रव्याप्तानि = सिंह, बाघ, भालू, गेंडा, सियार और खरगोशों से व्याप्त, अरण्यानि = जंगलों को, जनपदीकरोति = नगर बना देता है, मन्दिरप्रासादहर्म्यशृङ्गाटकचत्वरोद्यान-

तडागगोष्ठमयानि=मन्दिरों, राजमहलों, धनिकावासों, चौराहों, प्राङ्गणों, उद्यानों, तडागों एवं गोशालाओं आदि आदि से युक्त, नगराणि=शहरों को, काननीकरोति=जंगल के समान कर देता है, निरीक्ष्यताम्=देखिये, कदाचिद् =कभी, अस्मिन्नेव भारतवर्षे=इसी भारतवर्ष देश में, यायजूकैः=याज्ञिकों के द्वारा, राजसूयादियज्ञाः=राजसूय आदि यज्ञ, व्ययाजिषत=किये जाते थे, कदाचित्=किसी समय, इहैव=इसी भारतवर्ष में, वर्षवातातपहिमसहानि= वर्षा, आँधी, धूप और शीत को सहन करनेवाले, तपांसि=तपस्यायें, अतापिषत =तपे जाते थे अर्थात् किये जाते थे, सम्प्रति तु=किन्तु इस समय, म्लेच्छैः= यवनों के द्वारा, गावः=गाँयें; हन्यन्ते=मारी जाती हैं, वेदाः=चारों वेद, विदीर्यन्ते=फाड़े जा रहे हैं, स्मृतयः=स्मृतियाँ, सम्मृद्यन्ते=कुचल दी जाती हैं, मन्दिराणि=देवालय, मन्दुरीक्रियन्ते=घुड़साल बना दिये जाते हैं, सत्यः =पतिव्रतायें, पात्यन्ते=पतित कर दी जाती है, सन्तश्च=और सज्जन पुरुष, सन्ताप्यन्ते=सम्पीडित किये जाते हैं। सर्वमेतत् माहात्म्यं=यह सब माहात्म्य, तस्यैव=उसी, महाकालस्य=महाकाल का है, इति=अतः, कथं=क्यों, धीरधौरेयोऽपि=धैर्यशालियों में अग्रणी होने पर भी, धैर्यं=धीरता को विधुरयसि=छोड़ रहे हो, शान्तिमाकलय्य=शान्ति धारण कर, अतिसङ्क्षेपेण =अत्यन्त संक्षेप में, कथय=कहो, यवनराज्यवृत्तान्तम्=यवन-शासन का समाचार, न जाने=नहीं जानता हूँ, किमिति=क्यों, अनावश्यकमपि= अनावश्यक होने पर भी, शुश्रूषोः=सुनने की इच्छा करता है, मे=मेरा, हृदयम्=चित्त, इति=ऐसा, कथयित्वा=कहकर, तूष्णीम्=मौन, अवतस्थे =हो गये।

हिन्दी—इस प्रस्तावना को सुनकर तथा ब्रह्मचारि गुरु के हल्दी के रस से रँगे हुए के समान उदास अर्थात् पीले पड़े हुए चेहरे, आँसू बहाते हुए नेत्रों, रोमाञ्चित शरीर, काँपते हुए ओष्ठ तथा लड़खड़ाती हुई आवाज को देखकर योगिराज समझ गये कि यह सारा वृत्तान्त अनर्थ, वञ्चना, पाप और उपद्रवों से परिपूर्ण है। अतः उसके स्मरण मात्र से ही इनका हृदय दुःखी हो रहा है। इसलिए मैं इनको व्यर्थ में ही और अधिक म्लान अथवा खिन्न नहीं करना चाहता। यह सोचकर (बोले)—

मुनिवर ! समस्त कलाओं के रचयिता तथा सबके संहारक, भीषण यह कालदेवता बड़े विलक्षण हैं। ये ही कभी अथाह जलराशि से भरे हुए समुद्र-

तलों को मरुस्थल बना देते हैं। कभी हजारों सिंह, बाघ, भालू, गेंड़ा, सियार, खरगोशों से व्याप्त काननों को नगर बना देते हैं और कभी देवस्थानों, राजमहलों, धनिकों की ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओं, चौराहों, चबूतरों, उपवनों, तालाबों एवं गोशालाओं से विभूषित नगरों को जंगल के रूप में परिणत कर देते हैं। देखिये, कभी इसी भारतवर्ष में याज्ञिकों के द्वारा राजसूय आदि यज्ञ किये जाते थे, किसी समय यहीं वर्षा, आँधी, धूप और शीत सहकर अनेक प्रकार के तप किये जाते थे। आजकल तो म्लेच्छों (यवनों) के द्वारा गायें मारी जाती हैं, स्मृतियाँ रौंदी जाती हैं, देवमन्दिरों को घुड़साल बना दिया जाता है, पतिव्रताओं का सतीत्व नष्ट किया जाता है और सज्जनों को सताया जाता है। यह सब उसी महाकाल की महिमा है। यह विचारकर धैर्यशालियों में अग्रगण्य होते हुए भी आप धैर्य क्यों छोड़ रहे हैं? शान्ति धारण करके अत्यन्त संक्षेप में यवनराज्य का वर्णन कीजिये। अनावश्यक होते हुए भी, न जाने क्यों मेरा हृदय सुनना चाहता है; ऐसा कहकर योगिराज मौन हो गये।

टिप्पणी—इस गद्यांश में कर्मवाच्य के प्रयोगों का बाहुल्य और माधुर्य प्रसादयुक्त वैदर्भी रीति प्रशंसनीय है। 'हरिद्राद्रवक्षालितमिव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है। 'सकलकलाकलापकलनः' 'सकलकालनः करालः कालः' इस स्थान पर 'कला-कला, कल-कल, काल-काल' स्वरूप सभङ्ग पद यमक है। 'सकलकला' से 'काननीकरोति' तक अनुप्रास की छटा रमणीय है। देश की पूर्व स्थिति और तत्कालीन स्थिति के सुन्दर वर्णन के साथ विषमालङ्कार भी है॥ २०॥

अथ स मुनिः–"भगवन्! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्रभवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रूभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-वितानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, "इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्" इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु कश्चन गजिनी-स्थाननिवासी महामदो यवनः ससैन्यः प्राविशद् भारते वर्षे। स च प्रजा विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, परश्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्।

व्याख्या—अथ=योगिराजवचनश्रवणानन्तरम्, सः=प्रथितः, मुनिः=ब्रह्मचारिगुरुः, 'अवदत्' इति शेषः, भगवन्!=योगिराड्! धैर्येण=धीरतया, प्रसादेन=प्रसन्नतया, प्रतापेन=प्रभावेण, तेजसा=कान्त्या, वीर्येण=बलेन, विक्रमेण=पराक्रमेण, शान्त्या=शमेन, श्रिया=लक्ष्म्या, सौख्येन=धनेन, धर्मेण=श्रुतिप्रतिपाद्येन कर्मणा, विद्यया=ज्ञानेन, च=पुनः, सममेव=साकमेव, परलोकम्=स्वर्लोकम्, सनाथितवति=याते, तत्रभवति=पूज्ये, वीरविक्रमादित्ये=एतन्नामकोज्जयिनीशासके, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, पारस्परिकविरोधविशिथिलीस्नेहबन्धनेषु=अन्योऽन्यविरोधशिथिलीकृतप्रेमसम्बन्धेषु, राजसु=नृपेषु, भामिनीभ्रूभङ्गभूरिभावप्रभावपराभूतवैभवेषु=कामिनीभ्रूविलासबहुभावप्रभावपराजितधनेषु, भटेषु=वीरेषु, स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु=क्षुद्रस्वार्थचिन्तामात्रपरायणेषु, अमात्यवर्गेषु=सचिवनिवहेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु=निजकीर्तिश्रवणरसिकेषु, प्रभुषु=शासकेषु, इन्द्रस्त्वम्=पुरन्दरस्त्वम्, वरुणस्त्वम्=अम्भसाम्पतिस्त्वम्, कुबेरस्त्वम्=धनाधिपस्त्वम्, इति=एवम्प्रकारेण, वर्णनामात्रसक्तेषु=प्रशंसनमात्रतत्परेषु, बुधजनेषु=सुधीसमुदायेषु, कश्चन=कोऽपि, गजिनीस्थानवासी='गजिनी' इति लोकप्रथितस्थाननिवासी, महामदो=महमूद इति लोकप्रसिद्धनामा, यवनः=म्लेच्छः, ससेनः=चमूभिर्युतः, प्राविशत्=प्रवेशं विहितवान्, भारते वर्षे=भारताख्येऽस्मिन् देशे, सः='महमूदगजनी' इति प्रथितः, च=पुनः, प्रजाः=जनताः, विलुण्ठ्य=लुण्ठयित्वा, मन्दिराणि=देवालयान्, निपात्य=पातयित्वा, प्रतिमाः=मूर्तीः, विभिद्य=विदीर्य, परःशतान्=शताधिकान्, जनान्=देशवासिनो नरांश्च, दासीकृत्य=दासं विधाय, शतशः=शतसङ्ख्यकेषु, उष्ट्रेषु=क्रमेलकेषु, रत्नानि=धनानि, आरोप्य=संस्थाप्य, स्वदेशम्=निजदेशम्, गजिनीमिति भावः, अनैषीत्=नीतवान्।

समासः—पारस्परिकेण विरोधेन विशिथिलीकृतानि स्नेहबन्धनानि यैस्तेषु पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु। भामिनीनां भ्रूभङ्गाः भूरिभावाश्च, तेषां प्रभावेण पराभूतानि वैभवानि येषां तेषु भामिनीभ्रूभङ्गभूरिभावप्रभावपराभूतवैभवेषु। स्वार्थस्य चिन्ता स्वार्थचिन्ता, तस्याः सन्तानः, तस्य विताने ये एकतानास्ते स्वार्थचिन्तावितानैकतानास्तेषु स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु। सेनया सहितः ससेनः।

कोषः—'सुन्दरी रमणी रामा कोपना सैव भामिनी' इत्यमरः। 'भटा

योधाश्च योद्धारः' इत्यमरः। 'प्रजा स्यात् सन्ततौ जने' इत्यमरः। 'एकतानोऽनन्यवृत्तिरेकाग्रैकायनावपि। अप्येकसर्गं एकाग्रयोऽप्येकायनगतोऽपि सः'॥ इत्यमरः। 'उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्गाः करभः शिशुः'। इत्यमरः।

व्याकरणम्—'धैर्येण' इत्यारभ्य 'विद्यया चे'ति पर्यन्तं 'समम्' इत्यस्य योगे तृतीया। सनाथितवति—सनाथ+णिच्+क्त+क्तन्+मतुप्, सप्तम्यन्तं पदम्। प्राविशत्—प्र+विश्+लङ्+तिप्। विलुण्ठ्य—वि+लुण्ठ+ल्यप्। निपात्य—नि+पत+णिच्+ल्यप्। विभिद्य—वि+भिद्+क्त्वा+ल्यप्। दासीकृत्य—न दासाः अदासाः, अदासान् दासान् कृत्वा—इति दासीकृत्य (च्विप्रत्ययः)। आरोप्य—आ+रोप्+ल्यप्। अनैषीत्—णीञ् प्रापणे+लुङ्+तिप्, प्र० पु० ए० व०।

शब्दार्थ—अथ=योगिराज के शान्त हो जाने पर, स मुनिः=ब्रह्मचारी गुरु ने, (कहना आरम्भ किया—) भगवन्!=हे योगिराज! धैर्येण=धैर्य, प्रसादेन=प्रसन्नता, प्रतापेन=प्रताप, तेजसा=क्षात्रतेज, वीर्येण=वीरता, विक्रमेण=पराक्रम, शान्त्या=शान्ति, श्रिया=लक्ष्मी, सौख्येन=सुख, धर्मेण=धर्म, विद्यया च=और विद्या के, सममेव=साथ ही, परलोकं=स्वर्गलोक को, सनाथितवति=सनाथित करने पर, तत्रभवति=पूज्यपाद, वीरविक्रमादित्ये=वीर विक्रमादित्य के, शनैः शनैः=धीरे-धीरे, पारस्परिकविरोधविशिथिलीकृतस्नेहबन्धनेषु=आपसी झगड़ों के कारण पारस्परिक स्नेहबन्धनों के शिथिल हो जाने पर, राजसु=राजाओं के, भामिनीभ्रूभङ्गभूरिभावप्रभावपराभूतवैभवेषु=कामिनियों के कटाक्षों एवं हाव-भावों के प्रभाव में आकर सारी सम्पत्ति नष्ट कर देने पर, भटेषु=वीर योद्धाओं के, स्वार्थचिन्तासन्तानवितानैकतानेषु=केवल स्वार्थ-साधन की चिन्ताओं में तल्लीन हो जाने पर, अमात्यवर्गेषु=मन्त्रियों के, प्रशंसामात्रप्रियेषु=प्रशंसा मात्र के प्रेमी हो जाने पर, प्रभुषु=स्वामियों के अर्थात् राजाओं के, इन्द्रस्त्वम्=तुम इन्द्र हो, वरुणस्त्वम्=तुम वरुण हो, कुबेरस्त्वम्=तुम कुबेर हो, इति=इस प्रकार के, वर्णनामात्रसक्तेषु=वर्णन में ही आसक्त हो जाने पर, बुधजनेषु=विद्वानों के, कश्चन=कोई, गजिनीस्थाननिवासी=गजिनी देश में रहने वाला, महामदो यवनः=महामदशाली 'महमूद गजनवी' नामक मुसलमान, ससेनः=सेना के सहित, प्राविशत्=प्रवेश किया, भारते वर्षे=भारत वर्ष में। स च=और वह, प्रजाः=प्रजाओं को, विलुण्ठ्य=लूटकर, मन्दिराणि=देवतागृहों

को, निपात्य=गिराकर, प्रतिमाः=मूर्तियों को, विभिद्य=तोड़कर, परश्शतान्=सैंकड़ों से अधिक, जनांश्च=मनुष्यों को, दासीकृत्य=दास बनाकर, शतशः=सैकड़ों, उष्ट्रेषु=ऊँटों पर, रत्नानि=रत्नों को, आभूषणों को, आरोप्य=लादकर, स्वदेशम्=अपने देश को, अनैषीत्=ले गया।

हिन्दी—तब उस मुनि ने अर्थात् ब्रह्मचारि गुरु ने कहना प्रारम्भ किया—भगवन्! धैर्य, हर्ष, प्रताप, तेज, वीरता, पराक्रम, शान्ति, शोभा, सुख, धर्म एवं विद्या के सहित श्रीमान् वीरविक्रमादित्य के परलोक चले जाने पर, धीरे-धीरे आपसी झगड़ों के कारण राजाओं के पारस्परिक स्नेह-बन्धनों के शिथिल हो जाने पर, वीर योद्धाओं के कामिनियों के कटाक्षों एवं हाव-भावों के प्रभाव में आकर सारी सम्पत्ति नष्ट कर देने पर, मन्त्रियों के केवल स्वार्थ साधन की चिन्ताओं में तल्लीन हो जाने पर, राजाओं के प्रशंसा-प्रिय हो जाने पर, विद्वानों के 'आप इन्द्र हैं, आप वरुण हैं, आप कुवेर हैं' इस प्रकार केवल राजाओं की चाटुकारिता में तत्पर हो जाने पर, कोई गजिनी स्थान निवासी महमूद नामक यवन (मुसलमान) सेना सहित भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजाओं को लूटकर, मन्दिरों को ध्वस्त करके, मूर्तियों को तोड़कर, सैकड़ों लोगों को दास बनाकर, सैकड़ों ऊँटों पर रत्न लादकर अपने देश को ले गया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'धैर्य-प्रसाद' आदि के साथ ही विक्रमादित्य ने स्वर्गलोक को समलंकृत किया है' इसका वर्णन होने पर सहोक्ति अलंकार है। साथ ही चूर्णक नामक गद्य, प्रसाद नामक गुण, पाञ्चाली नामक रीति, दैन्य-चिन्ता विषादादि भाव भी विद्यमान हैं॥ २१॥

एवं स ज्ञातास्वादः पौनःपुन्येन द्वादशवारमागत्य भारत-मलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश-चूडायितं सोमनाथ-तीर्थमपि धूलीचकार। अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादि-जटितानि कपाटानि स्तम्भान्, गृहाव-ग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वय-मणसुवर्ण-शृङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य-चकितीकृताव-

लोचक-लोचन-निचयां महाघण्टां प्रसह्य सङ्गृह्य, महादेवमूर्ताविपि गदामुदतूतुलत् ।

व्याख्या—एवम्=अनेन प्रकारेण, सः=महमूदगजनीनामा आक्रान्ता, ज्ञातास्वादः=विज्ञातलुण्ठनरसः, पौनःपुन्येनं=भूयो भूयः, द्वादशवारम्, आगत्य=सम्प्राप्य, भारतम्=एतन्नामकं देशम्, अलुलुण्ठत्=लुण्ठितवान्, तस्मिन्नेव=लुण्ठनविषयक एव, स्वसंरम्भे=निजोद्योगे, एकदा=एकस्मिन् काले, गुर्जरदेशचूडायितम्=गुर्जरप्रदेशभूषणभूतम्, सोमनाथतीर्थमपि=सोमनाथेश्वरविग्रहमपि, धूलीचकार=प्रणाशितवान् । अद्य तु=सम्प्रति तु, तत्तीर्थस्य=सोमनाथतीर्थस्य, नामापि=अभिधानमपि, केनापि=केनापि नागरिकेन, न=नहि, स्मर्यंते=स्मृतिपथं समानीयते, परम्=किन्तु; तत्समये=तदानीन्तले काले, लोकोत्तरम्=सर्वलोकश्रेष्ठम्, तस्य=सोमनाथमन्दिरस्य, वैभवम्=सम्पत्, आसीत्=अवर्तत् । तत्र हि=सोमनाथदेवायतने किल, महार्हवैदूर्यपद्मरागमाणिक्यमुक्ताफलादिजटितानि=वहुमूल्यवैदूर्यलोहितकमणिमौक्तिकादिजटितानि, कपाटानि=द्वाराणि, स्तम्भान्=स्थूणाः, गृहावग्रहणीः=गेहदेहलीः, भित्तीः=कुड्यानि, वलभीः=गोपानसीः, विटङ्कानि च=कपोतपालिकाश्च, निर्मथ्य=मथित्वा, रत्ननिचयम्=माणिक्यसमुदयम्, आदाय=सङ्गृह्य, शतद्वयमणसुवर्णश्रृङ्खलावलम्बिनीम्=द्विशतमणहेमश्रृङ्खलावलम्बिनीम्, चञ्चच्चाकचक्यचकितीकृतावलोचकलोचननिचयाम्=समुच्छलच्चाकचक्यविस्मेरीकृतद्रष्टुजननेत्रसमूहाम्, महाघण्टाम्=बृहदाकारघण्टिकाम्, प्रसह्य=बलात्, सङ्गृह्य=समादाय, महादेवमूर्ताविपि=शङ्करविग्रहेऽपि, गदाम्=शस्त्रविशेषाम्, उदतूतुलत्=उदतिष्ठिपत् ।

समासः—ज्ञातः आस्वादः येन सः ज्ञातास्वादः । गुर्जरदेशस्य चूडायितं गुर्जरदेशचूडायितम् । वैदूर्यं पद्मरागं माणिक्यं मुक्ताफलं च वैदूर्यपद्मरागमाणिक्यमुक्ताफलानि, महार्हाणि च वैदूर्यपद्मरागमाणिक्यमुक्ताफलानि च महार्हवैदूर्यपद्मरागमाणिक्यमुक्ताफलानि, तानि आदौ येषां तानि, तैः जटितानि महार्हवैदूर्यमाणिक्यमुक्ताफलादिजटिततानि । गृहस्य अवग्रहणीः गृहावग्रहणीः । रत्नानां निचयं रत्ननिचयम् । शतद्वयमणसुवर्णस्य श्रृङ्खलायाम् अवलम्बिनीं शतद्वयमणसुवर्णश्रृङ्खलावलम्बिनीम् । चञ्चलाचाकचक्येन चकितीकृतः अवलोचकलोचनानां निचयः यया, तां चञ्चच्चाकचक्यचकितीकृतावलोचकलोचननिचयाम् । महादेवस्य मूर्ताविपि महादेवमूर्ताविपि ।

कोषः—'कालो दिष्टोऽप्यनेहापि समयः' इत्यमरः। 'स्तम्भौ स्थूणा-जडीभावौ' इत्यमरः। 'गोपानसी तु वलभी' इत्यमरः। 'वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—पुनः पुनः इत्यस्य भावः पौनःपुन्यं, तेन पौनःपुन्येन। आगत्य—आ+गम्+क्त्वा+ल्यप्। अलुलुण्ठत्—लुठि स्तेये, चुरादिः+णिजन्तात् लुङ्, प्र० पु० ए० व०। चूडायितम्—चूडा इव आचारतीति चूडायते; चूडा+क्यङ्+क्त। धूलीचकार—अधूलिं धूलिं कृतवान्, धूलि+च्वि+कृ+लिट् 'च्वौ च' इति इकारदीर्घत्वम्। स्मर्यते—स्मृ+कर्मवाच्य में यक्, लट्। निर्मथ्य—निर्+मथ+ल्यप्। प्रसह्य—प्र+सह+ल्यप्। उदतूतुलत्—उत्+अतुतुलत्, तुल उन्माने चुरादिः+लङ्+तिप्।

शब्दार्थ—एवं=इस प्रकार, सः=उसने, ज्ञातास्वादः=लूटने का स्वाद जान लिया है जिसने, पौनःपुन्येन=पुनः-पुनः, द्वादशवारम्=बारह वार, आगत्य=आकर, भारतम्=भारतवर्ष देश को, अलुलुण्ठत्=लूटा। तस्मिन्नेव च=और उसी, स्वसंरम्भे=निजोद्योगभूत अपने आक्रमण में, एकदा=एक समय, गुर्जरदेशचूडायितम्=गुजरातप्रदेश के चूडामणिस्वरूप, सोमनाथतीर्थमपि =सोमनाथ नामक तीर्थ को भी, धूलीचकार=धूलि में मिलाकर विनष्ट कर दिया। अद्य तु=इस समय तो, तत्तीर्थस्य=उस तीर्थ का, नामापि=नाम भी, केनापि=किसी के द्वारा, न=नहीं, स्मर्यते=स्मरण किया जाता है, परं =किन्तु, तत्समये तु=उस समय तो, तस्य=उसी तीर्थ का, लोकोत्तरम्= अलौकिक, वैभवम्=सम्पत्ति, आसीत्=थी, तत्र हि=वहाँ पर निश्चय ही, महार्हवैदूर्यपद्मरागमाणिक्यमुक्ताफलादिजटितानि=बहुमूल्य मूँगे, पद्मराग, हीरे और मोतियों से जड़ा हुआ, कपाटानि=किवाड़ों को, स्तम्भान्=स्तम्भों को, गृहावग्रहणीः=घर की देहलियों को, भित्तीः=दीवालों को, वलभी= छज्जा को, विटङ्कानि=कपोतों के दरबों को, निर्मथ्य=मथकर, रत्ननिचयम् रत्नसमूह को, आदाय=लेकर, शतद्वयमणसुवर्णश्रृङ्खलावलम्बिनीम्=दो सौ मन सोने के जंजीरों में लटकनेवाले, चञ्चच्चाकचक्यचकितीकृतावलोचक-लोचननिचयाम्=समुच्छलित चाकचिक्य से दर्शकगणों के नेत्रों को चकित कर देनेवाले, महाघण्टाम्=महाघण्टा को, प्रसह्य=बलात्, सङ्गृह्य=लेकर, महा-देवमूर्तावपि=महादेव के मूर्ति पर भी, गदाम्=गदा को, उदतूतुलत्=उठाई।

हिन्दी—इस प्रकार लुण्ठन का आस्वाद लग जाने पर उसने पुनः-पुनः

बारह बार आकर भारत को लूटा। अपने उसी उत्साह के वशीभूत होकर उसने एक बार गुजरात देश के मुकुट के समान सोमनाथतीर्थं को भी धूल में मिला दिया। आज तो उस तीर्थ का नाम भी कोई याद नहीं करता, किन्तु उस समय उसका अलौकिक वैभव था। उसमें बहुमूल्य वैदूर्य, पद्मराग, माणिक्य तथा मोतियों से जड़े हुए किवाड़ों, खम्भों, देहलियों, दीवालों, छज्जों तथा कबूतरों के दरबों को नष्ट करके, रत्नों की राशि लेकर, दो सौ मन की सुवर्ण के शृङ्खलाओं में लटकनेवाले, अपने देदीप्यमान चमचमाहट से दर्शकगणों के नेत्रों में चकाचौंध समुत्पन्न कर देनेवाले विशाल घण्टे को भी बलपूर्वक छीन-कर, उसने महादेव की मूर्ति पर भी प्रहार करने के लिए गदा उठाई।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में सोमनाथ मन्दिर के सातिशय वैभव का वर्णन करने से उदात्तालंकार हैं। अनुप्रास की छटा भी दर्शनीय है ॥ २२ ॥

अथ "वीर! गृहीतमखिलं वित्तम्, पराजिता आर्य्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, सञ्चतममलं यशः, इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मांस्ताडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलय; किन्तु त्यजेमामकिञ्चित्करीं जडां महादेव-प्रतिमाम्। यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्तिं स्प्राक्षीः" इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; "नाहं मूर्तीर्विक्रीणामि, किन्तु भिनद्मि" इति सङ्गर्ज्य जनताया हाहाकार-कलकलमाकर्णयन् घोरगदया मूर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

व्याख्या—अथ=महादेवमूर्तौ गदातोलनानन्तरम्, वीर!=शूर! गृहीतम्=स्वायत्तीकृतम्, अखिलं=समस्तं, वित्तम्=धनम्, पराजिता=पराजयमधिगता, आर्यसेनाः=आर्यपृतना, बन्दीकृता=निगडिताः, वयम्=आर्याः, सञ्चितम्=सङ्कलितम्, अमलम्=स्वच्छम्, यशः=कीर्तिः, इतोऽपि=एतावत्सौभाग्यलाभादपि, न=नहि, शाम्यति=शान्तिमेति, ते=तव, क्रोधः=कोपः, चेत्=यदि, अस्मान्=पूजकगणान्, ताडय=प्रताडय, मारय=प्राणनाशं विधेहि,

छिन्धि=विदारय, भिन्धि=भेदय, पातय=भ्रंशस्व (पर्वतशिखरादपीति भावः), मज्जय=अवगाहय (पारावारतले—इति शेषः), खण्डय=खण्डितं कुरु (शरीरमिति शेषः), कर्तय=द्विधां कुरु, देहमिति भावः, ज्वलय=वह्नौ दाहय, गात्रमिति भावः, किन्तु=परन्तु, त्यज=मुञ्च, इमाम्=समक्षस्थिताम्, अकिञ्चित्करीम्=न किञ्चिदपि क्रियाशीलाम्, जडाम्=चेतनाविरहिताम्, महादेवप्रतिमाम्=शिवविग्रहस्वरूपां मूर्तिम्। यदि=चेत्, एवम्=इत्थम्. न=नहि, स्वीकरोषि=मन्यसे, तत्=तर्हि, अस्मत्तः=पूजकवृन्दात्, अन्यदपि=एतदधिकमपि, सुवर्णकोटिद्वयम्=कोटिद्वयकनकमुद्राम्, गृहाण=अङ्गीकुरु, त्रायस्व=रक्ष, एनाम्=इमाम्, भगवन्मूर्तिम्=शिवलिङ्गम्, मा=नहि, स्प्राक्षीः=स्पर्शं विधेहि, इति=एवम्, साम्रेडम्=सप्रश्रयं बहुशः, कथयत्सु=वदत्सु, रुदत्सु=विलापनिरतेषु, पतत्सु=भूमितले निपतत्सु, विलुण्ठत्सु=महीमवलुण्ठत्सु, प्रणमत्सु=प्रणामकुर्वत्सु, च, पूजकवर्गेषु=शिवसेवकनिवहेषु, अहं=महमूदगजनीनामा, न=नहि, मूर्तीः=प्रतिमाः, विक्रीडामि=विक्रयं विदधामि, किन्तु=परन्तु, भिनद्मि=त्रोटयामि, इति=अनेन प्रकारेण, सङ्गर्ज्य=गर्जनं विधाय, जनतायाः=लोकस्य, हाहाकारकलकलम्=हा-हा इत्याकारकशब्दध्वनिम्, आकर्णयन्=संशृण्वन्, घोरगदया=भयङ्करगदया, मूर्तिम्=प्रतिमाम्, अतुत्रुटत्=त्रोटयामास। गदापातसमकालमेव=गदाप्रहारसमकालमेव च, अनेकार्बुदपद्मसुद्रामूल्यानि=बहुसङ्ख्यमूल्यानि, रत्नानि=विविधमौक्तिकमण्यादीनि, मूर्तिमध्यात्=शिवलिङ्गाभ्यन्तरात्, उच्छलितानि=उत्पतितानि, परितः=समन्ततः, अवाकीर्यन्त=प्रकीर्णानि सञ्जातानि, स च=महमूदश्च, दग्धमुखः=महादुष्टः, तानि=इतस्ततो विकीर्णितानि, रत्नानि=मौक्तिकानि, मूर्तिखण्डानि=शिवलिङ्गशकलानि, च, क्रमेलकपृष्ठेषु=उष्ट्रपृष्ठभागेषु, आरोप्य=संस्थाप्य, सिन्धुनदम्=एतन्नामिकां नदीम्, उत्तीर्य=उल्लङ्घ्य, स्वकीयां=निजाम्, विजयध्वजिनीम्=जयपताकिनीम्, गजिनीम्=एतन्नामिकाम्, नाम, राजधानीम्=शासनकेन्द्रम्, प्राविशत्=जगाम।

समासः—आर्याणां सेनाः आर्यसेनाः। सुवर्णस्य कोटिद्वयं सुवर्णकोटिद्वयम्। महादेवस्य प्रतिमा महादेवप्रतिमा, ताम् महादेवप्रतिमाम्। पूजकानां वर्गेषु पूजकवर्गेषु। हाहाकारं च कलकलं च हाहाकारकलकलम्। घोरया गदया घोरगदया। गदापातस्य समकालं गदापातसमकालम्। अनेकानि अर्बुदपद्मानि मुद्राः मूल्यानि येषां तानि अनेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि। मूर्तेः मध्यात् मूर्ति-

मध्यात् । दग्धं मुखं यस्य सः दग्धमुखः । मूर्तेः खण्डानि मूर्तिखण्डानि । क्रमेलकानां पृष्ठेषु क्रमेलकपृष्ठेषु । विजयध्वजः अस्ति यस्यां सा, तां विजयध्वजिनीम् । धीयते धार्यतेऽस्यामिति धानी, राज्ञो धानी राजधानी, तां राजधानीम् ।

कोषः—'विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्' इत्यमरः । 'द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु' इत्यमरः । 'ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः' इत्यमरः । 'यशः कीर्तिः समज्ञा च' इत्यमरः । 'कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ' इत्यमरः । 'आम्रेडितं द्विस्त्रिरुक्तम्' इत्यमरः । 'रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च' इत्यमरः । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः । 'उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्गाः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—गृहीतम्—ग्रह उपादाने + क्त । पराजिता—पर + आ + जि + क्त । सञ्चितम्—सम् + चि चयने + क्त । अमलम्—न विद्यते मलं यस्मिन् तत् । ताडय, मारय—लोट्, मध्यमपुरुष ए० व० । अकिञ्चित्करीम्—किञ्चित् करोतीति किञ्चित्करी, किञ्चित् + कृ + ट + ङीप्, ततो नञ्समासः । बन्दीकृताः—वन्द + च्वि + कृ + क्त । त्रायस्व—त्रै रक्षणे आत्मनेपद, लोट्, म० पु० ए० व० । मा स्प्राक्षीः—स्पृश् + लुङ् (सिप्)—माङ्योगे लुङ् अडागमाभावश्च । कथयत्सु—कथ + शतृ, स० वि० ब० व० । अतुत्रुटत्—त्रुट् छेदने चुरादि, णिजन्तात् लुङ् । उत्तीर्य—उत् + तृ + ल्यप् । प्राविशत्—प्र + विश् + लङ् (तिप्) ।

शब्दार्थ—अथ=अनन्तर, वीर !=हे पराक्रमी ! गृहीतम्=ले लिया, अखिलम्=सम्पूर्ण, वित्तम्=धन को, पराजिता=हार गई, आर्यसेनाः=आर्यवंशीयों की सेना, बन्दीकृताः=बन्दी बना लिये गये, वयम्=हम सब, सञ्चितम्=एकत्रित कर लिया है, अमलम्=स्वच्छ, यशः=कीर्ति को, इतोऽपि=इतने पर भी, ते=तुम्हारा, क्रोधः=कोप, न=नहीं, शाम्यति=शान्त होता है, चेत्=यदि तो, अस्मान्=हम सबों को, ताडय=ताड़ना दो, अर्थात् पीटो, मारय=मारो, छिन्धि=काट डालो, भिन्दि=भेदन करो, पातय=गिरा दो, अर्थात् पर्वत आदि से ढकेल दो, मज्जय=डुबा दो, अर्थात् पानी में निमज्जित कर दो, खण्डय=खण्ड-खण्ड कर डालो, कर्तय=कतर डालो, ज्वलय=अग्नि में जला दो, किन्तु=परन्तु, इमाम्=सम्मुख स्थित, अकिञ्चित्करीम्=कुछ न करने वाली, जडाम्=चेतनारहित, महादेवप्रति-

माम्=भगवान् शङ्कर की मूर्ति को, त्यज=छोड़ दो। यद्येवं=यदि इस प्रकार, न=नहीं, स्वीकरोषि=स्वीकार करते हो, तत्=तो, अस्मत्तः=हम लोगों से, अन्यदपि=और भी, सुवर्णकोटिद्वयम्=दो करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ, गृहाण=ले लो। त्रायस्व=रक्षा करो, मा=नहीं, एनाम्=इस, भगवन्मूर्तिम्=भगवान् शिव की प्रतिमा को, स्प्राक्षीः=स्पर्श करो, इति=इस प्रकार से, साम्रेडम्=पुनः-पुनः, पूजकवर्गेषु=पुजारियों के समूह के, कथयत्सु=कहने पर, रुदत्सु=रोने पर, पतत्सु=पैरों के ऊपर गिरने पर, विलुण्ठत्सु=पृथ्वी पर लोटने पर, प्रणमत्सु=प्रणाम करने पर, नाहं=मैं नहीं, मूर्तीः=प्रतिमा को, विक्रीणामि=बेचता हूँ, किन्तु=परन्तु, भिनद्मि=तोड़ता हूँ, इति=इस प्रकार, सङ्गर्ज्य=गर्जना कर, जनतायाः=प्रजावर्ग की, हाहाकार-कलकलम्='हा-हा' इस प्रकार की ध्वनि को, आकर्णयन्=सुनते हुए, घोर-गदया=भीषण गदा से, मूर्तिम्=शिवलिङ्ग को, अतुत्रुटत्=तोड़ डाला। गदापातसमकालमेव=गदा गिरने के साथ ही, अनेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि=अनेक अरब पद्म मुद्रा के मूल्य वाले, रत्नानि=मणि-समूह, मूर्तिमध्यात्=मूर्ति के बीच से, उच्छलितानि=उछल पड़े, च=और, परितः=चारों ओर, अवाकीर्यन्त=बिखर गये, स च=और वह, दग्धमुखः=मुँहजला, तानि रत्नानि=उन मणियों को, मूर्तिखण्डानि=शिवलिङ्ग के टुकड़े को, च=और, क्रमेलकपृष्ठेषु=ऊँटों के पृष्ठभाग पर, आरोप्य=लादकर, सिन्धुनदम्=सिन्धु नामक महती नदी को, उत्तीर्य=पारकर, स्वकीयाम्=अपनी, विजयध्वजिनीम्=विजयपताकाओं से युक्त, गजिनीं नाम=गजिनी नामक, राजधानीम्=राजधानी में, प्राविशत्=प्रवेश किया।

हिन्दी—तदनन्तर हे वीर! तुमने सारा धन ले लिया, आर्यों की सेना पराजित हो गई, हमलोगों को बन्दी बना लिया, स्वच्छ यश सञ्चित कर लिया। यदि इतने पर भी तुम्हारा कोप शान्त नहीं होता, तो हमलोगों को पीटो, मारो, चीर डालो, पर्वत से गिरा दो, समुद्र में डुबा दो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो, कतर डालो, अग्नि में जला दो, किन्तु आपका कुछ न बिगाड़ने वाली महादेवजी की इस चेतनारहित (जड़) मूर्ति को छोड़ दो। यदि आपको यह भी स्वीकार न हो, तो हमलोगों से और भी दो करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ ले लो, किन्तु रक्षा करो; भगवान् की इस मूर्ति को स्पर्श न करो। इस प्रकार पुजारियों के बार-बार कहने पर, रोने-बिलखने पर, पैरों के ऊपर

गिरने पर, भूमि पर लोटने तथा प्रणाम करने पर भी, 'मैं मूर्ति बेचता नहीं हूँ, अपितु तोड़ता हूँ' इस प्रकार गरजकर जन-समूह के हाहाकार के शब्द को सुनते हुए, उसने भयङ्कर गदा से शिवलिङ्ग को तोड़ दिया। गदा गिरने के साथ ही मूर्ति में से अनेक अरब पद्म स्वर्णमुद्राओं के मूल्य के रत्न उछल पड़े तथा चारों ओर बिखर गये; और वह मुँहजला दुष्ट उन रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँटों की पीठ पर लादकर सिन्धु नामक विशाल नदी को पारकर, अपनी विजयपताकाओं से युक्त गजिनी नामक राजधानी में प्रविष्ट हुआ।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में पराजित हिन्दुओं की दुरवस्था के साथ ही महमूद की क्रूरता और हठवादिता का सम्यक् वर्णन किया गया है। यहाँ चूर्णक नामक गद्य, प्रसाद नामक गुण, पाञ्चाली नामक रीति और दैन्य, चिन्ता, विषाद, त्रास आदि भाव दृष्टिगोचर होते हैं॥ २३॥

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (१०८७) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टं च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन-नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षं प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर-द्वादशशतमितेऽब्दे (१२५०) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

व्याख्या—अथ=गजिनीगमनानन्तरम्, कालक्रमेण=समयचक्रेण, सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे=(१०८७) एतत्सङ्ख्यके, वैक्रमाब्दे=विक्रमसंवत्सरे, सशोकं=शोकान्वितम्, सकष्टम्=खेदसहितम्, च=पुनः, प्राणान्=असून्, त्यक्तवति=परित्यक्ते, महामदे=महमूदनाम्ना जगति प्रथिते, गोरदेशवासी=गोरदेशवास्तव्यः, कश्चित्=कोऽप्येकः, शहाबुद्दीननामा=शहाबुद्दीनगोरीति नाम्ना जगति विश्रुतः, प्रथमम्=पूर्वम्, गजिनीदेशम्=सोमनाथविध्वंसकराजधानीम्, आक्रम्य=संरभ्य समाक्रम्येति वा, महामदकुलम्=महमूदगजनीवंशम्, धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं=कीनाशनिकेतनपान्थम्, विधाय=कृत्वा, सर्वाः प्रजाः=तद्देशनिवासिनो निखिलाः जनताश्च, पशुमारं=पशुवन्मारम्, मारयित्वा=निहत्य, तद्रुधिरार्द्रमृदा=प्रजारक्तार्द्रमृत्तिकया, गोरदेशे=गोरीशासितदेशे, स्वदेशे इति भावः, बहून्=प्रचुरान्, गृहान्=गेहान्,

निर्माय = विधाय, चतुरङ्गिण्या = हस्त्यश्वरथपदातिकया, अनीकिन्या = पृतनया, भारतवर्षम् = भारताख्यदेशम्, प्रविश्य = प्रवेशं विधाय, शीतलशोणितानपि = अनुष्णरक्तानपि, असयन् = असिना हनन्, पञ्चाशदुत्तरद्वादशशतमितेऽब्दे = एतस्मिन् संवत्सरे, दिल्लीम् = एतन्नामिकां नगरीम्, भारतस्य राजधानीमिति भावः, अश्वयाम्बभूव = तुरगैरतिचक्राम ।

कोषः—'हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्' इत्यमरः । 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि' इत्यमरः । 'संवत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः । 'रुधिरेऽसृग्लोहितास्ररक्तक्षतजशोणितम्' इत्यमरः । 'घोटके पीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः' इत्यमरः ।

समासः—कालस्य समयस्य क्रमः गतिः, तेन कालक्रमेण । विक्रमस्यायमिति वैक्रमः, वैक्रमश्चासौ अब्दः वत्सरः, तस्मिन् वैक्रमाब्दे । शोकेन सहितं यथा स्यात् तथा सशोकम् । कष्टेन सह सकष्टम् । धर्मराजस्य लोकः, तस्य अध्वनि अध्वनीनं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनम् । तेषां रुधिरेण आर्द्रा मृत्; तया तद्रुधिरार्द्रमृदा । शीतलं शोणितं येषां, तान् शीतलशोणितान् ।

व्याकरणम्—त्यक्तवति—त्यज् + क्तवतु, सप्तमी एकवचन । आक्रम्य—आ + क्रम + क्त्वा + ल्यप् । अध्वनीनम्—अध्वानं मार्गम् अलं गच्छतीति अध्वनीनः पान्थः, तम् अध्वनीनम्; 'अध्वनो यत्खौ' (पा० सू० ५।२।१६) । पशुमारम्—यथा पशुः मार्यते तथेत्यर्थः, 'उपमाने कर्मणि च' इति णमुल्, पशु + मृ + णमुल् । निर्माय—निर् + मा माने + क्त्वा + ल्यप् । चतुरङ्गिण्या—चत्वारि (गज, रथ, तुरग, पदाति) अङ्गानि यस्याः सा, तया । अनीकिन्या—अनीकं रणोऽस्त्यस्याः सा, तया । अनीक + इनिः 'अत इनिठनौ' । 'विनापि तद्योगे तृतीया' सह का योग न होने पर भी उस अर्थ की प्रतीति के कारण यहाँ तृतीया विभक्ति हुई है । प्रविश्य—प्र + विश + क्त्वा + ल्यप् । असयन्—असि + णिच् + शतृ । अश्वयाम्बभूव—अश्वैरतिचक्रामेत्याशयः, 'तेनातिक्रामति' इति णिच्, अश्व + णिच् + आम् + भू + लिट्, प्रथमपुरुष एकवचन ।

शब्दार्थ—अथ = इसके अनन्तर, कालक्रमेण = समय की गति से, अर्थात् समय के फेर से, सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे = एक हजार सतासी, वैक्रमाब्दे = विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित संवत्सर में, सशोकं = शोक के साथ, सकष्टं = कष्ट के सहित, च = और, प्राणांस्त्यक्तवति = प्राण त्याग देने पर, अर्थात् मर जाने पर, महामदे = महमूद गजनवी के, गोरदेशवासी = गोर देश में निवास

गिरने पर, भूमि पर लोटने तथा प्रणाम करने पर भी, 'मैं मूर्ति वेचता नहीं हूँ, अपितु तोड़ता हूँ' इस प्रकार गरजकर जन-समूह के हाहाकार के शब्द को सुनते हुए, उसने भयङ्कर गदा से शिवलिङ्ग को तोड़ दिया। गदा गिरने के साथ ही मूर्ति में से अनेक अरब पद्म स्वर्णमुद्राओं के मूल्य के रत्न उछल पड़े तथा चारों ओर बिखर गये; और वह मुँहजला दुष्ट उन रत्नों और मूर्ति के टुकड़ों को ऊँटों की पीठ पर लादकर सिन्ध नामक विशाल नदी को पारकर, अपनी विजयपताकाओं से युक्त गजिनी नामक राजधानी में प्रविष्ट हुआ।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में पराजित हिन्दुओं की दुरवस्था के साथ ही महमूद की क्रूरता और हठवादिता का सम्यक् वर्णन किया गया है। यहाँ चूर्णक नामक गद्य, प्रसाद नामक गुण, पाञ्चाली नामक रीति और दैन्य, चिन्ता, विषाद, त्रास आदि भाव दृष्टिगोचर होते हैं ॥ २३ ॥

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (१०८७) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टं च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन-नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या भारतवर्षं प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर-द्वादशशतमितेऽब्दे (१२५०) दिल्लीमश्वयाम्बभूव।

व्याख्या—अथ=गजिनीगमनानन्तरम्, कालक्रमेण=समयचक्रेण, सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे=(१०८७) एतत्सङ्ख्यके, वैक्रमाब्दे=विक्रमसंवत्सरे, सशोकं=शोकान्वितम्, सकष्टम्=खेदसहितम्, च=पुनः, प्राणान्=असून्, त्यक्तवति=परित्यक्ते, महामदे=महमूदनाम्ना जगति प्रथिते, गोरदेशवासी=गोरदेशवास्तव्यः, कश्चित्=कोऽप्येकः, शहाबुद्दीननामा=शहाबुद्दीनगोरीति नाम्ना जगति विश्रुतः, प्रथमम्=पूर्वम्, गजिनीदेशम्=सोमनाथविध्वंसकराजधानीम्, आक्रम्य=संरभ्य समाक्रम्येति वा, महामदकुलम्=महमूदगजनीवंशम्, धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं=कीनाशनिकेतनपान्थम्, विधाय=कृत्वा, सर्वाः प्रजाः=तद्देशनिवासिनो निखिलाः जनताश्च, पशुमारं=पशुवन्मारम्, मारयित्वा=निहत्य, तद्रुधिरार्द्रमृदा=प्रजारक्तार्द्रमृत्तिकया, गोरदेशे=गोरीशासितदेशे, स्वदेशे इति भावः, बहून्=प्रचुरान्, गृहान्=गेहान्,

निर्माय=विधाय, चतुरङ्गिण्या=हस्त्यश्वरथपदातिकया, अनीकिन्या=पृतनया, भारतवर्षम्=भारताख्यदेशम्, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, शीतलशोणितानपि=अनुष्णरक्तानपि, असयन्=असिना हनन्, पञ्चाशदुत्तरद्वादशशतमितेऽब्दे=एतस्मिन् संवत्सरे, दिल्लीम्=एतन्नामिकां नगरीम्, भारतस्य राजधानीमिति भावः, अश्वयाम्बभूव=तुरगैरतिचक्राम ।

कोषः—'हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयम्' इत्यमरः । 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि' इत्यमरः । 'संवत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री शरत्समाः' इत्यमरः । 'रुधिरेऽसृग्लोहितास्ररक्तक्षतजशोणितम्' इत्यमरः । 'घोटके पीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमाः' इत्यमरः ।

समासः—कालस्य समयस्य क्रमः गतिः, तेन कालक्रमेण । विक्रमस्यायमिति वैक्रमः, वैक्रमश्चासौ अब्दः वत्सरः, तस्मिन् वैक्रमाब्दे । शोकेन सहितं यथा स्यात् तथा सशोकम् । कष्टेन सह सकष्टम् । धर्मराजस्य लोकः, तस्य अध्वनि अध्वनीनं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनम् । तेषां रुधिरेण आर्द्रा मृत्, तया तद्रुधिरार्द्रमृदा । शीतलं शोणितं येषां, तान् शीतलशोणितान् ।

व्याकरणम्—त्यक्तवति—त्यज्+क्तवतु, सप्तमी एकवचन । आक्रम्य—आ+क्रम+क्त्वा+ल्यप् । अध्वनीनम्—अध्वानं मार्गम् अलं गच्छतीति अध्वनीनः पान्थः, तम् अध्वनीनम्; 'अध्वनो यत्खौ' (पा० सू० ५।२।१६) । पशुमारम्—यथा पशुः मार्यते तथेत्यर्थः, 'उपमाने कर्मणि च' इति णमुल्, पशु+मृ+णमुल् । निर्माय—निर्+मा माने+क्त्वा+ल्यप् । चतुरङ्गिण्या—चत्वारि (गज, रथ, तुरग, पदाति) अङ्गानि यस्याः सा, तया । अनीकिन्या—अनीकं रणोऽस्त्यस्याः सा, तया । अनीक+इनिः 'अत इनिठनौ' । 'विनापि तद्योगे तृतीया' सह का योग न होने पर भी उस अर्थ की प्रतीति के कारण यहाँ तृतीया विभक्ति हुई है । प्रविश्य—प्र+विश+क्त्वा+ल्यप् । असयन्—असि+णिच्+शतृ । अश्वयाम्बभूव—अश्वैरतिचक्रामेत्याशयः, 'तेनातिक्रामति' इति णिच्, अश्व+णिच्+आम्+भू+लिट्, प्रथमपुरुष एकवचन ।

शब्दार्थ—अथ=इसके अनन्तर, कालक्रमेण=समय की गति से, अर्थात् समय के फेर से, सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे=एक हजार सतासी, वैक्रमाब्दे=विक्रमादित्य द्वारा प्रवर्तित संवत्सर में, सशोकं=शोक के साथ, सकष्टं=कष्ट के सहित, च=और, प्राणांस्त्यक्तवति=प्राण त्याग देने पर, अर्थात् मर जाने पर, महामदे=महमूद गजनवी के, गोरदेशवासी=गोर देश में निवास

करने वाला, कश्चित्=कोई एक, शहाबुद्दीननामा=शहाबुद्दीन नाम वाला, प्रथमम्=सबसे पहले, गजिनीदेशमाक्रम्य=गजिनी देश पर आक्रमण करके, महामदकुलं=महमूद के वंश को, धर्मराजलोकाध्वनि=यमलोक के मार्ग का, अध्वनीनम्=पथिक, विधाय=बनाकर, सर्वाः प्रजाश्च=और समस्त प्रजाओं को, पशुमारं मारयित्वा=पशु के समान मारकर, तद्रुधिरार्द्रमृदा=उसके खून से गीली मिट्टी से, गोरदेशे=गोरदेश में, बहून् गृहान् निर्माय=बहुत घर बनाकर, चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या=चतुरङ्गिणी सेना के साथ, भारतवर्षं प्रविश्य=भारत वर्ष में प्रवेश कर, शीतलशोणितानपि=ठण्डे रक्त वालों को भी, अर्थात् युद्ध की इच्छा से विरहित भारतीयों को भी, असयन्=तलवार के घाट उतारता हुआ, पञ्चाशदुत्तरद्वादशशतमितेऽब्दे=एक हजार दो सौ पचास संवत् में, दिल्लीम्=भारत की राजधानी दिल्ली पर, अश्वयाम्बभूव=घुड़सवार सेना से चढ़ाई कर दी।

हिन्दी—तत्पश्चात् कालक्रम से विक्रम संवत् १०८७ में शोक एवं कष्ट के साथ महमूद गजनवी के मृत्यु हो जाने पर, शहाबुद्दीन नामक किसी गोरदेश के निवासी ने पहले गजिनी देश पर आक्रमण करके, महमूद के वंश को यमराज के लोक के मार्ग का पथिक बनाकर और समस्त प्रजा को पशुओं के समान मारकर, उन्हीं के रक्त से गिली मिट्टी से गोरदेश में बहुत से घर बनवा कर, चतुरङ्गिणी सेना के सहित भारत में घुसकर युद्ध न चाहने वाले भारतीयों को भी तलवार के घाट उतारते हुए संवत् १२५० में घुड़सवार सेना के साथ दिल्ली पर चढ़ाई कर दी।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'पशुमारं मारयित्वा' इस स्थान पर लुप्तोपमा अलंकार है। यहाँ पर 'चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' इस सुभाषित का समर्थन करते हुए कालक्रम से भाग्यचक्र के परिवर्तन का संकेत किया गया है ॥ २४ ॥

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं च पारस्परिकविरोध-ज्वर-ग्रस्तं विस्मृत-राजनीतिं भारतवर्ष-दुर्भाग्यायमाणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकमकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः, रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गा

गङ्गाऽपि शोणित-शोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि ।

स एव प्राधान्येन भारते यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत् । तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीननामा प्रथमभारतसम्राट् सञ्जातः ।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, दिल्लीश्वरम्=दिल्लीप्रदेशाधिपतिम्, पृथ्वीराजम्=एतन्नामकं चौहानवंशीयभूपम्, कान्यकुब्जेश्वरम्=कन्नौजराज्यशासकम्, जयचन्द्रम्=एतन्नामकभ्रातुरपकारिणञ्च, पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम्=अन्योऽन्यविरोधज्वराकलितचेतसम्, विस्मृतराजनीतिम्=भूपतिनयज्ञानशून्यम्, भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणम्=भारतवर्षस्य समायान्तं दुर्भाग्यम्, आकलय्य=ज्ञात्वा, अनायासेन=सहजेन, उभौ अपि=द्वावपि, पृथ्वीराजजयचन्द्रावपीत्याशयः, विशस्य=विनाश्य, वाराणसीपर्यन्तम्=वाराणसीं यावत्, अखण्डमण्डलम्=समस्तजनपदम्, अकण्टकम्=विघ्नविरहितम्, अकीटकीट्टम्=कीटकिट्टशून्यम्, महारत्नमिव=महामणिमिव, महाराज्यम्=विस्तृतं साम्राज्यम्, अङ्गीचकार=स्वीचकार । तेन=आक्रामकेन शहाबुद्दीनेन, वाराणस्यामपि=काशीपुर्यामपि, बहवः=अत्यधिकाः, अस्थिगिरयः=कीकसपर्वताः, प्रचिताः=निर्मिताः, रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा=चञ्चलोर्मिप्रचुरा, गङ्गाऽपि=भागीरथी अपि, शोणितशोणा=रक्तरञ्जिता, शोणीकृता=शोणनदतां प्रापिता, परस्सहस्राणि च=सहस्रतोऽधिकानि, च, देवमन्दिराणि=देवायतनानि, भूमिसात्कृतानि=धूलिसात्कृतानि, खण्डितानीति भावः ।

स एव=शहाबुद्दीन एव, प्राधान्येन=प्रामुख्येन, भारते=एतन्नामकेऽस्मिन् देशे, यवनराज्याङ्कुराऽऽरोपकः=यवनशासनस्य बीजारोपकः, अभूत्=आसीत् । तस्यैव=शहाबुद्दीनस्यैव, च, कश्चित्=एकः, क्रीतदासः=सेवकोऽनुचरो वा, कुतुबुद्दीननामा=एतन्नामकः, प्रथमभारतसम्राट्=आदिभारताधिपतिः, सञ्जातः=बभूव ।

कोषः—'किट्टं मलोऽस्त्रियाम्' इत्यमरः । 'कीकसं कुल्यमस्थि च' इत्यमरः । 'भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः' इत्यमरः । 'गङ्गा विष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा । भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्रोता भीष्मसूरपि' ।। इत्यमरः ।

समासः—दिल्ल्याः ईश्वरं दिल्लीश्वरम् । कान्यकुब्जस्येश्वरं कान्यकुब्जेश्वरम् । परस्परं भवः पारस्परिकः, तथाभूतो विरोधः वैरः, स एव ज्वरः, तेन

ग्रस्तः, तं पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम्। राज्ञां नीतिः राजनीतिः, विस्मृता राजनीतिः येन, तं विस्मृतराजनीतिम्। भारतवर्षस्य दुर्भाग्यम्, तदिव आचरतीति भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणः, तं भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणम्। न सन्ति कण्टकानि यस्मिन्, तादृशम् अकण्टकम्। न विद्यन्ते कीटाः (लक्षणया कीटैः कर्तनम्) किट्टं मलं च यस्मिन् तादृशम् अकीटकिट्टम्। महत् रत्नमिति महारत्नम्। अस्थ्नां गिरयः अस्थिगिरयः। रिङ्गन्तः चलन्तः तरङ्गाणां वीचीनां भङ्गाः प्रकाराः यस्यां सा रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा। शोणितेन रुधिरेण शोणा रक्तवर्णा इति शोणितशोणा। अशोणः शोणः कृता इति शोणीकृता। देवानां मन्दिराणि देवमन्दिराणि। प्रधानस्य भावः प्राधान्यं, तेन प्राधान्येन। यवनानामिदं यावनम्, यावनं राज्यं यावनराज्यम्, तस्य अङ्कुरः, तस्य आरोपकः संस्थापक इति यावनराज्याङ्कुरारोपकः। भारतस्य सम्राट् भारतसम्राट्, प्रथमश्चासौ भारतसम्राट् इति प्रथमभारतसम्राट्।

व्याकरणम्—आकलय्य—आ + कल + क्त्वा + ल्यप्। विशस्य—वि + शस् हिंसायाम् + ल्यप्। प्रचिताः—प्र + चि + क्त। सञ्जातः—सम् + जनी प्रादुर्भावे + क्त।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं = दिल्ली-सम्राट् पृथ्वीराज को, कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं = कन्नौज के स्वामी जयचन्द्र को, पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तम् = परस्पर फूट के ज्वर से ग्रस्त, विस्मृतराजनीतिम् = राजनीति को भूले हुए, भारतवर्षदुर्भाग्यायमाणम् = भारतवर्ष के दुर्भाग्य के समान आचरण करते हुए, आकलय्य = जानकर, अनायासेन = बिना अधिक प्रयास के ही, अर्थात् सरलता से, उभावपि = पृथ्वीराज और जयचन्द्र दोनों को भी, विशस्य = मारकर, वाराणसीपर्यन्तम् = काशी तक, अखण्डमण्डलम् = समस्त जनपद को, अकण्टकम् = निष्कण्टक, अकीटकिट्टम् = कीटानुविद्ध तथा मल से रहित, महारत्नमिव = महारत्न के समान, महाराज्यम् = विस्तृत राज्य को, अङ्गीचकार = स्वायत्त कर लिया, तेन = उसने, वाराणस्यामपि = काशी में भी, वहवः = अत्यधिक, अस्थिगिरयः = हड्डियों के पहाड़, प्रचिताः = चुन दिये, रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा = चञ्चल लहरों से व्याप्त, गङ्गाऽपि = भागीरथी नदी भी, शोणितशोणा = रक्त से लाल करके, शोणीकृता = सोन नदी बना दी गई, परस्सहस्राणि = हजारों से अधिक, च = और, देवमन्दिराणि = देवताओं के मन्दिरों को, भूमिसात्कृतानि = मिट्टी में मिला दिये गये। स एव = उसने ही,

प्राधान्येन=प्रमुखरूप से, भारते=भारतवर्ष में, यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपक:= मुसलमानों के राज्य का बीजारोपण करने वाला, अभूत्=हुआ, तस्यैव च= उसी का ही, कश्चित्=कोई, क्रीतदास:=गुलाम, कुतुबुद्दीननामा=कुतुबुद्दीन नामक, प्रथम:=पहला, भारतसम्राट्=भारत का राजा, सञ्जात:=बना।

हिन्दी—तदनन्तर उसने दिल्ली के सम्राट् पृथ्वीराज तथा कन्नोज के अधिपति राजा जयचन्द को आपसी वैररूपी व्याधि से संपीडित एवं राजनीति को भूलकर भारत के दुर्भाग्य के समान आचरण करते हुए जानकर, सरलता से ही दोनों को मारकर, कीड़ों और मैल से अस्पृष्ट अर्थात् निर्मल, महान् रत्न के समान काशी तक फैले हुए समस्त जनपद सहित विस्तृत साम्राज्य को अपने अधीन कर लिया। उसने वाराणसी (काशी) में भी हड्डियों के बहुत-से पहाड़ लगा दिये। चंचल तरङ्गों वाली गङ्गा को भी उसने रक्तरञ्जित कर सोन नद बना दिया और हजारों से अधिक देवमन्दिर मिट्टी में मिला दिये।

उसी ने प्रधान रूप से भारतवर्ष में मुसलमानों के राज्य का बीजारोपण किया। उसी का एक गुलाम, जिसका नाम कुतुबुद्दीन था, भारत का प्रथम समाट् हुआ।

टिप्पणी—हिन्दुओं की पराजय का प्रमुख कारण था आपसी वैरभाव। यहाँ 'विस्मृत राजनीति' शब्द से भूपतिश्रेष्ठ युधिष्ठिर की राजनीति की ओर संकेत किया गया है। उनकी राजनीति निम्न थी—

'वयं पञ्च वयं पञ्च वयं पञ्च शतञ्च ते।
परैः साकं विवादे तु वयं पञ्चोत्तरं शतम्'॥

(युधिष्ठिरनीति)

इस गद्यखण्ड में 'महारत्नमिव' इस स्थल पर उपमा अलङ्कार है। 'अस्थि-गिरय:' यहाँ पर रूपकालङ्कार है। 'अकीटकिट्टम्' 'रिङ्गत्तरङ्गभङ्गा गङ्गा' 'शोणितशोणा शोणीकृता' आदि पदों में अनुप्रास की नैसर्गिकी शोभा मनो-हारिणी है। इसी प्रकार माधुर्य, प्रसाद गुण तथा पाञ्चाली रीति यहाँ पर सन्दर्शित हो रही है॥ २५॥

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राज्यमकार्षुः। दानवा एव च दीनानदीदलन्। अभूत् केवलम् अकबरशाह–नामा यद्यपि गूढशत्रु-र्भारतवर्षस्य, तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च। अस्यैव प्रपौत्रो

मूर्तिमदिव कलियुगं, गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरोपाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति। अस्यैव पताकाः केकयेषु मत्स्येषु मगधेषु अङ्गेषु वङ्गेषु कलिङ्गेषु च दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्तः।

व्याख्या—तमारभ्य=कुतुबुद्दीनात् प्रारभ्य, अद्यावधि=साम्प्रतं यावत्, राक्षसा एव=निर्दयाः धर्मविरोधिनो यवना एव, राज्यम्=शासनम्, अकार्षुः=विहितवन्तः, दानवा एव=धर्मपरिपन्थिनो म्लेच्छा एव, दीनान्=दुःखितान्, अदीदलन्=अनाशयन्, अभूत्=बभूव, केवलम्=एकाकी, अकबरशाहनामा=एतन्नामको भूपतिः, यद्यपि, गूढशत्रुः=प्रच्छन्नरिपुः, भारतवर्षस्य=एतन्नामकस्यास्य देशस्य, तथापि, शान्तिप्रियः=शमरतः, विद्वत्प्रियश्च=पण्डितवल्लभश्च, अभूदिति शेषः, अस्यैव=अकबरस्यैव, प्रपौत्रः=तनयस्यात्मजः, मूर्तिमदिव=सविग्रह इव, कलियुगम्=पातकप्रधानयुगं कलिकालम्, गृहीतविग्रहः=धृतवपुः, अधर्म इव=पाप इव, आलमगीरोपाधिधारी='आलमगीर' इत्युपनाम्ना विश्रुतः, अवरङ्गजीवः='औरङ्गजेब' इत्यभिधानेन प्रथितः, सम्प्रति=इदानीम्, दिल्लीवल्लभताम्=दिल्लीश्वरताम्, कलङ्कयति=विदूषयति। अस्यैव=अवरङ्गजेबनाम्नः, पताकाः=ध्वजाः, केकयेषु=पञ्जाबदेशेषु, मत्स्येषु=राजपूतेषु, मगधेषु=बिहारस्य दक्षिणभागेषु, अङ्गेषु=बिहारस्य पूर्वभागेषु, बङ्गेषु=बङ्गालप्रदेशेषु, कलिङ्गेषु=उड़ीसाप्रान्तेषु च, दोधूयन्ते=पौनःपुन्येन समुच्छ्रियन्ते, केवलम्=एकः, दक्षिणदेशे=अवाचीभागे, अधुनाऽपि=इदानीमपि, अस्य=म्लेच्छाधिपतेरवरङ्गजेबस्य, परिपूर्णः=समग्ररूपेण, अधिकारः=प्रशासनाधिकारः, न=नहि, संवृत्तः=सञ्जातः।

कोषः—'असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः' इत्यमरः। 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात् क्रव्यादोऽस्रप आशरः' इत्यमरः। 'रिपौ वैरिसपत्नारिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः। द्विड्विपक्षाहितामित्रदस्युशात्रवशत्रवः॥ अभिघातिपरारातिप्रत्यर्थिपरिपन्थिनः' इत्यमरः। 'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः।

समासः—गूढश्चासौ शत्रुश्च गूढशत्रुः। शान्तिः प्रिया यस्मै स शान्तिप्रियः। विद्वांसः प्रियाः यस्य सः विद्वत्प्रियः। मूर्तिः (रूपं) यस्यास्तीति मूर्तिमत्। कलेः युगं कलियुगम्। गृहीतः विग्रहः येन स गृहीतविग्रहः। उपाधिं धारयतीति उपाधिधारी। दिल्ल्याः वल्लभः स्वामी, तस्य भावो दिल्लीवल्लभता, तां दिल्लीवल्लभताम्।

व्याकरणम्—अकार्षुः—कृ+लुङ्+झि। अदीदलन्—दल विदारणे (चुरादिः)+लुङ्+झि। मूर्तिमत्—मूर्ति+मतुप्। उपाधिधारी—उपाधि +धृ+णिनिः। दोधूयन्ते—धूञ् कम्पने क्र्यादि+यङ्+प्र० पु० ब० व०। संवृत्तः—सम्+वृतु वर्तने+क्त।

शब्दार्थ—तमारभ्य=कुतुबुद्दीन से आरम्भ कर, अद्यावधि=आज तक, राक्षसा एव=राक्षसों ने ही, राज्यम्=शासन, अकार्षुः=किया। दानवा एव=दानवों ने ही, च=और, दीनान्=दीनों को, अदीदलन्=विदीर्ण किया, अभूत्=हुआ, केवलम्=एक, अकबरशाहनामा=अकबरशाह नामक, यद्यपि, गूढशत्रुः=प्रच्छन्न रिपु, भारतवर्षस्य=भारतवर्ष का, तथापि=फिर भी, शान्तिप्रियः=शान्तिप्रेमी, विद्वत्प्रियश्च=और विद्वानों का स्नेही, अस्यैव=इसी का ही, प्रपौत्रः=पुत्र का पुत्र अर्थात् नाती, मूर्तिमत्=मूर्तिमान्, कलियुगम् इव=कलियुग के समान, गृहीतविग्रहः=शरीरधारी, च=और, अधर्म इव=अधर्म की तरह, आलमगीरोपाधिधारी=आलमगीर की उपाधि धारण करने वाला, अवरङ्गजीवः=औरङ्गजेब नामक, सम्प्रति=इस समय, दिल्लीवल्लभतां=दिल्ली के स्वामीभाव अर्थात् शासन को, कलङ्कयति=कलङ्कित कर रहा है, अस्यैव=इसी के ही, पताकाः=झण्डे, केकयेषु=केकय देश में अर्थात् पंजाब प्रदेश में (झेलम और चिनाव नदियों के मध्यभाग को केकय कहा जाता था), मत्स्येषु=राजस्थान प्रदेश में (इन्द्रप्रस्थ से पश्चिम, दृषद्वती से दक्षिण तथा रेगिस्तान से पूर्व का भाग मत्स्य देश कहलाता था। अब इसका नाम राजपूताना है।), मगधेषु=दक्षिण बिहार में (बिहार प्रदेश का दक्षिणी भाग 'गया' आदि स्थान मगध कहलाता था।), अङ्गेषु=अङ्ग प्रान्त में (गङ्गा के दक्षिण में संस्थित पूर्वी बिहार अर्थात् 'भागलपुर' का क्षेत्र 'अङ्ग' कहा जाता था।), बङ्गेषु=बङ्गाल प्रदेश में, कलिङ्गेषु=उड़ीसा प्रान्त में, दोधूयन्ते=फहरा रहे हैं, केवलम्=एक, दक्षिणदेशे=दक्षिण देश में, अधुनाऽपि=अब भी, अस्य=इस औरङ्गजेब का, परिपूर्णः=समग्ररूप से, न=नहीं, अधिकारः=शासन, संवृत्तः=हो पाया है।

हिन्दी—तब से अर्थात् कुतुबुद्दीन से आरम्भ कर आज तक इन राक्षसों (यवनों) ने ही राज्य किया। दानव-गण ही दीन भारतीयों की हत्या कर रहे हैं। केवल अकबर बादशाह ही शान्तिप्रिय और विद्वानों का सम्मान करने वाला था, यद्यपि वह भी भारतवर्ष का प्रच्छन्न रिपु था। इसी का प्रपौत्र

अर्थात् नाती, 'आलमगीर' उपाधिधारी औरङ्गजेब, जो मानो मूर्तिमान् कलियुग अथवा शरीरधारी अधर्म ही है, इस समय दिल्ली के सम्राट् पद को कलङ्कित कर रहा है। उसी के झण्डे केकय (झेलम और चिनाव नदियों के मध्य का भाग, पंजाब), मत्स्य (राजस्थान), मगध (दक्षिण बिहार), अङ्ग (पूर्वी बिहार), बङ्गाल और कलिङ्ग (उड़ीसा) में फहरा रहे हैं। केवल दक्षिण देश में इस समय भी इसका पूरा अधिकार (शासन) नहीं हो पाया है।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'मूर्तिमदिव कलियुगम्' (मानो कलियुग की मूर्ति हो) 'गृहीतविग्रह इव चाधर्मः' (मानो शरीरधारी अधर्म हो) आदि स्थलों पर सम्भावना करने के कारण 'उत्प्रेक्षा' अलङ्कार है ॥ २६ ॥

दक्षिणदेशो हि पर्वतबहुलोऽस्ति, अरण्यानीसङ्कुलश्चास्तीति चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेसरिणो हस्तयितुम्। साम्प्रतमस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेश-शासकत्वेन "शास्तिखान" नामा प्रेष्यत इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुलकृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमानदोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनं कौशलानाम्, पारावारः परमोत्साहानाम्, कश्चन प्रातः-स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽग्रह-ग्रह-ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम्। "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्!" इत्यस्य सारगर्भा महती प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्मस्य भारतवर्षस्य च आशा-सन्तान-वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः। इयमेव वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकं विनिवेदयामो योग-बलावगत-सकल-गोप्यतम-वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयित्वा विरराम।

व्याख्या—दक्षिणदेशः=भारतवर्षस्य दक्षिणप्रदेशः, हि=निश्चयेन, पर्वतबहुलोऽस्ति=गिरिप्रचुरो विद्यते, अरण्यानीसङ्कुलः=महदरण्यव्याप्तः, च=पुनः, अस्ति=वर्तते, इति=अनेन हेतुना, चिरोद्योगेनापि=बहुप्रयासेनापि, न=नहि, अयम्=अवरङ्गजेबः, अशकत्=समर्थो बभूव, महाराष्ट्रकेशरिणः=

महाराष्ट्रसिंहान्, हस्तयितुम् = वशीकर्तुम्, साम्प्रतम् = एतर्हि, अस्यैव = अवरङ्गजेबस्यैव, आत्मीयः = बहुसम्मतः प्रियः, दक्षिणदेशशासकत्वेन = महाराष्ट्रप्रभृतिदक्षिणप्रदेशप्रशासकत्वेन, 'शास्तिखान' नामा = 'शाइस्ता खाँ' इति संज्ञया प्रथितः, प्रेष्यते = सम्प्रेष्यते, इति = एवं, श्रूयते = समाकर्ण्यते, महाराष्ट्रदेशरत्नम् = महाराष्ट्रादिप्रदेशचूडामणिम्, यवनशोणितपिपासाऽऽकुलकृपाणः = मोहमदरक्तपानेच्छाऽऽकुलासिकः, वीरतासीमन्तिनीसीमन्तसुन्दरसान्द्रसिन्दूरदानदेदीप्यमानदोर्दण्डः = शूरताङ्गनाकेशवेशसुन्दरघननागकेशरचर्चनदेदीप्यमानभुजदण्डः, मुकुटमणिः = शेखररत्नम्, महाराष्ट्राणां = महाराष्ट्रप्रदेशवास्तव्यानाम्, भूषणम् = अलङ्कारः, भटानां = शूराणाम्, निधिः = कोषः, नीतीनाम् = नयानाम्, कुलभवनं = कुलगृहम्, कौशलानाम् = दक्षतानाम्, पारावारः = सागरः, परमोत्साहानाम् = श्रेष्ठोत्साहानाम्, कश्चन = कोऽपि, प्रातःस्मरणीयः = बहुमानार्हः, स्वधर्माऽऽग्रहगृहग्रहिलः = सनातनधर्मदृढपरिपालकः, शिव इव = शङ्कर इव, धृतावतारः = अङ्गीकृतावतारः, शिववीरश्च = 'शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितश्च, अस्मिन् = समीपस्थे, पुण्यनगरात् = 'पूना' इति प्रसिद्धान्नगरात्, नेदीयस्येव = सन्निकटे एव, सिंहदुर्गे = सिंहगढनाम्ना प्रथिते स्थाने, ससेनः = सबलः, निवसति = वासं विदधाति। विजयपुराधीश्वरेण = विजयपुरशासकेन, साम्प्रतम् = अधुना, अस्य = शिववीरस्य, प्रवृद्धम् = प्रकृष्टरूपेण समुपबृंहितम्, वैरम् = शत्रुत्वम्। कार्यं = स्वतन्त्रताप्राप्तिरूपकर्म, वा = अथवा, साधयेयम् = सिद्धं विधास्यामः, देहं = शरीरम्, वा = अथवा, पातयेयम् = नष्टं करिष्यामः, इति = एवम्प्रकारिका, अस्य = शिववीरस्य, सारगर्भा = सारसमन्विता, महती = भीषणा श्रेष्ठा वा, प्रतिज्ञा = सङ्कल्पः। सतीनां = कुलव्रतानाम्, सताम् = सज्जनानाम्, त्रैवर्णिकस्य = ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यस्य, आर्यकुलस्य = आर्यपरिवारस्य, धर्मस्य = सनातनाख्यस्य, भारतवर्षस्य = हिन्दुस्थानस्य, च = पुनः, आशासन्तानवितानस्य = आशापरम्पराविस्तारस्य, अयमेव = शिववीर एव, आश्रयः = आधारः। इयमेव = एषैव, वर्तमाना = साम्प्रतिकी, दशा = अवस्था, भारतवर्षस्य = हिन्दुस्थानस्य, अस्तीति शेषः, किमधिकम् = कियद् विपुलम्, विनिवेदयामः = संसूचयामः, योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु = ध्यानबलज्ञातसकलरहस्यमयोदन्तेषु, योगिराजेषु = योगिवर्येषु, भवादृशेष्विति भावः, इति = एवम्प्रकारेण, कथयित्वा = निगद्य, विरराम = मौनमाकलयांमास, ब्रह्मचारिगुरुरिति भावः।

समासः—पर्वतैः बहुलः पर्वतबहुलः। महद् अरण्यम् अरण्यानी, तया सङ्कुलः व्याप्तः, अरण्यानीसङ्कुलः। महाराष्ट्राः केसरिण इव, तान् महाराष्ट्र-केसरिणः। हस्ते कर्तुम् इति हस्तयितुम्। दक्षिणदेशानां शासकत्वेन दक्षिणदेश-शासकत्वेन। महाराष्ट्रश्चासौ देशश्च, तस्य रत्नं महाराष्ट्रदेशरत्नम्। यवनानां शोणितस्य पिपासाकुलः कृपाणः खड्गो यस्य सः यवनशोणितपिपासाकुल-कृपाणः। दोः भुजः दण्ड इवेति दोर्दण्डः, वीरता एव सीमन्तिनी ललना, तस्याः सीमन्ते केशवेशे, यत् सिन्दूरं, सान्द्रसिन्दूरस्य प्रोज्ज्वलसिन्दूरस्य दानम् अर्पणं, तेन देदीप्यमानः प्रकाशमानः (जाज्वल्यमानः) दोर्दण्डः यस्य सः वीरता-सीमन्तिनीसीमन्तसुन्दरसान्द्रसिन्दूरदानदेदीप्यमानदोर्दण्डः। मुकुटस्य मणिः मुकुटमणिः। स्वधर्माय आग्रहः, तस्य ग्रहे ग्रहिलः स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः। धृतः अवतारो येन स धृतावतारः। अतिशयेन अन्तिकः इति नेदीयान्, तस्मिन् नेदीयसि। सेनया सहितः इति ससेनः। विजयपुरस्य अधीश्वरेण विजयपुराधी-श्वरेण। सारः गर्भे यस्याः सा सारगर्भा। आशानां सन्तानं परम्परा व्रातः (समूह) इति यावत्, तस्य वितानः विस्तारः, तस्य आशासन्तानवितानस्य। योगस्य बलेन अवगताः विज्ञाताः सकलाः गोप्यतमाः गूढतमाः वृत्तान्ताः यैस्तेषु तादृशेषु वा योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु।

कोषः—'अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैलशिलोच्चयाः' इत्यमरः। 'एतर्हि सम्प्रती-दानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः। 'खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः। कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत्' इत्यमरः। 'स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी वधूः' इत्यमरः। 'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—अरण्यानी—अरण्य + आनुक् = ङीष्। हस्तयितुम्—हस्ते करोतीति हस्तयति, हस्त + णिच् + रम + लिट् + तिप्।

शब्दार्थ—दक्षिणदेशः = दक्षिणी प्रान्त, हि = निश्चितरूप से, पर्वतबहुलो-ऽस्ति = गिरि-प्राचुर्य से युक्त है, च = और, अरण्यानीसङ्कुलोऽस्ति = महद् अरण्य से व्याप्त है, इति = इस कारण, चिरोद्योगेनापि = चिरकाल तक प्रयास करने पर भी, अयम् = यह औरङ्गजेब, महाराष्ट्रकेशरिणः = श्रेष्ठ मराठियों को, हस्तयितुम् = अपने अधीन करने में, न = नहीं, अशकन् = समर्थ हुआ। साम्प्रतम् = इस समय, अस्यैव = इसी औरङ्गजेब का ही, आत्मीयः = स्वजन, दक्षिणदेशशासकत्वेन = दक्षिणी प्रदेश के शासक के रूप में, प्रेष्यते = भेजा जा

रहा है, इति=ऐसा, श्रूयते=सुनाई पड़ता है। महाराष्ट्रदेशरत्नम्=महाराष्ट्र देश के रत्नस्वरूप, यवनशोणितपिपासाऽऽकुलकृपाणः=यवनों के रक्त की प्यास से व्याकुल खड्गवाले, वीरतासीमन्तिनीसीमन्तसुन्दरसान्द्रसिन्दूरदानदेदीप्यमानदोर्दण्डः=वीरतारूपी नायिका की माँग में सुन्दर घना सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, मुकुटमणिः महाराष्ट्राणाम्=मराठों के मुकुटमणि, भूषणं भटानाम्=वीरों के अलंकारस्वरूप, निधिर्नीतीनाम्=नीतियों के आकर (खजाना), कुलभवनं कौशलानाम्=निपुणताओं के कुलभवन अर्थात् आश्रय, पारावारः परमोत्साहानाम्=परमोत्साह के सागर, कश्चन=कोई, प्रातःस्मरणीयः=प्रातः स्मरण के योग्य अर्थात् पूज्य, स्वधर्माऽऽग्रहग्रहग्रहिलः=अपने धर्म को हठ से भी पालन में दृढतर, शिव इव धृतावतारः=शिव के समान अवतार धारण किये हुए, शिववीरः=शिवाजी, अस्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव=इस पूना नगर के अत्यन्त समीप में ही, सिंहदुर्गे=सिंहगढ़ दुर्ग (किला) में, ससेनः=सेना के साथ, निवसन्ति=निवास करता है। विजयपुराधीश्वरेण=बीजापुर के राजा के साथ, साम्प्रतम्=इस समय, अस्य=इनकी, वैरम्=शत्रुता, प्रवृद्धम्=बढ़ी हुई है, कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्='या तो कार्य सिद्ध करूँगा या शरीर को नष्ट कर दूँगा' इति=इस प्रकार से, अस्य=इनकी, सारगर्भा=सारगर्भित अर्थात् महत्त्वपूर्ण, महती=विशाल, प्रतिज्ञा=संकल्प है। सतीनाम्=पतिव्रताओं के, सतां=सज्जनों के, त्रैवर्णिकस्य=(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन) तीन वर्णवाली, आर्यकुलस्य=आर्य जाति के, धर्मस्य=सनातन धर्म के, भारतवर्षस्य=भारत वर्ष के, च=और, आशासन्तानवितानस्य=आशा-समूह के विस्तार के, अर्थात् विविध आशाओं के, अयमेव=यहीं, आश्रयः=आधार हैं। इयमेव=यही, वर्तमाना दशा=आधुनिकी अवस्था, भारतवर्षस्य=भारतवर्ष की है, किमधिकं विनिवेदयामः=अधिक क्या निवेदन करें, योगबलावगतसकलगोप्यतमवृत्तान्तेषु=योग के बल से समस्त गूढ़ वृत्तान्तों को जान लेने वालों के लिए, इति=इस प्रकार, कथयित्वा=कहकर, विरराम=मौन हो गये।

हिन्दी—केवल दक्षिण देश निश्चय ही पर्वतों का प्राचुर्य और घने जंगलों से व्याप्त है। इस कारण बहुत अधिक प्रयास करने के बाद भी वह महाराष्ट्र-केसरी को जीत नहीं सका। अब सुना जाता है कि उसी का सगा-सम्बन्धी 'शाइस्ता खाँ' दक्षिण देश का शासक बनाकर भेजा जा रहा है। महाराष्ट्र

देश के रत्न, यवनों (मुसलमानों) के रुधिर की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी स्त्री की माँग में सुन्दर और घना सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठों के मुकुट के रत्नस्वरूप अर्थात् सर्वश्रेष्ठ, वीरों के आभूषण, नीति के निधान, निपुणताओं के आश्रय, परम उत्साहों के समुद्र, अपने धर्म की आग्रहपूर्वक रक्षा करने में दृढ़ अवतार धारण किये हुए शिव के समान कोई प्रातःस्मरणीय शिवाजी इस पूना नगर के अति समीपवर्ती सिंहदुर्ग में सेना सहित निवास कर रहे हैं। बीजापुर के शासक से इस समय उनका वैर अत्यन्त बढ़ा हुआ है। 'या तो कार्य पूरा करूँगा या शरीर को नष्ट कर दूँगा' यह उनकी सारगर्भित दृढ़ प्रतिज्ञा है। वही सतियों (पतिव्रताओं), सज्जनों, तीन वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) वाली आर्य जाति, धर्म तथा भारतवर्ष की विविध आशाओं के आश्रय हैं। यहीं भारतवर्ष की वर्तमान दशा है। योग के बल से समस्त गूढ़तम वृत्तान्तों को जान लेने वाले योगिराज आपसे अधिक क्या कहूँ ? ऐसा कहकर ब्रह्मचारिगुरु चुप हो गये।

टिप्पणी—'महाराष्ट्रकेशरिणः' इस पद में 'केशरी' पद श्रेष्ठता का वाचक है। यथा—'स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः'॥ (अमरकोष) 'वीरतासीमन्तिनीसीमन्तसुन्दरसान्द्र-सिन्दूरदानदोर्दण्डः' इस स्थल पर वीरता रूपी नायिका के माँग में सिन्दूर लगाने के कारण वीरता में नायिका का आरोप होने से रूपकालङ्कार है। शब्द साम्य होने से यहाँ श्रुत्यनुप्रास भी है। 'शिव इव धृतावतारः' इस वाक्य में उत्प्रेक्षालङ्कार दृष्टिगोचर होता है॥ २७॥

तदाकर्ण्य विविध-भाव-भङ्ग-भासुर-वदनो योगिराजो मुनिराजं तत्सहचरांश्च निपुणं निरीक्ष्य, तेषामपि शिववीरान्तरङ्गतामङ्गीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोररीकृत्य "विजयतां शिववीरः, सिद्ध्यन्तु भवतां मनोरथाः" इति मन्दं व्याहार्षीत्।

व्याख्या—तत् = ब्रह्मचारिगुरुकथितं देशावस्थाचित्रणम्, आकर्ण्य = निशम्य, विविधभावभङ्गभासुरवदनः = नैकविधभावभङ्गिमादेदीप्यमानलपनः, योगिराजः = योगिवरः, मुनिराजं = ब्रह्मचारिगुरुम्, तत्सहचरांश्च = मुनिराज-सहवासिनश्च, निपुणम् = सुष्ठुप्रकारेण, निरीक्ष्य = निर्वर्ण्य, तेषामपि = सह-चराणामपि, शिववीरान्तरङ्गताम् = शिववीरलीनमानसिकताम्, अङ्गीकृत्य =

स्वीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन = साधुवेषछलेन, स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = निजधर्मरक्षकव्रतशीलिनः, उररीकृत्य = अङ्गीकृत्य, विजयताम् = विजयं लभताम्, शिववीरः = शिवाजीनाम्ना प्रथितः शूरः, सिद्ध्यन्तु = परिपूर्णाः भवन्तु, भवताम् = श्रीमताम्, मनोरथाः = अभिलाषाः, इति = एवम्प्रकारेण, मन्दम् = अनुच्चैः, व्याहार्षीत् = अकथयत् ।

समासः—विविधानां भावानां भङ्गैः मर्दैः भासुरं दीप्यमानं वदनं मुखं यस्य सः विविधभावभङ्गभासुरवदनः । योगिनां राजा इति योगिराजः । तस्य मुनेः सहचराः सहायाः तत्सहचराः, तान् तत्सहचरान् । शिववीरस्य अन्तरङ्गतां शिववीरान्तरङ्गताम् । मुनेः वेषस्य व्याजेन मुनिवेषव्याजेन । स्वस्य धर्मस्य रक्षया व्रतिनः स्वधर्मरक्षाव्रतिनः ।

कोषः—'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः । 'अथ दोहदम् । इच्छाऽऽकाङ्क्षा स्पृहेहा तृड् वाञ्छा लिप्सा मनोरथः । कामोऽभिलाषस्तर्षश्च' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—आकर्ण्य—आङ् + कर्ण + क्त्वा + ल्यप् । निरीक्ष्य—निर् + ईक्ष + ल्यप् । व्याहार्षीत्—वि + आ + हृ + लुङ्, प्र० पु० ए० व० ।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य = योगिराज के कथन को सुनकर, विविधभावभङ्गभासुरवदनः = विविध भाव-भङ्गियों से प्रकाशमान मुखवाले, योगिराजः = योगियों के स्वामी, मुनिराजम् = मुनिश्रेष्ठ को, तत्सहचरांश्च = और उनके सहायकों को, निपुणं = अच्छी तरह से, निरीक्ष्य = देखकर, तेषामपि = उन सहचरों के भी, शिववीरान्तरङ्गताम् = शिवाजी की अन्तरङ्गता को, अङ्गीकृत्य = स्वीकार कर, मुनिवेषव्याजेन = मुनि (ऋषि) के वेष के बहाने से, स्वधर्मरक्षाव्रतिनः = अपने धर्म की रक्षा में कटिबद्ध, उररीकृत्य = जानकर, विजयतां शिववीरः = शिवाजी विजय प्राप्त करें, भवतां = आप लोगों की, मनोरथाः = इच्छाएँ, सिद्ध्यन्तु = पूर्ण होवे, इति = इस प्रकार से, मन्दं = धीरे से, व्याहार्षीत् = कहा ।

हिन्दी—यह सुनकर विविध भाव-भङ्गियों से प्रकाशमान मुखवाले योगिराज ने मुनिराज तथा उनके साथियों को ध्यान से देखकर तथा ये भी वीर शिवाजी के अन्तरङ्ग लोग हैं एवं मुनिवेष के बहाने से अपने धर्म की रक्षा करने में कटिबद्ध हैं, ऐसा जानकर 'वीर शिवाजी की जय हो, आप लोगों के मनोरथ पूर्ण हों' ऐसा धीरे से कहा ॥ २८ ॥

अथ "किमपि पिपृच्छिषामी"ति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे सोत्कण्ठे जटिलमुनौ "अवगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, दैवादापद्ग्रस्तोऽपि च सखिसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति" इति समभाणीत्। मुनिश्च 'गृहीतमि'त्युदीर्य, पुनः किञ्चिद् विचार्य्येव स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, रोरुध्यमानैरपि किञ्चिदुद्गतैर्बाष्पबिन्दुभिराकुलनयनो "भगवन्! प्रायो दुर्लभो युष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छाऽऽच्छादयति माम्" इति न्यवेदीत्। स च "आम्! ऊरीकृतम्, जीवति सः, सुखेनैवाऽऽस्ते" इत्युदतीतरत्। अथ "तं कदा द्रक्ष्यामि" इति पुनः पृष्टवति "तद्विवाहसमयं द्रक्ष्यसि" इत्यभिधाय, बहूनि सान्त्वनावचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशैलान् अधित्यकां चाऽऽरुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वतकन्दरे तपस्तप्तुं जगाम।

व्याख्या—अथ=आशीर्वादप्राप्त्यनन्तरम्, किमपि=किञ्चिदपि, पिपृच्छिषामि=प्रष्टुमभिलषामि, इति=इत्थम्, शनैः=मन्दम्, अभिधाय=निगद्य, बद्धकरसम्पुटे=बद्धाञ्जलौ, सोत्कण्ठे=साभिलाषे, जटिलमुनौ=ब्रह्मचारिगुरौ, अवगतम्=विज्ञातम्, यवनयुद्धे=तुरुष्कसङ्गरे, विजय एव=जय एव, दैवात्=दिष्टात्, आपद्ग्रस्तोऽपि=विपद्ग्रस्तोऽपि च, सखिसाहाय्येन=सुहृत्सहकारेण, आत्मानम्=स्वम्, उद्धरिष्यति=उद्धारं विधास्यति, इति=एवम्, समभाणीत्=अकथयत्, मुनिः=ब्रह्मचारिशिक्षकः, च=पुनः, गृहीतम्=बुद्धम्, इति=एवम्, उदीर्य=कथयित्वा, पुनः=भूयः, किञ्चित्=किमपि, विचार्य्येव=विचारं विधायेव, स्मृत्वेव च=संस्मरणं कृत्वेव च, दीर्घम्=आयतम्, उष्णम्=उष्णतामयश्च, निःश्वस्य=उच्छ्वासं गृहीत्वा, रोरुध्यमानैरपि=पौनःपुन्येनावरुध्यमानैरपि, किञ्चिदुद्गतैः=ईषन्निःसृतैः, बाष्पबिन्दुभिः=अश्रुकणैः, आकुलनयनः=व्याकुललोचनः, भगवन्!=महात्मन्! प्रायः=सामान्यतया, युष्मादृक्षाणां=भवत्सदृशानां, साक्षात्कारः=दर्शनम्, इति=अनेन हेतुना, अपराऽपि=अन्याऽपि, पृच्छा=प्रश्नेहा, आच्छादयति=आवृणोति, माम्=ब्रह्मचारिगुरुम्, इति=एवम्, न्यवेदीत्=सम्प्रार्थयामास, स च योगिराजः, आम्=विज्ञातम्, ऊरीकृतम्=अङ्गीकृतम्, जीवति सः=जीवनं दधाति पुरुषविशेषः, सुखेनैव=शर्मणैव, आस्ते=विद्यते, इति=एवम्, उदतीतरत्=प्रतिवचनं दत्तवान्, अथ=अनन्तरं, तं=पुरुषविशेषं, कदा=कस्मिन्

काले, द्रक्ष्यामि = अवलोकयिष्यामि, इति = इत्थम्, पुनः = भूयः, पृष्टवति = सम्पृष्टे सति, तद्विवाहसमये = तदुद्वाहकाले, द्रक्ष्यसि = अवलोकयिष्यसि, इति = एवम्, अभिधाय = प्रोच्य, बहूनि = अनेकानि, सान्त्वनावचनानि = आश्वासन-वचांसि, च, गम्भीरस्वरेण = धीरवचसा, उक्त्वा = कथयित्वा, सपदि = तत्काल-मेवं, उपत्यकाम् = अधोऽधः पर्वतम्, गण्डशैलान् = च्युतस्थूलोपलान्, अधित्य-काम् = उपर्युपरि पर्वतम्, आरुह्य = आरोहणं विधाय, च, पुनः = भूयः, तस्मिन्नेव = पूर्ववर्णिते, पर्वतकन्दरे = शैलगुहायाम्, तपस्तप्तुम् = तपस्यां विधातुम्, जगाम = अगच्छत् ।

समासः—बद्धः करयोः सम्पुटो येन सः, तस्मिन् बद्धकरसम्पुटे । उत्कण्ठया सहितः इति सोत्कण्ठः, तस्मिन् सोत्कण्ठे । जटिलश्चासौ मुनिश्च, तस्मिन् जटिलमुनौ । यवनानां युद्धे यवनयुद्धे । आपद्भिः ग्रस्तोऽपि आपद्ग्रस्तोऽपि । सहायस्य भावः साहाय्यम्, सखीनां साहाय्यं, तेन सखिसाहाय्येन । बाष्पाणां बिन्दुभिः बाष्पबिन्दुभिः । आकुले नयने यस्यासौ आकुलनयनः । यूयमिव दृश्यन्ते इति युष्मादृक्षाः, तेषां युष्मादृक्षाणाम् । तस्य विवाहस्य समये तद्विवाह-समये । सान्त्वनायाः वचनानि सान्त्वनावचनानि । गम्भीरेण स्वरेण गम्भीर-स्वरेण । पर्वतस्य कन्दरे पर्वतकन्दरे ।

कोषः—'पञ्चशाखः शयः पाणिः' इत्यमरः । 'बलिहस्तांशवः कराः' इत्य-मरः । 'प्रायो भूम्न्यद्रुते शनैः' इत्यमरः, । 'प्रश्नोऽनुयोगः पृच्छा च' इत्यमरः । 'स्राग्झटित्यञ्जसाऽह्नाय द्राङ्मङ्क्षुसपदि द्रुते' इत्यमरः । 'उपत्यकाद्रेरासन्ना भूमिरूर्ध्वमधित्यका' इत्यमरः । 'गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपलागिरेः' इत्यमरः । 'दरी तु कन्दरो देवखातबिले ग्रहणगह्वरम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—पिपृच्छिषामि—प्रच्छ + सन् + लट् + मिप् । अभिधाय—अभि + धा + क्त्वा + ल्यप् । अवगतम्—अव + गम् + क्त । उद्धरिष्यति—उद् + हृ + णिच् + लट् + तिप् । समभाणीत्—सम् + भण् + लुङ् + तिप् । रोरुध्यमानैः—रुध् + यङ् + शानच् । उद्गतैः—उद् + गम् + क्त । पृच्छा—पृच्छ + अङ् + टाप् । आच्छादयति—आ + छद् + लट् + तिप् । न्यवेदीत्—नि + विद् + लुङ् + तिप् । उदतीतरत्—उद् + तृ + णिच् + लुङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—अथ = अनन्तर, किमपि = कुछ, पिपृच्छिषामि = पूछना चाहता हूँ, इति = ऐसा, शनैः = धीरे से, अभिधाय = कहकर, बद्धकरसम्पुटे = हाथ जोड़ लेने पर, सोत्कण्ठे = उत्कण्ठा से युक्त, जटिलमुनौ = जटाधारी मुनि

के, अवगतम् — जान लिया, यवनयुद्धे = मुसलमानों के युद्ध में, विजय एव = विजय ही होगी, दैवात् = दुर्भाग्य से, आपद्ग्रस्तोऽपि = विपत्ति से ग्रसित होने पर भी, सखिसाहाय्येन = मित्रों की सहायता से, आत्मानम् = अपने को, उद्धरिष्यति = उबार लेगा, इति = इस प्रकार, समभाणीत् = कहा। मुनिश्च = मुनि ने, गृहीतम् = ग्रहण कर लिया, इति = ऐसा, उदीर्य = कहकर, पुनः = फिर, किञ्चिद् = कुछ, विचार्य्येव = जैसे कुछ विचार करके, स्मृत्वेव च = जैसे कुछ स्मरण करके, दीर्घमुष्णम् = दीर्घ और गरम, निःश्वस्य = साँस लेकर, रोरुध्यमानैरपि = अत्यन्त रोके जाने पर भी, किञ्चिदुद्गतैः = कुछ-कुछ निकल आये हुए, बाष्पबिन्दुभिराकुलनयनः = आँसुओं की बूँदों में व्याप्त नेत्रों वाले, भगवन्! = महात्मन्! प्रायो दुर्लभः = सामान्यतया दुर्लभ है, युष्मादृक्षाणां = आप जैसों का, साक्षात्कारः = दर्शन, इति = अतः, अपराऽपि = दूसरी भी, पृच्छा = पूछने की इच्छा, आच्छादयति = संप्रेरित कर रही है, माम् = मुझको, इति = ऐसा, न्यवेदीत् = निवेदन किया। स च = और वह, आम् = हाँ, ऊरीकृतम् = स्वीकार किया, जीवति सः = वह जीवन धारण कर रहा है, सुखेनैवाऽऽस्ते = सुखपूर्वक है, इति = इस प्रकार से, उदतीतरत् = उत्तर दिया। अथ = अनन्तर, तं कदा द्रक्ष्यामि = उसे कब देखूँगा, इति = ऐसा, पुनः पृष्टवति = फिर पूछने पर, तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि = उसके विवाह के समय देखोगे, इति = इस प्रकार, अभिधाय = कहकर, बहूनि सान्त्वनावचनानि च = और बहुत-से सान्त्वना वचन, गम्भीरस्वरेण = गम्भीर स्वर से, उक्त्वा = कहकर, सपदि = तत्क्षण, उपत्यकाम् = पर्वत के समीप की निचली भूमि, तलहटी, गण्डशैलान् = पर्वत से गिरी हुई बड़ी-बड़ी शिलाओं, अधित्यकाम् = पर्वत के ऊपर की भूमि पर, आरुह्य = चढ़कर, पुनस्तस्मिन्नेव = फिर उसी, पर्वतकन्दरे = पर्वत की गुफा में, तपस्तप्तुम् = तपस्या करने के लिए, जगाम = चले गये।

हिन्दी—इसके अनन्तर 'मैं कुछ पूँछना चाहता हूँ' ऐसा धीरे से कहकर जटाधारी मुनि के उत्सुकतापूर्वक हाथ जोड़कर बैठने पर योगिराज ने कहा—मैं समझ गया, मुसलमानों के साथ युद्ध में विजय ही होगी। दैववश आपत्ति में पड़ने पर भी अपने मित्रों की सहायता से अपने को समुद्धृत कर (उबार) लेगें। मुनि ने भी 'समझ लिया' यह कहकर फिर कुछ विचारते हुए और स्मरण करते हुए-से, लम्बे और गरम साँस लेकर, निरन्तर रोके जाने पर भी

कुछ निकल आये हुये अश्रुविन्दुओं से भरे हुए नेत्रों से कहा—भगवन् ! आप जैसे महात्माओं के दर्शन प्रायः दुर्लभ होते हैं। अतः एक और जिज्ञासा (प्रश्न पूछने की इच्छा) मुझे विवश कर रही है। योगिराज ने उत्तर दिया हाँ, समझ गया, वह जीवित है, सुखपूर्वक है। तदनन्तर 'उसके कब दर्शन होंगे' यह पुनः पूछने पर 'उसके विवाह के समय देखोगे' ऐसा कहकर और गम्भीर स्वर से वहुत-से सान्त्वनापूर्ण वचन समुच्चारित कर योगिराज तत्क्षण पर्वत की तलहटी, फिर पर्वत से गिरे हुए शिलाखण्डों और पुनः पहाड़ के ऊपर की भूमि पर चढ़कर पर्वत की उसी गुफा में तपस्या करने के लिए चले गये।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'विचार्य्यैव, स्मृत्वेव' इत्यादि स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है ॥ २९ ॥

ततः शनैः शनैर्निर्यातिष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षिके, मुनिर्गौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अपजलखानस्य विषये यावत् किमपि प्रष्टुमियेष, तावत् पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्याऽन्यमनस्के इव मुनौ गौरबटुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट इव समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पर्य्यटच्च, 'कोऽयस् ?' इति च साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, 'मन्ये मार्जारः कोऽपि' इति मन्दं गुरवे निवेद्य, पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे—

व्याख्या—ततः=योगिराजगमनानन्तरम्, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, निर्यातिषु=निर्गतेषु, अपरिचितजनेषु=अज्ञातकुलशीलमानवेषु, संवृत्ते=जाते च, निर्मक्षिके=जनशून्ये, मुनिः=ब्रह्मचारिगुरुः, गौरबटुम्=गौरवर्णब्रह्मचारिणम्, आहूय=आमन्त्र्य, विजयपुराधीशाज्ञया=विजयपुराधिपादेशेन, शिववीरेण='शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितेन महाराष्ट्राधीश्वरेण, सह=साकम्, योद्धुम्=सङ्गरकरणाय, ससेनं=सबलम्, प्रस्थितस्य=विहितप्रस्थानस्य, अफजलखानस्य=एतन्नामकस्य, विषये=सम्बन्धे, यावत्=यस्मिन् काले, किमपि=किञ्चित्, प्रष्टुम्=जिज्ञासितुम्, इयेष=इच्छितवान्, तावत्=तस्मिन्नेव काले, पादचारध्वनिमिव=चरणोद्भूतशब्दमिव, कस्यापि=अज्ञातजनस्य, अश्रौषीत्=श्रुतवान्। तम्=ध्वनिम्, अवधार्य=विज्ञाय, अन्यमनस्के=

विरसे, इव=यथा, मुनौ=ब्रह्मचारिगुरौ, गौरबटुरपि=गौरब्रह्मचारी अपि, तेनैव=श्रुतेनैव, ध्वनिना=शब्देन, कर्णयोः=श्रोत्रयोः, कृष्ट इव=समाकृष्ट इव, समुत्थाय=उत्तिष्ठितो भूत्वा, निपुणं=सुष्ठुतया, परितः=समन्ततः, निरीक्ष्य=विलोक्य, पर्य्यटच=परिभ्रम्य, कोऽयम्=कः विद्यते, इति=एवम्प्रकारेण, च=पुनः, साम्रेडम्=वारं वारम्, व्याहृत्य=प्रोच्य, कमपि=कञ्चिदपि, अनवलोक्य=अदृष्ट्वा, पुनः=भूयः, निवृत्त्य=प्रत्यागत्य, मन्ये=अनुमिनोमि, मार्जारः=विडालः, कोऽपि=कश्चिदपि, इति=एवम्, मन्दम्=शनैः, गुरवे=मुनये, निवेद्य=निवेदनं विधाय, पुनः=भूयः, तथैव=तेनैव प्रकारेण, उपविवेश=समुपविष्टवान् । मुनिः=ब्रह्मचारिगुरुः, च=पुनः, मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्=न कोऽप्यन्यः शृणुयात्, इति=एवम्, सशङ्कः=आशङ्कितः सन्, क्षणं=किञ्चित्कालम्, विरम्य=विरामं कृत्वा, पुनः=भूयः, उपन्यस्तुम्=कथयितुम्, आरेभे=आरब्धवान् ।

समासः—न परिचिता अपरिचिता, अपरिचिताश्च ते जनाश्च, तेषु अपरिचितजनेषु । मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकम्, तस्मिन् निर्मक्षिके । विजयपुरस्य अधीशः, तस्य आज्ञया विजयपुराधीशाज्ञया । सेनया सहितं यथा स्यत्तथा ससेनम् । पादयोः चारस्य ध्वनिः पादचारध्वनिः, तं पादचारध्वनिम् । अन्यस्मिन् मनो यस्य सः अन्यमनस्कः, तस्मिन् अन्यमनस्के । शङ्कया सहितः इति सशङ्कः ।

कोषः—'कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः । 'समन्ततस्तु परितः सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमरः । 'ओतुर्बिडालो मार्जारो वृषदंशक आखुभुक्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—निर्यातेषु—निर्+या+क्त, स० ब० । संवृत्ते—सम्+वृत्+क्त, स० ए० । योद्धुम्—युध्+तुमुन् । प्रस्थितस्य—प्र+स्था+क्त, षष्ठी ए० । प्रष्टुम्—प्रच्छ+तुमुन् । इयेष—इष इच्छायाम्+लिट्+तिप् । अवधार्य—अव+धृ+णिच्+ल्यप् । समुत्थाय—सम्+उद्+स्था+ल्यप् । पर्य्यट्य—परि+अट गतौ+ल्यप् । व्याहृत्य—वि+आ+हृ+ल्यप् । अनवलोक्य—अन+अव+लोक+ल्यप् । उपन्यस्तुम्—उप+नि+अस्+तुमुन् । आरेभे—आ+रभ+लिट् ।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, शनैः शनैः=धीरे-धीरे, निर्यातेषु=चले जाने पर, अपरिचितजनेषु=अपरिचित लोगों के, संवृत्ते=हो जाने पर,

निर्मक्षिके=निर्जन अथवा एकान्त, मुनिः=ब्रह्मचारी गुरु ने, गौरबटुम्=गौरवर्ण के ब्रह्मचारी को, आहूय=बुलाकर, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया=विजयपुराधिपति की आज्ञा से, शिववीरेण सह=शिवाजी के साथ, योद्धुम्=युद्ध करने के लिए, ससेनम्=सेना के सहित, प्रस्थितस्य=चल चुके हुए, अफजलखानस्य विषये=अफजलखान के सम्बन्ध में, यावत्=जब तक, किमपि=कुछ, प्रष्टुम् इयेष=पूछने की इच्छा की, तावत्=तब तक, पादचारध्वनिमिव=पैरों के चलने की ध्वनि की तरह, कस्यापि=किसी का, अश्रौषीत्=सुनाई पड़ा। तम्=उस शब्द को, अवधार्यं=सुनकर या जानकर, अन्यमनस्के इव=अन्यमनस्क की तरह हो जाने पर, मुनौ=ब्रह्मचारिगुरु के, गौरबटुरपि=गौर वर्णवाला ब्रह्मचारी भी, तेनैव ध्वनिना=उसी ध्वनि से, कर्णयोः=कानों के, कृष्ट इव=आकृष्ट हुए के समान, समुत्थाय=उठकर, निपुणम्=अच्छी तरह से, परितः=चारों ओर, निरीक्ष्य=देखकर, पर्य्यटच=परिभ्रमण कर, कोऽयम्=यह कौन है? इति=ऐसा, च=और, साम्रेडम्=बार-बार, व्याहृत्य=कहकर या पुकारकर, कमपि=किसी को भी, अनवलोक्य=न देखकर, पुनः=फिर, निवृत्य=लौटकर, मन्ये=अनुमान करता हूँ, मार्जारः कोऽपि=कोई बिडाल है, इति=ऐसा, मन्दं=धीरे से, गुरवे=गुरुजी से, निवेद्य=निवेदन कर, पुनः=फिर, तथैव=उसी प्रकार से, उपविवेश=बैठ गया, मुनिश्च=और ब्रह्मचारी गुरु, मा स्म कश्चिदितरः श्रौषीत्=कोई दूसरा न सुन ले, इति=इस कारण से, सशङ्कः=शङ्कित होकर, क्षणम्=कुछ समय तक, विरम्य=रुककर, पुनः=फिर, उपन्यस्तुम्=कहना, आरेभे=आरम्भ किया।

हिन्दी—तदनन्तर धीरे-धीरे अपरिचित जनों के चले जाने पर, जब एकदम एकान्त हो गया, मुनि ने गौरबटु को बुलाकर, बीजापुर के शासक की आज्ञा से शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए सेना सहित चल चुके हुए अफजलखान के सम्बन्ध में जैसे ही कुछ पूछना चाहा, त्यों ही किसी के पैरों की ध्वनि सुनाई दी। उसे सुनकर मुनिजी के अन्यमनस्क हो जाने पर, गौरबटु भी उसी ध्वनि से आकृष्ट हुआ-सा होकर तथा वहाँ से उठकर, चारों ओर अच्छी तरह देखकर, परिभ्रमण कर, 'कौन है?' ऐसा कई बार कहकर किसी को न देखकर, फिर लौटकर 'मालूम होता है, कोई बिल्ली है' ऐसा धीरे से गुरुजी से निवेदन कर फिर उसी प्रकार बैठ गया। मुनिराज ने भी

'कोई दूसरा न सुन ले' ऐसी शङ्का से ग्रस्त होकर क्षण भर रुककर फिर कहना प्रारम्भ किया।

टिप्पणी—इस गद्यांश में प्रयुक्त 'निर्मक्षिके' शब्द का आशय एकान्त से है। मक्षिका मानवसञ्चाररहित देश में रहती है, अतः उनके अभाव से जन-शून्यता द्योतित होती है। 'अन्यमनस्के इव मुनौ' इस स्थल पर उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ ३०॥

"वत्स गौरसिंह! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत् त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्"। तावत् पुनरश्रूयत मर्मरः पादक्षेपश्च। ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशब्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौर-सिंहेन दृष्टं यत् कुटीर-निकटस्थ-निष्कुटक-कदलीकूटे द्वित्रास्तरवो-ऽतितरां कम्पन्ते इति।

व्याख्या—वत्स गौरसिंह!=पुत्र गौरसिंह! अहं=ब्रह्मचारिगुरुः, अत्यन्तम्=भृशम्, तुष्यामि=प्रसन्नोऽस्मि, त्वयि=त्वदुपरि, यत्=यतो हि, त्वम्=गौरसिंहः, एकाकी=केवलः, अफजलखानस्य=एतन्नामकयवनवीरस्य, त्रीन्=त्रिसङ्ख्यकान्, अश्वान्=हयान्, तेन=अफजलखानेन, दासीकृतान्=दासरूपेणाङ्गीकृतान्, पञ्च=पञ्चसङ्ख्यकान्, ब्राह्मणतनयांश्च=द्विजबालकांश्च, मोचयित्वा=मुक्तान् विधाय, आनीतवानसि=उपस्थापितवानसि, इति। कथं न भवेरीदृशः=कथमीदृग्विधः न स्याः, कुलमेव=वंशमेव, ईदृशम्=एतादृशम्, राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्='राजपूताना' इति संज्ञया प्रथितस्य क्षत्रियाणां प्रदेशस्य वास्तव्यानाम्। तावत्=तस्मिन्नेव समये, पुनः=भूयः, अश्रूयत=श्रुतिमापतत्, मर्मरः=शुष्कपर्णध्वनिः, पादक्षेपश्च=चरणसञ्चारश्च। ततः=तदनन्तरम्, विरम्य=क्षणं स्थित्वा, मुनिः=ब्रह्मचारिगुरुः, स्वयम्=आत्मना, उत्थाय=उत्थानं विधाय, प्रोच्चम्=बहून्नतम्, शिलापीठम्=दृषत्फलकम्, एकम्=अन्यतमम्, आरुह्य=अध्यारुह्य, निपुणतया=सावधानतया, परितः=समन्ततः, पश्यन्नपि=अवलोकयन्नपि, कारणम्=हेतुम्, किमपि=किञ्चिदपि,

नावलोकयामास=नापश्यत्, चरणाक्षेपशब्दस्य=पादनिक्षेपध्वने:। अत:= हेतुनानेन, पुन:=भूय:, एकतानेन=एकचित्तेन, निपुणम्=सावधानम्, निरीक्षमाणेन=पश्यता, गौरसिंहेन=गौरब्रह्मचारिणा, दृष्टम्=अवलोकितम्, यत्, कुटीरनिकटस्थनिष्कुटककदलीकूटे=पर्णशालासमीपस्थगृहारामरम्भासमूहे, द्वित्रा:=द्वौ त्रयो वा, तरव:=वृक्षा:, अतितराम्=अधिकतराम्, कम्पन्ते= वेपन्ते, इति।

समासः—ब्राह्मणानां तनयान् ब्राह्मणतनयान्। राजपुत्रदेशीयानां क्षत्रियाणां राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्। पादयो: क्षेप: पादक्षेप:। शिलाया: पीठं शिलापीठम्। चरणयो: आक्षेपे शब्द:, तस्य चरणाक्षेपशब्दस्य। कुटीरस्य निकटस्था: निष्कुटका:, तेषु कदलीनां कूटे कुटीरनिकटस्थनिष्कुटककदलीकूटे। द्वौ वा त्रयो वा द्वित्रा:।

कोषः—'घोटके वीतितुरगतुरङ्गाश्वतुरङ्गमा:। वाजिवाहार्वगन्धर्वहय-सैन्धवसप्तय:'॥ इत्यमर:। 'आत्मजस्तनय: सूनु: सुत: पुत्र:' इत्यमर:। 'द्विजात्म-ग्रजन्मभूदेववाडवा:। विप्रश्च ब्राह्मण:' इत्यमर:। 'अथ मर्मर:। स्वनिते वस्त्र-पर्णानाम्' इत्यमर:। 'समन्ततस्तु परित: सर्वतो विष्वगित्यपि' इत्यमर:। 'गृहारामास्तु निष्कुटा:' इत्यमर:।

व्याकरणम्—मोचयित्वा—मुच्+णिच्+क्त्वा। आनीतवान्—आ+ नी+क्त+क्तवतु। ईदृशम्—इदमिव दृश्यते इति ईदृशम्, इदम्+दृश्+ कञ्। विरम्य—वि+रम्+ल्यप्। निरीक्षमाणेन—निर्+ईक्ष्+शानच् (तृ०)। दृष्टम्+दृश्+क्त। अतितराम्—अति+तरप्।

शब्दार्थ—वत्स गौरसिंह!=हे पुत्र गौरसिंह! अहम्=मैं ब्रह्मचारि गुरु, अत्यन्तम्=अत्यधिक, तुष्यामि=प्रसन्न हूँ, त्वयि=तुम पर, यत्= क्योंकि, त्वम्=तुम गौरसिंह, एकाकी=अकेले, अफजलखानस्य=अफजल-खान के, त्रीनश्वान्=तीन घोड़ों को, तेन दासीकृतान्=अफजलखान के द्वारा भृत्य बनाये गये, पञ्च=पाँच, ब्राह्मणतनयांश्च=द्विजबालकों को, मोचयित्वा= छुड़ाकर, आनीतवानसि=ले आये हो, कथं न भवेरीदृश:=तुम ऐसे क्यों न होगे, कुलमेव=वंश ही, ईदृशं=इस प्रकार, राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्= राजपूत देश के क्षत्रियों का है, तावत्=उसी समय, पुन:=फिर, अश्रूयत= सुना, मर्मर:=मर्मर ध्वनि, पादक्षेपश्च=और पैरों का शब्द, तत:=तदनन्तर, विरम्य=क्षण भर रुककर, मुनि:=ब्रह्मचारी गुरु, स्वयम्=अपने से, उत्थाय=

उठकर, प्रोन्नतम् = अत्यन्त ऊँचे, शिलापीठम् = शिलाखण्ड पर, एकम् = एक, आरुह्य = चढ़कर, निपुणतया = सावधानीपूर्वक, परितः= चारों ओर, पश्यन्नपि= देखते हुए भी, कारणं किमपि = किसी कारण को, नावलोकयामास = नहीं देखा, चरणाक्षेपशब्दस्य = पैरों की आहट के शब्द का, अथ = इसके अनन्तर, पुनः = फिर, एकतानेन = एकाग्र चित्त से, निपुणं = अच्छी तरह, निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन = देखनेवाले गौरसिंह ने, दृष्टम् = देखा, यत् = कि, कुटीरनिकटस्थ-निष्कुटककदलीकूटे = कुटी के समीप में संस्थित गृहवाटिका के केलों के समूह में, द्वित्राः = दो या तीन, तरवः = कदलीपादप, अतितराम् = अधिकतर, कम्पन्ते = काँप या हिल रहे हैं।

हिन्दी—हे पुत्र गौरसिंह ! मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। क्योंकि तुम अकेले ही अफजलखान के तीन घोड़ों और उसके द्वारा दास (भृत्य) बनाये गये पाँच ब्राह्मणपुत्रों को छुड़ाकर ले आये हो। तुम ऐसे क्यों न होंगे ? राजपूताने के क्षत्रियों की कुल-परम्परा ही ऐसी है। उसी समय पुनः मर्मर ध्वनि तथा पैरों की आहट सुनाई पड़ी। इसके अनन्तर रुककर ब्रह्मचारी-गुरु ने स्वयं उठकर एक अत्यन्त ऊँचे शिलाखण्ड पर चढ़कर चतुरतापूर्वक अर्थात् सावधानी से चारों ओर देखते हुए भी पैरों की आहट का कोई कारण नहीं देखा। अतः पुनः एकाग्र चित्त से भलीभाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा कि कुटी के समीप की गृहवाटिका के केलों के समूह में दो या तीन पेड़ अधिकतर हिल रहे हैं।

टिप्पणी—इस गद्यांश में आश्रमवासी मुनियों तथा ब्रह्मचारियों की सतर्कता, राजनीति-निपुणता एवं वीरता का दिग्दर्शन कराया गया है। राजपूत के क्षत्रियों की वीरता से गौरसिंह की वीरता का प्रतिपादन किया गया है, एतावता यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है ॥ ३१ ॥

तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीर-वलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्तहस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-विलम्बमानान् वक्षुश्चुम्बिनः कुटिल-कचान् वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्, मुनिवेषोऽपि किञ्चित् कोप-कषायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृपण-कृपाणो महादेवमारिराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररसद्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्च लता-

प्रतान-वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धानं हरित-कञ्चुकं श्याम-वसनानद्ध-कटितट-कर्बुराधोवसनम्, काकासनेनोपविष्टम्, रम्भालवाल-लग्नाधोमुख-खड्गत्सरुन्यस्त-विपर्यस्त-हस्त-युगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली-किसलयानि मलिनयन्तम्, नवाङ्कुरित-श्मश्रु-श्रेणि-च्छलेन कन्यकापहरण-पङ्क-कलङ्कपङ्क-कलङ्किताननम्, विंशतिवर्ष-कल्पं यवनयुवकम्। ततः परस्परं चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य, उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेवं सञ्जाताः परस्परमालापाः।

व्याख्या—तदेव=एतदेव, संशयस्थानम्=सन्देहास्पदम्, इति=एवम्, अङ्गुल्या=अङ्गुलिसङ्केतेन, निर्दिश्य=सन्दर्श्य, कुटीरवलीके=पर्णशालापटले, गोपयित्वा=गोपनं विधाय, स्थापितानाम्=सुरक्षितानाम्, असीनाम्=कृपाणानाम्, एकम्=अन्यतमम्, आकृष्य=समादाय, रिक्तहस्तेनैव=शून्यहस्तेनैव, मुनिना=ब्रह्मचारिगुरुणा, पृष्ठतोऽनुगम्यमानः=पृष्ठभागतोऽनुसृतः सन्, कपोलतलविलम्बमानान्=गण्डतललम्बमानान्, चक्षुश्चुम्बिनः=लोचनसंस्पर्शिनः, कुटिलकचान्=वक्रकेशान्, वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्=सव्येतरहस्ताङ्गुलिभिर्निवारयन्, मुनिवेषोऽपि=साधुवेषोऽपि, किञ्चित्कोपकषायितनयनः=ईषत्क्रोधरक्तलोचनः, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणः=हस्तकम्पितदयाविरहितासिः, महादेवम्=शिवम्, आरिराधयिषुः=सेवितुमिच्छुः, तपस्विवेषोऽर्जुन इव=तापसवेषधारि पार्थं इव, शान्तवीररसद्वयस्नातः=शमोत्साहनिष्पन्नरसयुगलावगाहितः, सपदि=सत्वरम्, समागतवान्=समागच्छत्, तन्निकटे=निर्दिष्टस्थानसमीपे, अपश्यत्=अवलोकयत्, च=पुनः, लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयस्य=व्रततिसूक्ष्मतन्तुविस्तारवलयितकदलीस्तम्भत्रयस्य, मध्ये=आभ्यन्तरे, नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानम्=हरितवसनांशवलयितशिरोभागम्, हरितकञ्चुकम्=हरितचोलकम्, श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम्=कृष्णपटानद्धकटिभागकर्बुराधोवस्त्रम्, काकासनेनोपविष्टम्=वायसासनेन तिष्ठन्तम्, रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्=कदल्यावापलग्ननिम्नमुखासिमुष्टिकोपरिधृतविपर्यस्तकरद्वयम्, लशुनगन्धिभिः=रसोनगन्धिभिः, निःश्वासैः=श्वासैः, कदलीकिसलयानि=रम्भा-

पलाशान्, मलिनयन्तम्=दूषयन्तम्, नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन=प्रत्यग्र-समुदितश्मश्रुपङ्क्तिव्याजेन, कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कपङ्ककलङ्कितानननम्=वालिकाचौर्यपङ्कपङ्किलवदनम्, विंशतिवर्षकल्पम्=विंशतिवर्षदेशीयम्, यवन-युवकम्=तुरुष्कयुवानम् । ततः=दर्शनोत्तरम्, परस्परम्=अन्योन्यम्, चाक्षुषे=चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षे, सम्पन्ने=जाते, दृष्टोऽहम्=अवलोकितोऽहम्, इति=एवम्, निश्चित्य=निश्चयं कृत्वा, उत्प्लुत्य=उत्पत्य, कोशात्=असिरक्षार्थ-निर्मितसाधनविशेषात्, कृपाणम्=खड्गम्, आकृष्य=समादाय, युयुत्सुः=योद्धुमिच्छुः, सोऽपि=यवनोऽपि, सम्मुखम्=गौरसिंहसमक्षम्, अवतस्थे=संस्थितो बभूव । ततः=अवस्थानानन्तरम्, तयोः=गौरसिंहयवनयुवकयोः, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, सञ्जाताः=सम्पन्नाः, परस्परम्=अन्योन्यम्, आलापाः=वार्तालापाः ।

समासः—संशयस्य स्थानं संशयस्थानम् । कुटीरस्य वलीके कुटीरवलीके । रिक्तः हस्तः यस्यासौ रिक्तहस्तः, तेन रिक्तहस्तेन । कपोलस्य तले विलम्बमानान् कपोलतलविलम्बमानान् । कुटिलाश्च ते कचाश्च, तान् कुटिलकचान् । वामस्य करस्य अङ्गुलिभिः वामकराङ्गुलिभिः । कोपेन कषायिते नयने यस्य सः कोपकषायितनयनः । करे कम्पितः कृपाकृपणः कृपाणो यस्य सः करकम्पित-कृपाकृपणकृपाणः । तपस्विनां वेषो यस्य सः तपस्विवेषः । शान्तश्च वीरश्च शान्तवीरौ, तयोः रसयोः द्वये स्नातः शान्तवीररसद्वयस्नातः । लतानां प्रतानानि लताप्रतानानि, तेषां वितानम्, तेन वेष्टितम्, रम्भास्तम्भानां त्रितयम्, तस्य लताप्रतानवितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयस्य । नीलं च वस्त्रखण्डञ्च, तेन वेष्टितो मूर्धा यस्य, तं नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानम् । हरितं कञ्चुकं यस्य, तं हरितकञ्चुकम् । श्यामेन वसनेन आनद्धं कटितटे कर्वुरम् अधोवसनं यस्य, तं श्यामवसनानद्धकटितटकर्वुराधोवसनम् । काकानाम् आसनेन काकासनेन । रम्भाया आलवाले लग्नस्य अधोमुखस्य खड्गस्य करौ न्यस्तं विपर्यस्तं हस्तयोः युगलं येन, तं रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम् । नवाङ्कुरितायाः श्मश्रुश्रेण्याः छलेन नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन । कन्यकायाः अपहरणरूपं यत् पङ्कम् तस्य यः कलङ्कः, स एव पङ्कः, तेन कलङ्कितम् आननं यस्य, तं कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कपङ्ककलङ्कितानननम् । यवनस्य युवकं यवन-युवकम् ।

कोषः—'विचिकित्सा तु संशयः । सन्देहद्वापरौ' इत्यमरः । 'अङ्गुल्यः

करशाखाः स्युः' इत्यमरः। 'वलीकनीध्रे पटलप्रान्ते' इत्यमरः। 'खड्गे तु निस्त्रिंशचन्द्रहासासिरिष्टयः। कौक्षेयको मण्डलाग्रः करवालः कृपाणवत्' ॥ इत्यमरः। 'लोचनं नयनं नेत्रमीक्षणं चक्षुरक्षिणी। दृग्दृष्टी' इत्यमरः। 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः। 'स्राग्झटित्यञ्जसाऽऽह्नाय द्राङ् मङ्क्षु सपदि द्रुते' 'सद्यः सपदि तत्क्षणे' इति चामरः। 'समीपे निकटासन्न-सन्निकृष्टसनीडवत्। सदेशाभ्याशसविधसमर्यादसवेशवत् ॥ उपकण्ठान्तिकाभ्य-र्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्' इत्यमरः। 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः। 'कदली वारणबुसा रम्भा मोचांऽशुमत्फला। काष्ठीला' इत्यमरः। 'चैलं वसन-मंशुकम्' इत्यमरः। 'चित्रं किर्मीरकल्माषशबलैताश्च कर्बुरे' इत्यमरः। 'स्यादालवालमावाल' इत्यमरः। 'त्सरुः खड्गादिमुष्टौ' इत्यमरः। 'अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मा' इत्यमरः। 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः।

व्याकरणम्—निर्दिश्य—निर्+दिश्+क्त्वा+ल्यप्। गोपयित्वा—गुप्+णिच्+क्त्वा। आकृष्य—आ+कृष्+ल्यप्। अनुगम्यमानः—अनु+गम्+णिच्+शानच्। अपसारयन्—अप+सृ+णिच्+शतृ। आरिराधयिषु—आ+राध्+सन्+उ। आनद्ध—आ+नध्+क्त। उत्प्लुत्य—उत्+प्लुङ्+क्त्वा+ल्यप्। युयुत्सुः—युध्+सन्+उ। अवतस्थे—अव+स्था+लिट्।

शब्दार्थ—तदेव=वही, संशयस्थानम्=सन्देह का स्थान, इति=इस प्रकार, अङ्गुल्या=अङ्गुलि से, निर्दिश्य=निर्देश करके, कुटीरवलीके=कुटीर की ओरी में, गोपयित्वा=छिपाकर, स्थापितानाम्=रखी हुई, असिनाम्=तलवारों में से, एकम्=एक को, आकृष्य=खींचकर, रिक्तहस्तेनैव=खाली हाथ ही, मुनिना=ब्रह्मचारी गुरु के द्वारा, पृष्ठतः=पीछे से, अनुगम्यमानः=अनुगमन किये जाते हुए, कपोलतलविलम्बमानान्=गालों तक लटकने वाले, चक्षुश्चुम्बिनः=नयनों को संस्पर्श करने वाले, कुटिलकचान्=वक्र केशों को, वामकराङ्गुलिभिः=बाँये हाथ की अँगुलियों से, अपसारयन्=दूर हटाता हुआ, मुनिवेषोऽपि=साधु का वेष धारण करने पर भी, किञ्चित्कोपकषायितनयनः=कुछ क्रोध से लाल नेत्रों वाला, करकम्पितकृपाकृपणकृपाणः=हाथ में हिलती हुई एवं निर्दय तलवार को लिये हुए, महादेवम्=भगवान् शङ्कर की, आरिराधयिषुः=आराधना करने की इच्छा वाले, तपस्वि-

वेषोऽर्जुन इव=तपस्वी वेषवाले अर्जुन के समान, शान्तवीररसद्वयस्नात:= शान्त और वीर—दो रसों में डूबा हुआ, सपदि=शीघ्र ही, समागतवान्= आया, तन्निकटे=उसके निकट या समीप, अपश्यच्च=और देखा, लताप्रतान-वितानवेष्टितरम्भास्तम्भत्रितयस्य=लताओं की विस्तृत बेलों से समाच्छादित केले के तीन पेड़ों के, मध्ये=बीच में, नीलवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धानम्=नीले वस्त्र के टुकड़े से शिर ढँके हुए, हरितकञ्चुकम्=हरे रंग का कुर्ता धारण किये हुए, श्यामवसनानद्धकटितटकर्बुराधोवसनम्=काले कपड़े को कमर में बाँधे हुए और उसके नीचे चितकबरे रंग का अधोवस्त्र (लुङ्गी) पहने हुए, काकासनेनोपविष्टम्=काक-आसन से बैठे हुए, रम्भालवाललग्नाधोमुखखड्गत्सरुन्यस्तविपर्यस्तहस्तयुगलम्=केले के थाले पर नीचे मुखवाली तलवार की मुट्ठी पर दोनों हाथों को उलटे रखे हुए, लशुनगन्धिभिर्निःश्वासैः=लहसुन की गन्धवाले निःश्वासों से, कदलीकिसलयानि=केले के पत्तों को, मलिनयन्तम्=दूषित करते हुए, नवाङ्कुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन=अभिनव थोड़े-थोड़े से निकलने वाली मूँछों की पंक्तियों के व्याज से, कन्यकापहरणपङ्ककलङ्कपङ्ककलङ्किताननम्=कन्या के अपहरण रूप कीचड़ के कलङ्क रूप पङ्क से कलङ्कित मुखवाले, त्रिंशतिवर्षकल्पम्=लगभग बीस वर्ष की उम्र वाले, यवनयुवकम्=मुसलमान के लड़के को। ततः=तदनन्तर, परस्परं=आपस में, चाक्षुषे सम्पन्ने=चक्षुरिन्द्रिय से सम्पर्क हो जाने पर अर्थात् देख लिये जाने पर, दृष्टोऽहम्=मैं देख लिया गया हूँ, इति=ऐसा, निश्चित्य=निश्चय कर, उत्प्लुत्य=उछल करके, कोशात्=म्यान से, कृपाणम्=तलवार को, आकृष्य= खींचकर, युयुत्सुः=युद्ध करने की इच्छावाला, सोऽपि=वह भी, सम्मुखम्= सामने, अवतस्थे=स्थित हो गया। ततः=इसके बाद, तयोः=उन दोनों में, सञ्जाता=हुई, परस्परम्=आपस में, आलापाः=बात-चीत।

हिन्दी—'सन्देह का स्थान वही है' ऐसा अङ्गुलि से निर्दिष्ट कर, कुटीर की छप्पर की ओरी में छिपाकर रखी गई तलवारों में से एक को खींचकर, ख़ाली हाथ वाले मुनि के द्वारा पीछे से अनुगमन किया जाता हुआ, कपोलों तक लटकने वाले तथा लोचनों को संस्पर्श करने वाले वक्र केशों को बाँयें हाथ की अङ्गुलियों से दूर हटाता हुआ, मुनिवेष धारण करते हुए भी कुछ क्रोध के कारण लाल नेत्रों वाला, हाथ में प्रकम्पित एवं निर्दय तलवार को लिये हुए, भगवान् शङ्कर की समाराधना के इच्छुक तपस्वी वेषवाले अर्जुन की

तरह शान्त और वीर दोनों रसों में स्नान किये हुए, गौरसिंह तत्क्षण उस निर्दिष्ट स्थान के समीप आया और वहाँ लताओं की विस्तृत बेलों से समाच्छादित केले के तीन पेड़ों के बीच, नीले कपड़े के टुकड़े से शिर को ढँके हुए, हरे रङ्ग का कुर्ता पहने हुए, श्याम (काला) वस्त्र से कटितट को बाँधे हुए, चितकबरे रङ्ग का अधोवस्त्र (लुङ्गी) धारण किये हुए, काकासन से बैठे हुए, केले के थाले पर अधोमुख रखी तलवार की मूठ पर दोनों हाथ उलटे रखे हुए, लहसुन की दुर्गन्ध से समन्वित निःश्वासों से केले के कोमल पत्तों को मलिन करते हुए, अभिनवाङ्कुरित श्मश्रु (मूँछ) की रेखा के बहाने कन्या के अपहरण रूप कीचड़ के कलङ्कपङ्क से कलङ्कित मुखवाले, लगभग बीस वर्ष की अवस्था वाले एक मुसलमान युवक को देखा। तदनन्तर आपस में दोनों की आँखे मिल जाने पर—'मैं देख लिया गया हूँ' ऐसा निश्चय करके, उछलकर, म्यान से तलवार खींचकर, लड़ने की इच्छा वाला वह मुसलमान युवक भी सामने खड़ा हो गया। इसके अनन्तर गौरसिंह और उस युवक में वक्ष्यमाण प्रकार से बातचीत हुई।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड से विदित होता है कि तत्कालीन आश्रमवासी तपस्वी भी धर्म और देश की रक्षा के लिए युद्ध करने को सदैव तत्पर रहते थे। यहाँ गौरसिंह का अत्यन्त सजीव वर्णन किया गया है। कृपाण धारण करने के कारण वीरता और साधुवेष से शान्ति की प्रतीति होती है। इसीलिये वीर और शान्त—इन दोनों रसों में स्नान किये हुए की तरह बतलाया गया है। गौरसिंह की समानता अर्जुन से किये जाने के कारण यहाँ उपमालंकार है। इस गद्यांश में अनेक स्थानों पर अनुप्रास का सुन्दर चित्रण किया गया है, इससे चित्रात्मकता द्योतित होती है ॥ ३२ ॥

गौरसिंहः—कुतो रे यवन-कुल-कलङ्क !

यवन-युवकः—आः ! वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः ? भारतीय-कन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृङ्ग-लाङ्गूल विहीनानां हिन्दुपद-व्यवहार्याणां च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः—[सक्रोधं विहस्य] वयमपि तु स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः शिवस्य गणा अत्रैव निवसामः, तत् सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घ-दाव-दहने पतङ्गायितोऽसि।

यवनयुवकः—अरे रे वाचाल ! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समा-

यातां ब्राह्मण-तनयां सपदि प्रयच्छथ, तत् कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजङ्गिन्या दष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवत्स्यथ ।

व्याख्या—गौरसिंहः—रे यवनकुलकलङ्क !=हे यवनवंशकलङ्कभूत ! कुतः=अत्र कस्मात् स्थानात् समागतोऽसि ?

यवनयुवकः—आः=इति खेदे, वयमपि =यवना अपि, कुतः=कुत्रत्यः, इति=एवम्प्रकारेण, प्रष्टव्याः=प्रश्नस्य विषयाः सन्ति किम् ? भारतीय-कन्दरिकन्दरेष्वपि=भारतवर्षीयशैलगह्वरेष्वपि, वयम् = यवनाः, विचरामः= पर्यटनं कुर्मः, शृङ्गलाङ्गूलविहीनानाम्=विषाणपुच्छविरहितानाम्, हिन्दुपद-व्यवहार्याणाम्=हिन्दुपदवाच्यानाम्, च=पुनः, युष्मादृक्षाणाम्=भवत्तुल्या-नाम्, पशूनाम्=चतुष्पदानाम्, आखेटक्रीडया=मृगयाखेलया, रमामहे= मनोरञ्जनं विदधामः ।

गौरसिंहः—(सक्रोधं=सकोपम्, विहस्य=हासं विधाय) वयमपि= आश्रमनिवासिनः हिन्दवोऽपि, स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः=निजक्रोडागतप्राणि-वृत्तयः, शिवस्य=शङ्करस्य, गणाः=रुद्रादयः, अत्रैव=इहैव, निवसामः= वासं कुर्मः, तत्=तस्माद्धेतोः, सुप्रभातमद्य=सुदिवसोऽद्य, स्वयमेव=आत्म-नैव, त्वम्=यवनबालकः, दीर्घदावदहने=तीव्रदावानले, पतङ्गायितोऽसि= पतङ्गमिव समाचरसि ।

यवनयुवकः—अरे रे वाचाल !=हे बहुभाषणशील ! ह्यः=विगतायाम्, रात्रौ=रजन्याम्, युष्मत्कुटीरे=भवदुटजे, रुदतीम्=क्रन्दन्तीम्, समायाताम्= आगतवतीम्, ब्राह्मणतनयाम्=विप्रसुताम्, सपदि=तत्क्षणमेव, प्रयच्छद्य= दत्थ, तत्कदाचित्=तस्माद्धेतुना केनापि प्रकारेण, दयया=कृपया, जीवतोऽपि= अमृतोऽपि, त्यजेयम्=मुञ्चेयम्, अन्यथा, मदसिभुजङ्गिन्या=मत्करवाल-सर्पिण्या, दंष्टाः=कर्तिताः, क्षणात्=मुहूर्तानन्तरम्, कथावशेषाः=नाममात्रा-वशेषाः, संवत्स्यथ=वर्तिष्यध्वे ।

समासः—कन्दरा सन्ति अस्मिन् इति कन्दरी, भारतीयाः कन्दरिणः, तेषां कन्दरेषु भारतीयकन्दरिकन्दरेषु । शृङ्गं च लाङ्गूलं च शृङ्गलाङ्गूले, ताभ्यां विहीनाः, तेषां शृङ्गलाङ्गूलविहीनानाम् । आखेट एव क्रीडा, तया आखेट-क्रीडया । स्वस्य अङ्के आगताः सत्त्वाः जीवा एव वृत्तिर्येषां ते स्वाङ्कागत-

सत्त्ववृत्तयः। शोभनं प्रभातमिति सुप्रभातम्। मम असिः ममासिः, स एव भुजङ्गिनी, तया मदसिभुजङ्गिन्या। कथैव अवशेषा येषां ते कथावशेषाः।

कोषः—'शृङ्गं प्राधान्यमान्वोश्च' इत्यमर। 'पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले' इत्यमरः। 'उत्सङ्गचिह्नयोरङ्कः' इत्यमरः। 'द्रव्यासुव्यवसायेषु सत्त्वमस्त्री तु जन्तुषु' इत्यमरः। 'दवदावौ वनारण्यवह्नी' इत्यमरः। 'हिरण्यरेता हुतभुग्दहनो हव्यवाहनः' इत्यमरः। 'स्याज्जल्पाकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्ह्यवाक्' इत्यमरः। 'विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी। तमिस्रा तामसी रात्रिः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—प्रष्टव्याः—प्रच्छ + तव्य। सुप्रभातम्—शोभनं प्रभातमिति विग्रहः, 'कुगतिप्रादयः' इति प्रादिसमासः। पतङ्गायितः—पतङ्ग इवाचरितवानिति, पतङ्ग + क्यङ् + क्त। रुदती—रुद् + शतृ + ङीप्। दंष्टाः—दंश + क्त। संवत्स्यंथ—सम् + वृतु + लृट् 'वृद्भ्यः स्यसनोः' से परस्मैपद और 'न वृद्भ्यश्चतुर्भ्यः' से इट् का निषेध।

शब्दार्थ—कुतः = कहाँ से, रे = सम्बोधनसूचक पद, यवनकुलकलङ्कः ! = मुसलिम वंश के कलङ्कस्वरूप ! आः = खेदसूचक, वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः = हम भी कहाँ से आये हैं यह पूछना चाहिये अर्थात् नहीं। भारतीयकन्दरिकन्दरेष्वपि = भारतीय पहाड़ों की कन्दराओं में भी, वयम् = हम यवनयुवक, विचरामः = भ्रमण करते हैं। शृङ्गलाङ्गूलविहीनानाम् = सींग-पूँछ से विहीन, हिन्दुपदव्यवहार्याणाम् = हिन्दू नाम से कहे जाने वाले, युष्मादृक्षाणाम् = तुम्हारे समान, पशूनाम् = पशुओं के, आखेटक्रीडया = शिकार के खेल से, रमामहे = मनोरञ्जन करते हैं। सक्रोधम् = क्रोध के साथ, विहस्य = हँसकर, वयमपि तु = हम आश्रमनिवासी हिन्दू लोग भी, स्वाङ्कागतसत्त्ववृत्तयः = अपनी गोद में आये हुए प्राणी ही वृत्ति (आहार) है जिनकी, शिवस्य = शङ्कर के, गणाः = रुद्र आदि गण, अत्रैव = यहीं, निवसामः = निवास करते हैं, तत्सुप्रभातमद्य = तो आज का अच्छा प्रातःकाल है, स्वयमेव = अपने से ही, त्वम् = तुम यवनयुवक, दीर्घदावदहने = दीर्घदावानल में, पतङ्गायितोऽसि = पतङ्ग के समान आचरण कर रहे हो। अरे रे वाचाल ! = हे बहुत अनर्थक प्रलाप करने वाले ! ह्यो रात्री = विगत रात्रि में, युष्मत्कुटीरे = तुम्हारी कुटी में, रुदतीं समायाताम् = विलाप करती आई हुई, ब्राह्मणतनयाम् = विप्र-कन्या को, सपदि = तत्क्षण, प्रयच्छय = दे दो, तत्कदाचित् = तो शायद, दयया = दया के

कारण, जीवतोऽपि = जीवित भी, त्यजेयम् = छोड़ दूँ, अन्यथा = नहीं तो, मदसिभुजङ्गिन्या = मेरी तलवार रूपी सर्पिणी से, दंष्टाः = डँसे गये, क्षणात् = एक क्षण में, कथावशेषाः = कथामात्र अवशेष, संवत्स्यंथ = रहोगे।

हिन्दी—गौरसिंह—अरे यवनकुलकलङ्क ! यहाँ कहाँ से आया ?

यवनयुवक—अरे ! हमसे भी 'कहाँ से आये' यह पूछना चाहिये ? हम यवन लोग भारत वर्ष की पर्वत-गुफाओं में भी विचरण करते हैं और सींग-पूँछ विरहित हिन्दू नामधारी तुम जैसे पशुओं का शिकार कर आनन्द मनाते हैं।

गौरसिंह—(क्रोध के साथ हँसकर) अपने अङ्क (गोद) में स्वतः आये हुए दुष्ट प्राणियों के ऊपर ही जीवित रहने वाले शिव के गण हम आश्रम-वासी हिन्दू लोग भी यहीं रहते हैं। तो आज का प्रभात शुभ रहा, क्योंकि तुम स्वयं ही तीव्र दावानल में पतङ्ग के समान जलने के लिए आ गये हो।

यवनयुवक—अरे रे वाचाल ! कल रात्रि में विलाप करती आई हुई तुम्हारी कुटी में स्थित ब्राह्मण की पुत्री को तुरन्त दे दो। तब कदाचित् दया करके तुम जीवित ही छोड़ दिये जाओ, नहीं तो क्षण मात्र में मेरे इस कृपाण रूपी सर्पिणी से डँसे जाने पर तुम्हारी कथामात्र अवशेष रह जायेगी।

टिप्पणी—इस गद्यांश में 'पतङ्गायितोऽसि' इस स्थल पर लुप्तोपमा अलंकार है। 'मदसिभुजङ्गिन्या' इस पद में तलवार में सर्पिणी का आरोप किये जाने से रूपकालङ्कार भी दृष्टिगोचर होता है ॥ ३३ ॥

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्य्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेकं विकटखड्गमाकृष्य त्सरौ गृहीत्वा कन्यकां रक्षन्, तदध्युषित-कुटीर-निकट एव तस्थौ।

गौरसिंहस्तु 'कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवन-वध-व्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम स्प्रष्टुम् ? तद् यावत् तव कवोष्ण-शोणित-तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत् कर्द्दनं वा उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद् विधेहि' इत्युक्त्वा व्यालीढमर्य्यादया सज्जः समतिष्ठत।

व्याख्या—कलकलम् = कोलाहलम्, एतम् = समीपस्थं गौरसिंहयवनयुव-

कोद्भूतम्, आकर्ण्य=निशम्य, श्यामवटुरपि=कृष्णब्रह्मचारिरपि, कन्यासमीपादुत्थाय=बालिकान्तिकादुत्थानं कृत्वा, दृष्ट्वा च=विलोक्य च, हन्तुमेतम्=मारयितुममुम्, यवनवराकम्=तुरुष्कपामरम्, पर्य्याप्तोऽयम्=समर्थोऽयम्, गौरसिंह इति=गौरवर्णः क्षत्रियजातीयः ब्रह्मचारी इति, मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित्=अन्यो जनो न आयातु, कन्यकामपजिहीर्षुरिति=बालिकापहरणाभिलाषुक इति, वलीकात्=पटलात्, एकम्=अन्यतमम्, विकटखड्गम्=भयङ्करकृपाणम्, आकृष्य=समादाय, त्सरौ=मुष्टिकायाम्, गृहीत्वा=धारयित्वा, कन्यकाम्=बालिकाम्, रक्षन्=गोपयन्, तदध्युषितकुटीरनिकटे=बालिकासेवितपर्णशालासमीपे, एव, तस्थौ=स्थितो बभूव।

गौरसिंहस्तु=एतन्नामको ब्रह्मचारी तु, कुटीरान्तः=पर्णशालाभ्यन्तरम्, कन्यकाऽस्ति=बालिका विद्यते, सा च=बालिका च, यवनवधव्यसनिनि=तुरुष्कहननरसिके, मयि=गौरसिंहे, जीवति=जीविते सति, न शक्या=न क्षमा, द्रष्टुमपि=अवलोकयितुमपि, किं नाम=का चर्चा, स्प्रष्टुम्=स्पर्शं कर्तुम्? तत्=तस्मात्, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, तव=यवनयुवकस्य, कवोष्णशोणिततृषितः=कदुष्णरक्तपिपासितः, एषः=अयम्, करस्थ इति भावः, चन्द्रहासो न चलति=खड्गो न पतति, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, कूर्दनम्=उत्पतनम्, वा=अथवा, उत्फालम्=उद्योगं वा, यच्चिकीर्षसि=यदिच्छसि, तद् विधेहि=तत्कुरु, इति=एवम्प्रकारेण, उक्त्वा=अभिधाय, व्यालीढमर्यादया=युद्धावस्थानविशेषमर्यादया, सज्जः=उद्यतः सन्, समतिष्ठत=स्थितवान्।

समासः—कन्यायाः समीपात् कन्यासमीपात्। विकटश्च खड्गश्च, तं विकटखड्गम्। तया अध्युषितस्य कुटीरस्य निकटे तदध्युषितकुटीरनिकटे। यवनानां वध एव व्यसनं यस्य, तस्मिन् यवनवधव्यसनिनि। कवोष्णस्य शोणितस्य तृषितः कवोष्णशोणिततृषितः। व्यालीढस्य मर्यादया व्यालीढमर्यादया।

कोषः—'कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वति' इत्यमरः। 'चन्द्रहासासिरिष्टयः' इत्यमरः। 'त्सरुः खड्गादिमुष्टौ' इत्यमरः। 'वलीकनीध्रे पटलप्रान्ते' इत्यमरः।

व्याकरणम्—हन्तुम्—हन्+तुमुन्। पर्याप्तः—परि+अप्+क्त। मा स्म गमत्—'स्म' के योग में लुङ् लकार तथा 'मा' के योग में अट् का निषेध है।

अपजिहीर्षुः—अप् + हृ + सन् + उ। रक्षन्—रक्ष् + शतृ। अध्युषित – अधि + वस् (व = उ सम्प्रसारण) + क्त। कुटीरः—कुटी + रः। तस्थौ—स्था + लिट्। शक्या – शक् + यत् + टाप्। द्रष्टुम्—दृश् + तुमुन्। कूर्दनम् – कूर्द + ल्युट्। उत्फालनम्—उद् + फाल् + ल्युट्। चिकीर्षसि—कृ + सन् + लट् + सिप्। समतिष्ठत—सम् + स्था + लङ्।

शब्दार्थ—कलकलमेतम्—इस कोलाहल को, आकर्ण्य = सुनकर, श्यामबटुरपि = श्याम वर्ण का ब्रह्मचारी भी, कन्यासमीपात् = बालिका के पास से, उत्थाय = उठकर, दृष्ट्वा च = और देखकर, हन्तुम् = मारने के लिए, एतम् = इस, यवनवराकम् = क्षुद्र यवन को, पर्याप्तोऽयम् = यह पूर्ण समर्थ है, गौरसिंहः = गौरवर्ण का ब्रह्मचारी, इति = इसलिये, मा स्म गमत् = न पहुँच जाये, अन्योऽपि = दूसरा भी, कश्चित् = कोई, कन्यकाम् = बालिका को, अपजिहीर्षुः = अपहरण करने की इच्छा वाला, इति = अतः, वलीकात् = छप्पर की ओरी से, एकम् = एक, विकटखड्गम् = भयङ्कर तलवार को, आकृष्य = खींचकर, त्सरौ = मूँठ को, गृहीत्वा = पकड़कर, कन्यकाम् = बालिका की, रक्षन् = रक्षा करता हुआ, तदध्युषितकुटीरनिकटे एव = उस कन्या से युक्त कुटीर के समीप ही, तस्थौ = स्थित हो गया।

गौरसिंहस्तु = गौर वर्ण का ब्रह्मचारी, कुटीरान्तः = कुटी के मध्य में, कन्यकाऽस्ति = बालिका है, सा च = और वह कन्या, यवनवधव्यसनिनि = यवनों के वध के व्यसनी, मयि = मेरे, जीवति = जीवित रहने पर, न शक्या = सम्भव नहीं है, द्रष्टुमपि = देखने के लिए भी, किं नाम = क्या चर्चा है, स्प्रष्टुम् = स्पर्श करने के लिए, तद् = इस कारण, यावत् = जब तक, तव = तुम्हारे, कवोष्णशोणिततृषितः = कुछ-कुछ गरम खून की प्यासी, एषः = यह, चन्द्रहासः = तलवार, न चलति = नहीं चलती है, तावत् = तब तक, कूर्दनं वा = कूदना अथवा, उत्फालम् = उछलना, यच्चिकीर्षसि = जो करना चाहते हो, तद् विधेहि = वह करो, इति = ऐसा, उक्त्वा = कहकर, व्यालीढमर्यादया = युद्ध-विज्ञान के विशेष ढङ्ग से, सज्जः = तैयार, समतिष्ठत = स्थित हो गया।

हिन्दी—इस कोलाहल को सुनकर श्याम वर्ण का ब्रह्मचारी भी बालिका के पास से उठकर और देखकर कि क्षुद्र यवनयुवक को मारने के लिए यह गौरसिंह अकेले पूर्ण समर्थ है, यह विचार कर कन्या का अपहरण करने की इच्छा से कोई अन्य यवनयुवक न आ जाय, इसलिये छप्पर की ओरी से एक

भयंकर तलवार खींचकर उसकी मूंठ पकड़कर कन्या की रक्षा करता हुआ बालिका से युक्त कुटीर के समीप खड़ा हो गया।

और गौरसिंह—कुटी के अन्दर कन्या है और यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीवित रहते उसे छूने को कौन कहे, कोई देख भी नहीं सकता। जब तक तुम्हारे कुछ-कुछ गरम खून की प्यासी यह तलवार नहीं चलती है, तब तक ही तुम जो कुछ भी उछल-कूद करना चाहते हो, वह कर लो। यह कहकर वह युद्ध-विधान के विशेष ढङ्ग से पैंतरा बनाकर तैयार हो गया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में महाकवि ने गौरसिंह और श्यामबटु के शौर्य एवं विवेक का दिग्दर्शन कराया है ॥ ३४ ॥

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाणमार्गानङ्गीकृतवतः, दिनकर-कर-स्पर्श-चतुर्गुणीकृत-चाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः, यवन-युवक-हतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलित-क्लेद-सञ्जात-स्वेदजल-जालं विशिथिल-कच-कुल-मालं भग्न-भ्रू-भयानक-भालं शिरश्चिच्छेद।

व्याख्या—ततः=व्यालीढमर्यादयाऽवस्थानानन्तरम्, गौरसिंहः=गौरबटुः, दक्षिणान्=सव्यान्, वामांश्च=सव्येतरांश्च, परश्शतान्=शताधिकान्, कृपाणमार्गान्=खड्गयुद्धरीतीः, अङ्गीकृतवतः=स्वीकृतवतः, दिनकरकरस्पर्श-चतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः=रविकिरणसम्पर्कचतुर्गुणीकृतप्रतिभासविशेषैः, चञ्च-च्चन्द्रहासचमत्कारैः=सञ्चरत्खड्गचमत्कारैः, चक्षूंषि=नयनानि, मुष्णतः=चोरयतः, यवनयुवकहतस्य=तुरुष्कयुवकदुष्टस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः=केनाप्यज्ञातप्रयासः, अकस्मादेव=सहसैव, स्वासिना=निजचन्द्रहासेन, कलित-क्लेदसञ्जातस्वेदजलजालम्=व्याप्तश्रमोत्पन्नघर्मजालसमूहम्, विशिथिलकच-कुलमालम्=परिभ्रष्टकेशसमूहपङ्क्तिकम्, भग्नभ्रूभयानकभालम्=छिन्नभ्रू-भीषणललाटम्, शिरः=मस्तकम्, चिच्छेद=कर्तयामास।

समासः—कृपाणस्य मार्गान् कृपाणमार्गान्। दिनकरस्य कराणां स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतं चाकचक्यं यैस्तैः दिनकरकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः। चञ्चतः चन्द्रहासस्य चमत्कारैः चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैः। यवनस्य युवकः यवनयुवकः, यवनयुवकश्चासौ हतकश्च, तस्य यवनयुवकहतकस्य। अनुपलक्षितः उद्योगः यस्य सः अनुपलक्षितोद्योगः। कलितेन क्लेदेन सञ्जातस्य स्वेदजलस्य जालं

यस्मिन् तत् कलितक्लेदसञ्जातस्वेदजलजालम् । विशिथिलाः कचानां कुलस्य माला: यस्मिन् तत् विशिथिलकचकुलमालम् । भग्नया भ्रुवा भयानकं भालं यस्मिन् तत् भग्नभ्रूभयानकभालम् ।

कोषः—'सूरसूर्यर्यमादित्यद्वादशात्मदिवाकराः' इत्यमरः । 'किरणोस्रमयूखांशुगभस्तिघृणिरश्मयः । भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम्' ॥ इत्यमरः । 'घर्मो निदाघः स्वेदः' इत्यमरः । 'ऊर्ध्वे दृग्भ्यां भ्रुवौ स्त्रियौ' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—मुष्णतः—मुष्+तसिल् । कलित—कल्+क्त । भालम्—भा+लच् । चिच्छेद—छिद्+लिट् ।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, गौरसिंहः=गौरवर्ण का ब्रह्मचारी, दक्षिणान्=दाँयें, वामान्=बाँयें, परश्शतान्=सैंकड़ों, कृपाणमार्गान्=तलवार चलाने की विधाओं को, अङ्गीकृतवतः=स्वीकार करने वाले, दिनकरकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैः=भास्कर के किरणों के संस्पर्श से चौगुना कर दिया गया है चाकचक्य जिसका (चमत्कार का विशेषण है), चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारैः=चलती हुई तलवार के चमत्कार से, चक्षूंषि=नेत्रों को, मुष्णतः=चौंधियाने वाले, यवनयुवकहतकस्य=दुष्ट यवनयुवक के, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः=किसी के द्वारा जिसका उद्योग नहीं देखा गया है, स्वासिना=अपनी तलवार से, कलितक्लेदसञ्जातस्वेदजलजालम्=परिश्रम के कारण समुत्पन्न पसीने की बूंदों से व्याप्त (शिर का विशेषण है), विशिथिलकचकुलमालम्=बिखरे हुए बालों वाले, भग्नभ्रूभयानकभालम्=विच्छिन्न भौहों से भयानक भालवाले, अकस्मादेव=सहसा, शिरः=मस्तक को, चिच्छेद=काट डाला ।

हिन्दी—तदनन्तर गौरसिंह ने दाँये-बाँये सैंकड़ों कृपाणमार्ग को अङ्गीकार करने वाले, भगवान् भास्कर की किरणों के संस्पर्श से चौगुनी किये गये चाकचिक्य वाले, चलती हुई तलवार के चमत्कार से चौंधियाई आँखों वाले उस दुष्ट यवनयुवक के श्रमजनित स्वेदकण से व्याप्त, अस्त-व्यस्त केशों वाले, विच्छिन्न भौहों से भयानक भाल वाले मस्तक को अपनी तलवार से अचानक काट डाला । उसका यह कर्तन-उद्योग कोई और देख भी नहीं पाया ।

टिप्पणी—इस गद्यांश में महाकवि ने समासशैली का प्रयोग किया है । अनुप्रास की छटा तथा चित्रात्मकता संदर्शनीय है ॥ ३५ ॥

अथ मुनिरपि दाडिम-कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढ-रुधिर-

दिग्धायां ज्वलदङ्गार-चितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियुज्यमान-भारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्ध-चालनपरं शोणित-सङ्घात-व्याजेनान्तः-स्थित-रजोराशिमिवोद्गिरन्तं कलित-सायन्तन-घनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्रचूडभक्षण-पातकेनेव ताम्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवनहतकमवलोक्य सहर्षं ससाधुवादं सरोमोद्गमं च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृत्येन मृतककञ्चुक-कटिबन्धोष्णीषादिकमन्विष्याऽऽनीतं पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश ।

इति प्रथमो निश्वासः ।

व्याख्या—अथ=यवनशिरश्छेददर्शनानन्तरम्, मुनिरपि=ब्रह्मचारिगुरुरपि, दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव=करकप्रसूनविष्टरयुक्तायामिव, गाढरुधिर-दिग्धायाम्=घनीभूतरक्तलिप्तायाम्, ज्वलदङ्गारचितायाम्=प्रज्वलत्स्फुलिङ्ग-व्याप्तायाम्, चितायाम्=शवदाहनसाधनभूतायाम्, इव=यथा, वसुधायाम्=धरायाम्, शयानम्=सुप्तम्, वियुज्यमानभारतभुवम्=वियुज्यमानहिन्दुस्थान-भूमिम्, आलिङ्गन्तमिव=आश्लिष्यन्तमिव, निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरम्=निष्प्राणीभवच्छरीरसन्धिसञ्चालनरतम्, शोणितसङ्घातव्याजेन=रुधिरव्रातछलेन, अन्तःस्थितरजोराशिमिवोद्गिरन्तम्=आभ्यन्तरस्थरजोगुणनिवहमिवोद्वमन्तम्, कलितसायन्तनघनाऽऽडम्बरविभ्रमम्=धृतसायम्भवमेघविडम्बनविलासम्, सतत-ताम्रचूडभक्षणपातकेनेव=निरन्तरचरणायुधभक्षणपापेनेव, ताम्रीकृतम्=रक्त-कृतम्, छिन्नकन्धरम्=भग्नग्रीवम्, यवनहतकम्=तुरुष्कदुष्टम्, अवलोक्य=दृष्ट्वा, सहर्षम्=सानन्दम्, ससाधुवादम्=सधन्यवादम्, सरोमोद्गमम्=सरोमाञ्चम्, च, गौरसिंहम्=यवननाशकं गौरबटुम्, आश्लिष्य=समालिङ्ग्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन=भ्रूसङ्केतमात्राऽऽदिष्टेन, भृत्येन=अनुचरेण, मृतक-कञ्चुककटिबन्धोष्णीषादिकमन्विष्याऽऽनीतम्=अपगतासुयवनाङ्गरक्षककञ्चुक-जघनपट्टिकाशिरोवेष्टनादिकमन्विष्यासादितम्, पत्रमेकम्=लेखमेकम्, आदाय=गृहीत्वा, सगणः=ससमूहः, स्वकुटीरम्=निजपर्णशालाम्, प्रविवेश=प्रविष्टः ।

समासः—दाडिमस्य कुसुमानाम् आस्तरणेन आच्छन्नायां दाडिमकुसुमास्त-रणाच्छन्नायाम् । गाढैः रुधिरैः दिग्धायां गाढरुधिरदिग्धायाम् । ज्वलद्भिः

अङ्गारैः चितायां ज्वलदङ्गारचितायाम्। वियुज्यमानां भारतस्य भुवं वियुज्यमानभारतभुवम्। निर्जीवीभवताम् अङ्गबन्धानां चालनं परं निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरम्। शोणितानां सङ्घातस्य व्याजेन शोणितसङ्घातव्याजेन। अन्तःस्थितो यो रजोराशिः, तम् अन्तःस्थितरजोराशिम्। कलितः सायन्तनस्य घनाडम्बरस्य विभ्रमं येन, तं कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमम्। सततं यत् ताम्रचूडस्य भक्षणम्, तदेव पातकं, तेन सततताम्रचूडभक्षणपातकेन। छिन्नं कन्धरं यस्य, तं छिन्नकन्धरम्। यवनश्चासौ हतकश्च, तं यवनहतकम्। हर्षेण सहितं सहर्षम्। साधुवादेन सह ससाधुवादम्। रोमोद्गमेन सह सरोमोद्गमम्। मृतकस्य कञ्चुकं कटिबन्धम् उष्णीषं चादौ यस्य तत् मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषादिकम्।

कोषः—'समौ करकदाडिमौ' इत्यमरः। 'स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम्' इत्यमरः। 'दिग्धो विषाक्तबाणे स्यात् पुंसि लिप्तेऽन्यलिङ्गकः' इति मेदिनी। 'चिता चित्या चितिः स्त्रियाम्' इत्यमरः। 'कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुधः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—आच्छन्न—आ + छद् + क्त। शयानम्—शीङ् + शानच्। वियुज्यमानम्—वि + युज् + शानच्। निर्जीवीभवत्—निर् + जीव + च्वि + भू + शतृ। उद्गिरन्तम्—उद् + गिर् + शतृ। ताम्रीकृतम्—ताम्र + च्वि + कृतम्। आश्लिष्य—आ + श्लिष् + ल्यप्।

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, मुनिरपि = ब्रह्मचारी गुरु भी, दाडिमकुसुमास्तरणाच्छन्नायाम् = अनार के पुष्पों के चादर से ढँकी हुई, गाढरुधिरदिग्धायाम् = घनीभूत शोणित से सनी हुई, ज्वलदङ्गारचितायाम् = जलते हुए अङ्गारों से व्याप्त, चितायाम् = चिता में, शयानम् = सोते हुए, वियुज्यमानभारतभुवम् = बिछुड़ती हुई भारत-वसुन्धरा को, निर्जीवीभवदङ्गबन्धचालनपरम् = निर्जीव हो रहे सन्धिबन्धों को हिलाते हुए, शोणितसङ्घातव्याजेन = रुधिर-समूह के बहाने से, अन्तःस्थितरजोराशिम् = अन्तःकरण में संस्थित रजोगुण-समूह को, उद्गिरन्तम् = उगलते हुए, कलितसायन्तनघनाडम्बरविभ्रमम् = सायन्तनीन मेघ के विभ्रम को धारण करने वाले, सततम् = निरन्तर, ताम्रचूडभक्षणपातकेनेव = मुर्गा खाने के पातक से, ताम्रीकृतम् = रक्तवर्ण को प्राप्त हुए, छिन्नकन्धरम् = कटे हुए शिर वाले, ससाधुवादम् = धन्यवाद के सहित, सरोमोद्गमञ्च = रोमाञ्चित होते हुए, आश्लिष्य = आलिङ्गन कर, भ्रूभङ्गमात्रा-

ज्ञप्तेन = भृकुटी के संकेत मात्र से आदिष्ट हुए, भृत्येन=सेवक के द्वारा, मृतककञ्चुककटिबन्धोष्णीषादिकम् = मृतक के कुर्ते, कटिबन्ध तथा पगड़ी आदि को, अन्विष्य = ढूंढ़कर, आनीतम् = लाये गये, पत्रमेकम् = एक पत्र को, आदाय = लेकर, सगणः = सपरिवार, स्वकुटीरम् = अपनी कुटी में, प्रविवेश = प्रवेश किया।

हिन्दी—इसके अनन्तर अनार के पुष्पों के आस्तरण से समन्वित-सी, घनीभूत रक्त से लिप्त, जलते अङ्गारे वाली चिता के समान पृथ्वी पर सोनेवाले अर्थात् पड़े हुए, वियुक्त होती हुई भारत-वसुन्धरा का आलिङ्गन करते हुए-से, निर्जीव होने वाले अङ्गबन्धों को हिलाते हुए, शोणित-समूह के बहाने अन्तःकरण में संस्थित रजोगुण-समुदाय को उगलते हुए से, सायंकालिक मेघाडम्बर के विलास को धारण किये हुए, मानो मुर्गा खाने के पातक से रक्तवर्ण को संप्राप्त और कटे हुए मस्तक वाले दुष्ट यवन को मुनि ने देखकर, आनन्दपूर्वक साधुवाद देते हुए रोमाञ्च से युक्त होकर गौरसिंह को आलिङ्गन कर भ्रू-सङ्केत मात्र से ही समादिष्ट भृत्य के द्वारा मृतक के कुर्ते, कटिबन्ध तथा पगड़ी आदि का अन्वेषण करके लाये गये एक पत्र को लेकर स्वजनों सहित अपनी कुटी में प्रवेश किया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में उत्प्रेक्षा, यमक, अनुप्रास आदि अलंकार का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसमें वैदर्भी रीति, प्रसाद नामक गुण और चूर्णक नामक गद्य है ॥ ३६ ॥

॥ इति प्रथमो निश्वास ॥

अथ द्वितीयो निश्वासः

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त ! हन्त !! नलिनीं गज उज्जहार ।। स्फुटकम् ।

अन्वयः—रात्रिर्गम्ष्यिति, सुप्रभातं भविष्यति, भास्वान् उदेष्यति, पङ्कजश्रीः हसिष्यति, कोशगते द्विरेफे इत्थं विचिन्तयति (सति) हा हन्त ! हन्त !! गज नलिनीम् उज्जहार ।

व्याख्या—रात्रिः=निशा, गमिष्यति=समाप्तिं यास्यति, सुप्रभातम्=शोभना प्रभातवेला, भविष्यति=आगमिष्यति, भास्वान्=सूर्यः, उदेष्यति=उदयं प्राप्स्यति, पङ्कजश्रीः=कमलानां कान्तिः, हसिष्यति=विकासमधिगमिष्यति, कोशगते=कमलकुड्मलस्थे, द्विरेफे=भ्रमरे, इत्थम्=एवम्, विचिन्तयति=विचारं कुर्वति सति, हा हन्त ! हन्त !!=खेदसूचकमव्ययपदमेतत्, गजः=हस्ती, नलिनीम्=कमलिनीम्, उज्जहार=उत्खातवान् । अप्रस्तुतप्रशंसा नाम अलङ्कारोऽत्र । वसन्ततिलका नाम वृत्तम्, तल्लक्षणं यथा—'उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः' इति ।

समासः—शोभनं प्रभातं सुप्रभातम् । भासः दीप्तयः सन्त्यस्येति भास्वान् । कोशं गतः कोशगतः, तस्मिन् कोशगते । द्वौ रेफौ (रकारौ) यस्मिन्निति द्विरेफः भ्रमरः, तस्मिन् द्विरेफे । भ्रमरपदे द्वौ रकारौ स्तः ।

कोषः—'निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा' इत्यमरः । 'भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मयः' इत्यमरः । 'भास्वान् दीप्ते रवौ' इति हैमः । 'द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमरालयः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—गमिष्यति—गम्+लृट्+तिप् । भविष्यति—भू+लृट्+तिप् । भास्वान्—भास्+मतुप् । उदेष्यति—उत्+आ+इण् गतौ+लृट्+तिप् । हसिष्यति—हस्+लृट्+तिप् । विचिन्तयति—वि+चिन्त+शतृ (सप्तमी विभक्ति) । उज्जहार—उत्+हृ+लिट्+तिप् ।

शब्दार्थ—रात्रिः=रात, गमिष्यति=जायेगी, भविष्यति=होगा,

सुप्रभातम्=सुहावना प्रभात, भास्वान्=सूर्य, उदेष्यति=उदित होगा, हसिष्यति=विकसित होगी, पङ्कजश्रीः=कमलों की शोभा, इत्थम्=इस प्रकार, विचिन्तयति=विचार करते रहने पर, कोशगते=कली के भीतर, द्विरेफे=भ्रमर के, हा हन्त ! हन्त !!=खेद है, दुःख है, नलिनीम्=कमलिनी को, गज=हाथी, उज्जहार=उखाड़ दिया।

हिन्दी—रात बीतेगी, सुहावना सबेरा होगा, सूर्य उदित होगा और कमलों की शोभा खिल उठेगी अर्थात् कमल प्रफुल्लित हो जायेंगें। कमल की कली के अन्दर बन्द भ्रमर यह सोच ही रहा था कि हाय ! हाथी ने कमलिनी को ही उखाड़ डाला।

टिप्पणी—भौतिक सुखों की लालसा में पड़ा हुआ मानव इसी प्रकार नानाविध आशाओं की कल्पनायें करता रहता है। उसकी ये आशायें अपूर्ण ही बनी रहतीं हैं, तब तक मृत्युरूपी मतङ्गज आकर उसकी जीवन रूपी कमलिनी को उखाड़ फेंकता है अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है और वह कुछ नहीं कर पाता। प्रस्तुत प्रसङ्ग अर्थात् द्वितीय निश्वास में छल-कपट में कुशल अफजलखान वीर शिवाजी को कैद करके कीर्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से शिवाजी के पास जाता है, किन्तु उसकी कामना पूर्ण नहीं होती और वह स्वयं मारा जाता है। किसी अज्ञात कवि द्वारा लिखित यह श्लोक अतिरम्य अन्योक्ति के द्वारा इस निश्वास में वर्णन की जानेवाली उक्त घटना की ओर संकेत करता है। इस श्लोक में वैदर्भी रीति और प्रसाद नामक गुण है ॥ १ ॥

इतस्तु स्वतन्त्र-यवनकुल-भुज्यमान-विजयपुराधीश-प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीप एव प्रक्षालित-गण्डशैल-मण्डलायाः, निर्झर-वारिधारा-पूर-पूरित-प्रबल-प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-प्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बन-चञ्चुरायाः, रिङ्गत्-तरङ्ग-भङ्गोद्भूतावर्त्त-शत-भीमायाः, भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्-बकुल-कुल-कुसुम-कदम्ब-सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः कटूकुर्वन्; हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्वनीनवर्गः, पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदाम्भोधर-विडम्बनः, निरपराध-भारताऽभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमान-नीलध्वजैरुपलक्षितः, विजयपुरेश्वरस्यान्यतमः सेनानीः

अपजलखानः प्रतापदुर्गादविदूर एव शिववीरेण सहाऽऽहवद्यूतेन चिक्रीडिषुः ससेनस्तिष्ठति स्म ।

व्याख्या—इतस्तु=अस्मिन् दिशि तु, स्वतन्त्रयवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः = स्वच्छन्दतुरुष्कान्वयशास्यमानविजयपुरनामकनगरप्रशासकप्रहितः, पुण्यनगरस्य='पूना' इति नाम्ना प्रथितस्य नगरस्य, समीपे=अन्तिके, एव, प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलायाः=धौतगिरिच्युतोपलसमूहायाः, निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहायाः=स्रोतोजलधाराप्रवाहभरितबलिष्ठप्रवाहायाः, पश्चिमपारावारप्रान्तप्रसूतगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गतायाः अपि=प्रतीचीसमुद्रनिकटप्रदेशोत्पन्नपर्वतसमूहगह्वरमध्यनिःसृताया अपि, प्राच्यपयोनिधिचुम्बनचञ्चुरायाः=पूर्वसागरसंस्पर्शचपलायाः, रिङ्गत्तरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशतभीमायाः=चञ्चलोर्मिभेदोत्पन्नजलभ्रमभयङ्करायाः, भीमायाः=एतन्नामिकायाः, नद्याः=सरिद्वरायाः, अनवरतनिपतद्वकुलकुलकुसुमकदम्बसुरभीकृतमपि=निरन्तरपरिपतद्वञ्जुलगणफुल्लनिकरशोभनगन्धाया अपि, नीरम्=जलम्, वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः=प्रविशद्दानभरितहस्तिदानजलैः, कटूकुर्वन्=विरसतामापादयन्, हयहेषाध्वनिप्रतिध्वनिबधिरीकृतगव्यूतिमध्यगाध्वनीनवर्गः=घोटकनिःस्वननादप्रतिनादप्रतिनादध्वनिश्रुतिसामर्थ्यविकलीकृतक्रोशद्वयान्तरालवर्तिपथिकगणः, पटकुटीरकूटविहितशारदाम्भोधरविडम्बनः=उपकारिकाव्रातनिर्मितशरन्मेघानुकृतिकः, निरपराधभारताभिजनजनपीडनपातकपटलैः=निर्दोषभारतीयमानवपीडनपापसमूहैः, इव=यथा, समुद्धूयमाननीलध्वजैः=कम्पमाननीलपताकाभिः, उपलक्षितः=युक्तः, विजयपुरेश्वरस्य=विजयपुरशासकस्य, अन्यतमः=एकः, सेनानी=बलनायकः, अफजलखानः=एतन्नाम्ना विश्रुतः, प्रतापदुर्गात्=सिंहदुर्गात्, अविदूरे एव=समीपे एव, शिववीरेण सह=शिवराजेन साकम्, आहवद्यूतेन=युद्धदुरोदरेण, चिक्रीडिषुः=क्रीडाकरणाभिलाषुकः, ससेनः=सबलः, तिष्ठति स्म=स्थितवान् ।

समासः—स्वतन्त्रं यद् यवनकुलम्, तेन भुज्यमानस्य विजयपुरस्य अधीशेन प्रेषितः स्वतन्त्रयवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः । प्रक्षालितानि गण्डशैलानां मण्डलानि यया, तस्याः प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलायाः । निर्झराणां वारिधारायाः पूरैः पूरितः प्रबलः प्रवाहो यस्याः, तस्याः निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहायाः । पश्चिमश्चासौ पारावारः पश्चिमपारावारः, तस्य प्रान्ते यः प्रसूतः गिरीणां ग्रामः, तस्य गुहाः, तासां गर्भात् निर्गतायाः पश्चिमपारावार-

प्रान्तप्रसूतगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गतायाः। प्राच्यश्चासौ पयोनिधिश्च, तच्चुम्बने चञ्चुरायाः प्राच्यपयोनिधिचुम्बनचञ्चुरायाः। रिङ्गतां तरङ्गाणां भङ्गैः उद्भूताः ये आवर्ताः, तेषां शतैः भीमायाः रिङ्गत्तरङ्गभङ्गोद्भूतावर्तशतभीमायाः। अनवरतं निपततां वकुलकुलकुसुमानां कदम्बेन सुरभीकृतम् अनवरतनिपतद्वकुलकुलकुसुमकदम्बसुरभीकृतम्। वगाहमानानां मत्तानां मतङ्गजानां मदधाराभिः वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः। हयानां हेषा ध्वनिः, तद्ध्वनिप्रतिध्वनिभिः बधिरीकृतः गव्यूतिमध्यगः अध्वनीनवर्गः येन सः हयहेषाध्वनिप्रतिध्वनिबधिरीकृतगव्यूतिमध्यग'ध्वनीनवर्गः। पटकुटीराणां कूटैः विहिता शारदाम्भोधराणां विडम्बना येन सः पटकुटीरकूटविहितशारदाम्भोधरविडम्बनः। निरपराधानां भारताभिजनानां जनानां पीडने यत् पातकम्, तेषां पटलैः निरपराधभारताभिजनजनपीडनपातकपटलैः। समुद्धूयमानैः नीलध्वजैः समुद्धूयमाननीलध्वजैः। सेनया सहितः ससेनः।

कोषः—'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः' इत्यमरः। 'घोरं भीमं भयानकम्' इत्यमरः। 'अश्वानां हेषा ह्रेषा च निःस्वनः' इत्यमरः। 'गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगम्' इत्यमरः। 'अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि' इत्यमरः। 'उपकार्योपकारिका' इत्यमरः।

व्याकरणम्—भुज्यमानः—भुज्+शानच्। वगाहमानः—अव+गाहृ विलोडने+शानच्, 'अव' के 'अ' का 'वष्टिभागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः' इस भागुरिमत से लोप हो जाता है। प्रतिध्वनिः—प्रति+ध्वन्+इ। बधिरीकृतः—बधिर्+च्वि+कृ+क्त। गव्यूतिः—गो+यूतिः। मध्यगः—मध्ये गच्छतीति मध्यगः। समुद्धूयमानः—सम्+उत्+धूञ्+शानच्। अन्यतमः—अन्य+तमप्। सेनानी—सेनां नयति, सेना+णीञ्+क्विप्। आहवद्यूतेन—आहव एव द्यूतस्तेन। चिक्रीडिषुः—क्रीड्+सन्+उ। तिष्ठति स्म—स्म के योग में 'लिट्' के स्थान पर 'लट् स्मे' इस सूत्र से लट् लकार का प्रयोग होता है।

शब्दार्थ—इतस्तु=इधर तो, स्वतन्त्रयवनकुलभुज्यमानविजयपुराधीशप्रेषितः=स्वेच्छाचारी यवनवंश के द्वारा शासित बीजापुराधिपति के द्वारा भेजा गया, पुण्यनगरस्य=पूना नगर के, प्रक्षालितगण्डशैलमण्डलायाः=पर्वत से गिरे हुए पत्थरों के समूह को धोनेवाली, निर्झरवारिधारापूरपूरितप्रबलप्रवाहायाः=झरनों के जलधारा-समूह से पूर्ण प्रबल प्रवाहवाली, पश्चिमपारावार-

प्रान्तप्रसूतगिरिग्रामगुहागर्भनिर्गताया अपि=पश्चिमी समुद्र के तटवर्ती पर्वत-श्रेणियों की गुफाओं के बीच से निकली हुई होने पर भी, प्राच्यपयोनिधि-चुम्बनचञ्चुरायाः=पूर्वी समुद्र को चूमने के लिए चञ्चल, रिङ्गत्तरङ्गभङ्गो-द्भूतावर्तशतभीमायाः=उमड़ती हुई लहरों के टूटने से उत्पन्न हुई सैकड़ों भँवरों के कारण भयानक लगने वाली, अनवरतनिपतद्‌बकुलकुलकुसुमकदम्ब-सुरभीकृतम्=निरन्तर गिरते हुए मौलसिरी के फूलों के समूह से सुगन्धित किया हुआ, वगाहमानमत्तमतङ्गजमदधाराभिः=जलक्रीड़ा करने वाले मतवाले हाथियों की मदधारा से, कटूकुर्वन्=कड़ुआ बनाता हुआ, हयहेषाध्वनिप्रति-ध्वनिबधिरीकृतगव्यूतिमध्यगाध्वनीनवर्गः=घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से दो कोस तक के यात्रियों को बहरा बना देनेवाला, पटकुटीर-कूटविहितशारदाम्भोधरविडम्बनः=वस्त्र की कुटी (तम्बू) के समूह से शरत्कालीन मेघों का अनुकरण करता हुआ, निरपराधभारताभिजनजनपीडन-पातकपटलैः=निर्दोष भारत के निवासियों के उत्पीड़न के पापसमूह-से जैसे, समुद्‌धूयमाननीलध्वजैः=फहराती हुई नीली पताकाओं से, उपलक्षितः=प्रतीत होने वाला, अन्यतमः=एक अर्थात् मुख्य, सेनानी=सेनानायक, अवि-दूरे एव=थोड़ी ही दूर पर अर्थात् समीप ही, आहवद्यूतेन=युद्धरूपी जुआ से, चिक्रीडिषुः=खेलने की इच्छा वाला, ससेनः=सेना सहित, तिष्ठति स्म=पड़ा हुआ था अर्थात् पड़ाव डाले हुए था।

हिन्दी—इधर तो स्वेच्छाचारी मुसलमानों द्वारा शासित बीजापुर-नरेश के द्वारा भेजा हुआ, पूना के पास ही पर्वत-समूह से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों के समूह को धोने वाली, झरनों के जल की धाराओं से अभिवर्धित प्रबल प्रवाहवाली, पश्चिमी समुद्र अर्थात् अरबसागर के तटवर्ती पर्वतों की श्रेणियों की गुफाओं के बीच से निकली हुई होने पर भी पूर्वी समुद्र (बंगाल की खाड़ी) को चूमने के लिए चञ्चल अर्थात् पूर्वसमुद्र में गिरनेवाली, उमड़ती हुई चञ्चल लहरों के टूटने से उत्पन्न हुई सैकड़ों भँवरों के कारण भयानक लगनेवाली भी या नदी के निरन्तर गिरते हुए मौलसिरी के पुष्पों के समूह द्वारा सुगन्धित किये हुए जल को भी जलक्रीड़ा (स्नान) करते हुए मतवाले हाथियों के मदजल की धाराओं से और तीक्ष्ण गन्धवाला बनाता हुआ, घोड़ों की हिन-हिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से दो कोस के भीतर चलते हुए पथिकों को बहरा बनाता हुआ, श्वेत तम्बुओं के समूह से शरत्कालीन मेघों का अनुकरण

करता हुआ, निरपराध भारत की मूलनिवासी जनता को सताने से उत्पन्न हुए पापों के ही मानो समूह हो, ऐसे फहराते हुए नीले रङ्ग के झण्डों से युक्त, बीजापुराधिपति का ही एक मुख्य सेनापति अफजलखान प्रताप दुर्ग के समीप ही शिवाजी के साथ युद्ध रूपी जुआ खेलने की इच्छा से सेना सहित पड़ाव डाले हुए पड़ा था।

टिप्पणी—इस गद्यांश में अनुप्रास, यमक (भीमाया भीमायाः), समासोक्ति, (चुम्बनचञ्चुरायाः), काव्यलिङ्ग, उत्प्रेक्षा (पातकपटलैरिव) आदि अलङ्कारों का सजीव चित्रण किया गया है। यहाँ पर गौडी रीति और ओज नामक गुण है ॥ २ ॥

अथ जगतः प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य, सकल-चराचर–चक्षुःसञ्चार-शक्ति शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज-मण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी-सेवनेनेव माञ्जिष्ठ-मञ्जिम-रञ्जितः, अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्त इव सुषुप्सुः, म्लेच्छ-गण-दुराचार-दुःखाऽऽक्रान्त-वसुमती-वेदनामिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-सञ्जात-निर्वेद इव गिरिगहनेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः, घर्म-ताप-तप्त इव समुद्रजले सिस्नासुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासनमिव विधित्सुः, "नास्ति कोऽपि मत्कुले; यः सकण्ठग्रहं धर्म-ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञियादस्माद् भारत-गर्भान्निस्सारयेत्" इति चिन्ताऽऽक्रान्त इव कन्दरि-कन्दरेषु प्रविविक्षुर्भगवान् भास्वान्, क्रमशः क्रूरकरानपहाय, दृश्य-परिपूर्णमण्डलः संवृत्य, श्वेतीभूय, पीतीभूय रक्तीभूय च गगन-धरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाऽण्डाकृतिमङ्गीकृत्य, कलि-कौतुककवलीकृत-सदाचार-प्रचारस्य पातकपुञ्ज-पिञ्जरित-धर्मस्य च यवनगण-ग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुषामगोचर एव सञ्जातः।

व्याख्या—अथ=अफजलखानस्य ससेनावस्थानानन्तरम्, जगतः=संसारस्य, प्रभाजालम्=प्रकाशपुञ्जम्, आकृष्य=कर्षयित्वा, कमलानि=पद्मानि, सम्मुद्रय=मुकुलीकृत्य, कोकान्=चक्रवाकान्, सशोकीकृत्य=दुःखिनो विधाय,

सकलचराचरचक्षुःसञ्चारशक्तिम् = अशेषस्थावरजङ्गमनेत्रावलोकनक्षमताम्, शिथिलीकृत्य = स्वल्पीकृत्य, कुण्डलेनेव = कर्णभूषणेनेव, निजमण्डलेन = स्वबिम्बेन, पश्चिमाम् = प्रतीचीम्, आशाम् = दिशाम्, भूषयन् = शोभितां कुर्वन्, वारुणीसेवनेनेव = पश्चिमाशाश्रयणेनेव मदिरासेवनेनेव वा, माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः = मण्डूकपर्णीरक्तिमारक्तः, अनवरतभ्रमणपरिश्रमश्रान्तः = सततसञ्चलनखेदखिन्नः, इव = यथा, सुषुप्सुः = शयनमिच्छुः, म्लेच्छगणदुराचारदुःखाऽऽक्रान्तवसुमतीवेदनामिव = यवनसमुदायकदाचारपीडाक्रान्तमेदिनीपीडामिव, समुद्रशायिनी = क्षीरसागरशयनरते, निविवेदयिषुः = निवेदयितुमिच्छुः, वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जातनिर्वेद इव = श्रौतधर्मनाशावलोकनोत्पन्नवैराग्य इव, गिरिगहनेषु = पर्वतदुर्गमेषु, प्रविश्य = प्रवेशं विधाय, तपश्चिकीर्षुः = तपःकर्तुमिच्छुः, घर्मतापतप्तः = निदाघोष्णतापीडितः, इव = यथा, समुद्रजले = सागराम्भसि, सिस्नासुः = स्नातुमिच्छुः, सायं समयमवगत्य = निशामुखकालं विज्ञाय, सन्ध्योपासनमिव विधित्सुः = सान्ध्यव्रतमिव चिकीर्षुः, नास्ति = न वर्तते, कोऽपि = कश्चिदपि, मत्कुले = मदीयवंशे, यः, सकण्ठग्रहं = गलविलग्रहणपूर्वकम्, धर्मध्वंसिनः = सनातनधर्मविनाशकान्, यवनहतकान् = तुरुष्कदुष्टान्, यज्ञियादस्माद् = यजनयोग्यादस्माद्, भारतगर्भात् = हिन्दुस्थानमध्यात्, निःसारयेत् = बहिः कुर्यात्, इति = एवम्, चिन्ताक्रान्तः = दुश्चिन्तापीडितः, इव = यथा, कन्दरिकन्दरेषु = गिरिगह्वरेषु, प्रविविक्षुः = प्रवेष्टुमिच्छुः, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, भास्वान् = रविः, क्रमशः = क्रमेण, क्रूरकरान् = तीक्ष्णकिरणान्, अपहाय = परित्यज्य, दृश्यपरिपूर्णमण्डलः = विलोक्यमानसकलबिम्बः, संवृत्य = भूत्वा, श्वेतीभूय = धवलीभूय, पीतीभूय = पीतिमानमाश्रित्य, रक्तीभूय = रुधिरवर्णो भूत्वा, गगनधरातलाभ्यामुभयतः = आकाशभूपृष्ठाभ्यामुभयतः, आक्रम्यमाण इव = आक्रान्त इव, अण्डाकृतिम् = अण्डाकारम्, अङ्गीकृत्य = स्वीकृत्य, कलिकौतुककवलीकृतसदाचारप्रचारस्य = कलिकौतूहलविनष्टशुभाचारप्रचारस्य, पातकपुञ्जपिञ्जरितधर्मस्य = पापसमूहपीतवर्णधर्मस्य, च, यवनगणग्रस्तस्य = तुरुष्कसमुदयग्रस्तस्य, भारतवर्षस्य च = हिन्दुस्थानस्य च, स्मारयन् = स्मृतिविषयतामापादयन्, अन्धतमसे = प्रगाढध्वान्ते च, जगत् = लोकम्, पातयन् = पतनविषयतामापादयन्, चक्षुषामगोचर एव = नेत्राणामदृश्य एव, सञ्जातः = सम्पन्नः ।

समासः—प्रभायाः जालं प्रभाजालम् । सकलानां चराचराणां चक्षुषां सञ्चारस्य शक्तिः सकलचराचरचक्षुःसञ्चारशक्तिः । निजेन मण्डलेन निज-

मण्डलेन । वारुण्याः सेवनेन वारुणीसेवनेन । माञ्जिष्ठायाः मञ्जिम्ना रञ्जितः माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः । अनवरतं यद् भ्रमणं, तेन यः परिश्रमः, तेन श्रान्तः अनवरतभ्रमणपरिश्रमश्रान्तः । म्लेच्छाणां गणस्य दुराचारैः दुःखाक्रान्तायाः वसुमत्याः वेदनामिव म्लेच्छगणदुराचारदुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनामिव । वैदिक-धर्मस्य ध्वंसदर्शनेन सञ्जातः निर्वेदः यस्य सः वैदिकधर्मध्वंसदर्शनसञ्जात-निर्वेदः । घर्मस्य तापेन तप्तः घर्मतापतप्तः । धर्मस्य ध्वंसिनः धर्मध्वंसिनः । चिन्तयाऽऽक्रान्तः चिन्ताऽऽक्रान्तः । कन्दरीणां कन्दरेषु कन्दरिकन्दरेषु । क्रूरान् करान् क्रूरकरान् । दृश्यं परिपूर्णं मण्डलं यस्य सः दृश्यपरिपूर्णमण्डलः । कलेः कौतुकेन कवलीकृतानि सदाचारस्य प्रचाराणि यत्र तत् तस्य कलिकौतुककवली-कृतसदाचारप्रचारस्य । पातकपुञ्जेन पिञ्जरितः धर्मः यत्र, तस्य पातकपुञ्ज-पिञ्जरितधर्मस्य । यवनानां गणैः ग्रस्तस्य यवनगणग्रस्तस्य ।

कोषः—'अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः । 'कोकश्च-क्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः' इत्यमरः । 'कुण्डलं कर्णभूषणम्' इत्यमरः । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः । 'सुरा प्रत्यक् च वारुणी' इत्यमरः । 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—आकृष्य—आ + कृष् + क्त्वा + ल्यप् । सम्मुद्रय—सम् + मुद् + ल्यप् । सशोकीकृत्य—(सह) + शोक + च्वि + कृ + ल्यप् । शिथिल + च्वि + कृ + ल्यप् । भूषयन्—भूष् + णिच् + शतृ । समुद्रशायिनी—समुद्रे शेते इति समुद्रशायी, तस्मिन्—समुद्र + शीङ् + इन् । निर्विवेदयिषुः—निं + वि + विद् + सन् + उ । चिकीर्षुः—कृ + सन् + उ । सिस्नासुः—स्ना + सन् + उ । अवगत्य—अव + गम् + ल्यप् । विधित्सुः—वि + धा + सन् + उ । यज्ञियात्—यज्ञ + घ (इय) 'यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञौ' सूत्र से घ प्रत्यय तथा 'घ' को 'इय' आदेश । निस्सारयेत्—निस् + सृ + णिच् + लिङ् । प्रविविक्षुः—प्र + विश् + सन् + उ । आक्रम्यमाणः—आ + क्रम् + य + शानच् । स्मारयन्—स्मृ + णिच् + शतृ । पातयन्—पत् + णिच् + शतृ । अगोचरः—चरतीति चरः, गवाम् = इन्द्रियाणाम्, चरः गोचरः, न गोचरः इति अगोचरः—नञ् + गो + चर् + अच् । सञ्जातः—सम् + जनि + क्त ।

शब्दार्थ—अथ = इसके बाद, जगतः = संसार के, प्रभाजालम् = प्रकाश-समूह को, आकृष्य = खींचकर, सम्मुद्रय = सम्पुटित करके, कोकान् = चक्र-वाकों को, सशोकीकृत्य = शोकमग्न करके, सकलचराचरचक्षुःसञ्चारशक्तिम् =

समस्त जड़-चेतन संसार के नेत्रों की दर्शनशक्ति को, शिथिलीकृत्य=शिथिल करके, निजमण्डलेन=अपने मण्डल से, पश्चिमाम् आशाम्=पश्चिम दिशा को, भूषयन्=समलंकृत करता हुआ, वारुणीसेवनेन=पश्चिम दिशा में जाने से अथवा मदिरा के सेवन से, इव=जैसे, माञ्जिष्ठमञ्जिमरञ्जितः=मञ्जीठ (मेंहदी) की लालिमा से लाल, अनवरतभ्रमणपरिश्रान्त इव=निरन्तर परिभ्रमण के परिश्रम से थके हुए-से, सुषुप्सुः=सोने का इच्छुक, म्लेच्छगणदुराचारदुःखाक्रान्तवसुमतीवेदनाम्=यवनों के दुराचार से दुःखित पृथ्वी की वेदना को, इव=मानो, समुद्रशायिनि=समुद्र में शयन करनेवाले विष्णु से, निविवेदयिषुः=निवेदन करने का इच्छुक, वैदिकधर्मध्वंसदर्शन-सञ्जातनिर्वेदः=वैदिक धर्म के विनाश के दर्शन से समुत्पन्न वैराग्यवाला, गिरिगहनेषु=दुर्गम पर्वतों में, तपश्चिकीर्षुः=तप करने का इच्छुक, घर्मताप-तप्तः=धूप की गर्मी से संतप्त, सिस्नासुः=स्नान करने के इच्छुक, अवगत्य=जानकर, विधित्सुः=करने का इच्छुक, मत्कुले=मेरे कुल में, सकण्ठग्रहम्=गला पकड़कर, धर्मध्वंसिनः=धर्मध्वंसियों को, यवनहतकान्=दुष्ट यवनों को, यज्ञियात्=यज्ञ करने के योग्य, भारतगर्भात्=भारत के गर्भ (भूमि) से, निस्सारयेत्=निकाल दे, कन्दरिकन्दरेषु=पर्वतों की गुफाओं में, प्रविविक्षुः=प्रवेश करने की इच्छावाला, भास्वान्=सूर्य, क्रूरकरान्=कठोर किरणों को, अपहाय=छोड़कर, दृश्यपरिपूर्णमण्डलः=देखने योग्य है सम्पूर्ण बिम्ब जिसका, श्वेतीभूय=सफेद होकर, पीतीभूय=पीला होकर, रक्तीभूय=लाल होकर, आक्रम्यमाण इव=दबाया हुआ-सा, अण्डाकृतिम्=गोलाकार, अङ्गी-कृत्य=अङ्गीकार करके, कलिकौतुककवलीकृतसदाचारप्रचारस्य=कलियुग के प्रभाव से नष्ट कर दिया गया है सदाचार का प्रचार जिसके, पातकपुञ्ज-पिञ्जरितधर्मस्य=पापराशि से पीले पड़े धर्मवाले, यवनगणग्रस्तस्य=यवनों से ग्रस्त, स्मारयन्=स्मरण कराते हुए, पातयन्=गिराते हुए, अगोचरः=अदृश्य, सञ्जातः=हो गये।

हिन्दी—इसके अनन्तर संसार के प्रकाश-समूह को खींचकर, कमलों को सम्पुटित करके, चक्रवाकों को शोकमग्न कर, निखिल जड़-चेतन संसार के नेत्रों की दर्शनशक्ति को शिथिल करके, अपने कुण्डलसदृश मण्डल से पश्चिम दिशा को समलंकृत करके, मानो वारुणी (पश्चिम दिशा और मद्य) के सेवन के कारण मजीठ की-सी लालिमा से लाल, निरन्तर भ्रमण करने के

परिश्रम से थके होने से सो जाने के इच्छुक, मानों म्लेच्छों के दुराचारों से दुःखी पृथ्वी की वेदना को समुद्र में सो रहे भगवान् से कहने के इच्छुक; मानो वैदिक धर्म के विनाश को देखकर खिन्न होकर दुर्गम पर्वतों में जाकर तप करने के इच्छुक, मानो धूप की गर्मी से सन्तप्त होने के कारण सागर के जल में स्नान करने के अभिलाषी, सायंकाल का समय हुआ समझकर सन्ध्योपासन करने के इच्छुक, मेरे कुल में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो धर्मध्वंसी यवनों को इस यज्ञार्हं भूमि से बलात् गला पकड़कर निकाल बाहर करे। इस प्रकार चिन्तित-से होकर पर्वत की गुफा में प्रवेश करने के इच्छुक भगवान् भास्कर क्रमशः कठोर किरणों को छोड़कर अपने सारे बिम्ब को दर्शन योग्य बनाकर, पहले सफेद, पुनः पीला और बाद में लाल होकर आकाश और पृथ्वी दोनों ओर से दबाये जा रहे-से अण्डाकार बनकर, कलियुग के प्रभाव से विनष्ट सदाचार वाले, पापराशि से पीले पड़े धर्मवाले तथा यवनों से ग्रस्त भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए, संसार को घोर अन्धकार में गिराते हुए नेत्रों से अदृश्य हो गये।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में सूर्यास्त-वर्णन कवि की विलक्षण कल्पना-शक्ति का चमत्कार प्रदर्शित करता है। यह अनुच्छेद अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति अलंकार तथा सन्नन्त के प्रयोग-रचनाकौशल का सुस्पष्ट उदाहरण है॥ २॥

ततः संवृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु भुशुण्डीं स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्यागतं च विदधानः, प्रताप-दुर्ग-दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेपध्वनिमिवाऽश्रौषीत्। ततः स्थिरीभूय पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशेऽध्वतमसवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादीत्—"कः कोऽत्र भोः? कः कोऽत्र भोः?" इति।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरश्रावीति भूयः साक्षेपमवोचत्—"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति ब्रधिरः?"

व्याख्या—ततः=व्यतीते निशामुखे, संवृत्ते=भूते, किञ्चिदन्धकारे=ईषत्तमसि, धूपधूमेनेव=रविप्रकाशातपधूमेनेव, व्याप्तासु=कलितासु, हरित्सु=दिक्षु, भुशुण्डीम्=बन्दूकनाम्ना प्रथितमायुधविशेषम्, स्कन्धे=अंशे, निधाय=संस्थाप्य, निपुणम्=सुष्ठु, निरीक्षमाणः=अवलोकयमानः, आगतप्रत्याग-

तम् = यातायातञ्च, विदधानः = कुर्वाणः, प्रतापदुर्गदौवारिकः=एतन्नाम्ना ख्यातस्य दुर्गस्य द्वारपालः, कस्यापि = अपरिचितस्य, पादक्षेपध्वनिम् = चरणचलनशब्दम्, इव = यथा, अश्रौषीत् = अशृणोत् । ततः = श्रवणानन्तरम्, स्थिरीभूय = सुस्थिरो भूत्वा, पुरतः = अग्रे, पश्यन् = अवलोकयन्, सत्यपि = वर्तमानेऽपि, दीपप्रकाशे = प्रदीपप्रभापुञ्जे, अवतमसवशात्=क्षीणान्धकारवशात्, आगन्तारम् = आयान्तं जनम्, कमपि = अज्ञातकुलशीलम्, अनवलोकयन् = अपश्यन्, गम्भीरस्वरेण = गभीरशब्देन, एवम् = अग्रे वक्ष्यमाणप्रकारेण, अवादीत् = अवदत्—कः कोऽत्र भोः ? कः कोऽत्र भोः ?=कोऽयमागच्छति ? कोऽयमागच्छति भोः ? इति ।

अथ = कः कोऽत्र भोः इति प्रश्नानन्तरम्, क्षणानन्तरम्=पलोत्तरम्, पुनः= भूयः, स एव = पूर्वानुभूतः श्रुतश्च, पादध्वनिः = चरणचलनशब्दः, अश्रावि = कर्णपथमायातः, इति = अनेन हेतुना, भूयः = पुनः, साक्षेपम् = कोपधिक्कृतिमिश्रम्, अवोचत् = अवदत्, क एष मामनुत्तरयन् = कोऽयं दौवारिकमुत्तरमददन्, मुमूर्षुः = मर्तुमिच्छुः, समायाति = आगच्छति, बधिरः = एडः ?

समासः—धूपस्य धूमः, तेनेव धूपधूमेनेव । आगतं च प्रत्यागतं च आगतप्रत्यागतम् । प्रतापदुर्गस्य दौवारिकः प्रतापदुर्गदौवारिकः । पादस्य क्षेपः, तस्यध्वनिः, तं पादक्षेपध्वनिम् । दीपस्य प्रकाशे दीपप्रकाशे । गम्भीरेण स्वरेण गम्भीरस्वरेण । पादस्य ध्वनिः पादध्वनिः । आक्षेपेण सह साक्षेपम् ।

कोषः—'अन्धकारोऽस्त्रियां ध्वान्तं तमिस्रं तिमिरं तमः' इत्यमरः । 'दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशाश्च हरितश्च ताः' इत्यमरः । 'स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री' इत्यमरः । 'प्रतीहारो द्वारपालद्वाःस्थद्वाःस्थितदर्शकाः' इत्यमरः । 'स्यादेडे बधिरः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—संवृत्ते—सम् + वृत् + क्त (सप्तमी) । निरीक्षमाणः—निर् + ईक्ष् + शानच् (प्रथमा) । विदधानः—वि + दध् + शानच् । अश्रौषीत्—श्रु + लुङ् + तिप् । आगन्तारम्—आ + गम् + तृच् (द्वितीया ए० व०) । अनवलोकयन्—अन् + अव् + लोक् + शतृ । अनुत्तरयन्—अन् + उत् + तृ + शतृ (प्रथमा) । मुमूर्षुः—मृ + सन् + उ (प्रथमा ए० व०) । समायाति—सम् + आ + या + लट् (तिप्) ।

शब्दार्थ—ततः = उसके बाद, संवृत्ते = हो जाने पर, किञ्चिदन्धकारे = कुछ अन्धकार के, हरित्सु = दिशाओं में, भृशुण्डीम् = बन्दूक को, निधाय =

रखकर, निपुणम् = कुशलतापूर्वक, निरीक्षमाणः = देखता हुआ, आगतप्रत्यागतञ्च=गमनागमन, विदधानः = करता हुआ, प्रतापदुर्गदौवारिकः=प्रताप नामक किले का द्वारपाल, अश्रौषीत् = सुना, स्थिरीभूय = रुककर, पुरतः = सामने, अवतमसवशात् = धूंधलेपन के कारण, आगन्तारम् = आने वाले को, अनवलोकयन् = न देखता हुआ, क्षणानन्तरम् = थोड़ी देर बाद, अश्रावि = सुनाई पड़ी, साक्षेपम् = क्रोधपूर्वक, अवोचत् = बोला, अनुत्तरयन् = उत्तर न देता हुआ, मुमूर्षुः = मरने की इच्छा वाला, समायाति = आ रहा है, बधिरः = बहरा।

हिन्दी—उसके बाद कुछ अन्धेरा हो जाने पर और दिशाओं के मानों धूप से उठने वाले धूम से व्याप्त हो जाने पर बन्दूक को कन्धे पर रखकर कुशलतापूर्वक इधर-उधर देखते हुए और आगमन-प्रत्यागमन करते हुए प्रताप दुर्ग के द्वारपाल ने किसी के पैरों की ध्वनि-सी सुनी। तब खड़े होकर सामने देखकर दीपक का प्रकाश होते हुए भी अन्धेरेपन के कारण किसी आने वाले को न देखता हुआ उसने गम्भीर स्वर से कहा—अरे यहाँ यह कौन है? यह कौन है? फिर थोड़ी देर बाद वही पादध्वनि सुनाई दी। तब वह क्रोधपूर्वक बोला—यह कौन है, मुझे उत्तर न देता हुआ आ रहा है बहरा?।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में द्वारपाल को अति सचेष्ट दिखलाया गया है। 'धूपधूमेनेव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालङ्कार है ॥ ४ ॥

ततो "दौवारिक! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि?" इति वक्तारमपश्यतैवाऽऽकर्णि मन्द्रस्वरमेदुरा वाणी। अथ "तत् किं नाज्ञायि अद्यापि भवता प्रभुवर्य्याणामादेशो यद् दौवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिः पृष्टोऽपि प्रत्युत्तरमददद् हन्तव्य इति" इत्येवं भाषमाणेन द्वाःस्थेन "क्षम्यतामेष आगच्छामि, आगत्य च निखिलं निवेदयामि" इति कथयन्, द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षुबटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि काषायवासाः धृत-तुम्बी-पात्रः, भस्मच्छुरित-ललाटः, रुद्राक्ष-मालिका-सनाथित-कण्ठः, भव्यमूर्त्तिः संन्यासी दृष्टः। ततस्तयोरेवमभूदालापः—

व्याख्या—ततः = द्वारपालप्रश्नोत्तरम्, दौवारिक! = द्वाःस्थ! शान्तो भव = मौनमाकलय, किमिति = किमर्थम्, व्यर्थम् = निष्प्रयोजनम्, मुमूर्षुरिति =

भर्तुमिच्छुरिति, बधिर इति= एड इति च, वदसि=कथयसि, इति=एवम्, वक्तारम्=वादिनम्, अपश्यतैव=अनवलोकमानेनैव, आकर्णि=श्रुता, मन्द्रस्वरमेदुरा=मद्धिमस्वरसान्द्रस्निग्धा, वाणीं=वाक्। अथ=उत्तरश्रवणानन्तरम्, तत्=किम्, नाज्ञायि=न ज्ञातः, अद्यापि=एतावत्सहवासानन्तरमपि, भवता=श्रीमता, प्रभुवर्य्याणाम्=श्रेष्ठस्वामिनाम्, आदेशो=निर्देशो, यद्, दौवारिकेण=द्वाःस्थेन, प्रहरिणा वा=यामिकेन वा, त्रिः=त्रिवारम्, पृष्ठोऽपि=पृच्छाविषयीकृतोऽपि, प्रत्युत्तरम्=प्रतिवचनम्, अददद्=अवदत्; हन्तव्य इति=मारणीय इति, इत्येवं=इत्थम्प्रकारेण, भाषमाणेन=कथयता, द्वाःस्थेन=द्वाररक्षकेन, क्षम्यताम्=क्षमाप्रदानेनानुग्राह्यताम्, एषः=अयम्, आगच्छामि=आयामि, आगत्य=आगम्य च, निखिलम्=समग्रम्, निवेदयामि=कथयामि, इति=एवम्प्रकारेण, कथयन्=वदन्, द्वादशवर्षेण=आदित्यसङ्ख्यकवर्षेण, केनापि=अज्ञातेन, भिक्षुवटुना=भिक्षुकब्रह्मचारिणा, अनुगम्यमानः=अनुव्रज्यमानः, कोऽपि=अज्ञातनामा, काषायवासाः=गैरिकवसनः, घृततुम्बीपात्रः=गृहीतकमण्डलुः, भस्मच्छुरितललाटः=भूतिविभूषितभालः, रुद्राक्षमालिकासनाथितकण्ठः=रुद्राक्षमालाशोभिग्रीवः, भव्यमूर्तिः=दीव्यशरीरः, संन्यासी=चतुर्थाश्रमसेवी, दृष्टः=विलोकितः। ततः=तदनन्तरम्, तयोः=द्वारपालसंन्यासिनोः, एवम्=अनेन प्रकारेण, आलापः=वार्ता, अभूत्=अभवत्।

समासः—मन्द्रेण स्वरेण मेदुरा मन्द्रस्वरमेदुरा। काषायं वासः यस्यासौ काषायवासाः। धृतं तुम्बीपात्रं येन सः धृततुम्बीपात्रः। भस्मना च्छुरितं ललाटं यस्यासौ भस्मच्छुरितललाटः। रुद्राक्षस्य मालिकया सनाथितः कण्ठः यस्यासौ रुद्राक्षमालिकासनाथितकण्ठः। भव्या मूर्तिः यस्यासौ भव्यमूर्तिः। भिक्षुश्चासौ वटुस्तेन भिक्षुबटुना।

कोषः—'स्यादेडे बधिरः' इत्यमरः। 'सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुरः' इत्यमरः। 'प्रतीहारो द्वारपालद्वाःस्थद्वाःस्थितदर्शकाः' इत्यमरः। 'अथ समं सर्वम्। विश्वमशेषं कृत्स्नं समस्तनिखिलाखिलानि निःशेषम्। समग्रं सकलं पूर्णमखण्डं स्यादनूनके' इत्यमरः। 'ललाटमलिकं गोधिः' इत्यमरः। 'कण्ठो गलः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—दौवारिकः—द्वारे भवः दौवारिकः, द्वार+ठञ् (इक्)। वक्तारम्—वच्+तृच्। अपश्यता—नञ्+दृश् (पश्य)+शतृ। अज्ञायि—

ज्ञा+लुङ् (भावकर्म)। हन्तव्यः—हन्+तव्यत्। भाषमाणेन—भाष्+शानच् (तृतीया)। अनुगम्यमानः—अनु+गम्+यक्+शानच्।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, दौवारिक=द्वारपाल! अपश्यता=न देखते हुए, आकर्णि=सुनी, मन्द्रस्वरमेदुरा=गम्भीर स्वर में मधुर स्नेहभरी, न अज्ञायि=नहीं जानी, प्रभुवर्याणाम्=आदरणीय स्वामी महाराज शिवाजी का, प्रहरिणा=पहरेदार द्वारा, त्रिः=तीन बार, पृष्टोऽपि=पूछे जाने पर भी, प्रत्युत्तरम्=उत्तर, अददद्=न देने वाला, हन्तव्यः=मार दिया जाना चाहिए, इत्येवम्=इस प्रकार से, भाषमाणेन=कहने वाले, द्वाःस्थेन=द्वारपाल के द्वारा, क्षम्यताम्=क्षमा कीजिये, निखिलम्=सम्पूर्ण, द्वादशवर्षेण=बारह वर्ष वाले, भिक्षुबटुना=भिक्षु बालक के द्वारा, अनुगम्यमानः=पीछा किया जाता हुआ, काषायवासाः=गेरुये वस्त्र पहने हुए, धृततुम्बीपात्रः=तुम्बीपात्र को धारण किये हुए, भस्मच्छुरितललाटः=मस्तक पर भस्म लगाये हुए, रुद्राक्षमालिकासनाथितकण्ठः=रुद्राक्ष की माला से विभूषित कण्ठवाला, भव्यमूर्तिः=सुन्दर शरीर वाला, आलापः=परस्पर वार्तालाप, अभूत्=हुआ, तयोः=संन्यासी और द्वारपाल का।

हिन्दी—तदनन्तर उस दौवारिक ने बोलने वाले को न देखते हुए 'द्वारपाल! शान्त रहो, क्यों बेकार मरने की इच्छा वाला और बहरा कहते हो?' यह गम्भीर स्वर में स्नेह युक्त वाणी सुनी। इसके पश्चात् 'तो क्या आपको अभी तक महाराज शिवाजी का यह आदेश नहीं ज्ञात है कि पहरेदार के तीन बार पूछने पर भी जो व्यक्ति उत्तर न दे, उसे मार दिया जाय'। द्वारपाल के यह कहते हुए 'क्षमा करो, मैं आ रहा हूँ, आकर समस्त वृत्तान्त बतलाऊँगा' यह कहते हुए बारह वर्ष के किसी भिक्षु बालक से अनुगम्यमान, काषाय वस्त्र धारण किये हुए, तुम्बीपात्र लिये हुए, मस्तक पर भस्म लपेटे हुए, रुद्राक्ष की माला से विभूषित कण्ठवाला, सुन्दर शरीरधारी किसी संन्यासी को द्वारपाल ने देखा। तब पुनः उन दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

टिप्पणी—इस गद्यांश में कर्मवाच्य का प्रयोग बहुलता से किया गया है। क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग न होने पर भी द्वारपाल और संन्यासी के परस्पर अभिभाषण को एक ही वाक्य में समेटने के प्रयास में आशुबोधिता का अभाव है॥ ५॥

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्तिरस्करोषि?

दौवारिकः—भगवन् ! भवान् संन्यासी तुरीयाश्रमसेवीति प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददेवाऽऽयातीत्याक्रुश्यते ।

संन्यासी—सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि संन्यासिनः, ब्रह्मचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्याः, आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः ।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे । किन्तु यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनां च संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेश-भूमिः, तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः ।

व्याख्या—संन्यासी—कथम्=किमर्थम्, अस्मान् संन्यासिनोऽपि=मादृशान् विरक्तानपि, कठोरभाषणैः=तीक्ष्णवचनैः, तिरस्करोषि=अवमन्यसे ?

दौवारिकः—भगवन्=महोदय ! भवान्=त्वम्, संन्यासी=विरक्तः, तुरीयाश्रमसेवी=चतुर्थाश्रमसेवी, इति=अस्माद्धेतोः, प्रणम्यते=अभिवाद्यते, परन्तु=किन्तु, प्रभूणाम्=स्वामिनाम्, आज्ञाम्=आदेशम्, उल्लङ्घ्य=उल्लङ्घनं विधाय, निजपरिचयम्=स्वसंस्तवम्, अददत्=अप्रयच्छन्, एव, आयाति=आगच्छति, इति=अनेन हेतुना, आक्रुश्यते=आक्रोशो विधीयते ।

संन्यासी—सत्यम्=अवितथम्, क्षान्तः=मर्षितः, अयम्=एषः, अपराधः=आगः, परम्=किन्तु, अद्यावधि=अद्यत आरभ्य, संन्यासिनः=संन्यासव्रतधारिणः, ब्रह्मचारिणः=ब्रह्मचर्यव्रतिनः, पण्डिताः=विद्वांसः, स्त्रियः=नार्यः, बालाश्च=बालकाश्च, न किमपि=न किञ्चिदपि, प्रष्टव्याः=प्रश्नं विधातव्याः, आत्मानम्=स्वम्, अपरिचाययन्तोऽपि=संस्तवमददतोऽपि, प्रवेष्टव्याः=प्रवेशं कारयितव्याः ।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् !=भो चतुर्थाश्रमस्थ ! भो चतुर्थाश्रमस्थ ! बहूक्तम्=प्रभूतं प्रलपितम्, विरम=शान्तो भव, न=नहि, वयम्=मद्विधाः, दौवारिकाः=द्वारपालाः, ब्रह्मणोऽपि=विधातुरपि, आज्ञाम्=निदेशम्, प्रतीक्षामहे=अङ्गीकुर्मः, किन्तु=परन्तु, यः=शिवः, वैदिकधर्मरक्षा-

व्रती=सनातनधर्मरक्षाबद्धपरिकरः, यश्च, संन्यासिनाम्=तुरीयाश्रमसेविनाम्, ब्रह्मचारिणाम्=ब्रह्मचर्यव्रतीनाम्, तपस्विनाञ्च=तपोनिरतानाञ्च, संन्यासस्य=चतुर्थाश्रमस्य, तपसश्च=तपस्यायाश्च, अन्तरायाणाम्=विघ्नानाम्, हन्ता=नाशकः, येन च=शिववीरेण च, वीरप्रसविनीयमुच्यते=सुभटोत्पादिकेयं निगद्यते, कोङ्कणदशभूमिः=महाराष्ट्रवसुन्धरा, तस्यैव=प्रथितस्य, महाराज-शिववीरस्य=महामहीपतिशिवाजीमहोदयस्य, आज्ञाम्=आदेशम्, वयम्=दौवारिकाः, शिरसा=मस्तकेन, वहामः=पालयामः।

समासः—वैदिकधर्मस्य रक्षायां व्रती वैदिकधर्मरक्षाव्रती। वीरस्य वीराणां वा प्रसविनी वीरप्रसविनी। कोङ्कणश्चासौ देशश्च कोङ्कणदेशः, तस्य भूमिः कोङ्कणदेशभूमिः। महाराजस्य शिववीरस्य महाराजशिववीरस्य।

कोषः—'संस्तवः स्यात्परिचयः' इत्यमरः। 'वितथं त्वमृतं वचः' इत्यमरः। 'सत्यं तथ्यमृतं सम्यगमूनि त्रिषु तद्वति' इत्यमरः। 'सत्यं शपथतथ्ययोः' इत्यमरः। 'विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः' इत्यमरः। 'आगोऽपराधो मन्तुश्च' इत्यमरः।

व्याकरणम्—प्रणम्यते—प्र+नम्+य+त (लट्)। उल्लङ्घ्य—उत्+लङ्घ+ल्यप्। आक्रुश्यते—आ+क्रुश्+यक्+त। प्रवेष्टव्याः—प्र+विश्+तव्यत्।

शब्दार्थ—कठोरभाषणैः=कठोर वचनों द्वारा, तिरस्करोषि=तिरस्कृत करते हो, तुरीयाश्रमसेवी=चतुर्थ संन्यास-आश्रम में रहने वाले, प्रणम्यते=प्रणाम किया जाता है, उल्लङ्घ्य=उल्लङ्घन करके, अददत्=न देते हुए, आक्रुश्यते=कुपित होता हूँ, क्षान्तः=क्षमा किया, अद्यावधि=आज से, अपरिचाययन्तमपि=परिचय न देने पर भी, प्रवेष्टव्याः=प्रवेश करने देना चाहिये, बहूक्तम्=अधिक कह चुके, विरम=रुकिये, प्रतीक्षामहे=प्रतीक्षा करता हूँ, वैदिकधर्मरक्षाव्रती=वैदिक धर्म की रक्षा का व्रत धारण किये हुए, अन्तरायाणाम्=विघ्नों के, वीरप्रसविनी=वीरों को जन्म देने वाली, उच्यते=कही जाती है, वहामः=धारण करते हैं।

हिन्दी—संन्यासी—तुम हम संन्यासियों को भी तीक्ष्ण वचनों द्वारा क्यों तिरस्कृत करते हो?

दौवारिक—भगवन्? आप संन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम में वर्तमान हैं, अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ। किन्तु आप महाराज की आज्ञा का उल्लङ्घन

कर अपना परिचय दिये बिना ही आ रहे हैं, इसलिये हम आप पर कुपित हो रहे हैं।

संन्यासी—ठीक है, अच्छा, तुम्हारा यह अपराध मैंने क्षमा कर दिया। किन्तु आज से संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पण्डितों, स्त्रियों और बालकों से कुछ भी मत पूछना। यदि वे अपना परिचय न दें तो भी उन्हें प्रवेश करने देना।

दौवारिक—संन्यासी! संन्यासी! बहुत कह चुके, अब रुकिये। हम द्वारपाल लोग विधाता की भी आज्ञा नहीं मानते हैं। किन्तु जो वैदिक धर्म के रक्षा के व्रती हैं, जो संन्यासियों, ब्रह्मचारियों और तपस्वियों के संन्यास; ब्रह्मचर्य और तपस्या के विघ्नों के विनाशक हैं; तथा जिनके कारण यह कोङ्कण देश की भूमि वीरों को जन्म देने वाली कही जाती है, उन्हीं महाराज वीर शिवाजी की आज्ञा को शिर से धारण करते हैं।

टिप्पणी—इस गद्यांश के 'संन्यासिनाम्' से 'तपसश्च' पर्यन्त क्रमिकान्वय होने से 'यथासंख्य' नामक अलंकार है ॥ ६ ॥

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु, पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीरनिकटे जिगमिषावः।

दौवारिकः—अलमालप्यापि तत्, प्राह्णे महाराजस्य सन्ध्योपासनसमये भवादृशानां प्रवेश-समयो भवति; न तु रात्रौ।

संन्यासी—तत् किं कोऽपि न प्रविशति रात्रौ?

दौवारिकः—(साक्षेपम्) कोऽपि कथं न प्रविशति? परिचिता वा प्राप्त-परिचयपत्रा वा आहूता वा प्रविशन्ति, न तु भवादृशाः; ये तुम्बीं गृहीत्वा द्वाराद् द्वारम्—इति कथयन्नेव तत्तेजसेव धर्षितो मध्य एव विरराम।

संन्यासी—(स्वगतम्) राजनीति-निष्णातः शिववीरः। सर्वथा दौवारिकता-योग्य एवायं द्वारपालः स्थापितोऽस्ति। परीक्षितमप्येनमेकस्मिन् विषये पुनः परीक्षिष्ये तावत्। (प्रकटम्) दौवारिक! इत आयाहि, किमपि कर्णे कथयिष्यामि।

दौवारिकः—(तथा कृत्वा) कथ्यताम्।

व्याख्या—**संन्यासी**—अथ, किमप्यस्तु=किमपि भवतु, पन्थानम्=मार्गम्, निर्दिश=ज्ञापय, आवाम्=बटु-संन्यासिनौ, शिववीरनिकटे=शिववीरान्तिके, जिगमिषावः=व्रजितुमभिलषावः।

दौवारिकः—तत् अलमालप्यापि=एतदालपनीयमपि न विद्यते, प्राह्णे=पूर्वाह्णे, महाराजस्य=शिववीरस्य, सन्ध्योपासनसमये=सन्ध्यापूजनकाले, भवादृशानाम्=साधुसंन्यासिनाम्, प्रवेशसमयः=प्रवेशकालः, भवति=सम्पद्यते, न तु=न हि तु, रात्रौ=रजन्याम्।

संन्यासी—तत्किम्=तर्हि किम्, कोऽपि=कश्चिदपि जनः, रात्रौ=निशायाम्, न=नहि, प्रविशति=प्रविष्टो भवति ?

दौवारिकः—(साक्षेपम्=सकोपम्) कोऽपि=कश्चिदपि, कथं=कस्मात्, न प्रविशति=नहि प्रविष्टो भवति, परिचिताः=परिज्ञातजनाः, प्राप्तपरिचय-पत्राः=अधिगताभिज्ञानपत्राः, वा=अथवा, आहूताः=आमन्त्रिताः, प्रविशन्ति=प्रवेशं कुर्वन्ति, न तु, भवादृशाः=त्वत्सदृशाः, ये=जनाः, तुम्बीम्=तुम्बीभाजनम्, गृहीत्वा=समादाय, द्वाराद् द्वारम्=गेहाद् गेहम्, इति=एवम्, कथयन्नेव=निगदन्नेव, तत्तेजसेव=संन्यासिदीप्त्या, धर्षितः=पराभूतः, मध्ये एव=अन्तरा एव, विरराम=मौनमाकलयामास।

संन्यासी—(स्वगतम्=मनसि) राजनीतिनिष्णातः=राजनीतिकुशलः, शिववीरः=एतन्नामको भूपतिः, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, दौवारिकतायोग्यः=द्वारपालकर्मोचितः, एव, अयम्=एषः, द्वारपालः=द्वाःस्थः, स्थापितोऽस्ति=नियुक्तो वर्तते, परीक्षितम्=परीक्षाकृताऽस्य, अपि, एनम्=दौवारिकम्, एकस्मिन् विषये=अन्यस्मिन् विषये, पुनः=भूयः, परीक्षिष्ये=परीक्षां करिष्ये, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्। (प्रकटम्=प्रकाशम्) दौवारिक !=द्वारपाल ! इत आयाहि=अत्रागच्छ, किमपि=किञ्चिद्, कर्णे=श्रोत्रे, कथयिष्यामि=वक्ष्यामि।

दौवारिकः—(तथा कृत्वा=तेन प्रकारेण विधाय) कथ्यताम्=निगद्यताम्।

समासः—शिववीरस्य निकटे शिववीरनिकटे। सन्ध्योपासनस्य समये सन्ध्योपासनसमये। प्राप्तं परिचयस्य पत्रं येन ते प्राप्तपरिचयपत्राः। तस्य तेजसा तत्तेजसा। राज्ञां नीतिः राजनीतिः, तत्र निष्णातः राजनीतिनिष्णातः,

दौवारिकतायां योग्यः दौवारिकतायोग्यः। पालयतीति पालः, द्वारस्य पालः द्वारपालः।

कोषः—अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः। सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च'॥ इत्यमरः। 'विज्ञनिष्णातशिक्षिताः' इत्यमरः। 'कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—निर्दिश—निर्+दिश्+लोट् (सिप्)। जिगमिषावः—गम्+सन्+लट् (वस्)। अलमालप्यापि—आलप्य-आ+लप्+क्त्वा+ल्यप्। 'अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा' इति क्त्वा प्रत्ययः। निष्णातः—नि+स्ना+क्त।

शब्दार्थ—अथ=अच्छा, किमप्यस्तु=कुछ भी हो, पन्थानम्=मार्ग को, निर्दिश=बतलाओ, आवाम्=हम दोनों, शिववीरनिकटे=वीर शिवाजी के पास, जिगमिषावः=जाना चाहते हैं। अलमालप्यापि=यह भी मत कहो, प्राह्णे=पूर्वाह्ण में, तुम्बीम्=तुम्बी पात्र को, गृहीत्वा=लेकर, द्वाराद् द्वारम्=एक द्वार से दूसरे द्वार तक, इति=इस प्रकार, कथयन्नेव=कहता हुआ ही, प्राप्तपरिचयपत्राः=परिचय-पत्र प्राप्त करने वाले, आहूताः=आमन्त्रित, तत्तेजसा=संन्यासी के तेज से, धर्षितः=पराभूत होकर, मध्य एव=बीच में ही, विरराम=रुक गया। राजनीतिनिष्णातः=राजनीति में कुशल, दौवारिकतायोग्यः=द्वारपाल के योग्य, परीक्षिष्ये=परीक्षा करूँगा, इत—आयाहि=इधर आओ, किमपि=कुछ, कर्णे=कान में, कथयिष्यामि=कहूँगा।

हिन्दी—**संन्यासी**—अच्छा, कुछ भी हो, हमें मार्ग बतलाओ। हम वीर शिवाजी के पास जाना चाहते हैं।

दौवारिक—उसकी तो बात भी मत करें। आप जैसे लोगों के मिलने का समय दिवस के पूर्व भाग में महाराज के सन्ध्योपासन के समय होता है, रात्रि में नहीं।

संन्यासी—तो क्या रात्रि में कोई भी प्रवेश नहीं करता है?

दौवारिक—(क्रोधपूर्वक) कोई क्यों नहीं प्रवेश करता है। परिचित अथवा परिचय-पत्र प्राप्त किये हुए लोग अथवा आमन्त्रित जन प्रवेश करते हैं, न कि आप जैसे, जो तुम्बीपात्र लेकर एक द्वार से दूसरे द्वार तक—ऐसा कहते ही मानो संन्यासी के तेज से पराभूत होकर बीच में ही रुक गया।

संन्यासी—(अपने मन में) वीर शिवाजी राजनीति में कुशल हैं। सर्वथा द्वारपाल के योग्य ही व्यक्ति नियुक्त किया गया है। यद्यपि मैं इसकी परीक्षा ले चुका हूँ तथापि मैं इसकी एक विषय में पुनः परीक्षा लूँगा। (प्रकट रूप में) द्वारपाल ! इधर आओ, तुम्हारे कान में कुछ कहूँगा।

दौवारिक—(वैसा करके) कहिये।

टिप्पणी—इस गद्यांश में द्वारपाल की कर्तव्यपरायणता विनिर्दिष्ट है। साथ ही 'तत्तेजसेव धर्षितः' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है ॥ ७ ॥

संन्यासी—निरीक्षस्व, त्वमधुना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन् जीविकां निर्वहसि, त्वं सहस्रं वाऽयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि सम्भाव्यते।

दौवारिकः—आम्, अग्रे कथ्यताम्।

संन्यासी—वयं च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्वं रसायन-तत्त्वं विद्मः।

दौवारिकः—स्यादेवम्, अग्रे अग्रे ?

संन्यासी—तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धेः, तदधुनैव परिष्कृतं पारद-भस्म तुभ्यं दद्याम्: यथा त्वं गुञ्जामात्रेणापि द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याक-तुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।

व्याख्या—संन्यासी—निरीक्षस्व = विचारपूर्वकं पश्य, त्वम्, = भवान्; (द्वारपाल इति शेषः) अधुना = सम्प्रति, दौवारिकोऽसि = द्वारपालपद-नियुक्तोऽसि, पाणान् = असून्, अगणयन् = अविचारयन् जीविकाम् = जीवन-वृत्तिम्, निर्वहसि = सन्धारयसि, त्वं सहस्रम् = दशशत-सङ्ख्याकम्, वाऽयुतम् = शतसहस्रसङ्ख्याकं वा, मुद्रा = रूप्यकाणि, राशीकृताः = सङ्गृहीताः, कदापि, प्राप्स्यतीति = अवाप्स्यतीति, न = नहि, कथमपि = केनापि प्रकारेण, सम्भाव्यते = सम्भवो विद्यते।

दौवारिकः—आम् = स्वीकृतम्, अग्रे कथ्यताम् = धुरि वदतु।

संन्यासी—वयं च संन्यासिनः = विरक्ताः, वनेषु = विपिनेषु, गिरिकन्दरेषु च = शैलगह्वरेषु च, विचरामः = पर्यटामः, सर्वम् = निःशेषम्, रसायनतत्त्वम् = औषधिविशेषसामर्थ्यम्, विद्मः = जानीमः

दौवारिकः—स्यादेवम् = भवेदेवम्, अग्रे = धुरि, कथ्यताम् = उच्यताम्।

संन्यासी—तत्=तर्हि, यदि=चेत्, त्वं=भवान्, माम्=संन्यासिनम्, प्रविशन्तं=शिववीरभवनं गच्छन्तम्, न=नहि, प्रतिरुन्धेः=प्रतिवारयेः, तत्=तु, अधुनैव=सम्प्रत्येव, परिष्कृतम्=सुसाधितम्, पारदभस्म=ताम्रं सुवर्णे परिवर्तनक्षमं भस्म रसविशेषं वा, 'पाराभस्म' इति हिन्दी, तुभ्यम्=दौवारिकाय, दद्याम्=अर्पयेयम्, यथा=येन, त्वम्=द्वारपालः, गुञ्जामात्रेणापि=सर्षपमात्रेणापि, द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याकतुलापरिमितं=द्विपञ्चाशत्(५२) गणनातुलापरिमाणम्, महापरिमितमिति भावः, बहुसङ्ख्याकं वा, ताम्रं=धातुविशेषम्, 'तांबा' इति हिन्दी, जाम्बूनदं=सुवर्णं, विधातुम्=कर्तुम्, शक्नुयाः=सक्षमो भवेः ।

कोषः—'एतर्हि सम्प्रतीदानीमधुना साम्प्रतं तथा' इत्यमरः । 'तुला स्त्रियां पलशतम्' इत्यमरः । 'स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् । तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्वुरम् ॥ चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने । रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदोऽस्त्रियाम्' ॥ इत्यमरः ।

व्याकरणम्—अगणयन्—नञ्+गण्+शतृ (प्र० ए० व०) । प्रतिरुन्धेः—प्रति+रुधि+विधिलिङ् (सिप्) । विधातुम्—वि+धा+तुमुन् ।

शब्दार्थ—निरीक्षस्व=देखो, दौवारिकोऽसि=द्वारपाल पद पर नियुक्त हो, प्राणान्=प्राणों को, ('प्राण' शब्द नित्य बहुवचनान्त होता है ।) अगणयन्=न गिनते हुए, जीविकाम्=जीवन-धारणार्थं धन, निर्वहसि=प्राप्त करते हो, न सम्भाव्यते=सम्भव नहीं है, आम्=हाँ, रसायनतत्त्वम्=रसायनतत्त्व को, विद्मः=जानते हैं, परिष्कृतम्=संशोधित, पारदभस्म=पारे का भस्म, गुञ्जामात्रेण=रत्ती भर से ही, न प्रतिरुन्धेः=नहीं रोकते हो, जाम्बूनदम्=सोना, विधातुम्=बनाने में, शक्नुयाः=समर्थ हो सकते हो ।

हिन्दी—**संन्यासी**—देखो, इस समय तुम द्वारपाल पद पर नियुक्त हो । प्राणों की परवाह न कर जीवन-निर्वाहार्थ धन प्राप्त करते हो । तुम कभी हजार या दस हजार रूपये एक साथ प्राप्त कर लोगे, यह किसी भी तरह सम्भव नहीं है ।

दौवारिक—हाँ, आगे कहिये ।

संन्यासी—हम संन्यासी लोग वनों और पर्वत की गुफाओं में विचरण करते हैं और समस्त रसायनतत्त्वों को जानते हैं ।

दौवारिक—हो सकता है, आगे कहिये।

संन्यासी—यदि तुम मुझको अन्दर प्रवेश करने से न रोको, तो इसी समय मैं तुम्हें संशोधित पारद-भस्म दे दूँ, जिससे तुम रत्ती भर से ही मनों ताँबें को सोना वनाने में समर्थ हो सकोगे।

टिप्पणी—इस गद्यांश में संन्यासी द्वारा कथित 'दौवारिकोऽसि' इस पद से व्यञ्जित होता है कि तुम अत्यन्त कष्ट से जीवन-निर्वाह करते हो। साथ ही यहाँ संन्यासी द्वारा दौवारिक की परीक्षा हेतु स्वर्ण वनाने के निमित्त पारद-भस्म देने की वात राजनीति-संप्रेरित है ॥ ८ ॥

दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !! कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनं च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाताः, ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः। (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?

संन्यासी—(स्मित्वेव) अथ त्वं मां कं मन्यसे ?

दौवारिकः—अहं तु त्वामस्यैव ससेनस्याऽऽयातस्य अपजलखानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्यं मध्य एव) धिग् धिग् !

दौवारिकः—कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये। तदादेशं पालयिष्यामि प्रभुवर्यस्य। (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीपे, स एवाभिज्ञाय त्वया यथोचितं व्यवहरिष्यति।

ततः संन्यासी तु - "त्यज, नाहं पुनरायास्यामि, नाहं पुनरेवं कथयिष्यामि, महाशयोऽसि, दयस्व दयस्व"—इति सहस्रधा समचकथत्, तथापि दौवारिकस्तु तमाकृष्य नयन्नेव प्रचलितः।

व्याख्या—दौवारिकः—हंहो ! निन्दासूचकमव्ययम्, कपटसंन्यासिन् !=छलाचारयुक्ततुरीयाश्रमस्थ ! कथम्=किम्, विश्वासघातम्=कृतघ्नताम्, स्वामिवञ्चनञ्च=प्रभुछलनञ्च, शिक्षयसि=पाठयसि, ते=नीचाः, केचन=अज्ञातनामधेयाः, अन्ये=इतरे, भवन्ति=सन्ति, जारजाताः=पितरि जीवति सत्यन्येन समुत्पादिताः, ये=नीचाः, उत्कोचलोभेन=अनुचितधनलोभेन, 'घूस' इति हिन्दी, स्वामिनम्=प्रभुम्, वञ्चयित्वा=छलयित्वा, आत्मानम्=स्वम्,

अन्धतमसे=निरये, पातयन्ति=निमज्जितं कुर्वन्ति, न=नहि, वयम्=दौवारिकसदृशाः, शिवगणाः=शिववीरसेवकाः, तादृशाः=तत्समाः। (संन्यासिनः=छद्मवेषधारिणो गौरसिंहस्य, हस्तम्=करम्, धृत्वा=समादाय) इतस्तु=सम्प्रति तु, सत्यम्=अवितथम्, कथय=वद, कस्त्वम्=कोऽसि, कुतः=कस्मात् देशात्, आयातः=सम्प्राप्तोऽसि, केन=हेतुना जनेन वा, प्रेषितः=प्रहितः।

संन्यासी—(स्मित्वेव=ईषद्धसित्वेव) अथ=तावत्, त्वं=द्वारपालः, माम्=संन्यासिनम्, कम्, मन्यसे=जानासि।

दौवारिकः—अहं तु, त्वाम्=संन्यासिनम्, अस्यैव=निकटस्थस्यैव, ससेनस्य=अनीकिनीसमन्वितस्य, आयातस्य=समागतस्य, अफजलखानस्य=एतन्नामकस्य।

संन्यासी—(विनिवार्य=अवरुध्य, मध्य एव=अन्तरा एव) धिग् धिग्=धिक् तम्, धिक् तम्।

दौवारिकः—कस्यापि=कस्यचिदपि, अन्यस्य=अपरस्य, वा=अथवा, गूढचरम्=गुप्तचरम्, मन्ये=जानामि। तदादेशम्=तदाज्ञाम्, पालयिष्यामि=पालनं विधास्यामि, प्रभुवर्यस्य=स्वामिश्रेष्ठस्य, (हस्तमाकृष्य=करमाकृष्य) आगच्छ=आयाहि, दुर्गाध्यक्षसमीपे=दुर्गपतिनिकटे, स एव=दुर्गाध्यक्ष एव, अभिज्ञाय=आवगम्य, त्वया=संन्यासिना, यथोचितम्=शासनादेशपूर्वकम्, व्यवहरिष्यति=व्यवहारं विधास्यति।

ततः संन्यासी तु—तदनन्तरं परिव्राट् तु—'त्यज=मुञ्च, न=नहि, अहम्=संन्यासी, पुनः=भूयः, आयास्यामि=आगमिष्यामि, नाहं पुनः, एवम्=अनेन प्रकारेण, कथयिष्यामि=वक्ष्यामि, महाशयोऽसि=उदारहृदयोऽसि, दयस्व दयस्व=दयां कुरु, दयां कुर्विति'। इति=एवम्प्रकारेण, सहस्रधा=बहुधा, समचकथत्=समवोचत्, तथापि, दौवारिकस्तु=द्वारपालस्तु, तमाकृष्य=संन्यासिनमाकृष्य, नयन्नेव=सङ्कर्षयन्नेव, प्रचलितः=सञ्चलितः।

समासः—कपटश्चासौ संन्यासी च, तत्सम्बुद्धौ कपटसंन्यासिन्! विश्वासस्य घातं विश्वासघातम्। स्वामिनः वञ्चनं स्वमिवञ्चनम्। जारात् जाताः जारजाताः। उत्कोचस्य लोभेन उत्कोचलोभेन। शिवस्य गणाः शिवगणाः। सेनया सहितः ससेनः, तस्य ससेनस्य। तस्य आदेशं तदादेशम्। दुर्गाध्यक्षस्य समीपे दुर्गाध्यक्षसमीपे।

कोषः—'अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः' इत्यमरः। 'ध्वजिनी वाहिनी सेना पृतनाऽनीकिनी चमूः। वरूथिनी बलं सैन्यं चक्रं चानीकमस्त्रियाम्' इत्यमरः। 'यथार्हवर्णः प्रणिधिरपसर्पश्चरः स्पशः। चारश्च गूढपुरुषश्च' इत्यमरः।

व्याकरणम्—आयातस्य—आ+या+क्त (ष० ए० व०)। विनिवार्य—विनि+वृ+क्त्वा+ल्यप्। अभिज्ञाय—अभि+ज्ञा+क्त्वा+ल्यप्।

शब्दार्थ—हंहो!=निन्दासूचक अव्यय। स्वामिवञ्चनम्=स्वामी को ठगना, शिक्षयसि=सिखा रहे हो, जारजातः=हरामजादे, उत्कोचलोभेन=घूस के लोभ से, वञ्चयित्वा=ठगकर, आत्मानम्=अपने को, अन्धंतमसे=घोर नरक में, पातयन्ति=गिराते हैं, ससेनस्य=सेना के साथ, आयातस्य=आये हुए, विनिवार्य=रोककर, गूढचरम्=गुप्तचर, पालयिष्यामि=पालन करूँगा, दुर्गाध्यक्षसमीपे=दुर्ग के अध्यक्ष के पास, अभिज्ञाय=जानकर, व्यवहरिष्यति=व्यवहार करेगा, त्यज=छोड़ दो, आयास्यामि=आऊँगा, महाशयोऽसि=उदार हृदयवाले हो, दयस्व=दया करो, सहस्रधा=अनेक बार, समचकथत्=कहो, नयन्नेव=ले जाता हुआ ही, प्रचलितः=चल पड़ा।

हिन्दी—दौवारिक—(तिरस्कर पूर्वक) अरे ! क्यों तुम विश्वासघात और स्वामी की प्रवञ्चना का उपदेश दे रहे हो ? वे कोई और ही दोगले होते हैं, जो घूस के लोभ से स्वामी को छलकर अपने को घोर नरक में गिराते हैं। हम सब महाराज शिवाजी के सेवक ऐसे नहीं हैं। (संन्यासी का हाथ पकड़कर) इधर आओ, सत्य-सत्य बतलाओ कि तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? या तुम्हें किसने भेजा है ?

संन्यासी—(कुछ मुस्कुराकर) अच्छा, तुम मुझे कौन समझते हो ?

दौवारिक—मैं तो तुम्हें इसी सेना के साथ आये हुए अफजल खाँ का…।

संन्यासी—(बीच में ही रोककर) धिक्कार है, धिक्कार है।

दौवारिक—अथवा किसी दूसरे का गुप्तचर समझता हूँ। अतः मैं अपने स्वामी के आदेश का पालन करूँगा। (हाथ खींचकर) इधर आओ, दुर्गाध्यक्ष के पास चलो। वह तुम्हें पहचानकर तुम्हारे साथ यथोचित व्यवहार करेंगे।

उसके बाद संन्यासी ने कहा—मुझे छोड़ दीजिये, मैं फिर नहीं आऊँगा, पुनः ऐसी बात नहीं कहूँगा। आप विशाल हृदयवाले हैं, दया कीजिये, दया कीजिये। ऐसा हजारों बार कहा, परन्तु द्वारपाल पुनः उसे खींच ही ले चला।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में द्वारपाल के चरित्र को अत्यन्त समाकर्षक एवं सजीव ढङ्ग से संप्रस्तुत किया गया है। उसकी निर्लुब्धता प्रशंसा के योग्य है। संवाद-योजना सरल एवं स्वाभाविक है ॥ ९ ॥

अथ यावद् द्वारस्थ-स्तम्भोपरि संस्थापितायां काच-मञ्जूषायां जाज्वल्यमानस्य प्रबल-प्रकाशस्य दीपस्य समीपे समायातः, तावत् संन्यासिनोक्तम्—"दौवारिक ! अपि मां पूर्वमपि कदाऽप्यद्राक्षीः ?" ततो दौवारिकः पुनस्तं निपुणं निरीक्षमाणो मन्द्रेण स्वरेण, अरुणापाङ्गाभ्यां लोचनाभ्याम्, गौरतरेण वर्णेन, चुम्बितयौवनेन वयसा, निर्भीकेण हारिणा च मुखमण्डलेन पर्यचिनोत्। भुशुण्डी-समुत्तोलन-किण-कर्कश-करग्रहमपहाय, सलज्ज इव च नम्रीभूय, प्रणमन्नुवाच—"आः ! कथं श्रीमान् गौरसिंह आर्यः ? क्षम्यतामनुचित-व्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य"। तदवधार्य तस्य पृष्ठे हस्तं विन्यस्यन् संन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत्—

"दौवारिक ! मया बहुशः परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽसि चेति। त्वादृक्षा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्वयं च विजयन्ते। तव प्रामाणिकतां जानीत एवाऽत्रभवान् प्रभुवर्य्यः, परमहमपि विशिष्य कीर्तयिष्यामि। निर्दिश तावत्, कुत्र श्रीमान् ? किं चानुतिष्ठति ?

व्याख्या—अथ=तदनन्तरम्, यावत्=यदा, द्वारस्थस्तम्भोपरि=द्वाःस्थस्तम्भोपरि, संस्थापितायाम्=निक्षिप्तायाम्, काचमञ्जूषायाम्=काचपेटिकायाम्, जाज्वल्यमानस्य=देदीप्यमानस्य, प्रवलप्रकाशस्य=प्रकृष्टज्योतियुक्तस्य, दीपस्य=प्रदीपस्य, समीपे=अन्तिके, समायातः=समागतः, तावत्=तदा, संन्यासिना=संन्यासिवेषधारिणा, उक्तम्=निगदितम्, दौवारिक !=द्वारनिदेशवर्तिन् ! अपि=किम्, माम्=संन्यासिनम्, पूर्वमपि=प्रथममपि, कदापि=कदाचित्, अद्राक्षीः=दृष्टवानसि ? ततः=संन्यासिवचनश्रवणोत्तरम्, दौवारिकः=द्वारपालः, पुनः=भूयः, तम्=संन्यासिरूपधारिणं गौरसिंहम्, निपुणम्=बाढम्, निरीक्षमाणः=अवलोकयमानः, मन्द्रेण=गम्भीरेण, स्वरेण=वाण्या, अरुणापाङ्गाभ्याम्=रक्तनेत्रप्रान्ताभ्याम्, लोचनाभ्याम्=

नयनाभ्याम्, गौरतरेण=अतिगौरेण, वर्णेन=रागेण, चुम्बितयौवनेन= संस्पृष्टतारुण्येन, वयसा=अवस्थया, निर्भीकेण=भीतिविरहितेन, हारिणा च=मनोहारिणा च, मुखमण्डलेन=वदनमण्डलेन, पर्यचिनोत्=परिचितवान्, भुशुण्डीसमुत्तोलनकिणकर्कशकरग्रहम्=आयुधविशेषोत्थापनजन्यचिह्नविशेष-कठोरहस्तग्रहणम्, अपहाय=परित्यज्य, सलज्जः=सङ्कुचितः, इव=यथा, च, नम्रीभूय=प्रह्वीभूय, प्रणमन्=नमस्कारं कुर्वन्, उवाच=जगाद, आः= अये ! कथम्=किम्, श्रीमान्=शोभनश्रीः, गौरसिंहः=पूर्ववर्णितो ब्रह्म-चारिवटुः, आर्यः !=मान्यः ! क्षम्यताम्=मर्षयताम्, अनुचितव्यवहारः= असम्यक्भाषणरूपानुचितकथनव्यापारात्मकः, एतस्य=अस्य, ग्राम्यवराकस्य= अशिक्षितपामरस्य, तदनधार्य=तत्कथितं हृदि विन्यस्य, तस्य=दौवारिकस्य, पृष्ठे=पृष्ठभागे, हस्तं=करम्, विन्यस्यन्=संस्थापयन्, संन्यासिरूपो गौरसिंहः= तुरीयाश्रमस्थवेशो गौरसिंहः, समवोचत्=अकथयत् । दौवारिक !=द्वारपाल ! मया=गौरसिंहेन, वहुशः=भूरिशः, परीक्षितोऽसि=कृतपरीक्षणोऽसि, ज्ञातोऽसि=अवगतोऽसि, यथोचित एव, पदे=स्थाने, नियुक्तोऽसि=स्थापि-तोऽसि चेति । त्वादृक्षाः=त्वद्विधाः, एव, प्रभूणाम्=स्वामिनाम्, पुरस्कार-भाजनानि=उपायनपात्राणि, भवन्ति=सम्पद्यन्ते, लोकद्वयञ्च=इहलोकं परलोकञ्च, विजयन्ते=विजयमधिगच्छन्ति । तव=भवतः, प्रामाणिकताम्= नियमनिष्ठतां, वास्तविकतां वा, जानाति एव=अवगच्छत्येव, अत्रभवान्= श्रीमान्, प्रभुवर्य्यः=स्वामिवरः, परम्=किन्तु, अहमपि=गौरसिंहोऽपि, विशिष्य=विशेषरूपेण, कीर्तयिष्यामि=प्रशंसां विधास्यामि । निर्दिश= ज्ञापय, तावत्, कुत्र=कस्मिन् प्रदेशे, श्रीमान्=श्रीसमन्वितः शिववीरः, किञ्च=अपरञ्च किम्, अनुतिष्ठति=करोति ।

समासः—द्वारस्थस्य स्तम्भस्य उपरि द्वारस्थस्तम्भोपरि । काचस्य मञ्जू-षायां काचमञ्जूषायाम् । प्रवलः प्रकाशः यस्य, तस्य प्रबलप्रकाशस्य । अरुणे अपाङ्गे ययोस्ताभ्याम् अरुणापाङ्गाभ्याम् । चुम्बितं यौवनं यत्र, तेन चुम्बित-यौवनेन । भुशुण्ड्याः समुत्तोलनेन यः किणः, तेन कर्कशस्य करस्य ग्रहः, तं भुशुण्डीसमुत्तोलनकिणकर्कशकरग्रहम् । ग्राम्यस्य वराकस्य ग्राम्यवराकस्य । पुरस्कारस्य भाजनानि पुरस्कारभाजनानि ।

व्याकरणम्—जाज्वल्यमानस्य—ज्वल्+शानच् (यङन्त षष्ठी ए० व०)। अद्राक्षीः—दृश्+लुङ् (सिप्)। निरीक्षमाणः—निर्+ईक्ष+शानच् ।

मन्द्रेण—(वि०) मन्द्+रक् (तृ० ए० व०)। पर्यचिनोत्—परि+चिञ् (संज्ञाने)+लङ् (तिप्)। नम्रीभूय -नम्+र्+च्वि। प्रणमन्—प्र+णम्+शतृ। अवधार्य—अव्+धृ+क्त्वा+ल्यप्। समवोचत्—सम्+वच्+लङ् (तिप्)। विजयन्ते—वि+जि+लट् (झ), 'विपराभ्यां जेः' सूत्र से आत्मनेपद।

शब्दार्थ—द्वारस्थस्तम्भोपरि=द्वार पर संस्थित खम्वे के ऊपर, संस्थापितायाम्=रखी हुई, काचमञ्जूषायाम्=काच की पेटिका में, जाज्वल्यमानस्य=जलते हुए, प्रवलप्रकाशस्य=तेज प्रकाशवाले, समायातः=आया, अद्राक्षीः=देखा, निपुणम्=गौर से, निरीक्षमाणः=देखता हुआ, मन्द्रेण=गम्भीर, अरुणापाङ्गाभ्याम्=लाल-लाल कटाक्षों से, गौरतरेण=अत्यन्त गौर, चुम्बितयौवनेन=नई जवानी वाले, वयसा=अवस्था से, निर्भीकेण=निडर, हरिणा=मनोहर, मुखमण्डलेन=मुख-मण्डल से, पर्यचिनोत्=पहचान लिया, भुशुण्डीसमुत्तोलनकिणकर्कशकरग्रहम्=बन्दूक के उठाने से बने हुए घावों के कारण कठोर हाथ की पकड़ को, सलज्ज इव=लज्जित हुए के समान, नम्रीभूय=नम्र होकर, प्रणमन्=प्रणाम करता हुआ, क्षम्यताम्=क्षमा कीजिये, ग्राम्यवराकस्य=वेचारे गँवार का, विन्यस्यन्=फेरता हुआ, समवोचत्=बोला, बहुशः=अनेक बार, परीक्षितोऽसि=परीक्षित हो चुके हो, ज्ञातोऽसि=जान लिये गये हो, यथायोग्ये=यथोचित, नियुक्तोऽसि=नियुक्त किये गये हो, त्वादृक्षाः=तुम्हारे सदृश, पुरस्कारभाजनानि=पुरस्कार के पात्र, लोकद्वयञ्च=इहलोक और परलोक दोनों को, विजयन्ते=जीतते हैं, विशिष्य=विशेष प्रकार से, कीर्तयिष्यामि=कहूँगा, निर्दिश=बतलाओ, अनुतिष्ठति=कर रहे हैं।

हिन्दी—तदनन्तर द्वारपाल के द्वार पर स्थित खम्वे के ऊपर रखी हुई काच की मञ्जूषा में प्रज्वलित हो रहे तीव्र प्रकाश वाले दीपक के समीप पहुँचने पर संन्यासी ने कहा—द्वारपाल ! क्या मुझे तुमने कभी पहले भी देखा है ? तब द्वारपाल पुनः उस संन्यासी को अच्छी प्रकार देखकर उनके गम्भीर स्वर से, रक्त नेत्रप्रान्त वाले लोचनों से, अत्यन्त गौरवर्ण से, सद्यः सम्प्राप्त नूतन युवावस्था से, निर्भीक एवं मनोहर मुखमण्डल से उन्हें पहचान लिया। बन्दूक के समुत्तोलन से पड़े हुए घट्ठों से कठोर संन्यासी के हाथ को छोड़कर लज्जित हुए के समान, विनीत होकर प्रणाम करते हुए बोला—

अरे ! क्या आप श्रीमान् गौरसिंहजी आर्य हैं ? इस वेचारे गँवार के अनुचित व्यवहार को क्षमा कीजियेगा।

यह सुनकर द्वारपाल के पीठ पर हाथ फेरते हुए संन्यासी वेषधारी गौर-सिंह ने कहा—दौवारिक ! मैंने तुम्हारी कई बार परीक्षा ली है, मैं तुम्हें समझ गया। तुम यथोचित पद पर ही नियुक्त किये गये हो। तुम्हारे सदृश लोग ही स्वामियों के पुरस्कार के पात्र होते हैं और इहलोक-परलोक दोनों को जीतते हैं। तुम्हारी प्रामाणिकता को तो पूज्य शिवाजी जानते ही हैं, तथापि मैं भी उनसे विशेष रूप से कहूँगा। बतलाओ, महाराज कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं ?

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में 'काचमञ्जूषा' शब्द का प्रयोग शीशे की बनी हुई पेटिका के लिए किया गया है, जिसके अन्दर दीपक जलता रहता है। साथ ही इस गद्यांश में द्वारपाल और गौरसिंह को अपने-अपने कर्तव्य-पालन में खरा उतरते संदर्शित किया गया है। यह राजनीति का उत्तम निदर्शन है।

ततः पुनर्बद्धाञ्जलेर्दौवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाकर्ण्य प्रधानद्वारमुल्लङ्घ्य, नेदीयस्यामेकस्यां निम्बतरु-तल-वेदिकायां सह-चरं समुपवेश्य, तुम्बीमेकतः संस्थाप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरण-काषाय-वसनं चैकतो निम्बशाखायामवलम्बय्य, पट-खण्डेन पक्ष्मणोः कपोलयोः कर्णयोर्भ्रुवोश्चिबुके नासायां केशप्रान्तेषु च छुरितामिव विभूतिं प्रोञ्छ्य, स्कन्धयोः पृष्ठे च लम्बमानान् मेचकान् कुञ्चितान् कचानाबध्य, सहचरपोटलिकात उष्णीषमादाय, शिरसि चाऽऽधाय, सुन्दरमुत्तरीयं चैकं स्कन्धयोर्निक्षिप्य, दौवारिक-निर्देशानुसारं श्रीशिव-वीरालङ्कृतामट्टालिकां प्रति प्रतिष्ठत।

व्याख्या—ततः=प्रश्नानन्तरम्, पुनः=भूयः, बद्धाञ्जलेः=नियमित-करसम्पुटस्य, दौवारिकस्य=द्वाःस्थस्य, किमपि—किञ्चिदपि, कर्णे=श्रोत्रे, कथितम्=लपितम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, प्रधानद्वारम्=गोपुरम्, उल्लङ्घ्य=समुत्तीर्य, नेदीयस्याम्=समीपस्थायाम्, एकस्याम्=अन्यतमायाम्, निम्बतरु-तलवेदिकायाम्=निम्बवृक्षाधस्तलवर्तिस्थण्डिले, सहचरम्=सहयात्रिणम्, समुपवेश्य=स्थापयित्वा, तुम्बीम्=अलाबूपात्रम्, एकतः=एकस्मिन् भागे, संस्थाप्य=निक्षिप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम्=निजकञ्चुकाच्छादक-

गैरिकवस्त्रम्, चैकतः=अपरस्मिन् भागे, निम्बशाखायाम्=निम्बविटपे, अवलम्ब्य=अवलम्बितं विधाय, पटखण्डेन=वसनांशेन, पक्ष्मणोः=अक्षिलोम्नोः, कपोलयोः=गण्डयोः, कर्णयोः=श्रोत्रयोः, भ्रुवोः=भृकुट्योः, चिबुके=वदनाधोभागे, नासायाम्=नासिकायाम्, केशप्रान्तेषु=कुन्तलेषु च, छुरितामिव=व्याप्तामिव, विभूतिम्=भस्म, प्रोञ्छ्य=परामृज्य, स्कन्धयोः=अंशयोः, पृष्ठे=पृष्ठभागे, च, लम्बमानान्=अवलम्बितान्, मेचकान्=कृष्णवर्णान्, कुञ्चितान्=वक्रान्, कचान्=केशान्, आबध्य=बन्धनयुक्तान् कृत्वा, सहचरपोटलिकातः=सहयात्रिलघुमञ्जूषातः, उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, आदाय=गृहीत्वा, शिरसि=मस्तके, च, आधाय=सन्धार्य, सुन्दरम्=मनोहरम्, च, उत्तरीयम्=दुकूलम्, एकम्, स्कन्धयोः=अंसप्रदेशयोः, निक्षिप्य=स्थापयित्वा, दौवारिकनिर्देशानुसारम्=द्वारपालसङ्केतानुसारम्, श्रीशिववीरालङ्कृताम्=श्रीशिवराजविभूषिताम्, अट्टालिकां प्रति=प्रासादम्प्रति, प्रातिष्ठत=जगाम।

समासः—बद्धोऽञ्जलिर्येन सः, तस्य बद्धाञ्जलेः। निम्बस्य तरोः तले या वेदिका, तस्यां निम्बतरुतलवेदिकायाम्। स्वाङ्गरक्षिकावरणं यत् काषायवसनं तत् स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम्। निम्बस्य शाखायां निम्बशाखायाम्। पटस्य खण्डेन पटखण्डेन। सहचरस्य पोटलिकातः सहचरपोटलिकातः। दौवारिकस्य निर्देशानुसारं दौवारिकनिर्देशानुसारम्। श्रीशिववीरेण अलङ्कृतां श्रीशिववीरालङ्कृताम्। सह चरतीति सहचरः, तं सहचरम्।

कोषः—'पक्ष्माक्षिलोम्नि' इत्यमरः। 'नीलासितश्यामकालश्यामलमेचकाः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—उल्लङ्घ्य—उत्+लंघि+क्त्वा+ल्यप्। समुपवेश्य=सम्+उप्+विश्+क्त्वा+ल्यप्। संस्थाप्य—सम्+स्था+पुक्+ल्यप्। प्रोञ्छ्य—प्र+उक्षि उञ्छे+ल्यप्। निक्षिप्य—नि+क्षिप्+क्त्वा+ल्यप्।

शब्दार्थः—ततः=प्रश्न करने के अनन्तर, बद्धाञ्जलिः=हाथ जोड़े हुए, दौवारिकस्य=द्वारपाल के, कथितम्=कहे हुए को, आकर्ण्य=सुनकर, प्रधानद्वारम्=मुख्य द्वार को, उल्लङ्घ्य=पार करके, नेदीयस्याम्=अत्यन्त निकट ही, निम्बतरुतलवेदिकायाम्=नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर, सहचरम्=साथ के बालक को, एकतः=एक ओर, संस्थाप्य=रखकर,

स्वाङ्गरक्षिकावरणकाषायवसनम् = अपने कञ्चुक को ढँकने के लिए धारण किये हुए गेरुये वस्त्र को, निम्बशाखायाम् = नीम वृक्ष की शाखा में, अवलम्ब्य = लटकाकर, पटखण्डेन = रूमाल से, पक्ष्मणोः = पलकों के, चिबुके = ठोड़ी में, छुरिताम् = व्याप्त, विभूतिम् = भस्म को, प्रोञ्छ्य = पोंछकर, लम्बमानान् = लटकत हुए, मेचकान् = कृष्ण वर्ण के, कुञ्चितान् = घुंघराले, कचान् = केशों को, आबध्य = बाँधकर, उष्णीषम् = पगड़ी को, आधाय = रखकर, उत्तरीयम् = दुपट्टे को, निक्षिप्य = डालकर, दौवारिक-निर्देशानुसारम् = द्वारपाल के संकेतानुसार, श्रीशिववीरालङ्कृताम् = श्री वीर शिवाजी से विभूपित, अट्टालिकां प्रति = अट्टालिका की ओर, प्रातिष्ठत = प्रस्थान कर दिया।

हिन्दी—तदनन्तर हाथ जोड़े हुए द्वारपाल के द्वारा कान में कही गई बात को सुनकर गौरसिंह मुख्य द्वार को पारकर पास में ही संस्थित नीम के पेड़ के नीचे एक चबूतरे पर साथ के बालक को बिठाकर, तुम्बी पात्र को एक ओर रखकर, अपने कञ्चुक को ढँकने के लिए धारण किये गये काषाय (गेरुआ) वस्त्र को नीम की शाखा में एक ओर लटकाकर, रूमाल से पलकों, गालों, कानों, भौंहों, दाढ़ी, नासिका और बालों में लगी हुई भस्म को पोंछकर, कन्धों और पीठ पर लटक रहे बालों को सँवार कर, साथ के बालक के हाथ की पोटली से एक पगड़ी निकालकर, उसे शिर पर रखकर, एक सुन्दर उत्तरीय कन्धे पर डालकर, द्वारपाल के संकेतानुसार श्रीशिववीर द्वारा समलङ्कृत अट्टालिका की ओर चल दिया।

टिप्पणी—इस गद्यांश में गौरसिंह का अपने साधु वेष का परित्याग कर वास्तविक रूप में शिववीर के पास जाने का नैसर्गिक वर्णन है ॥ ११ ॥

शिववीरस्तु कस्याञ्चिच्चन्द्रचुम्बिन्यां सान्द्र-सुधासार-संलिप्त-भित्तिकायां धूपधूपितायां गजदन्तिकावलम्बित-विविध-च्छुरिकाखड्ग-रिष्टिकायां सुवर्ण-पिञ्जर-परिलम्बमान-शुक-पिक-चकोर-सारिका-कल-कूजित-पूजितायामट्टालिकायां सन्ध्यामुपास्योपविष्ट आसीत्। परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्व-पराक्रमां श्यामामपि यशःसमूह श्वेती-कृत त्रिभुवनां कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयां पठन-पाठनादि-परि-श्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णातां स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्म-दर्शनां ध्वंस-

काण्डव्यसनिनीमपि धर्म-धौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां शोभित-विग्रहामपि दृढ-सन्धि-बन्धां कलित-गौरवामपि कलित-लाघवां विशाल-ललाटां प्रचण्ड-बाहुदण्डां शोणापाङ्गां कम्बुग्रीवां सुनद्धस्नायुं वर्तुल-श्याम-श्मश्रुं धारिताकृतिमिव वीरतां विग्रहिणीमिव धीरतां समासादित-समर-स्फूर्तिं मूर्तिं दर्शं दर्शं परं प्रसादमासादयन्तस्तस्य वयस्याः कटानध्यवसन् ।

व्याख्या—शिववीरस्तु='शिवाजी' इति नाम्ना ख्यातो भटस्तु, कस्याञ्चित् चन्द्रचुम्बिन्याम्=गगनचुम्बिन्याम्, सान्द्रसुधासारसंलिप्तभित्तिकायाम्=गाढचूर्णद्रव्यरूषितभित्त्याम्, धूपधूपितायाम्=गुग्गुलगन्धवत्याम्, गजदन्तिकावलम्बितविविधच्छुरिकाखड्गरिष्टिकायाम्=भित्तिशङ्कुस्थापिताऽसिधेनुकाऽसिरिष्टिकायाम्, सुवर्णपिञ्जरलम्बमानशुकपिकचकोरसारिकाकलकूजितपूजितायाम्= स्वर्णपक्षिपालनयन्त्रावलम्बितकीरकोकिलजीवञ्जीवशारिकाकलरवसमन्वितायाम्, अट्टालिकायाम्=प्रासादे, सन्ध्याम्=सन्ध्यावन्दनादिकृत्यम्, उपास्य=विधाय, उपविष्टः=स्थितः, आसीत् । परितश्च=सर्वतश्च, तस्यैव=शिववीरस्यैव, खर्वाम्=लघ्वाकाराम्, अपि, अखर्वपराक्रमाम्=महापराक्रमशालिनीम्, श्यामामपि=कृष्णामपि, यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्=कीर्तिकूटधवलितत्रिलोकीम्, कुशासनाश्रयामपि=दर्भविष्टरसमाश्रितामपि, सुशासनाश्रयाम्=सुन्दरप्रशासनाश्रयाम्, पठन-पाठनादिपरिश्रमानभिज्ञामपि=ज्ञानार्जनज्ञानदानादिपरिश्रमबोधरहितामपि, नीतिनिष्णाताम्=राजनयनिपुणाम्, स्थूलदर्शनामपि=दीर्घनयनामपि, सूक्ष्मदर्शनाम्=कर्तव्याकर्तव्यविचारशीलाम्, ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि=विधर्मिहिंसनव्यसनोपयुक्तामपि, धर्मधौरेयीम्=धर्मभारधारिणीम्, कठिनामपि=कोमलेतरामपि, (शत्रुवधे), कोमलाम्=(धर्मपालने) मृदुस्वभावाम्, (युद्धकाले) उग्रामपि=तीक्ष्णामपि, (धर्मकार्ये) शान्ताम्=शान्तस्वभावाम्, शोभितविग्रहामपि=सुन्दरदेहामपि, दृढसन्धिबन्धाम्=सुगठितकलेवराम्, कलितगौरवामपि=गाम्भीर्ययुक्तामपि, लाघवाम्=चातुर्यपेशलाम्, विशालललाटाम्=दीर्घभालाम्, प्रचण्डवाहुदण्डाम्=वलिष्ठभुजाम्, शोणापाङ्गाम्=रक्तकटाक्षाम्, कम्बुग्रीवाम्=शङ्खकण्ठाम्, सुनद्धस्नायुम्=सुश्लिष्टस्नायुम्, वर्तुलश्यामश्मश्रुम्=गोलाकार-कृष्णश्मश्रुम्, धारिताकृतिमिव=धृतविग्रहमिव, वीरताम्=शूरताम्, विग्रहिणीमिव=शरीरधारिणीमिव, धीरताम्=धैर्यभावाम्, समासादितसमर-

स्फूर्तिम् = लब्धयुद्धस्फूर्तिम्, मूर्तिम् = देहम्, दर्शं दर्शं = दृष्ट्वा दृष्ट्वा, परम् = श्रेष्ठम्, प्रसादम् = हर्षम्, आसादयन्तः = लभमानाः, तस्य = शिववीरस्य, वयस्याः = सहचराः, कटान् = तृणविष्टरान्, अध्यवसन् = अध्यासन्ते स्म।

समासः—चन्द्रं चुम्बति इति चन्द्रचुम्बिनी, तस्यां चन्द्रचुम्बिन्याम्। सान्द्रेण सुधाधारेण संलिप्ताः भित्तिकाः यस्यां, तस्यां सान्द्रसुधाधारसंलिप्तभित्तिकायाम्। धूपेन धूपितायां धूपधूपितायाम्। गजदन्तिकायाम् अवलम्बिताः विविधाः छुरिकाखड्गरिष्टिकाः यस्यां, तस्यां गजदन्तिकावलम्बितविविधच्छुरिकाखड्गरिष्टिकायाम्। सुवर्णस्य पिञ्जरेषु परिलम्बमानानां शुकपिकचकोरसारिकाणां कलकूजितैः पूजितायाम् इति स्वर्णपिञ्जरपरिलम्बमानशुकपिकचकोरसारिकाकलकूजितपूजितायाम्। अखर्वः पराक्रमो यस्यां, ताम् अखर्वपराक्रमाम्। यशःसमूहेन श्वेतीकृतं त्रिभुवनं यया, तां यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्। कुशानाम् आसनम् आश्रयः यस्यास्तां कुशासनाश्रयाम्। शोभनं शासनम् आश्रयो यस्याः सा, तां सुशासनाश्रयाम्। पठन-पाठनादीनां परिश्रमेण अनभिज्ञा या सा, तां पठनपाठनादिपरिश्रमानभिज्ञाम्। नीतौ निष्णाता, तां नीतिनिष्णाताम्। स्थूलं दर्शनं यस्याः सा, तां स्थूलदर्शनाम्। ध्वंसकाण्डस्य व्यसनम् अस्ति यस्याः, तां ध्वंसकाण्डव्यसनिनीम्। शोभितः विग्रहः यस्याः सा, तां शोभितविग्रहाम्। शोणे अपाङ्गे यस्याः सा, तां शोणापाङ्गाम्। कम्बु इव ग्रीवा यस्याः सा, तां कम्बुग्रीवाम्। वर्तुलं श्यामं च श्मश्रु यस्याः सा, तां वर्तुलश्यामश्मश्रु। धारिता आकृतिः यया सा, तां धारिताकृतिम्। समासादिता समरे स्फूर्तिः यया, तां समासादितसमरस्फूर्तिम्।

व्याकरणम्—उपास्य—उप + आस् + क्त्वा + ल्यप्। उपविष्टः—उप + विश् + क्त। शासनम्—शास्यते अनेनेति शासनम्, शास् + घञ्। निष्णाता—नि + स्ना + क्त (टाप्—स्त्रीलिङ्ग)। व्यसनिनी—व्यसन् + इन् + ङीष्। धौरेयीम्—धुरा + ढ (एय्) + ङीप्। धारिता—धृ + णिच् + क्त (स्त्री०)। समासादित—सम् + आ + षद् + क्त। दर्शं दर्शम्—दृश् + णमुल्, वीप्सा में द्वित्व। आसादयन्तः—आ + षद् + शतृ (प्र० पु० ब०)। वयस्याः—वयसि भवाः वयस्याः—वयस् + यत्। अध्यवसन्—अधि + वस् + लङ् + (झि)। 'उपान्वध्याङ्वसः' इस सूत्र से 'अधि-वस्' के योग में 'कटान्' में द्वितीया विभक्ति हुई है।

शब्दार्थ—चन्द्रचुम्बिन्याम् = गगनचुम्बी, सान्द्रसुधासारसंलिप्तभित्तिकाः-

याम् = गाढ़े चूने से पुती दीवारों वाले। धूपधूपितायाम् = धूप से सुगन्धित, गजदन्तिकावलम्बितविविधच्छुरिकाखड्गरिष्टिकायाम् = खूँटियों पर लटक रही हैं अनेक प्रकार की छुरियाँ, तलवार तथा कृपाण आदि जिसमें। स्वर्णपिञ्जरपरिलम्बमानशुकपिकचकोरसारिकाकलकूजितायाम् = सुवर्ण के पिंजरे में संस्थित शुकों, कोयलों, चकोरों और सारिकाओं के मधुर कूजन से युक्त (अट्टालिका का विशेषण), सन्ध्याम् = सन्ध्या-पूजन आदि को, उपास्य = सम्पादित करके, उपविष्टः = बैठे हुए, खर्वाम् = छोटी होने पर भी, अखर्वपराक्रमाम् = महापराक्रमशालिनी। श्यामामपि यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम् = श्यामल होती हुई भी कीर्ति-समूह से तीनों लोकों को धवलित करने वाली, कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयाम् = कुशासन पर आसीन होने पर भी सुन्दर आसन का आश्रय, पठनपाठनादिपरिश्रमानभिज्ञामपि नीतिनिष्णाताम् = पठन-पाठन आदि के परिश्रम से अनभिज्ञ होते हुए भी नीति में निपुण, स्थूलदर्शनामपि = देखने में स्थूल होने पर भी, सूक्ष्मदर्शनाम् = सूक्ष्म दृष्टि वाली, ध्वंसकाण्डव्यसनिनीमपि = हिंसा आदि के व्यसन से युक्त होती हुई भी, धर्मधौरेयीम् = धर्म के भार को धारण करने वाली, कठिनामपि कोमलाम् = कठिन होती हुई भी कोमल, उग्रामपि शान्ताम् = उग्र होती हुई भी शान्त, शोभितविग्रहामपि = सुन्दर संग्राम वाली होती हुई भी, दृढसन्धिबन्धाम् = सुदृढ़ सन्धिबन्धों वाली, कलितगौरवामपि = गौरवशालिनी होती हुई भी, कलितलाघवाम् = चातुर्यसम्पन्न, विशालललाटाम् = विशाल ललाटवाली, प्रचण्डबाहुदण्डाम् = प्रबल भुजदण्डों वाली, शोणापाङ्गाम् = रक्तिम नेत्रों वाली, कम्बुग्रीवाम् = शंख सदृश कण्ठवाली, सुनद्धस्नायुम् = सुसंश्लिष्ट नसों वाली, वर्तुलश्यामश्मश्रुम् = गोल और काली दाढ़ी-मूँछों वाली, धारिताकृतिम् = आकृति को धारण की हुई, विग्रहिणीम् = शरीरधारिणी, समासादितसमरस्फूर्तिम् = समर-भूमि में स्फूर्ति प्राप्त करने वाली, दर्शं दर्शम् = देख-देखकर, प्रसादम् = प्रसन्नता को, आसादयन्तः = प्राप्त करने वाले, वयस्याः = मित्रगण, कटान् = चटाइयों पर, अध्यवसन् = बैठे थे।

हिन्दी —वीर शिवाजी किसी एक चन्द्र को संस्पर्श करने वाली अर्थात् गगनचुम्बी, गाढ़े चूने से पुती दीवारों वाली, धूप से सुगन्धित, जिसमें दीवालों में गड़ी हुई खूटियों में अनेक प्रकार के छुरे, तलवार तथा यष्टिका आदि लटक रहे थे तथा सोने के पिंजड़े में लटक रहे शुक, कोयल, चकोरों और

सारिकाओं के मधुर कूजन से व्याप्त अट्टालिका (प्रासाद) में सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त होकर बैठे हुए थे। उनके चारों ओर उन्हीं की देखने में छोटी होने पर भी महत्पराक्रमशालिनी, श्यामल होती हुई भी त्रिभुवन को अपनी कीर्ति से धवलित करने वाली, कुश के आसन पर समासीन होने पर भी सुन्दर शासन का समाश्रय ग्रहण करने वाली, पठन-पाठनादि के परिश्रम से अनभिज्ञ होती हुई भी राजनीति में निपुण, देखने में स्थूल होने पर भी सूक्ष्म दृष्टि-वाली, हिंसा (विधर्मियों) की व्यसन वाली होने पर भी धर्म का भार धारण करने वाली, कठिन होती हुई भी कोमल, उग्र होती हुई भी शान्त, सुन्दर विग्रह (लड़ाई और शरीर) वाली होती हुई भी सुश्लिष्ट सन्धिबन्धों वाली, गौरवशालिनी होते हुए भी चातुर्य-सम्पन्न, विशाल ललाट और प्रबल भुजदण्डों वाली, रक्तिम नेत्रों वाली, शंख-तुल्य कण्ठवाली, सुगठित नसों वाली, गोल और काली दाढ़ी-मूँछ वाली, मूर्तिमती वीरता-सी, शरीरधारिणी धीरता-सी और समरभूमि में असाधारण स्फूर्ति दिखलाने वाली मूर्ति (देह) को देख-कर परम प्रसन्न होते हुए शिवाजी के सहचर अर्थात् मित्रगण चटाइयों पर बैठे हुए थे।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'खर्वामप्यखर्वपराक्रमाम्' से आरम्भ कर 'कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्' पर्यन्त विरोधाभासालंकार का सुन्दर निदर्शन है। 'चन्द्रचुम्बिन्याम्···अट्टालिकायाम्' इस स्थल पर अतिशयोक्ति अलङ्कार है। इसी प्रकार 'कम्बुग्रीवाम्' में लुप्तोपमालंकार और 'धारिताकृति-मिव वीरताम्' एवं 'विग्रहिणीमिव धीरताम्' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालङ्कार है। इसी तरह प्रसाद नामक गुण भी दृष्टिगोचर होता है ॥ १२ ॥

तेषु च अपजलखान-दमन-विषयक-वार्तामारिप्सुष्वेव कश्चिद् वेत्र-हस्तः प्रतीहारः प्रविश्य, वेत्रं कक्षे संस्थाप्य, शिरो नमयित्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा न्यवीविदत्— "प्रभो ! श्रीमान् गौरसिंहो दिदृक्षतेऽत्रभवन्तम्"— तदाकर्ण्य "आम् ! प्रवेशय प्रवेशय" इति सानन्दं सोत्साहं च कथितवति महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डले, प्रतीहारो निवृत्य, सपद्येव तं प्रावीविशत्।

व्याख्या—तेषु च = सहचरेषु च, अपजलखानदमनविषयकवार्तामारिप्सुष्वेव = रिपुनिग्रहविषयकचर्चां प्रारम्भं चिकीर्षुषु एव, कश्चित् = कोऽपि, वेत्र-हस्तः = वेत्रधारी, प्रतीहारः = द्वारपालः, प्रविश्य = प्रवेशं विधाय, वेत्रम् =

दण्डम्, कक्षे=पार्श्वे, संस्थाप्य=स्थापयित्वा, शिरः=मस्तकम्, नमयित्वा=नमनं विधाय, अञ्जलिम्=करद्वयसम्पुटम्, बद्ध्वा=कृत्वा, न्यवीविदत्=निवेदितवान्, प्रभो!=स्वामिन्! श्रीमान्=शोभासम्पन्नः, गौरसिंहः=तन्नामकः बटुः, दिदृक्षते=द्रष्टुमभिलषति, अत्रभवन्तम्=पूज्यम्। तदाकर्ण्य=तच्छ्रुत्वा, आम्=शोभनम्, प्रवेशय प्रवेशय=आनय आनय, इति=एवम्प्रकारेण, सानन्दम्=सहर्षम्, सोत्साहम्=उत्साहपूर्वकञ्च, कथितवति=उक्तवति, महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले=महाराष्ट्रमण्डलपाकशासने, प्रतिहारी=द्वारपालः, निवृत्य=परावृत्य, सपद्येव=सत्वरमेव, तम्=गौरसिंहम्, प्रावीविशत्=आभ्यन्तरं नीतवान्।

समासः—वेत्रं हस्ते यस्यासौ वेत्रहस्तः। आनन्देन सहितम् इति सानन्दम्। उत्साहेन सहितम् इति सोत्साहम्। महाराष्ट्रमण्डलस्य आखण्डले इति महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले।

व्याकरणम्—आरिप्सुषु—आ+रभ्+सन्+उ (सप्तमी ब० व०)। संस्थाप्य—सम्+स्था+णिच्+पुक्+ल्यप्। नमयित्वा—नम्+णिच्+क्त्वा। बद्ध्वा—बध्+क्त्वा। न्यवीविदत्—नि+विद्+लुङ्+तिप्। दिदृक्षते—दृश्+सन्+लट्+त (आत्मनेपद)। कथितवति—कथ्+क्तवतु (सप्तमी ए० व०)। निवृत्य—नि+वृत्+क्त्वा+ल्यप्। प्रावीविशत्—प्र+विश्+लुङ्+तिप्। न्यवीविदत् और प्रावीविशत् में विद् और विश् धातु से बाहुलकात् णिच् प्रत्यय हुआ है।

शब्दार्थ—तेषु=उन सबके, अपजलखानदमनविषयकवार्ताम्=अफ़जलखान के दमन सम्बन्धी बातचीत, आरिप्सुषु=प्रारम्भ करने की इच्छा वाले, वेत्रहस्तः=हाथ में बेंत धारण किये हुए, प्रतीहारः=द्वारपाल, कक्षे=बगल में, संस्थाप्य=रखकर, नमयित्वा=झुकाकर, अञ्जलिं बद्ध्वा=हाथ जोड़कर, न्यवीविदत्=निवेदन किया, दिदृक्षते=देखना चाहते हैं, प्रवेशय=प्रवेश कराओ, सानन्दम्=आनन्दसहित, सोत्साहम्=उत्साहपूर्वक, कथितवति=कहने पर, महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले=महाराष्ट्र-मण्डल के इन्द्र अर्थात् स्वामी के, निवृत्य=लौटकर, प्रावीविशत्=प्रवेश कराया।

हिन्दी—वे सब अफ़जलखान के दमन से सम्बद्ध वार्तालाप प्रारम्भ करने जा ही रहे थे कि बेंत हाथ में धारण किये हुए द्वारपाल ने प्रवेश किया और बेंत को पार्श्व (बगल) में दबाकर, शिर झुकाकर हाथ जोड़कर निवेदन

किया—स्वामिन् ! श्रीमान् गौरसिंह आपका दर्शन करना चाहते हैं। यह सुनकर महाराष्ट्र-मण्डल के इन्द्र अर्थात् स्वामी शिवाजी के आनन्द तथा उत्साह के साथ 'अच्छा, ले आओ, ले आओ' कहने पर प्रतीहार अर्थात् द्वारपाल ने शीघ्र उन्हें प्रवेश कराया।

टिप्पणी—इस गद्यांश में 'महाराष्ट्रमण्डलाखण्डले' स्थल पर श्रेष्ठ पराक्रमी शिवाजी में आखण्डल अर्थात् इन्द्र का समारोप होने के कारण रूपकालङ्कार है ॥ १३ ॥

तमवलोक्यैव "इत इतो गौरसिंह ! उपविश, उपविश। चिराय दृष्टोऽसि, अपि कुशलं कलयसि ? अपि कुशलिनस्तव सहवासिनः ? अप्यङ्गीकृत-महाव्रतं निर्वहथ यूयम् ? अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः ?" इति कुसुमानीव वर्षता पीयूष-प्रवाहेणेव सिञ्चता मृदुना वचनजातेन तत्रभवता शिववीरेणाऽऽद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानश्च, त्रिः प्रणम्य, अन्तरङ्ग-मण्डली-जुष्ट-कटे समुपविश्य, करौ सम्पुटीकृत्य "भगवन् ! अखिलं कुशलं प्रभूणामनुग्रहेणाऽस्माकमखिलानाम् अङ्गीकृत-महाव्रते च मा स्म पदं धात् कश्चनान्तराय इत्येव सदा प्रार्थ्यते भगवान् भूतनाथः। नूतनः प्रत्नश्च को नामाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च वृत्तान्तः—ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्खलानामुच्छिन्नसच्छीलानां म्लेच्छहतकानाम्" इति कथयामास। ततश्च तेषामेवमभूदालापः—

व्याख्या—तम्=गौरसिंहम्, अवलोक्यैव=दृष्ट्वैव, इतः इतः=अत्रागच्छ अत्रागच्छ, गौरसिंहः=तन्नामकः, उपविश उपविश=तिष्ठ तिष्ठ, चिराय=चिररात्राय, दृष्टोऽसि=लोचनपथमागतोऽसि, अपि=किम्, कुशलम्=कल्याणम्, कलयसि=धारयसि ? अपि=किम्, कुशलिनः=कल्याणसमन्विताः, तव=भवतः, सहवासिनः=सहचराः ? अपि=किम्, अङ्गीकृतमहाव्रतम्=स्वीकृतमहाव्रतम्, निर्वहथ=निर्वाहं कुरुथ, यूयम्=भवन्तः ? अपि=किम्, कश्चिन्नूतनः=कश्चिदभिनवः, वृत्तान्तः=समाचारः, इति=एवम्प्रकारेण, कुसुमानीव=प्रसूनानीव, वर्षता=प्रकिरता, पीयूषप्रवाहेणेव=सुधास्रोतसेव, सिञ्चता=वर्षता, मृदुना=कोमलेन, वचनजातेन=वाक्यविन्यासेन, तत्रभवता=पूज्येन, शिववीरेण=शिवराजेन, आद्रियमाणः=समाद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानः=प्राप्तप्रश्नश्च, त्रिः=त्रिवारम्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, अन्तरङ्गमण्डली-

जुष्टकटे = गुप्तसमितिसेवितविष्टरे, समुपविश्य = स्थित्वा, करौ = हस्तौ, सम्पुटीकृत्य = मुकुलीकृत्य, भगवन् ! = श्रीमन् ! अखिलम् = निखिलम्, कुशलं = क्षेमम्, प्रभूणाम् = स्वामिनाम्, अनुग्रहेण = कृपया, अस्माकम् = मद्विधानाम्, अखिलानाम् = सकलानाम्, अङ्गीकृतमहाव्रते = स्वीकृतमहाव्रते, मा स्म पदं धात् = न पदमारोपयेत्, कश्चन = कोऽपि, अन्तरायः = प्रत्यूहः, इत्येव = एतदेव, सदा = सर्वदा, प्रार्थ्यते = निवेद्यते, भगवान् = ऐश्वर्यसम्पन्नः, भूतनाथः = विश्वनाथः। नूतनः = नवीनः, प्रत्नश्च = पुराणश्च, को नाम, अद्यतनसमये = सम्प्रति, वक्तव्यः = वाच्यः, श्रोतव्यश्च = श्रवणीयश्च, वृत्तान्तः = समाचारः, ऋते = विना, दुराचारात् = कदाचारात्, स्वच्छन्दानाम् = स्वतन्त्राणाम्, उच्छृङ्खलानाम् = मर्यादाविरहितानाम्, उच्छिन्नसच्छीलानाम् = समाप्ताशेषसदाचाराणाम्, म्लेच्छहतकानाम् = दुष्टयवनानाम्, इति = एवम्प्रकारेण, कथयामास = अकथयत्। ततश्च = तदनन्तरम्, तेषाम् = गौरसिंहशिववीरादीनाम्, एवम् = इत्थम्, आलापः = वार्तालापः, अभूत् = अभवत्।

समासः—वचनानां जातेन वचनजातेन। अन्तरङ्गानां मण्डल्या जुष्टे कटे अन्तरङ्गमण्डलीजुष्टकटे। उच्छिन्नम् सत् शीलं यैस्तेषाम् उच्छिन्नसच्छीलानाम्। पीयूषस्य प्रवाहः पीयूषप्रवाहस्तेन पीयूषप्रवाहेण।

कोषः—'वार्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्तः' इत्यमरः। 'पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तनाः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—कलयसि—कल् + लट् + सिप्। कुशलिनः—कुशल + इन्। निर्वहथ—निर् + वह् + लट् + थ। वर्षता—वृषु + शतृ (तृतीया ए० व०)। आद्रियमाणः—आ + दृङ् + शानच्। आपृच्छयमानः—आ + पृच्छ + शानच्। जुष्ट—जुषी + क्त। समुपविश्य—सम् + उप् + विश् + क्त्वा + ल्यप्। मा स्म धात्—डुधाञ् + लुङ्, 'मा' के योग में अट् नहीं हुआ। वक्तव्यः—वच् + तव्यत्। श्रोतव्यः—श्रु + तव्यत्।

शब्दार्थ - तम् = उस गौरसिंह को, अवलोक्य = देखकर, कलयसि = धारण करते हो, अपि = क्या (प्रश्नवाचक), कुशलिनः = कुशलपूर्वक, सहवासिनः = साथ में रहने वाले, अङ्गीकृतमहाव्रतम् = स्वीकृत महाव्रत को, निर्वहथ = निर्वाह कर रहे हो, वृत्तान्तः = समाचार, पीयूषप्रवाहेण = अमृतप्रवाह से, इव = उत्प्रेक्षावाचक, सिञ्चता = सींचते हुए, मृदुना वचनजातेन = कोमल वचनों से, आद्रियमाणः = समादृत होता हुआ, आपृच्छयमानः = पूछा

गया, त्रिः=तीन बार, अन्तरङ्गमण्डलीजुष्टकटे=गुप्त-समिति के द्वारा सेवित चटाई पर, समुपविश्य=बैठकर, सम्पुटीकृत्य=जोड़कर, मा स्म धात्=न धावे, अन्तरायः=विघ्न, प्राथ्यंते=प्रार्थना की जाती है, भूतनाथः=शङ्कर, प्रत्नः=पुरातन, अद्यतनसमये=इस समय, वक्तव्यः=कहने योग्य, श्रोतव्यः= सुनने योग्य, ऋते दुराचारात्=दुराचार के अतिरिक्त, स्वच्छन्दानाम्= स्वेच्छाचारी, उच्छृङ्खलानाम्=उच्छृङ्खल, उच्छिन्नसच्छीलानाम्=शील और सदाचार विरहित, म्लेच्छहतकानाम्=दुष्ट यवनों के, कथयामास=कहा, आलापः=वार्तालाप, अभूत्=हुआ।

हिन्दी—उन गौरसिंह को देखते ही 'इधर आओ, गौरसिंह! इधर आओ। बैठो, बैठो, बहुत समय बाद दिखलाई पड़े, कुशल तो है? तुम्हारे सहचर-गण कुशल से हैं? तुम लोग स्वीकृत महाव्रत का निर्वाह करते हो न? क्या कोई नवीन समाचार है?' इस प्रकार पुष्पवर्षा जैसी करते हुए, सुधा-प्रवाह से सींचते हुए जैसे कोमल वचनों से महाराज शिवाजी द्वारा सम्मान प्राप्त करते हुए और पूछे जाते हुए गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, गुप्त-समिति (अन्तरङ्ग-मण्डली) द्वारा संसेवित चटाई पर बैठकर और हाथ जोड़कर कहा—भगवन्! प्रभुचरणों के अनुग्रह से हमसब सुचारुतया कुशल से हैं और भगवान् शङ्कर से सर्वदा यही प्रार्थना किया करते हैं कि स्वीकृत महाव्रत में कोई विघ्न समुपस्थित न हो। नवीन अथवा प्राचीन कहने योग्य और सुनने योग्य समाचार इस समय निरङ्कुश, उद्दण्ड, शील और सदाचार विरहित दुष्ट यवनों के दुराचार के अतिरिक्त और क्या है? तदनन्तर उन लोगों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'कुसुमानि इव वर्षता' और 'पीयूषप्रवाहेणेव सिञ्चता' आदि स्थलों पर उत्प्रेक्षालङ्कार है ॥ १४ ॥

शिववीरः—अथ कथ्यतां को वृत्तान्तः? का च व्यवस्था अस्मन्महाव्रताश्रम-परम्परायाः?

गौरसिंहः—भगवन् सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालमङ्गीकृत-सनातनधर्म-रक्षा-महाव्रतानां धारित-मुनि-वेषाणां वीरवराणामाश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमं च वलीकेषु गोपयित्वा स्थापिताः परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविताः शक्तयः, कुशपुञ्जान्तः-

स्थापिता भुशुण्डयश्च समुल्लसन्ति। उञ्छस्य, शिलस्य, समिदाहरणस्य, इङ्गुदी-पर्य्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र-परिमार्गणस्य, कुसुमावचयनस्य, तीर्थाटनस्य, सत्सङ्गस्य च व्याजेन, केचन जटिलाः, परे मुण्डिनः, इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो बटवश्चराः सञ्चरन्ति। विजयपुरादुड्डीयाऽत्राऽऽगच्छन्त्या मक्षिकाया अप्यन्तःस्थितं वयं विद्मः, किं नाम एषां यवनहतकानाम् ?

व्याख्या—शिववीरः—अथ=अनन्तरम्, कथ्यताम्=उच्यताम्, को वृत्तान्तः =का वार्ता (विद्यते) ? अस्मन्महाव्रताश्रमपरम्परायाः=अस्मन्महत्तपोवनसञ्चालनस्य, का व्यवस्था=कः स्वरूपः ?

गौरसिंहः—भगवन् !=श्रीमन् ! सर्वम्=निखिलम्, सुसिद्धम्=सुव्यवस्थितम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालम्=प्रत्येककोशद्वयमध्ये, अङ्गीकृतसनातनधर्मरक्षाव्रतानाम्=स्वीकृतार्यधर्मरक्षाव्रतानाम्, धारितमुनिवेषाणाम्=कलितमुनिस्वरूपाणाम्, वीरवराणामाश्रमाः=भटानामावासाः, सन्ति=विद्यन्ते। प्रत्याश्रमञ्च=प्रत्येकेष्वावासेषु च, वलीकेषु=पटलप्रान्तेषु, गोपयित्वा=सङ्गोप्य, स्थापिताः=निहिताः, परश्शताः=शताधिकाः, खड्गाः=असयः, पटलेषु=शुष्कपलाशेषु छादनेषु वा, तिरोभाविताः=गोपिताः, शक्तयः=शस्त्रविशेषाः, कुशपुञ्जान्तः=दर्भसमूहाभ्यन्तरे, स्थापिताः=निहिताः, भुशुण्डयश्च=बन्दूकनामकास्त्रविशेषाश्च, समुल्लसन्ति=विलसन्ति। उञ्छस्य=कणश आदानस्य, शिलस्य=क्षेत्रादौ स्वामिपरित्यक्तानां कणिशानां ग्रहणस्य, समिदाहरणस्य=यज्ञेन्धनानयनस्य, इङ्गुदीपर्य्यन्वेषणस्य=पिण्याकमार्गणस्य, भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य=भूर्जपत्रान्वेषणस्य, कुसुमावचयनस्य=प्रसूनसङ्कलनस्य, तीर्थाटनस्य=तीर्थभ्रमणस्य, सत्सङ्गस्य=सज्जनसमागमस्य, च, व्याजेन=माध्यमेन, केचन जटिलाः=जटाधारिणः, परे=इतरे, मुण्डिनः=मुण्डितमस्तकाः, इतरे=अन्ये, काषायिणः=गैरिकवसनाः, अन्ये=अपरे, मौनिनः=मूकताश्रयिणः, अपरे=इतरे, ब्रह्मचारिणः=ब्रह्मचारिवेषधारिणः च, बहवः=भूरिशः, पटवः=निपुणाः, बटवः=ब्रह्मचारिणः, बालकाः वा, चराः=स्पशाः, सञ्चरन्ति=विचरन्ति। विजयपुरात्=रिपुनगरादेतन्नामकात्, उड्डीय=उत्पत्य, अत्र=भवत्समीपम्, आगच्छन्त्या=आयान्त्या, मक्षिकाया अपि=क्षुद्रजीवस्यापि, अन्तःस्थितं=हृदये वर्तमानं भावम्, वयम्=चराः,

विद्मः = जानीमः, किं नाम = का कथा, एषाम् = वार्ताविषयत्वेन समुपस्थितानाम्, यवनहतकानाम् = दुष्टयवनानाम् ?

समासः – गव्यूतिं गव्यूतिं प्रति प्रतिगव्यूति, तदेवान्तरालं यत्र तत् प्रतिगव्यूत्यन्तरालम् । अङ्गीकृतं सनातनधर्मरक्षायाः महाव्रतं यैस्तेषाम् अङ्गीकृतसनातनधर्मरक्षामहाव्रतानाम् । धारितः मुनीनां वेषः यैस्तेषां धारितमुनिवेषाणाम् । आश्रमम् आश्रमं प्रति प्रत्याश्रमम् । कुशानां पुञ्जः कुशपुञ्जः, तत्रान्तःस्थापिताः कुशपुञ्जान्तःस्थापिताः । समिधाम् आहरणस्य समिदाहरणस्य । इङ्गुद्याः पर्यन्वेषणस्य इङ्गुदीपर्यन्वेषणस्य । भूर्जपत्राणां परिमार्गणस्य भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य । कुसुमानामवचयनस्य कुसुमावचयनस्य । तीर्थानामटनस्य तीर्थाटनस्य । सतां सङ्गस्य सत्सङ्गस्य ।

कोषः—'उञ्छः कणश आदानं कणिशाद्यर्जनं शिलम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—सुसिद्धम्—सु + षिध् + क्त । गोपयित्वा—गुप् + णिच् + क्त्वा । समुल्लसन्ति—सम् + उत् + लस् + लट् + झि । जटिलाः—जटा + इलच् ।

शब्दार्थ—अथ = अनन्तर, कथ्यताम् = कहिये, अस्मन्महाव्रताश्रमपरम्परायाः = हमारे महाव्रत के आश्रमों की परम्परा का, सुसिद्धम् = ठीक है, प्रतिगव्यूति = प्रत्येक दो कोस के, अन्तरालम् = मध्य, अङ्गीकृतः = स्वीकृत, धारितमुनिवेषाणाम् = मुनि-वेष को धारण करने वाले, वीरवराणाम् = श्रेष्ठवीरों का, गोपयित्वा = छिपाकर, वलीकेषु = छज्जों में, परश्शताः = सौ से अधिक, पटलेषु = छप्परों में, तिरोभाविताः = छिपाई हुई, शक्तयः = शक्तियाँ (अस्त्र-विशेष) कुशपुञ्जान्तःस्थापिताः = कुश-समूह के भीतर छिपाकर रखी हुई, भुशुण्डयः = बन्दूकें, समुल्लसन्ति = विराजमान हैं, उञ्छस्य = उञ्छवृत्ति के, शिलस्य = बालियों के चयन के, इङ्गुदीपर्यन्वेषणस्य = इङ्गुदी फल के अन्वेषण के, भूर्जपत्रपरिमार्गणस्य = भोजपत्र के ढूंढ़ने के, कुसुमावचयनस्य = पुष्पों को चुनने के, व्याजेन = माध्यम से, जटिलाः = जटाधारी, मुण्डिनः = शिर मुँड़े हुए, काषायिणः = गेरुआ वस्त्र धारण किये हुए, मौनिनः = मौनव्रत धारण करने वाले, चराः = गुप्तचर, उड्डीय = उड़कर, आगच्छन्त्याः = आनेवाली, मक्षिकाया अपि = मक्खी के भी, अन्तःस्थितम् = आन्तरिक भाव को, विद्मः = जान लेते हैं, किं नाम = क्या कहना है, एषाम् = इन सबकी, यवनहतकानाम् = दुष्ट यवनों के ।

हिन्दी—शिववीर—अच्छा बतलाइये, आश्रमवासियों का क्या वृत्तान्त है? हमारे महाव्रतधारी आश्रम-परम्परा की क्या व्यवस्था है?

गौरसिंह—भगवन्! सब ठीक है। प्रत्येक दो कोस के बीच में सनातन धर्म की रक्षा का महाव्रत अङ्गीकार किये हुए मुनिवेषधारी शूरवीरों के आश्रम हैं। प्रत्येक आश्रम में वलीकों (छज्जों) में छिपाकर रखी हुई सैकड़ों तलवारें, छप्परों में छिपाई हुईं शक्तियाँ और कुश-समूहों के ढेरों के बीच रखी गईं बन्दूकें विद्यमान हैं। खेतों में गिरे हुए अन्न को एकत्रित करने, बालियों को चयन करने, इङ्गुदी का अन्वेषण करने, भोजपत्र खोजने, तीर्थाटन करने, पुष्पों को चुनने और सत्सङ्ग के माध्यम से कोई जटा धारण किये हुए, कोई शिर मुँड़ाये हुए, कुछ लोग गैरिक वसन धारण किये हुए और अन्य लोग ब्रह्मचारी के वेष में अनेकों चतुर गुप्तचर बालक परिभ्रमण कर रहे हैं। 'विजयपुर से यहाँ तक उड़कर आनेवाली मक्षिका (मक्खी) के भी आन्तरिक भावों को हम लोग जान लेते हैं, इन दुष्ट यवनों की तो बात ही क्या है? ॥ १५ ॥

शिववीरः—साधु साधु, कथं न स्यादेवम्? भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतं वर्षम्, भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च "प्राणा यान्तु, न च धर्मः" इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः। महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठयन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्म-घर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंह सङ्घेष्वपि, वारण-वारेष्वपि, चन्द्रहास-चमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति। तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्यवंशीयाः वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः।

व्याख्या—शिववीरः='शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितो जनः ब्रूते—साधु साधु=सुष्ठु सुष्ठु, कथम्=किम्, न=नहि, स्यादेवम्=इत्थं भवेत्? भारतवर्षीया=हिन्दुस्थानीया, यूयम्=भवन्तः, तत्रापि=तस्मिन्नपि, महोच्चकुलजाताः=लब्धप्रतिष्ठवंशोत्पन्नाः, अस्ति=वर्तते, चेदं, भवति च=

सम्पद्यते च, स्वाभाविक एव = नैसर्गिक एव, अनुरागः = स्नेहः, सर्वस्यापि = निखिलस्यापि, स्वदेशे = निजमातृभूमौ, पवित्रतमश्च = पूततमश्च, यौष्माकीणः = युष्माकम्, सनातनो धर्मः = वैदिको धर्मः, तम् = वैदिकं धर्मम्, एते = यवनाः, जाल्माः = अविवेकिनः, समूलमुच्छिन्दन्ति = आमूलादुत्पाटयन्ति, अस्ति च = वर्तते च, प्राणाः = असवः, यान्तु = निर्गच्छन्तु, न च धर्मः = नहि च स्वकीयः सनातनो धर्मः, इति = एतत्, आर्याणाम् = वैदिकमतावलम्बिनाम्, दृढः = कठोरः, सिद्धान्तः = नियमः, महान्तः = महामहिमशालिनः, हि = निश्चयेन, धर्मस्य कृते = धर्मार्थम्, लुण्ठ्यन्ते = चौर्यन्ते, पात्यन्ते = पर्वताद्युच्च-स्थानात् अधो नीयन्ते, हन्यन्ते = मार्यन्ते, न धर्मं त्यजन्ति = स्वधर्मं न मुञ्चन्ति, किन्तु = परञ्च, धर्मस्य = निजधर्मस्य, रक्षार्थं = रक्षणाय, सर्वसुखान्यपि = सकलशर्माण्यपि, त्यक्त्वा = परित्यज्य, निशीथेष्वपि = अर्द्धरात्रेष्वपि, वर्षास्वपि = प्रावृषि, ग्रीष्मघर्मेष्वपि = निदाघधूपेष्वपि, महारण्येष्वपि = भयानकजङ्गलेष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि = पर्वतगह्वरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि = पन्नगव्रातेष्वपि, सिंह-सङ्घेष्वपि = व्याघ्रसमूहेष्वपि, वारणवारेष्वपि = हस्तिगणेष्वपि, चन्द्रहास-चमत्कारेष्वपि = खड्गप्रभामण्डलेष्वपि, च = पुनः, निर्भयाः = भीतिविरहिताः, विचरन्ति = चलन्ति। तत् = तस्माद्, धन्याः = साधुभाजः, स्थ = भवथ, यूयम् = भवन्तः, वस्तुतश्च = यथार्थतश्च, भारतवर्षीयाः = भारतवर्षोद्भवाश्च (सन्तीति शेषः)।

समासः—स्वभावादागतः स्वाभाविकः। महोच्चे कुले जाताः महोच्च-कुलजाताः। युष्माकम् अयं यौष्माकीणः। सर्वाणि सुखानि सर्वसुखानि। ग्रीष्मस्य घर्मेषु ग्रीष्मघर्मेषु। महान्ति चेमानि अरण्यानि, तेषु महारण्येषु। कन्दरीणां कन्दरेषु कन्दरिकन्दरेषु। व्यालानां वृन्देषु व्यालवृन्देषु। सिंहानां सङ्घेषु सिंहसङ्घेषु। वारणानां वारेषु वारणवारेषु। चन्द्रहासानां चमत्कारेषु चन्द्रहासचमत्कारेषु। निर्गतः भयं येषां ते निर्भयाः।

कोषः—'जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यात्' इत्यमरः। 'समूहे निवहव्यूहसन्दोह-विसरव्रजाः। स्तोमौघनिकरव्रातवारसङ्घातसञ्चयाः' ॥ इत्यमरः।

व्याकरणम्—स्वाभाविकः—स्वभाव + ठञ् (इक्)। उच्छिन्दन्ति—उत् + छिदिर् द्वैधीकरणे + लट् + झि। प्राणाः—'प्राण' शब्द का प्रयोग नित्य बहुवचनान्त होता है। त्यक्त्वा—त्यज् + क्त्वा। वर्षासु—वृष् + अप् + टाप् (स्त्री०) (सप्तमी ब० व०)। आर्यवंशीयाः—आर्यवंश + छ (ईय्)।

शब्दार्थ—भारतवर्षीयाः=भारत में रहने वाले, महोच्चकुलजाताः= उन्नत कुल में उत्पन्न, स्वाभाविकः=स्वाभाविक, स्वदेशे=अपने देश पर, यौष्माकीणः=आपका अथवा तुम्हारा, जाल्मः=अविवेकी, समूलम्=जड़ सहित, उच्छिन्दन्ति=उखाड़ रहे हैं, प्राणाः=प्राण, यान्तु=जाएँ, धर्मस्य कृते=धर्म के लिए, लुण्ठ्यन्ते=लूटे जाते हैं, पात्यन्ते=गिराये जाते हैं, हन्यन्ते=मारे जाते हैं, त्यजन्ति=छोड़ते हैं, रक्षायै=रक्षा के लिए, सर्व-सुखानि=सब सुखों को, त्यक्त्वा=छोड़कर, निशीथेष्वपि=अर्धरात्रि में भी, वर्षासु=वर्षा में, ग्रीष्मघर्मेष्वपि=गर्मी की धूप में भी, महारण्येषु=घने जङ्गलों में, कन्दरिकन्दरेष्वपि=पर्वतों की गुफाओं में भी, व्यालवृन्देषु=सर्पों के समूह में भी, सिंहसङ्घेषु=सिंहों के झुण्डों में, वारणवारेष्वपि=हाथियों के समूहों में भी, चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि=चमकती हुई तलवारों के बीच भी, निर्भयाः=भयरहित, विचरन्ति=विचरण करते हैं, धन्याः स्थ=धन्य हो, आर्यवंशीयाः=आर्यवंशी, वस्तुतः=सचमुच, भारतवर्षीयाः=भारत वर्ष में उत्पन्न होने वाले।

हिन्दी—शिवाजी—बहुत ठीक, बहुत ठीक, ऐसा कैसे न हो? तुम लोग भारतीय हो, उसमें भी उच्च कुल में उत्पन्न। यह भारतवर्ष है, अपने देश पर सभी का स्वाभाविक प्रेम होता है। आपका सनातन धर्म पवित्रतम धर्म है। उसे ये अविवेकी जालिम जड़ से उखाड़ रहे हैं और आर्यों का प्राण भले ही चले जाँय, परन्तु धर्म न जाय, यह दृढ़ सिद्धान्त है। महापुरुष धर्म के लिए लूटे जाते हैं, गिराये जाते हैं, मारे जाते हैं, परन्तु धर्म को नहीं छोड़ते; अपितु धर्म की रक्षा के लिए सारे सुखों को छोड़कर अर्द्धरात्रि में भी, वर्षा में भी, गर्मी की धूप में भी, घने वनों में भी, पर्वतों की गुफाओं में भी, सर्पों के समूहों में भी, सिंहों के झुण्डों में भी, हाथियों के समूहों में भी और चमकती तलवारों के बीच में भी निर्भय विचरण करते हैं। तुम लोग धन्य हो। वस्तुतः आर्यवंशी हो और सचमुच भारतीय हो ॥ १६ ॥

अथ कथ्यतां कोऽपि विशेषोऽवगतो वा अपजलखानस्य विषये?

गौरसिंहः—"अवगतः, तत्पत्रमेव दर्शयामि"—इति व्याहृत्य, उष्णीष-सन्धौ स्थापितं कन्यापहारक-यवन-युवक-मृत-शरीर-वस्त्रान्तः-प्राप्तं पत्रं बहिश्चकार।

सर्वे च विजयपुराधीशमुद्रामवलोक्य "किमेतत् ? कुत एतत् ? कथमेतत् ? कस्मादेतत् ?" इति जिज्ञासमानाः सोत्कण्ठा वितस्थिरे। गौरसिंहस्तु शिवीरस्यापि तत्प्राप्ति-चरित-शुश्रूषामवगत्य सङ्क्षिप्य सर्वं वृत्तान्तमवोचत्। ततस्तु "दर्श्यताम्, प्रसार्यताम्, पठ्यताम्, कथ्यताम्, किमिदम् ?" इति पृच्छति शिववीरे गौरसिंहो व्याजहार—

व्याख्या—अथ = तदनन्तरम्, कथ्यताम् = उच्यताम्, कोऽपि = कश्चित्, विशेषः = नवीनः, अवगतः = ज्ञातः, वा = अथवा, अपजलखानस्य = विजयपुराधीशसेनापतेः, विषये = सम्बन्धे ?

गौरसिंहः—अवगतः = विज्ञातः, तत्पत्रमेव = अपजलखानस्य पत्रमेव, दर्शयामि = अवलोकयामि, इति = एवम्, व्याहृत्य = कथयित्वा, उष्णीषसन्धौ = शिरोवेष्टनमध्ये, स्थापितम् = निक्षिप्तम्, कन्यापहारकयवनयुवकमृतशरीरवस्त्रान्तःप्राप्तम्—कन्यापहारकस्य = बालिकाचोरस्य, यवनयुवकस्य = म्लेच्छयुवकस्य, मृतस्य = गतासोः, शरीरस्य = देहस्य, वस्त्रान्तः = वसनान्तराले, प्राप्तं = लब्धम्, पत्रम् = लिखितं पत्रम्, बहिश्चकार = बहिष्कृतवान्।

सर्वे च = तत्रस्थाः निखिलाः जनाश्च, विजयपुराधीशमुद्राम् = विजयपुरेश्वरमुद्राम्, अवलोक्य = विलोक्य, किमेतत् = किमिदम्, कुत एतत् = कुत्रस्थ इदम्, कथमेतत् = एतत् कथमधिगतम्, कस्मादेतत् = एतत् पत्रं कस्मात् प्राप्तम् ? इति = एवम्, जिज्ञासामानाः = ज्ञातुमभिलषन्तः, सोत्कण्ठाः = उत्कण्ठायुताः, वितस्थिरे = स्थिताः। गौरसिंहस्तु = एतन्नामकः बटुः तु, शिववीरस्यापि = महाराष्ट्रेश्वरस्यापि, तत्प्राप्तिचरितशुश्रूषाम् = तत्पत्रावाप्तिचरितश्रवणेच्छाम्, अवगत्य = विज्ञाय, सङ्क्षिप्य = सङ्क्षेपं विधाय, सर्वं = निखिलम्, वृत्तान्तम् = कथानकम्, अवोचत् = अवदत्। ततस्तु = तदनन्तरम्, दर्श्यताम् = दर्शयताम्, प्रसार्यताम् = विस्तार्यताम्, पठ्यताम् = वाच्यताम्, कथ्यताम् = उच्यताम्, किमिदम् = किमेतत्, इति = एवम्, पृच्छति = प्रश्नं कुर्वति, शिववीरे = तन्नाम्नि राज्ञि, गौरसिंहः = तन्नामको वटुः, व्याजहार = उक्तवान्।

समासः—उष्णीषस्य सन्धौ उष्णीषसन्धौ। कन्यायाः अपहारकः यः यवनयुवकः, तस्य मृतं शरीरम्, तस्य वस्त्रस्य अन्तः इति कन्यापहारकयवनयुवकमृतशरीरवस्त्रान्तः। विजयपुरस्य अधीशस्तस्य मुद्राम् इति विजयपुराधीशमुद्राम्। उत्कण्ठया सहिता इति सोत्कण्ठाः। तस्य प्राप्तेः चरितस्य शुश्रूषाम् इति तत्प्राप्तिचरितशुश्रूषाम्।

व्याकरणम्—व्याहृत्य—वि+आ+हृ+ल्यप्। अपहारकः—अप+हृ+ण्वुल् (अक्)। बहिश्चकार—बहिः+कृ+लिट् (तिप्)। जिज्ञासमानाः—ज्ञा+सन्+शानच् (प्र० ब० व०)। वितस्थिरे—वि+स्था+लिट्+झ; 'समवप्रविभ्यः स्थः' सूत्र से आत्मनेपद। अवगत्य—अव+गम्+ल्यप्। प्रसार्यताम्—प्र+सृ+लोट्। पृच्छति—प्रच्छ+शतृ (सप्तमी ए० व०)। व्याजहार—वि+आ+हृ+लिट् (तिप्)।

शब्दार्थ—कथ्यताम्=कहिये, विशेषः=नवीन, अवगतः=ज्ञात हुआ, दर्शयामि=दिखलाता हूँ, व्याहृत्य=कहकर, उष्णीषसन्धौ=पगड़ी के भीतर, स्थापितम्=रखे हुए, कन्या=बालिका, अपहारक=अपहरण करने वाला, बहिश्चकार=बाहर किया, विजयपुराधीशमुद्राम्=विजयपुर के राजा की मुद्रा को, जिज्ञासमानाः=जानने की अभिलाषा वाले, सोत्कण्ठाः=उत्कण्ठापूर्वक, वितस्थिरे=स्थिर हो गये, तत्प्राप्तिचरितशुश्रूषाम्=पत्र-प्राप्ति के उस वृत्तान्त को सुनने की इच्छा को, अवगत्य=जानकर, सङ्क्षिप्य=संक्षिप्त करके, अवोचत्=कहा, दर्श्यताम्=दिखलाइये, प्रसार्यताम्=फैलाइये, पृच्छति=पूछने पर, व्याजहार=बोला।

हिन्दी—तदनन्तर ठीक है, अब कहिये, क्या अफजलखान के विषय में कोई नवीन बात ज्ञात हुई ?

गौरसिंह—हाँ ज्ञात हुई, उसका पत्र ही दिखलाता हूँ। यह कहकर पगड़ी के भीतर रखे हुए कन्या का अपहरण करने वाले यवन-युवक के मृत शरीर के वस्त्रों के अन्दर से प्राप्त पत्र को बाहर निकाला।

सभी लोग बीजापुर के राजा की मुद्रा देखकर 'यह क्या है ? कहा से मिला ? कैसे मिला ? किससे मिला ?' यह जानने को अत्यधिक उत्कण्ठापूर्वक स्थिर हो गये। गौरसिंह ने शिवाजी को भी उसकी प्राप्ति का वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा जानकर संक्षेप में सारा वृत्तान्त सुनाया। इसके बाद वीर शिवाजी के 'दिखलाइये, खोलिये, पढ़िये, कहिये, यह क्या है ?' इस प्रकार पूछने पर गौरसिंह ने कहा ॥ १७ ॥

"भगवन् ! सर्पाकारैरक्षरैः पारस्य-भाषायां लिखितं पत्रमेतदस्ति। एतस्य सारांशोऽयमस्ति—विजयपुराधीशः स्वप्रेषितमपजलखानं सेनापतिं सम्बोध्य लिखति यत्—"वीरवर ! महाराष्ट्र-राजेन सह योद्धुं प्रस्थितोऽसीति मा स्म भूत् कश्चनान्तरायस्तव विजये।

शिवं युद्धे जेष्यसि चेत्, पद्भ्यां सिंहं जितवानसीति मंस्ये, किन्तु सिंहहननापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशस्यः। तद् यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेः, तद् वीरपुङ्गवोपाधि-दान-सहकारेण तव महतीं पदवृद्धिं कुर्य्याम्। गोपीनाथपण्डितोऽपि मया तव निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तव निकटे कथयिष्यति। प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति" इति।

व्याख्या—भगवन् !=श्रीमन् ! सर्पाकारैरक्षरैः=भुजङ्गाकारैर्वर्णैः, पारस्यभाषायां=पारसीकवाचि, लिखितम्=अक्षरायितम्, एतत्=इदम्, पत्रमस्ति=पत्रं विद्यते। एतस्य=पत्रस्य, सारांशोऽयमस्ति=मुख्यविषयवस्तु त्विदं वर्तते, विजयपुराधीशः=बीजापुरनरेशः, स्वप्रेषितमपजलखानं=निज-प्रहितमपजलखाननामानम्, सेनापतिम्=गणनायकम्, सम्बोध्य=अभिमुखी-कृत्य, लिखति=सन्दिशति, यत्—वीरवर !=भटश्रेष्ठ ! महाराष्ट्रराजेन=शिववीरेण, सह=साकम्, योद्धुम्=युद्धं कर्तुम्, प्रस्थितोऽसि=गतोऽसि, इति मा स्म भूत्=न भवेत् कश्चित्, अन्तरायः=विघ्नम्, तव=अपजलखानस्य, विजये=जयकर्मणि, शिवम्=शिववीरम्, युद्धे=समरे, जेष्यसि=वशीकरि-ष्यसि, चेत्=यदि, पद्भ्याम्=चरणाभ्याम्, सिंहम्=शिववीरं केसरिणम्, जितवानसीति मंस्ये=वशीकृतवानसीति स्वीकरिष्ये, किन्तु=परन्तु, सिंह-हननापेक्षया=व्याघ्रव्यापादनापेक्षया, जीवतः=सजीवस्य, सिंहस्य=व्याघ्र-स्य, व्यञ्जनया शिववीरस्य, वशीकारः=निग्रहः, एव, अधिकम्=बहु, प्रश-स्यः=प्रशंसाविषयः। तद् यदि=चेत्, छलेन=कपटेन, जीवन्तम्=प्राणन्तम्, शिवम्=शिववीरम्, आनयेः=प्रापयेः, तत्=तर्हि, वीरपुङ्गवोपाधिदानसह-कारेण='वीरपुङ्गव'नामकोपाधिप्रदानेन सह, तव=भवतोऽपजलखानस्य, महतीम्=भूयसीम्, पदवृद्धिम्=पदोन्नतिम्, कुर्य्याम=करिष्यामि। गोपी-नाथपण्डितोऽपि=एतन्नामा सन्देशवाहकोऽपि, मया=विजयपुरेश्वरेण, तव=अपजलखानस्य, निकटे=समीपे, प्रस्थापितोऽस्ति=प्रहितोऽस्ति, सः=गोपी-नाथः, मम=विजयपुरेश्वरस्य, तात्पर्यम्=भावम्, विशदीकृत्य=सुस्पष्टी-कृत्य, तव=अपजलखानस्य, निकटे=पार्श्वे, कथयिष्यति=वक्ष्यति, प्रयोजन-वशेन=कार्यवशेन, शिवमपि=शिववीरमपि, साक्षात्करिष्यति=अवलोक-यिष्यति, इति=एवम् (पत्रे लिखितमासीत्)।

समासः—पारस्यानां भाषायां पारस्यभाषायाम् । महाराष्ट्राणां राजा महाराष्ट्रराजः, तेन महाराष्ट्रराजेन । सिंहस्य हननस्यापेक्षया सिंहहननापेक्षया । वीरपुङ्गवस्य उपाधेः दानम्, तस्य सहकारस्तेन वीरपुङ्गवोपाधिदानसहकारेण । पदस्य वृद्धि पदवृद्धिम् । प्रयोजनस्य वशेन प्रयोजनवशेन ।

व्याकरणम्—सम्बोध्य—सम् + बुध् + क्त्वा + ल्यप् । योद्धुम्—युध् + तुमुन् । मा स्म भूत्—भू + लुङ् + तिप्, 'मा' के योग में 'अट्' का अभाव है । जेष्यसि—जि जये + लृट् + सिप् । जीवतः—जीव + शतृ (षष्ठी ए० व०) । प्रशंस्यः—प्र + शंस् + यत् । आनयेः—आ + नी + लिङ् + सिप् ।

शब्दार्थ—भगवन् ! = श्रीमन् ! सर्पाकारैः = टेढ़े-मेढ़े (सर्पाकार) से, अक्षरैः = अक्षरों से, पारस्यभाषायाम् = पारसी लिपि में, स्वप्रेषितम् = अपने द्वारा भेजे गये, अपजलखानं = अफजलखान को, सम्बोध्य = सम्बोधित करके, महाराष्ट्रराजेन = महाराष्ट्र के राजा शिवाजी के, योद्धुम् = युद्ध करने के लिए, प्रस्थितोऽसि = प्रस्थान किये हो, मा स्म भूत् = न हो, कश्चन = कोई, अन्तरायः = विघ्न, जेष्यसि = जीत लोगे, पद्भ्याम् = पैरों से, जितवान् असि = जीत लिये हो, मंस्ये = मानूँगा, सिंहहननापेक्षया = सिंह मारने की अपेक्षा, जीवतः = जीवित, वशीकारः = वश में करना, प्रशंस्यः = प्रशंसनीय है, जीवन्तम् = जीवित, आनयेः = लाओगे तो, वीरपुङ्गवोपाधिदानसहकारेण = वीरपुङ्गव की उपाधि देने के साथ ही, प्रस्थापितः = भेजे गये, अस्ति = है, तात्पर्यम् = अभिप्राय को, विशदीकृत्य = विस्तृत करके, प्रयोजनवशेन = कार्य-वश, साक्षात्करिष्यति = साक्षात्कार करेंगे ।

हिन्दी—भगवन् ! यह पत्र सर्पाकार अक्षरों से फारसी भाषा में लिखा गया है । इसका तात्पर्य यह है कि विजयपुरनरेश अपने द्वारा भेजे गये सेनापति अफजलखान को सम्बोधित करके लिखता है कि—वीरवर ! तुमने महाराष्ट्र के अधीश्वर वीर शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया है । अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित हो । यदि तुमने युद्ध में शिवाजी को जीत लिया तो मैं समझूंगा कि पैदल ही सिंह को जीत लिया । किन्तु सिंह को मारने की अपेक्षा जीवित ही वश में करना अधिक प्रशंसनीय होता है । यदि छल से जीवित ही शिवाजी को पकड़ लाओ, तो तुम्हें 'वीरपुङ्गव' की उपाधि देने के साथ ही तुम्हारी पदोन्नति कर दूंगा ।

मैंने गोपीनाथ पण्डित को भी तुम्हारे पास भेज दिया है। वे मेरे अभिप्राय को तुम्हें विस्तार से समझायेंगे और कार्यवश शिवाजी से भी मिलेंगे।

टिप्पणी—इस गद्यांश में 'शिवं युद्धे जेष्यसि चेत् पद्भ्यां सिंहं जितवानसि' इस स्थल पर निदर्शनालंकार है ॥ १८ ॥

इत्याकर्णयत एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-निबद्धौ मीनाविव नयने सञ्जाते, मुखं च बाल-भास्कर-विम्व-विडम्बनामाललम्बे, अधरं च धीरताधुरामधरीकृतवान्।

अथ स दक्षिण-कर-पल्लवेन श्मश्रु परामृशन्नाकाशे दृष्टिं बद्ध्वा "अरे रे विजयपुर-कलङ्क! स्वयमेव जीवन् शिवः तव राजधानीमाक्रम्य, वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण तव महतीं पदवृद्धिमङ्गीकरिष्यति, तत् किं प्रेषयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदर्य्य-हतकान्?"—इति साम्रेडमवोचत्। अपृच्छच्च "ज्ञायते वा कश्चिद् वृत्तान्तो गोपीनाथ-पण्डितस्य?"

व्याख्या—इति=एतत्, आकर्णयतः=शृण्वतः, एव, शिववीरस्य=तन्नामकस्य, अरुणकौशेयजालनिबद्धौ=लोहितकौशेयानायगृहीतौ, मीनौ=मत्स्यौ, इव=यथा, नयने=लोचने, सञ्जाते=बभूवतुः, मुखं च=आस्यञ्च, बालभास्करबिम्बविडम्बनाम्=नवोदितसूर्यमण्डलाकृतिम्, आललम्बे=धृतवान्, अधरं च=ओष्ठञ्च, धीरताधुराम्=धैर्यभारम्, अधरीकृतवान्=त्यक्तवान्।

अथ=अनन्तरम्, सः=शिववीरः, दक्षिणकरपल्लवेन=सव्यहस्तकिसलयेन, श्मश्रु, परामृशन्=स्पृशन्, आकाशे=नभसि, दृष्टिम्=दर्शनम्, बद्ध्वा=स्थिरीकृत्य, अरे रे विजयपुरकलङ्क!=रे विजयपुरदूषण! स्वयमेव=आत्मनैव, जीवन्=प्राणन्, शिवः=शिववीरः, तव=विजयपुरेश्वरस्य, राजधानीम्=प्रशासनकेन्द्रम्, आक्रम्य=आक्रमणं विधाय, तव=विजयपुरेश्वरस्य, वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण=वीरपुङ्गवेति नाम्नोपाधिना सहैव, तव=भवतः, महतीम्=अत्यधिकाम्, पदवृद्धिम्=स्थानोन्नतिम्, अङ्गीकरिष्यति=स्वीकरिष्यति, तत् किम्=किमर्थम्, प्रेषयसि=प्रापयसि, मत्समीपं, मृत्योः=यमस्य, क्रीडनकान्=कन्दुकान्, एतान्=इमान्, कदर्य्यहतकान्=दुष्टकदर्य्यान्? इति=एवम्, साम्रेडम्=अनेकशः, अवोचत्=अकथयत्। अपृच्छच्च=प्रश्नञ्चाकरोत्,

ज्ञायते = अवगम्यते, वा = अथवा, कश्चित् = कोऽपि, वृत्तान्तः = वार्ताविशेषः, गोपीनाथपण्डितस्य = एतन्नामकविजयपुरेशसन्देशहरस्य ?

समासः—अरुणं कौशेयस्य जालं, तस्मिन् निबद्धौ अरुणकौशेयजाल-निबद्धौ। बालश्चासौ भास्करः, तस्य बिम्बम्, तस्य विडम्बनाम् इति बाल-भास्करबिम्बविडम्बनाम्। धीरतायाः धुरा, तां धीरताधुराम्। अनधरम् अधरं कृतवान् इति अधरीकृतवान्। कर एव पल्लवः करपल्लवः, दक्षिणश्चासौ करपल्लवश्च, तेन दक्षिणकरपल्लवेन। वीरपुङ्गवस्योपाधेः सहकारेण इति वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण। पदस्य वृद्धि पदवृद्धिम्।

व्याकरणम्—अधरीकृतवान्—अधर + च्वि + कृ + क्तवतु। परामृशन्—परा + मृश् + शतृ। दृष्टिम्—दृश् + क्तिन्। बद्ध्वा—बध् + क्त्वा। आक्रम्य—आ + क्रम् + क्त्वा + ल्यप्। क्रीडनकान्—क्रीड्यते यैस्ते क्रीडनकास्तान् क्रीडनकान्—क्रीड् + ल्युट् + क (स्वार्थे)।

शब्दार्थ—इति = ऐसा, आकर्णयत एव = सुनते ही, अरुणकौशेयजाल-निबद्धौ = रक्त वर्ण के रेशमी जाल में बँधे, मीनौ इव = मछली की भाँति, नयने = दोनों आँखे, संजाते = हो गईं। बालभास्करबिम्बविडम्बनाम् = प्रत्यग्र समुदित सूर्यमण्डल की भाँति लाल, आललम्बे = धारण किया, धीरता-धुराम् = धीरता के भार को, अधरीकृतवान् = छोड़ दिया, श्मश्रु = मूंछ को, परामृशन् = स्पर्श करते हुए, दृष्टि बद्ध्वा = आँख गड़ाकर, आक्रम्य = आक्रमण करके, अङ्गीकरिष्यति = स्वीकार करेगा, प्रेषयसि = भेज रहे हो, क्रीडन-कान् = खिलौनों को, कदर्य्यहतकान् = नीच दुष्टों को, साम्रेडम् = अनेक बार, अवोचत् = कहा, अपृच्छच्च = और पूछा, ज्ञायते = जानते हो, वृत्तान्तः = समाचार।

हिन्दी—ऐसा सुनते ही शिवाजी की आँखें लाल रेशमी जाल में निबद्ध मछली की भाँति हो गईं। मुखमण्डल प्रत्यग्र समुदित सूर्यमण्डल की भाँति लाल हो गया और अधर (ओंठ) धैर्य का भार छोड़ते हुए फड़कने लगे।

उसके बाद शिवाजी ने दाहिने हाथ से मूंछों पर हाथ फेरते हुए, आकाश की ओर दृष्टि कर—अरे बीजापुर के कलङ्क ! स्वयं शिवाजी ही जीवित रहकर तुम्हारी राजधानी पर आक्रमण करके—'वीरपुङ्गव' उपाधि के साथ तुम्हारी दी हुई पदवी को स्वीकार करेगा। मृत्यु के खिलौने इन दुष्ट कायरों को क्यों

भेजते हो ? यह वाक्य अनेक बार दोहराया और गौरसिंह से पूछा—क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समाचार मिला ?

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में गौरसिंह के वचन सुनते ही वीर शिवाजी अत्यन्त कुपित हो गये। उनकी आँखें लाल हो गईं और अधर फड़कने लगे। वे अपनी मूँछों पर हाथ फेरने लगे। अतः इस अनुच्छेद में 'वीररस' का उत्तम निदर्शन है ॥ १९ ॥

यावद् गौरसिंहः किमपि विवक्षति तावत् प्रतीहारः प्रविश्य 'विजयतां महाराजः' इति त्रिर्व्याहृत्य, करौ सम्पुटीकृत्य, शिरो नमयित्वा कथितवान्—"भगवन्! दुर्गद्वारि कश्चन गोपीनाथनामा पण्डितः श्रीमन्तं दिदृक्षुरुपतिष्ठते। नायं समयः प्रभूणां दर्शनस्य, पुनरागम्यताम्" इति बहुशः कथ्यमानोऽपि "किञ्चनाऽत्यावश्यककार्यम्" इति प्रतिजानाति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्"—इति

व्याख्या—यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, गौरसिंहः=शिववीरवर्गीयस्तन्नामको बटुः, किमपि=किञ्चित्, विवक्षति=वक्तुमभिलषति, तावत्=तस्मिन्नेव काले, प्रतीहारः=द्वारपालः, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, विजयताम्=जयतु, महाराजः=प्रभुः, इति=एवम्, त्रिः=त्रिवारम्, व्याहृत्य=उक्त्वा, करौ=हस्तौ, सम्पुटीकृत्य=संयोज्य, शिरः=मस्तकम्, नमयित्वा=आनम्य, कथितवान्=प्रोक्तवान्, 'भगवन्!=श्रीमन्! कश्चन=कोऽपि, गोपीनाथनामा पण्डितः=पण्डितवेषधारी गोपीनाथाभिधानः चरः, विजयपुरेश्वरस्येति शेषः, श्रीमन्तम्=भवन्तम्, दिदृक्षुः=दर्शनमिच्छुः, उपतिष्ठते=समुपस्थितो विद्यते, नायं समयः=नैष कालः, प्रभूणाम्=शिववीराणाम्, दर्शनस्य=अवलोकनस्य, पुनरागम्यताम्=कालेनागच्छन्तु भवन्तः, इति=इत्थम्, बहुशः=अनेकशः, कथ्यमानोऽपि=निवेद्यमानोऽपि, किञ्चनात्यावश्यककार्यम्=अस्त्यत्याज्यकार्यम्, इति=एवम्, प्रतिजानाति=प्रार्थयति। तदत्र=विषयेऽस्मिन्, प्रभुचरणाः=मान्याः नृपतयः, एव=निश्चयेन, प्रमाणम्=प्रमाणभूताः, सन्तीति शेषः।

व्याकरणम्—विवक्षति—वच्+सन्+लट्+तिप्। प्रविश्य—प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्। व्याहृत्य—वि+आ+हृ+क्त्वा+ल्यप्। कथितवान्—कथ्+क्तवतु (प्र० ए० व०)। दिदृक्षुः—दृश्+सन्+उ। उपतिष्ठते—उप+स्था+लट्+त। बहुशः—बहु+शस्। कथ्यमानः—कथ+शानच्। प्रमाणम्—प्र+मा+ल्युट्।

शब्दार्थ—यावद्=जैसे ही, किमपि=कुछ भी, विवक्षति=कहने की इच्छा करता है, व्याहृत्य=कहकर, करौ=दोनों हाथों को, सम्पुटीकृत्य=जोड़कर, शिरः=मस्तक को, नमयित्वा=झुकाकर, कथितवान्=कहा, दुर्गद्वारि=सिंहदुर्ग नामक किले के द्वार पर, दिदृक्षुः=देखने की इच्छावाला, उपतिष्ठते=प्रतीक्षा कर रहा है। बहुशः=बहुत बार, कथ्यमानः=कहे जाने पर, अपि=भी, प्रतिजानाति=दृढ़तापूर्वक कह रहा है, तद्=तो, अत्र=इस विषय में, प्रभुचरणाः=स्वामी, एव=ही, प्रमाणम्=प्रमाण हैं अर्थात् जैसा निर्देश हो वैसा किया जाय।

हिन्दी—गौरसिंह कुछ कहने की इच्छा कर ही रहे थे कि द्वारपाल आकर 'महाराज की जय हो' ऐसा तीन बार कहकर, दोनों हाथों को जोड़कर, शिर झुकाकर बोला—महाराज! सिंहदुर्ग नामक किले के द्वार पर कोई गोपीनाथ नामवाला पण्डित आकर आपके दर्शनों की इच्छा से खड़ा है। मेरे 'महाराज से मिलने का यह समय नहीं हैं; फिर आइयेगा' ऐसा बार-बार कहने पर भी वह कहता है कि कुछ अत्यन्त आवश्यक काम है। इस विषय में स्वामी का जैसा निर्देश हो वैसा किया जाय ॥ २० ॥

तदवगत्य "सोऽयं गोपीनाथः, सोऽयं गोपीनाथः" इति साम्रेडं सतर्कं सोत्साहं च व्याहृतवत्सु निखिलेषु, शिववीरेण निजबाल्यप्रियो माल्यश्रीकनामा सम्बोध्य कथितो यद् "गम्यतां दुर्गान्तर एव महावीर-मन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम्, भोज्य-पर्यङ्कादि-सुखद-सामग्री-जातेन च सत्क्रियताम्, ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि"—इति।

व्याख्या—तदवगत्य=द्वाःस्थवचनं श्रुत्वा परिज्ञाय च, 'सोऽयं=गौरसिंह-सूचितः, गोपीनाथः=एतन्नामा, सोऽयं=पूर्ववर्णितः, गोपीनाथः=तन्नामको जनः, इति=एवम्, साम्रेडम्=बहुशः, सतर्कम्=तर्कमिश्रम्, सोत्साहम्=उत्साहसंयुतश्च, व्याहृतवत्सु=वदत्सु, निखिलेषु=सर्वेषु, शिववीरेण=महाराष्ट्राधीश्वरेण, निजबाल्यप्रियः=स्वबाल्यावस्थामित्रः, माल्यश्रीकनामा=एतन्नामकं सम्बोध्य, कथितः=निगदितः, यत्, गम्यताम्=गच्छतु श्रीमन्! दुर्गान्तरे=दुर्गमध्ये, एव=निश्चयेन, महावीरमन्दिरे=मारुतिदेवायतने, तस्मै=गोपीनाथाय, वासस्थानम्=निवासः, दीयताम्=प्रयच्छताम्, भोज्यपर्यङ्कादिसुखदसामग्रीजातेन=खाद्यखट्वादिसुखदवस्तुनिवहेन च, सत्क्रियताम्=

सत्कारो विधीयताम्, ततोऽहमपि = तावदहमपि, साक्षात्करिष्यामि इति = विलोकयिष्यामीति ।

समासः—आम्रेडेन सह साम्रेडम् । तर्कैः सह सतर्कम् । उत्साहैः सह सोत्साहम् । निजः बाल्यप्रियः निजबाल्यप्रियः । दुर्गस्य अन्तरे दुर्गान्तरे । वासाय स्थानं वासस्थानम् । भोज्यं च पर्यङ्कं चादौ यस्य तत् भोज्यपर्यङ्कादि, तच्च सुखदसामग्रीजातं च, तेन भोज्यपर्यङ्कादिसुखदसामग्रीजातेन ।

व्याकरणम्—अवगत्य—अव + गम् + ल्यप् । व्याहृतवत्सु—वि + आ + हृ + क्तवतु (स० ब० व०) । भोज्य—भुज् + यत् ।

शब्दार्थ—तदवगत्य = यह जानकर, साम्रेडम् = अनेक बार, सतर्कम् = अनुमान से, सोत्साहम् = उत्साहपूर्वक, व्याहृतवत्सु = कहते हुए, निखिलेषु = सभी के, निजबाल्यप्रियः = अपने बचपन के मित्र, सम्बोध्य = सम्बोधित करके, कथितः = कहा, गम्यताम् = जाओ, दुर्गान्तरे = किले के भीतर, तस्मै = उस गोपीनाथ के लिए, दीयताम् = दीजिये; भोज्यपर्यङ्कादिसुखदसामग्रीजातेन = भोजन, पलङ्ग आदि सुख-सुविधाओं के साथ, सत्क्रियताम् = सत्कार कीजिये, ततः = बाद में, साक्षात्करिष्यामि = मिलूंगा ।

हिन्दी—यह जानकर 'यह वही गोपीनाथ है, यह वही गोपीनाथ है' इस प्रकार सभी लोगों के अनुमान से और उत्साहपूर्वक बार-बार कहने पर शिवाजी ने अपने बचपन के मित्र माल्यश्रीक को सम्बोधित कर कहा—जाओ, किले के अन्दर ही महावीर मन्दिर में उन्हें ठहराओ और भोजन, पलङ्ग आदि सुख-सुविधाओं से उनका सत्कार करो । फिर मैं भी उनसे मिलूंगा ।२१।

ततो "बाढमि"त्युक्त्वा प्रयाते माल्यश्रीके; "महाराज ! आज्ञा चेदहमद्यैव अपजलखानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याऽखिलं व्यवसितं विज्ञाय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि; नाधुना मम क्षान्तिः शान्तिश्च, यतः संन्यासिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्यवनभटयोर्वार्तयाऽवागमम्, यत् श्व एवैते युयुत्सन्ते" इति गौरसिंहो मन्दं कर्णान्तिकं व्याहार्षीत् ।

ततो "वीर ! कुशलोऽसि, सर्वं करिष्यसि, जाने तव चातुरीम्, तद् यथेच्छं गच्छ, नाहं व्याहन्मि तवोत्साहम्, नीतिमार्गान् वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकदर्य्याः, अतिकूटनीत-

यश्च सन्ति। एतैः सह परम-सावधानतया व्यवहरणीयम्"—इति कथयित्वा शिववीरस्तं विससर्ज।

व्याख्या—ततः=एतच्छ्रुत्वा, बाढम्=सुष्ठु, इति=एवम्, उक्त्वा=प्रोच्य, प्रयाते=गते, माल्यश्रीके=एतन्नामके बाल्यसहचरे, महाराज !=स्वामिन् ! आज्ञा=निदेशः, चेत्=यदि, अहम्=गौरसिंहः, अद्यैव=अस्मिन्नेव दिने, अपजलखानम्=आक्रमणकर्तारम्, कथमपि=केनापि प्रकारेण, साक्षात्कृत्य=विलोक्य, तस्य=अफजलखानस्य, अखिलं=निखिलम्, व्यवसितम्=कृत्यम्, विज्ञाय=ज्ञात्वा, प्रभुचरणेषु=स्वामिपादेषु, विनिवेदयामि=कथयामि, नाधुना=सम्प्रति न, मम=गौरसिंहस्य, क्षान्तिः=क्षमा, शान्तिश्च=शमश्च, यतः, संन्यासिवेषोऽहं=धृततुरीयाश्रमवासिवसनोऽहम्, समागच्छन्=आव्रजन्, द्वयोः=उभयोः, यवनभटयोः=तुरुष्कवीरयोः, वार्तया=कथनेन, परस्परम्, अवागमम्=अवागच्छन्, यत्, श्वः=परदिने, एव, एते=यवनाः, युयुत्सन्ते=योद्धुमिच्छन्ति, इति=एवम्, गौरसिंहः=तन्नामको बटुः, मन्दम्=अतिमन्दस्वरेण, कर्णान्तिकम्=श्रवणसमीपम्, व्याहार्षीत्=अकथयत्।

ततः=गौरसिंहवचनानन्तरम्, वीर !=भट ! कुशलोऽसि=निपुणोऽसि, सर्वम्=निखिलम्, करिष्यसि=सम्पादयिष्यसि, जाने=जानामि, तव=गौरसिंहस्य, चातुरीम्=चातुर्यम्, तत्=तस्माद्, यथेच्छम्=स्वेच्छया, गच्छ=व्रज, नाहम्=नहि शिववीरः, व्याहन्मि=निवारयामि, तवोत्साहम्=श्रीमतामुद्योगम्, नीतिमार्गान्=नयपथान्, वेत्सि=अवगच्छसि, किन्तु=परम्, परिपन्थिनः=शत्रवः, एते=यवनाः, अत्यन्तनिर्दयाः=अतिनिष्करुणाः, अतिकदर्याः=परमनीचाः, अतिकूटनीतयश्च=नितान्तकपटाचारचतुराश्च, सन्ति=वर्तन्ते, एतैः=यवनैः, सह=साकम्, परमसावधानतया=अतिसावहितेन, व्यवहरणीयम्=समाचरणीयम्, इति=एवम्, कथयित्वा=उक्त्वा, शिववीरः, तम्=गौरसिंहम्, विससर्ज=सम्प्रेषयामास।

समासः—कर्णयोरन्तिकं कर्णान्तिकम्। इच्छामनतिक्रम्य यथेच्छम्। नीतेः मार्गान् नीतिमार्गान्। अतिशयेन कूटं (छलम्) नीतौ येषां ते अतिकूटनीतयः।

कोषः—'कदर्ये कृपणः क्षुद्रः' इत्यमरः। 'मायानिश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु। अयोधने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियाम्'॥ इत्यमरः।

व्याकरणम्—प्रयाते—प्र + या + क्त (स० ए० व०)। व्यवसितम्—वि + अव + षिञ् + क्त। विज्ञाय—वि + ज्ञा + क्त्वा + ल्यप्। विनिवेदयामि—वि + नि + विद् + णिच् + लट् + मिप्। 'वर्तमानसामीप्ये लट्' इस सूत्र से लट् लकार का प्रयोग किया गया है। समागच्छन्—सम् + आ + गम् + शतृ। युयुत्सन्ते—युध् + सन् + लट्। व्याहार्षीत्—वि + आ + हृ + लुङ्। व्याहन्मि—वि + आ + हन् + लट् (मिप्)। व्यवहरणीयम्—वि + अव + हृ + अनीयर्। विससर्ज—वि + सृज् + लिट् + तिप्।

शब्दार्थ—ततः = उसके बाद, बाढम् = ठीक है, इति = ऐसा, उक्त्वा = कहकर, प्रयाते = चले जाने पर, चेत् = यदि, साक्षात्कृत्य = साक्षात्कार करके, तस्य = उस अफजलखान के, अखिलम् = सम्पूर्ण, व्यवसितम् = क्रिया-कलाप को या इच्छाओं को, विज्ञाय = जानकर, प्रभुचरणेषु = स्वामी के चरणों में, विनिवेदयामि = निवेदन करूँगा, अधुना = इस समय, क्षान्तिः = सहिष्णुता, संन्यासिवेषः = संन्यासी-वेष को धारण किये हुए, समागच्छन् = आता हुआ, यवनभटयोः = दो यवन-योद्धाओं की, वार्तया = बातचीत से, अवागमम् = जाना कि, श्वः = कल, युयुत्सन्ते = युद्ध करना चाहते हैं, मन्दं = धीरे से, कर्णान्तिकम् = कानों के पास, व्याहार्षीत् = कहा, चातुरीम् = चतुरता को, यथेच्छम् = इच्छानुसार, व्याहन्मि = नष्ट करूँगा, वेत्सि = जानते हो, परिपन्थिनः = शत्रु, अतिकदर्य्याः = अत्यन्त नीच, अतिकूटनीतयः = कपटाचरण में नितान्त चतुर, कूट = छल, परमसावधानतया = अत्यन्त सावधानी से, व्यवहरणीयम् = व्यवहार करना चाहिए, विससर्ज = विदा कर दिया।

हिन्दी—उसके बाद माल्यश्रीक के 'ठीक है' ऐसा कहकर चले जाने पर गौरसिंह ने शिवाजी के कान के समीप धीरे से कहा—महाराज! यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं आज ही किसी प्रकार अफजलखान से मिलकर उसकी सारी इच्छाओं को जानकर तथा पुनः आकर आपसे निवेदन करूँ। अब मुझमें न तो सहिष्णुता ही रह गई है, न ही शान्ति। क्योंकि संन्यासी-वेष में आते हुए मुझे रास्ते में दो यवन-योद्धाओं की बातचीत से पता चला कि वे कल ही लड़ना चाहते हैं।

तदनन्तर शिवाजी ने 'वीरवर! तुम अत्यन्त कुशल हो, मैं तुम्हारी चतुरता को जानता हूँ। तुम सब कर लोगे। अतः स्वेच्छानुसार तुम जाओ। मैं तुम्हारा उत्साह भङ्ग नहीं करना चाहता। तुम नीतिमार्गों को तो जानते ही हो।

किन्तु ये शत्रु बड़े क्रूर, नीच और कपटपटु हैं, अतः इनके साथ बड़ी सावधानी से व्यवहार करना चाहिए'। ऐसा कहकर गौरसिंह को विदा किया ॥

गौरसिंहस्तु त्रिः प्रणम्य, उत्थाय, निवृत्य, निर्गत्य, अवतीर्य, सपदि तस्या एव निम्ब-तरु-तल-वेदिकायाः समीप आगत्य, स्वसहचरं कुमारमिङ्गितेनाऽऽहूय कस्मिंश्चित् स्वसङ्केतित-भवने प्रविश्य, आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्रपटेन प्रोञ्छ्य, ललाटे सिन्दूर-बिन्दु-तिलकं विरचय्य, उष्णीषमपहाय, शिरसि सूचिस्यूतां सौवर्ण-कुसुम-लतादि-चित्र-विचित्रितामुष्णीषिकां सन्धार्य, शरीरे हरितकौशेय-कञ्चुकिकामायोज्य, पादयोः शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मिते महार्हे उपानहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-हस्ते समर्प्य, गुप्तच्छुरिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिकां यष्टिकां मुष्टौ गृहीत्वा, पटवासैर्दिगन्तं दन्तुरयन्, करस्थपटखण्डेन च मुहुर्मुहुराननं प्रोञ्छन् गायकवेषेण अपजलखान-शिविराभिमुखं प्रतस्थे ।

व्याख्या—गौरसिंहस्तु=शिववीरभक्तस्तु, त्रिः=त्रिवारम्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, उत्थाय=आसनं परित्यज्य, निवृत्य=परिक्रम्य, निर्गत्य=बहिर्गत्वा, अवतीर्य=प्रसादाधः समागत्य, सपदि=शीघ्रम्, तस्या एव=पूर्ववर्णितायां एव, निम्बतरुतलवेदिकायाः=निम्बवृक्षाधस्तलवेद्याः, समीपे=निकटे, आगत्य=आगम्य, स्वसहचरम्=निजसहयात्रिणम्, कुमारम्=बालम्, इङ्गितेन=सङ्केतेन, आहूय=आकार्य, कस्मिंश्चित्, स्वसङ्केतितभवने=निजेङ्गितालये, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, आत्मनः=स्वस्य, कुमारस्यापि=बालस्यापि, केशान्=बालान्, प्रसाधनिकया=कङ्कतिकया, प्रसाध्य=शोभनान् विधाय, मुखम्=वदनम्, आर्द्रपटेन=क्लिन्नवसनेन, प्रोञ्छ्य=मार्जयित्वा, ललाटे=भाले, सिन्दूरबिन्दुतिलकम्=महारजनीपृषच्चर्चनम्, विरचय्य=विधाय, उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम्, अपहाय=दूरे कृत्वा, शिरसि=मस्तके, सूचिस्यूताम्=सूचिसीवनयुताम्, सौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रिताम्=कनकपुष्पलतादिचित्रसंयुताम्, उष्णीषिकाम्=टोपिकाम्, सन्धार्य=धारयित्वा, शरीरे=देहे, हरितकौशेयकञ्चुकिकाम्=हरिद्वर्णकोशभवकञ्चुकिकाम्, आयोज्य=सन्धार्य, पादयोः=चरणयोः, शोणपट्टनिर्मितम्=रक्तकौशेयघटितम्, अधोवसनम्=

अधोवस्त्रम्. आकलय्य=धृत्वा, दिल्लीनिर्मिते=हस्तिनापुरघटिते, महार्हे=बहुमूल्ये, उपानहौ=चरणसेविके. धारयित्वा=सन्धार्य, लघीयसीम्=लघ्वीम्, तानपूरिकामेकाम्=एतन्नामकवाद्ययन्त्रविशेषमेकम्, सह=साकम्, नेतुम्=वोढुम्. सहचरहस्ते=सहयात्रीकरे, समर्प्य=अर्पयित्वा. गुप्तच्छुरिकाम्=अन्तर्हितच्छुरिकाम्, दन्तावलदन्तमुष्टिकाम्=हस्तिदन्तमुष्टिकाम्, यष्टिकाम्=लघुदण्डम्, मुष्टौ=मुष्टिकायाम्, गृहीत्वा=समादाय, पटवासैः=सुरभितपदार्थैः, दिगन्तम्=दिगन्तरालम्, दन्तुरयन्=सुगन्धयन्, करस्थपटखण्डेन=हस्तस्थवसनखण्डेन च, मुहुर्मुहुः=वारं वारम्, आननम्=लपनम्, प्रोञ्छन्=मार्जयन्, गायकवेषेण, अपजलखानशिविराभिमुखम्=अपजलखानवासस्थानम्, प्रतस्थे=प्रस्थितवान् ।

समासः—निम्बस्य तरोः तले या वेदिका, तस्याः निम्बतरुतलवेदिकायाः । स्वेन सङ्केतिते भवने स्वसङ्केतितभवने । सिन्दूरस्य बिन्दुरेव तिलकं सिन्दूरबिन्दुतिलकम् । सूच्या स्यूतां सूचिस्यूताम् । सौवर्णेन कुसुमलतादीनां चित्रेण विचित्रितां सौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रिताम् । हरितस्य कौशेयस्य कञ्चुकिकां हरितकौशेयकञ्चुकिकाम् । शोणपट्टेन निर्मितं शोणपट्टनिर्मितम् । दिल्ल्यां निर्मिते दिल्लीनिर्मिते । सहचरस्य हस्ते सहचरहस्ते । दन्तावलस्य दन्तः मुष्टिका यस्यां, तां दन्तावलदन्तमुष्टिकाम् । करस्थेन पटखण्डेन करस्थपटखण्डेन । गायकस्य वेषेण गायकवेषेण । अपजलखानस्य शिविराभिमुखम् अपजलखानशिविराभिमुखम् ।

कोषः—'स्राग्झटित्यञ्जसाऽऽह्नाय द्राङ्मङ्क्षु सपदि द्रुते । 'सद्यः सपदि तत्क्षणे' इति चामरः । 'समीपे निकटासन्नसन्निकृष्टसनीडवत् । सदेशाभ्याशसविधसमर्यादसवेशवत् ।। उपकण्ठान्तिकाभ्यर्णाभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्' इत्यमरः । 'चिकुरः कुन्तलो बालः कचः केशः शिरोरुहः' इत्यमरः । 'प्रसाधनी कङ्कतिका' इत्यमरः । 'सिन्दूरं नागसम्भवम्' इत्यमरः । पृषन्ति बिन्दुपृषताः पुमांसो विप्रुषः स्त्रियाम्' इत्यमरः । 'तमालपत्रतिलकचित्रकाणि विशेषकम् । द्वितीयं च तुरीयं च न स्त्रियाम्' इत्यमरः । 'अथ कमलोत्तरम् । स्यात्कुसुम्भं वह्निशिखं महारजनमित्यपि' इत्यमरः । 'उष्णीषः शिरोवेष्टकिरीटयोः' इत्यमरः । 'वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—निर्गत्य—निर्+गम्+ल्यप् । अवतीर्य—अव+तॄ+ल्यप् । प्रसाध्य—प्र+साधि+ल्यप् । प्रोञ्छ्य—प्र+उछि+ल्यप् ।

विरचय्य—वि + रच + ल्यप्। अपहाय—अप् + ओहाक् त्यागे + ल्यप्। सन्धार्य—सम् + धृञ् + ल्यप्। आयोज्य—आ + युज् + ल्यप्। आकलय्य—आ + कल + ल्यप्। प्रोञ्छन्—प्र + उछि + शतृ। प्रतस्थे—प्र + स्था + लिट् + त।

शब्दार्थ—त्रिः प्रणम्य = तीन बार प्रणाम करके, निवृत्य = लौटकर, निर्गत्य = निकलकर, अवतीर्य = उतरकर, सपदि = तत्क्षण, निम्बतरुतलवेदिकायाः = नीम के वृक्ष के नीचे चबूतरे के, स्वसहचरम् = अपने साथी को, इङ्गितेन = सङ्केत से, आहूय = बुलाकर, स्वसङ्केतितभवने = अपने द्वारा पूर्वनिर्धारित भवन में, प्रविश्य = प्रवेश करके, आत्मनः = अपने, केशान् = बालों को, प्रसाधनिकया = कंघी से, प्रसाध्य = सँवारकर, आर्द्रपटेन = गीले कपड़े से, प्रोञ्छ्य = पोंछकर, सिन्दूरबिन्दुतिलकम् = सिन्दूर की बिन्दी का तिलक, विरचय्य = बनाकर, उष्णीषम् = पगड़ी को, अपहाय = छोड़कर, सूचिस्यूताम् = सुई से सिली हुई, सौवर्णकुसुमलतादिचित्रविचित्रिताम् = स्वर्णविनिर्मित पुष्प-लता आदि चित्रों से चित्रित, उष्णीषिकाम् = टोपी को, सन्धार्य = धारण करके, हरितकौशेयकञ्चुकिकाम् = हरे रेशमी वस्त्र के अङ्गरखे को, आयोज्य = पहनकर, शोणपट्टनिर्मितम् = लाल कपड़े से बने हुए, अधोवसनम् = अधोवस्त्र (पायजामा) को, आकलय्य = पहनकर, महार्हे = बहुमूल्य, उपानहौ = जूतों को, धारयित्वा = धारण करके, लघीयसीम् = अत्यन्त छोटी-सी, तानपूरिकाम् = तानपूरे को, सह = साथ में, नेतुम् = ले चलने के लिए, समर्प्य = देकर, गुप्तछुरिकाम् = जिसके भीतर छुरी छिपी थी, दन्तावलदन्तमुष्टिकाम् = हाथी-दाँत से बनी हुई मूँठ वाली, यष्टिकाम् = छड़ी को, दन्तुरयन् = फैलाता हुआ, करस्थपटखण्डेन = हाथ में लिये रुमाल से, मुहुर्मुहुः = बार-बार, आननम् = मुख को, प्रोञ्छन् = पोंछता हुआ, गायकवेषेण = गाने वाले के वेष में, अपजलखानशिविराभिमुखम् = अफजलखान के शिविर (वासस्थान) की ओर, प्रतस्थे = प्रस्थान किया।

हिन्दी—गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, उठकर, घूमकर, बाहर निकलकर, नीचे उतरकर, सद्यः उसी नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे के पास आकर, अपने साथ के लड़के को सङ्केत से बुलाकर, किसी पूर्वनिर्धारित भवन में प्रवेश कर, अपने और उस लड़के के बालों को कंघी से सँवारकर, मुख को आर्द्र कपड़े से पोंछकर, मस्तक पर सिन्दूर का तिलक बनाकर, पगड़ी उतार

कर, सुई से सिली हुई सोने के कामवाली पुष्पलतादि-चित्रित टोपी शिर पर धारण कर, हरा रेशमी अङ्गरखा, लाल कपड़े का पायजामा और दिल्ली में बने हुए बहुमूल्य जूते पहनकर, छोटे से एक तानपूरे को साथ ले चलने के लिए अपने सहचर बालक के हाथ में देकर, जिसमें छुरी छिपी हुई थी, ऐसी हाथी के दाँत की मूठ वाली छड़ी हाथ में लेकर, इत्र की सुगन्ध से दिशाओं को सुरभित करते हुए, हाथ में धारण किये हुए रुमाल से वार-बार मुँह को पोंछते हुए गायक के वेष में अफजलखान के शिविर की ओर प्रस्थान किया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड से विदित होता है कि आश्रम के छात्र केवल विद्याध्ययन और राजनीति में ही नहीं, अपितु अन्य लोक-व्यवहार में भी कितने निपुण होते थे ॥ २३ ॥

अथ तौ त्वरितं गच्छन्तौ, सपद्येव परश्शत-श्वेतपट-कुटीरैः शारद-मेघ-मण्डलायितं दीपमाला-विहित-बहुल-चाकचक्यम् अपजलखान-शिबिरं दूरत एव पश्यन्तौ यावत् समीपमागच्छतस्तावत् कश्चन कोकनद-च्छवि-वस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धा, कटिपर्यन्तसुनद्ध-काकश्यामाङ्गरक्षिकः, कर्बुराधोवसनः, शोण-श्मश्रुः, विजयपुराधीश-नामाङ्कित-वर्तुल-पित्तल-पट्टिका-परिकलित-वाम-वक्षःस्थलः स्कन्धे भुशुण्डीं निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन् सावष्टम्भमुर्दूभाषया उवाच—'कोऽयं, कोऽयम् ?' इति; ततो गौरसिंहेनापि 'गायकोऽहं श्रीमन्तं दिदृक्षे' इति समादरं व्याख्यायि। ततो 'गम्यतामन्येऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति' इति कथयति प्रहरिणि, 'घृतेन स्नातु भवद्रसना' इति व्याहरन् शिबिर-मण्डलं प्रविवेश।

व्याख्या—अथ=प्रस्थानानन्तरम्, तौ=गौरसिंहो बालकश्च, त्वरितम्=शीघ्रम्, गच्छन्तौ=व्रजन्तौ, सपद्येव=झटित्येव, परश्शतश्वेतपटकुटीरैः=अगणितधवलवसनपटभवनैः, शारदमेघमण्डलायितम्=शरत्कालिकघनमण्डलायितम्, दीपमालाविहितबहुलचाकचक्यम्=दीपपङ्क्तिकृताधिकचाकचक्यम्, अपजलखानशिबिरम्=अपजलखानपटगृहम्, दूरत एव=सुदूरादेव, पश्यन्तौ=अवलोकयन्तौ, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, समीपम्=निकटम्, आगच्छतः=आयातः, तावत्, कश्चन=कोऽपि, कोकनदच्छविवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धा=रक्त-

कमलाभवसनांशावृतशिराः, कटिपर्यन्तसुनद्धकाकश्यामाङ्गरक्षिकः=मध्यभागपर्यन्तवायसभिन्नकृष्णाङ्गरक्षिकः, कर्वुराधोवसनः=अनेकवर्णाधोवस्त्रः, शोणश्मश्रुः=रक्तमुखकेशः, विजयपुराधीशनामाङ्कितवर्तुलपित्तलपट्टिकापरिकलितवामवक्षःस्थलः= विजयपुरेश्वराभिधानोट्टङ्कितगोलाकाररीतिपट्टिकलसितवामवक्षःस्थलः, स्कन्धे=अंशे, भुशुण्डिम्=बन्दूकनामकमस्त्रविशेषम्, निधाय=संस्थाप्य, इतस्ततः, गतागतम्=यातायातम्, कुर्वन्=विदधत्, सावष्टम्भम्=सप्रतिरोधम्, उर्दूभाषया=म्लेच्छवाण्या, उवाच=अवोचत्—कोऽयम्, कोऽयम् ? इति, ततः=रक्षकवाक्यश्रवणोत्तरम्, गौरसिंहेनापि=शिववीरपक्षीयेणापि, गायकोऽहम्=गायनकर्मकरोऽहम्, श्रीमन्तम्=तत्रभवन्तम्, दिदृक्षे=द्रष्टुमिच्छामि, इति=एवम्प्रकारेण, समार्दवम्=मृदुतायुतम्, व्याख्यायि=अभाणि, ततः=तदनन्तरम्, गम्यताम्=गच्छतु, अन्येऽपि=इतरेऽपि, गायकाः=गायनकर्मलीनाः, वादकाश्च=वादनकर्मलीनाश्च, सम्प्रत्येव=शीघ्रमेव, गताः=प्रयाताः, सन्ति=विद्यन्ते, इति=अनेन प्रकारेण, कथयति=वदति, प्रहरिणि=रक्षके, घृतेन=आज्येन, स्नातु=स्नानं करोतु, भवद्रसना=श्रीमज्जिह्वा, इति=एवम्, व्याहरन्=वदन्, शिविरमण्डलं=पटमण्डपनिचयम्, प्रविवेश=प्रविष्टवान् ।

समासः—परश्शतानां श्वेतपटानां कुटीरैः परश्शतश्वेतपटकुटीरैः । शारदानां मेघानां मण्डलमिवाचरितं शारदमेघमण्डलायितम् । दीपानां मालया विहितं बहुलं चाकचक्यं यत्र तत् दीपमालाविहितबहुलचाकचक्यम् । कोकनदच्छविना वस्त्रखण्डेन वेष्टितो मूर्धा यस्य सः कोकनदच्छविवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्द्धा । कटिपर्यन्ता सुनद्धा काकश्यामा अङ्गरक्षिका यस्य सः कटिपर्यन्तसुनद्धकाकश्यामाङ्गरक्षिकः । । कर्वुरम् अधोवसनं यस्य सः कर्वुराधोवसनः । शोणानि श्मश्रूणि यस्य सः शोणश्मश्रुः । विजयपुरस्य अधीशः, तस्य नाम्ना अङ्कितया वर्तुलया पित्तलपट्टिकया परिकलितं वामं वक्षःस्थलं यस्य सः विजयपुराधीशनामाङ्कितवर्तुलपित्तलपट्टिकापरिकलितवामवक्षःस्थलः । गतं च आगतं च गतागतम् । शिविराणां मण्डलं शिविरमण्डलम् ।

व्याकरणम्—त्वरितम्—त्वर+क्त । गच्छन्तौ—गम्+शतृ (द्वि० व०) । पश्यन्तौ—पश्य+शतृ (द्वि० व०) । दिदृक्षे—दृश्+सन्+लट् । व्याख्यायि—वि+आ+ख्या+लुङ् । कथयति—कथ्+शतृ (स० ए० व०) । प्रविवेश—प्र+विश्+लिट् (तिप्) ।

शब्दार्थ—अथ=तदनन्तर, तौ=वे दोनों, त्वरितम्=शीघ्रतापूर्वक, गच्छन्तौ=जाते हुए, सपद्येव=तत्क्षण ही, परश्शतश्वेतपटकुटीरैः=सैकड़ों सफेद तम्बुओं से, शारदमेघमण्डलायितम्=शरत्कालीन मेघ-मण्डल जैसे प्रतीत होने वाले, दीपमालाविहितवहुलचाकचक्यम्=दीपमालिकाओं से समुत्पन्न हुई अत्यधिक जगमगाहट वाले, दूरतः=दूर से, पश्यन्तौ=देखते हुए, कश्चन=कोई, कोकनदच्छविवस्त्रखण्डवेष्टितमूर्धा=लाल कमल की कान्ति वाले वस्त्र-खण्ड से शिर को लपेटे हुए, कटिपर्यन्तसुनद्धकाकश्यामाङ्गरक्षिकः=कमर तक लम्बे वायस के समान काले अङ्गरखे वाला, कर्वुराधोवसनः=चितकबरे अधो-वस्त्र (लुङ्गी) वाला, शोणश्मश्रुः=लाल दाढ़ी मूँछों वाला, विजयपुराधीश-नामाङ्कितवर्तुलपित्तलपट्टिकापरिकलितवामवक्षःस्थलः=विजयपुर के सुलतान के नाम से अङ्कित गोल, पीतल की पट्टिका को बाँये वक्षःस्थल पर लटकाये हुए, गतागतम्=गमनागमन, सावष्टम्भम्=प्रतिरोधपूर्वक, दिदृक्षे=देखना चाहता हूँ, समार्दवम्=नम्रतापूर्वक, व्याख्यायि=बोला, गम्यताम्=जाइये, गायकाः=गाने वाले, वारकाः=बजाने वाले, सम्प्रति=इसी समय, गताः=गये हैं, कथयति=कहते हुए, प्रहरिणि=प्रहरी के, घृतेन स्नातु भवद्रसना=आपकी जिह्वा घी से स्नान करे, व्याहरन्=कहता हुआ, प्रविवेश=प्रवेश किया।

हिन्दी—तदनन्तर वे दोनों (गौरसिंह और उसका सहचर) शीघ्रता-पूर्वक जाते हुए सैकड़ों श्वेत तम्बुओं से, शरत्कालीन मेघ-मण्डल जैसे प्रतीत होने वाले, दीपमालिकाओं से समुत्पन्न अत्यधिक जगमगाहट वाले अफजलखान के शिविरों को दूर से ही अवलोकन करते हुए ज्यों ही उसके समीप पहुँचे, त्यों ही लाल कमल जैसी कान्ति वाले वस्त्र-खण्ड को शिर पर लपेटे हुए, कटि-पर्यन्त लम्बायमान काक सदृश रङ्गवाले काला अङ्गरखा और चितकबरी लुङ्गी धारण किये हुए, लाल दाढ़ी-मूंछ वाले, बीजापुर के सुलतान के नाम से अङ्कित गोल पीतल की पट्टिका वाम वक्षःस्थल पर डाले, कन्धे पर बन्दूक रखकर इधर-उधर भ्रमण कर रहे किसी आदमी ने उन्हें टोककर उर्दू भाषा में कहा—कौन है, यह कौन है ? गौरसिंह ने विनम्रतापूर्वक कहा—मैं गायक हूँ, श्रीमान् से मिलना चाहता हूँ। तब प्रहरी के 'जाओ, और भी गाने-बजाने वाले अभी-अभी गये हैं' यह कहने पर 'आपकी जिह्वा घृत से स्नान करे' इस प्रकार बोलता हुआ गौरसिंह ने अफजलखान के शिविर में प्रवेश किया ॥२४॥

तत्र च क्वचित् खट्वासु पर्यङ्केषु चोपविष्टान्, सगडगडाशब्दं ताम्रक-धूममाकृष्य, मुखात् कालसर्पानिव श्यामल-निःश्वासानुद्गिरतः, स्वहृदय-कालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखाग्निसंयोगं जीवन-दशायामेवाऽऽकलयतः, प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान्; क्वचिद् "हरिद्रा हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रं चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्न-कम्, शृङ्गवेरं शृङ्गवेरम्, रामठं रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम्, पललं पललम्" इति कलकलैर्बालानां निद्रां विद्रावयतः, समीप-संस्थापित-कुतू-कुतुप-कर्करी-कण्डोल-कट-कटाह-कम्बि-कडम्बान्, उग्रगन्धीनि मांसानि शूलाकुर्वतः, नखम्पचा यवागूः स्थालिकासु प्रसारयतः, हिङ्गुगन्धीनि तेमनानि तिन्तिडीरसै-र्मिश्रयतः, परिपिष्टेषु कलम्बेषु जम्बीर-नीरं निश्च्योतयतः, मध्ये मध्ये समागच्छतस्ताम्रचूडान् व्यजन-ताडनैः पराकुर्वतः, त्रपु-लिप्तेषु ताम्र-भाजनेषु आरनालं परिवेषयतः सूदान्; क्वचिद् वक्र-प्रसाधितकाक-पक्षान्, मद-व्याघूर्णित-शोण-नयनान्, सपारस्परिक-कण्ठग्रहं पर्य्यटतः, यौवन-चुम्बित-शरीरान्, स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणेव मन्दगतीन्, अनवर-ताक्षिप्त-कुसुमेषु-बाणैरिव कुसुमैर्भूषितान्, वसनातिरोहिताङ्गच्छटान्, विविध-पटवास-वासितानपि चिरास्नानमहा-मलिन-महोत्कट-स्वेद-पूतिगन्ध-प्रकटीकृतास्पृश्यतान् यवन-युवकान्;

व्याख्या—तत्र च=अफजलखानशिविरे च, क्वचित्=कुत्रचित्, खट्वासु=लघुपर्यङ्केषु, पर्यङ्केषु=विशिष्टखट्वासु, च, उपविष्टान्=संस्थितान्, सगडगडाशब्दम्='गडगड' इत्याकारकशब्दसंयुतम्, ताम्रकधूमम्=तमालधूमम्, आकृष्य=कृष्ट्वा, मुखात्=लपनात्, कालसर्पानिव=यमाशी-विषानिव, श्यामलनिःश्वासान्=कृष्णनिःश्वासान्, उद्गिरतः=वमतः, स्वहृदयकालिमानमिव=निजमानसकार्ष्ण्यमिव, प्रकटयतः=समाविष्कुर्वतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकानिव=निजपूर्वजोत्पादितस्वर्गलोकानिव, फूत्कारैः=फूत्कृतैः, अग्निसात्=भस्मसात्, कुर्वतः=विदधतः, मरणोत्तरम्=पञ्चत्व-प्राप्त्यनन्तरम्, अतिदुर्लभम्=परमकाठिन्येन प्राप्यम्, मुखाग्निसंयोगम्=

वदनवह्नियोगम्, जीवनदशायामेव = प्राणयुक्तदशायामेव, आकलयतः = सन्धारयतः, प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान् = लब्धस्वाम्यत्वबहुलीभूताभिमानान्, क्वचित् = कुत्रचिद्, हरिद्रा हरिद्रा = महारजनं महारजनम्, लशुनं लशुनम् = रसोनं रसोनम्, मरिचं मरिचम् = वेल्लजं, वेल्लजम्, चुक्रं चुक्रम् = वृक्षाम्लं वृक्षाम्लम्, वितुन्नकं वितुन्नकम् = छत्रा छत्रा, शृङ्गवेरं शृङ्गवेरम् = आर्द्रकम्, आर्द्रकम्, रामठं रामठम् = हिङ्गु हिङ्गु, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी = फाणितं फाणितम्, मत्स्याः मत्स्याः = मीनाः मीनाः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम् = चरणायुधाण्डं चरणायुधाण्डम्, पललं पललम् = मांसं मांसम्, इति = एवम्प्रकारेण, कलकलैः = शब्दैः, बालानाम् = बालकानाम्, निद्राम् = शयनम्, विद्रावयतः = दूरयतः, समीपसंस्थापितकुतूकुतुपकर्करीकण्डोलकटकटाहकम्बिकडम्बान् = पार्श्वस्थापितचर्मनिर्मिततैलाद्याधारपात्रतल्लघुरूपहस्तप्रक्षालनादियोग्यपात्रपिटकिञ्जल्कशष्कुल्यादिपाकयन्त्रदर्विकलम्बान्, उग्रगन्धीनि = उत्कटगन्धीनि, मांसानि = पललानि, शूलाकुर्वतः = संस्कुर्वतः, नखम्पचा = नखज्वालिका, यवागूः = तरलपदार्थान्, स्थालिकासु = वृहद्भोजनपात्रेषु, प्रसारयतः = विस्तारयतः, हिङ्गुगन्धीनि = रामठसुरभीणि, तेमनानि = व्यञ्जनानि, तिन्तिडीरसैः = चुक्ररसैः, मिश्रयतः = संयोजयतः, परिपिष्टेषु = धर्षितेषु, कलम्बेषु = वास्तुकादिशाकेषु, जम्बीरनीरम् = निम्बुकस्य रसम्, निश्च्योतयतः = पानीयं निःसारयतः, मध्ये मध्ये = अन्तरा अन्तरा, समागच्छतः = समापततः, ताम्रचूडान् = कुक्कुटान्, व्यजनताडनैः = तालवृन्तहननैः, पराकुर्वतः = परावर्तयतः, त्रपुलिप्तेषु = त्रपुपदार्थसंस्कृतेषु, ताम्रभाजनेषु = ताम्रपात्रेषु, आरनालम् = काञ्जिकम्, परिवेषयतः = परिवेषणं कुर्वतः, सूदान् = पाचकान्, क्वचित् = कुत्रचित्, वक्रप्रसाधितकाकपक्षान् = कुटिलस्फालितकाकपक्षान्, मदव्याघूर्णितशोणनयनान् = आसवविकृतरक्तनेत्रान्, सपारस्परिककण्ठग्रहम् = अन्योऽन्यगलधारणसहितम्, पर्य्यटतः = चलतः, यौवनचुम्बितशरीरान् = अभिनववयःसम्बद्धशरीरान्, स्वसौन्दर्यगर्वभारेणेव = निजरमणीयतागर्वभरेणेव, मन्दगतीन् = मन्थरचालान्, अनवरताक्षिप्तकुसुमबाणैरिव = निरन्तराक्षिप्तकामबाणैरिव, कुसुमैः = पुष्पैः, भूषितान् = अलङ्कृतान्, वसनातिरोहिताङ्गच्छटान् = वस्त्रागोपिताङ्गशोभान्, विविधपटवासवासितानपि = अनेकपटवाससुगन्धितानपि, चिरास्नानमहामलिनमहोत्कटस्वेदपूतिगन्धप्रकटीकृतास्पृश्यतान् = बहुकालास्नानातिमलिनमहोत्कटघर्मवारिपूतिगन्धाविष्कृतास्पृश्यतान्, यवनयुवकान् = तुरुष्कयुवकान् (अवलोकयन् पटकुटीरद्वारमाससाद इत्यग्रिमेणान्वयः) ।

समासः—'गड गड' इत्याकारकशब्देन सह सगडगडाशब्दम्। ताम्रकस्य धूमं ताम्रकधूमम्। काला एव सर्पाः, तान् कालसर्पान्। श्यामलान् निःश्वासान् श्यामलनिःश्वासान्। स्वस्य हृदयस्य कालिमानं स्वहृदयकालिमानम्। स्वपूर्वपुरुषैः उपार्जितान् पुण्यलोकान् स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकान्। मरणात् उत्तरं मरणोत्तरम्। मुखस्य अग्नेः संयोगं मुखाग्निसंयोगम्। प्राप्तेन अधिकारेण कलितः अखर्वः गर्वः येषां तान् प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान्। समीपे स्थापिता कुतूः कुतुपः कर्करी कण्डोलः कटः कटाहः, कम्बिः कलम्बश्च येषां, तान् समीपस्थापितकुतूकुतुपकर्करीकण्डोलकटकटाहकम्बिकलम्वान्। उग्रः गन्धो येषां, तानि उग्रगन्धीनि। हिङ्गुनो गन्धो येषु, तानि हिङ्गुगन्धीनि। व्यजनेन ताडनैः व्यजनताडनैः। त्रपुना लिप्तेषु त्रपुलिप्तेषु। ताम्रस्य भाजनेषु ताम्रभाजनेषु। वक्रः प्रसाधिताः काकपक्षाः यैस्तान् वक्रप्रसाधितकाकपक्षान्। मदेन व्याघूर्णितानि शोणानि नयनानि येषां, तान् मदव्याघूर्णितशोणनयनान्। पारस्परिकेण कण्ठग्रहेण सहितं यथा स्यात् तथा सपारस्परिककण्ठग्रहम्। यौवनेन चुम्बितं शरीरं येषां, तान् यौवनचुम्बितशरीरान्। स्वसौन्दर्यस्य गर्वभारेण स्वसौन्दर्यगर्वभारेण। मन्दा गतिः येषां, तान् मन्दगतीन्। अनवरतम् आक्षिप्ताः कुसुमेषुबाणाः येषु, तैः अनवरताक्षिप्तकुसुमेषुबाणैः। वसनैः अतिरोहिता अङ्गच्छटा येषां, तान् वसनातिरोहिताङ्गच्छटान्। विविधैः पटवासैः वासितान् विविधपटवासवासितान्। चिरा स्नानेन महामलिनस्य महोत्कटस्य स्वेदस्य पूतिगन्धेन प्रकटीकृता अस्पृश्यता यैस्तान् चिरास्नानमहामलिनमहोत्कटस्वेदपूतिगन्धप्रकटीकृतास्पृश्यतान्। यवनानां युवकान् यवनयुवकान्।

कोष :—'तिन्तिडीकं च चुक्रं च वृक्षाम्लम्' इत्यमरः। 'अथ च्छन्ना वितुन्नकम्' इत्यमरः। 'आर्द्रकं शृङ्गवेरं स्यात्' इत्यमरः। 'कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं सैवाल्पा कुतुपः पुमान्' इत्यमरः। 'कर्कर्यालुर्गलन्तिका' इत्यमरः। 'यवागूरुष्णिका घाना विलेपी तरला च सा' इत्यमरः। 'गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः' इत्यमरः। 'कलम्बश्च कडम्बश्च' इत्यमरः। 'आरवालकसौवीरकुल्माषाभियुतानि च' इत्यमरः।

व्याकरणम्—उपविष्टान्— उप्+विश्+क्त (द्वि० ब० व०)। उद्गिरतः—उद्+गिर्+शतृ (द्वि० ब० व०)। अग्निसात्—अग्नि+सात्। कुर्वतः—कृ+शतृ (द्वि० ब० व०)। आकलयतः—आ+कल्+शतृ। विद्रावयतः—वि+द्रु+णिच्+शतृ (द्वि० ब० व०)। शूलाकुर्वतः—शूलेन

संस्कुर्वंत:, शूल+डाच्+कृ+शतृ (द्वि० ब० व०)। परिपिष्टेषु—परि+पिष्+क्त (स० ब० व०)। निश्च्योतंयत:—निस्+च्युतिर्+शतृ (द्वि० ब० व०)। व्याघूर्णित:—वि+आ+घूर्ण+क्त। पर्यंटत:—परि+अट्+शतृ (द्वि० ब० व०)।

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ शिविर में, क्वचित्=कहीं, खट्वासु=खाटों पर, पर्यङ्केषु=पलङ्गों पर, उपविष्टान्=बैठे हुए, सगडगडाशब्दम्=गड़-गड़ ध्वनि के साथ, ताम्रकधूमम्=तम्बाकू के धुँएँ को, आकृष्य=खींचकर, उद्गिरत:=निकालते हुए, स्वहृदयकालिमानम्=अपने हृदय की कालिमा को जैसे, प्रकटयत:=प्रकट करते हुए, स्वपूर्वपुरुषोपार्जितपुण्यलोकान्=अपने पूर्वजों के द्वारा उपार्जित पुण्य-समूहों को, फूत्कारै:=फूँको से, अग्निसात् कुर्वंत:=भस्म करते हुए, मरणोत्तरम्=मरने के बाद, मुखाग्निसंयोगम्=मुख और अग्नि के संयोग को, मदव्याघूर्णितशोणनयनान्=नशे से झूमते लाल नेत्रोंवाले, सपारस्परिककण्ठग्रहम्=एक-दूसरे के गले में हाथ डाले हुए, पर्यंटत:=घूमते हुए, यौवनचुम्बितशरीरान्=जवान शरीर वाले, स्वसौन्दर्यगर्वभारेण=अपने सौन्दर्य के गर्व से युक्त, अनवरताक्षिप्तकुसुमबाणै:=निरन्तर चलाये जा रहे कामबाणों से, वसनातिरोहिताङ्गच्छटान्=वस्त्रों से न ढँकी हुई अङ्गों की छटावाले, विविधपटवासवासितान्=अनेक प्रकार की इत्रों से सुगन्धित, चिरास्नानमहामलिनमहोत्कटस्वेदपूतिगन्धप्रकटीकृतास्पृश्यतान्=बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण नितान्त मैले और उत्कट गन्ध वाले पसीने की दुर्गन्ध से अपनी अस्पृश्यता को प्रकट करते हुए, यवनयुवकान्=यवन-युवकों को।

हिन्दी—वहाँ शिविर में कहीं खाटों और पलङ्गों पर बैठे हुए गड़-गड़ शब्द के साथ तम्बाकू का धुँआँ खींचकर मुख से काले सर्पों के समान बाहर निकाल रहे मानो अपने हृदय की कालिमा को प्रकट कर रहे हैं, अपने पूर्वजों द्वारा समुपार्जित स्वर्गादि पुण्यलोकों को फूँक मारकर जला रहे, जैसे मरने के बाद न प्राप्त होने वाले मुखाग्नि-संयोग को जीवित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे हों, अधिकारसम्पन्न होने से अत्यधिक गर्व में चूर हो रहे और कहीं 'हल्दी-हल्दी, लहसुन-लहसुन, मरिच-मरिच, खटाई-खटाई, सौंफ-सौंफ, अदरख-अदरख, हींग-हींग, राव-राव, मछलियाँ-मछलियाँ, मुर्गी का अण्डा-मुर्गी का अण्डा, माँस-माँस के कोलाहल से बच्चों की नींद हराम कर रहे, पास में ही कुप्पी, करवा (गडुआ अथवा बँधना), टोकरी, चटाई, कड़ाही, करछुल और साग के

डण्ठलों को रखे हुए, दुर्गन्ध देने वाले माँस-खण्डों को लोहे की सलाखों में पिरोकर पका रहे, गरम-गरम गीला भात थालियों में परोस रहे, हींग से बघारी कढ़ी में इमली का रस मिला रहे, पिसी हुई चटनी में नीबू का रस निचोड़ रहे, बीच-बीच में आने वाले मुर्गों को पंखों से मार-मारकर भगा रहे और कलई किये हुए ताँबे के बर्तनों में काँजी परोस रहे रसोइयों को, कहीं तिरछी जुल्फी सँवारे हुए नशे से झूमते लाल आँखों वाले, एक-दूसरे के गले में हाथ डाले घूमते हुए नई जवानीवाले, मानो अपने सौन्दर्य के गर्व के भार से धीरे-धीरे चल रहे, अनवरत चलाये जा रहे मानों कामबाणरूपी पुष्पों से समलंकृत, वस्त्रों से अङ्गच्छवि को तिरोहित न कर सकने वाले, अनेक प्रकार के इत्रों से सुगन्धित होते हुए भी चिरकाल से स्नान न करने के कारण अत्यन्त मलीन और उत्कट गन्धवाले, पसीने की बदबू से अपनी अस्पृश्यता को प्रकट करने वाले यवन-युवकों को (देखते हुए)।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में यवन-संस्कृति का सजीव वर्णन किया गया है। 'मुखात् कालसर्पानिव···अग्निसात् कुर्वतः' आदि स्थलों पर उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया गया है। 'अनवरत···कुसुमैः' 'कामबाणरूपी पुष्पों से समलंकृत'—यहाँ पर पुष्पों में कामबाण का समारोप किया गया है, अतः रूपकालंकार है ॥ २५ ॥

क्वचिद्—"अहो ! दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य ! अहो ! दुराधर्षता महाराष्ट्राणाम्, अहो ! वीरता शिववीरस्य, अहो ! निर्भयता एतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्घोटकानाम्, आः ! किं कथयामः ? दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीर-चन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्त्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुं गच्छेत् ? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तद्भटैरपि छलालापं विदध्यात् ? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः, किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम् ! 'यवनानां पराजयो भविष्यति, अपजलखानो विनङ्क्ष्यति' इति न विद्मः को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे। मा स्म भोः ! मैवं स्यात्, रक्ष भो ! रक्ष जगदीश्वर ! अथवा सम्भोभवीतितमामेवमपि, योऽयमपजलखानः सेनापति-पद-विडम्बनोऽपि 'शिवेन योत्स्ये हनिष्यामि ग्रहीष्यामि वा' इति सप्रौढि

विजयपुराधीशमहासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि, शिवप्रतापं च विदन्नपि "अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रूकुंसकः, अद्य वीणावादनम्" इति स्वच्छन्दैरुच्छृङ्खलाऽऽचरणैर्दिनानि गमयति ।

व्याख्या—क्वचित्=कुत्रचित्, अहो ! आश्चर्यसूचकमव्ययम्, दुर्गमता=काठिन्येन गमनयोग्यता, महाराष्ट्रदेशस्य=शिवाजीप्रशासितदेशस्य, अहो !=आश्चर्यसूचकम्, दुराधर्षता=दुरभिभवनीयता, महाराष्ट्राणाम्=एतद्देशनागरिकाणाम्, अहो !=आश्चर्यसूचकम्, वीरता=शूरता, शिववीरस्य=एतन्नामकस्य प्रतिपक्षनृपस्य, अहो !=आश्चर्यम्, निर्भयता=भयाभावः, एतत्सेनानीनाम्=शिवसेनानायकानाम्, अहो !=आश्चर्यम्, त्वरितगतिः=शीघ्रगामिता, एतद्घोटकानाम्=प्रतिपक्षवाजिनाम्, आः !=कष्टम्, किं कथयामः=किं वर्णयामः ? दृष्ट्वैव=विलोक्यैव, चमत्कारम्=कौशलम्, शिववीरचन्द्रहासस्य=शिववीरखड्गस्य, न=नहि, वयम्=अपजलखानपक्षीयाः, पारयामः=शक्ष्यामः, धैर्यं=धीरत्वम्, धर्तुम्=धारयितुम्, न च=नहि च, शक्नुमः=पारयामः, युद्धस्थाने=समराङ्गणे, स्थातुम्=स्थिरतामधिगन्तुम्, को नाम=कश्च नाम, द्विशिराः=द्विमूर्धा, यः, शिवेन=शिववीरेण, योद्धुम्=युद्धं विधातुम्, गच्छेत्=व्रजेत्, कश्च नाम=को नाम, द्विपृष्ठः=युग्मपृष्ठः, यः, तत्, भटैरपि=वीरैरपि, छलालापम्=कपटवार्ताम्, विदध्यात्=कुर्यात्, वयम्=यवनपक्षीयाः, बलिनः=बलयुक्ताः, आस्माकीना=अस्माकं सम्बन्धिनी, महती=विपुला, सेना=सैन्यम्, तथापि, न=नहि, जानीमः=अवगच्छामः, किमिति=किमर्थम्, कम्पते=वेपते, इव=यथा, क्षुभ्यतीव च=क्षोभमेतीव च, हृदयम्=मानसम्, यवनानाम्=तुरुष्कानाम्, पराजयो भविष्यति=विजयाभावो भविता, अपजलखानो विनङ्क्ष्यति=एतन्नामा विजयपुरेश्वरसेनपो नष्टो भविता, इति=एवम्, न=नहि, विद्मः=जानीमः, कः=जनः, जपतीव=अभ्यसतीव, कर्णे=श्रोत्रे, लिखतीव=लेखं करोतीव, सम्मुखे=समक्षे, क्षिपतीव=प्रेषयतीव, चान्तःकरणे=मनसि, मा स्म भोः=ईदृग् न भूयात्, मैवं स्यात्=अत्रोक्तं न भवेत्, रक्ष भो !=त्राहि भोः, रक्ष जगदीश्वर !=त्राहि हे लोकपाल ! अथवा=वा, सम्बोभवीतितमाम्=सम्भाव्यते, एवमपि=एतदपि, योऽयमपजलखानः=विजयपुरेश्वरप्रतिनिधिभूतोऽयम्, सेनापतिपद-

विडम्बनोऽपि=सेनानायकपदलाञ्छनोऽपि, शिवेन=शिववीरेण, सह=साकम्, योत्स्ये=युद्धं करिष्ये, हनिष्यामि=मारयिष्यामि, ग्रहीष्यामि=वन्दीकरिष्यामि, वा=अथवा, इति=एवम्, सप्रौढिम्=सगर्वम्, विजयपुराधीशमहासभायाम् =बीजापुरप्रशासकपरिषदि, प्रतिज्ञाय=प्रतिज्ञां विधाय, समायातोऽपि= समागतोऽपि, शिवप्रतापं च=शिववीरप्रभुत्वञ्च, विदन्नपि=जानन्नपि, अद्य= सम्प्रति, नृत्यम्=नर्तनम्, अद्य=अस्मिन् दिवसे, गानम्=गीतम्, अद्य= एतर्हि, लास्यम्=अङ्गविक्षेपः, अद्य=सम्प्रति, मद्यम्=सुरापानम्, अद्य= इदानीम्, वाराङ्गनाः=गणिकाः, अद्य=सम्प्रति, भ्रूकुंसकः=स्त्रीवेषधारी नर्तकः, अद्य=एतर्हि, वीणावादनम्=वल्लकीवादनायोजनम्, इति=इवम्, स्वच्छन्दैः=मर्यादारहितैः, उच्छृङ्खलाचरणैः=असदाचरणैः, दिनानि=दिव-सान्, गमयति=यापयति।

समासः—एतस्य सेनानीनाम् एतत्सेनानीनाम्। त्वरिता गतिः त्वरित-गतिः। एतस्य घोटकानाम् एतद्घोटकानाम्। शिववीरस्य चन्द्रहासस्य शिव-वीरचन्द्रहासस्य। द्वे शिरसी यस्य सः द्विशिराः। द्वे पृष्ठे यस्यासौ द्विपृष्ठः। छलस्य आलापं छलालापम्। सेनापतेः पदस्य विडम्बनः सेनापतिपद-विडम्बनः। विजयपुरस्य अधीशः, तस्य महासभायां विजयपुराधीशमहासभा-याम्। भ्रुवोः कुंसः यस्य सः भ्रूकुंसकः।

व्याकरणम्—दुराधर्षता—दुराधर्षस्य भावः, दुर्+आ+धृष्+तल्। धर्तुम्—धृ+तुमुन्। आस्माकीना—अस्मद्+ख+टाप्। योत्स्ये—युध्+ लृट्। हनिष्यामि—हन्+लृट्+मिप्। ग्रहीष्यामि—ग्रह्+लृट्+मिप्। प्रतिज्ञाय—प्रति+ज्ञा+क्त्वा+ल्यप्। समायातः—सम्+आ+या+क्त। विदन्—विद्+शतृ।

शब्दार्थ—क्वचित्=कहीं, दुर्गमता=अगम्यता, दुराधर्षता=दुरभि-भवनीयता, महाराष्ट्राणाम्=मराठों की, निर्भयता=निडरता, एतत्सेनानी-नाम्=शिवाजी के सैनिकों की, त्वरितगतिः=तेज चाल, एतद्घोटकानाम्= इनके अश्वों की, पारयामः=समर्थ होते हैं, स्थातुम्=रुकने के लिए, धर्तुम् =धारण करने के लिए, शक्नुमः=समर्थ होते हैं, को नाम=कौन, द्विशिराः =दो शिरों वाला, योद्धुम्=युद्ध करने के लिए, द्विपृष्ठः=दो पीठोंवाला, तद्भटैः=शिवाजी के सैनिकों के साथ, छलालापम्=छल-कपट की बात-चीत, विदध्यात्=कर सकता है, बलिनः=बलशाली, आस्माकीना=हमारे,

जानीमः=जानते हैं, किमिति=क्यों, कम्पते इव=काँप जैसा रहा है, क्षुभ्यतीव=घबरा-सा रहा है, विनङ्क्ष्यति=विनष्ट होगा, न विद्मः=नहीं जानते हैं, जपतीव=धीरे-धीरे कह रहा है जैसे, क्षिपतीव=फेंक-सा रहा है, अन्तःकरणे=अन्तःकरण में, सम्बोभवीतितमाम्=ऐसा भी सम्भव हो सकता है, सेनापतिपदविडम्बनः=सेनापति पद को विडम्बित करनेवाला, योत्स्ये=युद्ध करूँगा, हनिष्यामि=मार डालूंगा, ग्रहीष्यामि=जीवित पकड़ लाउँगा, सप्रौढि=दृढ़ता के साथ, विजयपुराधीशमहासभायाम्=विजयपुर के सुलतान की महासभा में, प्रतिज्ञाय=प्रतिज्ञा करके, समायातोऽपि=आया हुआ भी, विदन् अपि=जानते हुए भी, लास्यम्=नृत्य, मद्यम्=मद्यपान, वाराङ्गना=वेश्या, भ्रूकुंसकः=स्त्रीवेषधारी नर्तक, स्वच्छन्दैः=निरंकुश, उच्छृङ्खलाचरणैः=उच्छृङ्खल आचरणों से, गमयति=समय काटता है।

हिन्दी—कहीं—अहो ! महाराष्ट्र देश बड़ा दुर्गम है, ओह ! मराठे बड़े दुर्धर्ष हैं, ओह ! शिवाजी की वीरता अद्भुत है, इनके सैनिक बड़े निडर हैं, इनके घोड़े कितने तेज हैं ! आह ! क्या कहें, शिवाजी के तलवार की चमक देखकर ही हमारे धैर्य समाप्त हो जाते हैं और युद्धभूमि में टिक सकना हमारे लिए कठिन हो जाता है। कौन दो शिरवाला होगा, जो शिवाजी से युद्ध करने जायेगा और कौन दो पीठवाला होगा, जो उनके सैनिकों से भी छल-कपट की बात करेगा ? हमलोग बलशाली हैं, हमारी सेना भी बहुत बड़ी है तथापि न जाने क्यों हृदय काँपता-सा है, घबराता-सा है, 'यवनों की हार होगी और अफजलखान मारा जायेगा' इस प्रकार न जाने कौन कान में धीरे-से कह-सा रहा है, सामने लिख-सा रहा है, दिल में डाला जा रहा है। ऐसा कभी नहीं होगा, हे जगदीश्वर ! रक्षा करना। अथवा ऐसा भी हो सकता है। क्योंकि सेनापति पद को विडम्बित करने वाला यह अफजलखान 'यद्यपि मैं शिवाजी से लड़ूंगा, उसे या तो मार डालूंगा या जीवित ही पकड़ लाऊँगा' इस प्रकार बीजापुर के सुलतान की सभा में प्रतिज्ञा करके आया है और शिवाजी के पराक्रम से भी अच्छी तरह परिचित है, फिर भी आज नृत्य है तो आज गाना है, आज शृङ्गार-प्रधान स्त्री-नृत्य है, तो आज मद्यपान करना है, आज वेश्या है तो आज स्त्री-वेषधारी नर्तक हैं, आज सितारवादन है—इस प्रकार स्वच्छन्द उच्छृङ्खल दुराचरणों से अपना समय व्यतीत कर रहा है।

टिप्पणी—इस गद्यांश में 'कम्पते इव, क्षुभ्यतीव च हृदयम्, 'जपतीव

कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे' इत्यादि स्थलों पर सम्भावना होने के कारण उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग किया है ।। २६ ।।

न च यः कदापि विचारयति यत्—कदाचित् परिपन्थिभिः प्रेषिता काचन वारवधूरेव मामासवेन सह विषं पाययेत्, कोऽपि नट एव ताम्बूलेन सह गरलं ग्रासयेत्, कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यादि; ध्रुव एव तस्य विनाशः, ध्रुवमेव पतनम्, ध्रुवमेव च पशुमारं मरणम् । तन्न वयं तेन सह जीवन-रत्नं हारयिष्यामः"—इति व्याहरतः; इतरांश्च—

"मैवं भोः ! श्व एव आहव-क्रीडाऽस्माकं भविष्यति, तत् श्रूयते सन्धि-वार्त्ता-व्याजेन शिव एकत आकारयिष्यते, यावच्च स स्वसेनामपहाय एकाकी अस्मत्स्वामिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्यति; तावद् वयं श्येना इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्र-सेनायां, छिन्धि, भिन्धि—इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, वसन्त-वाताहत-नीरसच्छदानिव च क्षणेन विद्रावयिष्यामः ।

व्याख्या—न च=नहि च, यः=अफजलखानः, विचारयति=चिन्तयति, यत्, कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले, परिपन्थिभिः=रिपुभिः, प्रेषिता=प्रहिता, काचन, वारवधूरेव=वाराङ्गनैव, माम्=अफजलखानम्, आसवेन=मद्येन, सह=साकम्, विषम्=गरलम्, पाययेत्=पानं कारयेत्, कोऽपि=कश्चन, नटः=विट एव, ताम्बूलेन=वीटिकया, सह=सार्धम्, गरलम्=विषम्, ग्रासयेत्=भोजयेत्, कोऽपि=कश्चन, गायक एव=गानकर्ता एव, वीणया=वल्लक्या, सह=साकम्, खड्गमानीय=चन्द्रहासमादाय, खण्डयेत्=द्विधा कुर्यात् (शरीरमिति भावः), ध्रुव एव तस्य विनाशः=निश्चितमेवापजलखानस्य मरणम्, ध्रुवमेव=निश्चितमस्ति, पतनम्=पदहानिः, ध्रुवमेव=निश्चितमेव, पशुमारं=पशुतुल्यम्, मरणम्=नाशः, तन्न वयम्=तत्पक्षीयाः, तेन=अफजलखानेन, सह=सार्धम्, जीवनरत्नम्=बहुमूल्यप्राणान्, हारयिष्यामः=नाशयिष्यामः, इतरांश्च=अन्यांश्च ।

मैवं, भोः=एवं मा वदत, श्व एव=आगामिनि दिने एव, आहवक्रीडा=युद्धखेला, अस्माकम्=अपजलखानपक्षीयाणां सैनिकानाम्, भविष्यति=सम्पत्स्यते, तत् श्रूयते=आकर्ण्यते, सन्धिवार्ताव्याजेन=सन्धिचर्चाछलेन,

शिवः=शिववीरः, एकतः=एकस्मिन् स्थाने, आकारयिष्यते=आवाहयिष्यते, यावच्च=यावत्कालपर्यन्तञ्च, सः=शिववीरः, स्वसेनाम्=निजपृतनाम्, अपहाय=परित्यज्य, अस्मत्स्वामिना=अपजलखानेन, सह=साकम्, आलपितुम्=वार्तां विधातुम्, एकान्तस्थाने=गुप्तस्थले, यास्यति=गमिष्यति, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, वयम्=यवनपक्षीयाः सैनिकाः, श्येना इव=बाजपक्षिण इव, शकुनिमण्डले=पक्षिमण्डले, महाराष्ट्रसेनायाम्=शिवसैनिकेषु, छिन्धि भिन्धि इति कृत्वा=कर्तय भेदय एवं विधाय, युगपदेव=सहसैव, पतिष्यामः=आक्रमिष्यामः, वसन्तवाताहतनीरसच्छदानिव=मधुपवनान्दोलितशुष्कपलाशानिव, च=पुनः, क्षणेन=अत्यल्पकालेन, विद्रावयिष्यामः=दूरे करिष्यामः ।

समासः—आहवस्य क्रीडा आहवक्रीडा । सन्धेः वार्तायाः व्याजेन सन्धिवार्ताव्याजेन । महाराष्ट्राणां सेनायां महाराष्ट्रसेनायाम् । वसन्तस्य वातेन सह नीरसान् छदान् वसन्तवाताहतनीरसच्छदान् ।

व्याकरणम्—पातयेत्—पा + णिच् + लिङ् + तिप् । नटः—नट् + अच् । आनीय—आ + णीञ् + ल्यप् । हारयिष्यामः—हृ + णिच् + लृट् + मस् । आलपितुम्—आ + लप् + तुमुन् । छिन्धि—छिदिर् + लोट् + सिप् । भिन्धि—भिदिर् + लोट् + सिप् । विद्रावयिष्यामः—विद्राव (णिजन्त) + लृट् + मस् ।

शब्दार्थ—न=नहीं, च=और, यः=जो (अफजलखान), कदापि=कभी भी, विचारयति=विचार करता है, परिपन्थिभिः=शत्रुओं के द्वारा, प्रेषिता=भेजी हुई, काचन=कोई, वारवधूः=वेश्या, आसवेन सह=मदिरा के साथ, विषम्=विष को, पाययेत्=पिला दे, कोऽपि=कोई, नटः=नर्तक, ताम्बूलेन सह=पान के बीड़ा के साथ, गरलम्=विष को, ग्रासयेत्=खिला दे, खड्गमानीय=तलवार को लाकर, खण्डयेत्=खण्ड-खण्ड कर दे, ध्रुवम्=निश्चित, पशुमारम्=पशु की मृत्यु के समान, मरणम्=मरना, जीवनरत्नम्=श्रेष्ठ जीवन को, हारयिष्यामः=हारेंगे, व्याहरतः=कहते हुए, इतरांश्च=अन्यों को, मैवम्=ऐसा नहीं, श्वः=कल, आहवक्रीडा=युद्धरूपी खेल, श्रूयते=सुना जाता है, सन्धिवार्ताव्याजेन=सन्धि की बातचीत के बहाने, एकतः=एक ओर, आकारयिष्यते=बुलाया जायेगा, अपहाय=छोड़कर, अस्मत्स्वामिना=हमारे स्वामी के साथ, आलपितुम्=वार्तालाप करने के लिए, एकान्तस्थाने=निर्जन स्थान में, यास्यति=जायेगा, श्येनाः=बाज, शकुनिमण्डले=पक्षि-

समूह पर, महाराष्ट्रसेनायाम्=मराठी सेना पर, छिन्धि=काटो, भिन्धि=मारो, युगपद् एव=एक साथ ही, पतिष्यामः=कूद पड़ेंगे। वसन्तवाताहत-नीरसच्छदानिव=वासन्ती हवा से आहत सूखे पत्तों के सदृश, विद्रावयिष्यामः =मारकर भगा देंगे।

हिन्दी—जो (अफजलखान) कभी भी यह नहीं विचार करता है कि कहीं शत्रुओं द्वारा प्रेषित कोई गणिका ही मुझे मदिरा के साथ विष न पिला दे, कोई नट ताम्बूल के साथ गरल (विष) न खिला दे, कोई गायक ही वीणा के साथ खड्ग लाकर मुझे खण्ड-खण्ड न कर दे, उसका विनाश निश्चित है, उसका पतन होने में कोई संशय नहीं है, उसका पशुतुल्य मारा जाना सुनिश्चित है। अतः हम उसके साथ अपना बहुमूल्य जीवन समाप्त नहीं करेंगे। इस प्रकार कहते हुए अन्य कुछ सिपाहियों और दूसरों को उनके कान के पास मुँह ले जाकर 'ऐसा मत कहो, कल ही हमारी युद्ध-क्रीड़ा होगी, सुनते हैं कि सन्धि की बातचीत के बहाने शिवाजी को एक ओर बुलाया जायेगा और ज्यों ही वह अपनी सेना को छोड़कर हमारे स्वामी के साथ बात करने के लिए निर्जन स्थान पर जायेंगे, हमलोग पक्षियों पर बाज की भाँति मराठों की सेना पर मार-काट मचाते हुए एक साथ टूट पड़ेंगे और क्षण भर में ही उसे वसन्त ऋतु के वायु से समाहत सूखे पते की भाँति मार भगायेंगे।'

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'आहवक्रीडा' इस स्थल पर रूपकालङ्कार और 'श्येन इव शकुनिमण्डले' तथा 'वसन्तवाताहतनीरसच्छदानिव' स्थानों पर उपमालंकार है। साथ ही इस गद्यांश में अफजलखान की राजनीति-विषयक ज्ञानशून्यता दृष्टिगोचर होती है ॥ २७ ॥

इतस्तु छलेनाऽस्मत्स्वामिसहचराः शिवं पाशैर्बद्ध्वा पिञ्जरे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव वशंवदं करिष्यन्ति। परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भूत् कस्यापि कर्णगतः"—इति कर्णान्तिकं मुखमानीयोत्तरयतः साङ्ग्रामिक-भटानवलोकयन्; "धन्या भवन्तो येषां गोप्यतमा अपि विषया एवं वीथिषु विकीर्यन्ते। महाराष्ट्रा धूर्ताचार्याः, नैतेषु भवतां धूर्तता सफला भवति" इत्यात्मन्येवाऽऽत्मना कथयन्, स्व-प्रभा-धर्षित-सकलरक्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव विश्वेषां मनांसि, सपद्येव प्रधान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद। तत्र च प्रहरिणमालोकयदुक्तवांश्च यत्

पुण्यनगर-निवासी गायकोऽहमत्रभवन्तं गान-रस-रसायनैरमन्दमानन्दयितुमिच्छामीति। तदवगत्य स भ्रूसञ्चारेण कञ्चित् निवेदकं सूचितवान्। स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्बहिर्निर्गत्य गायकमपृच्छत्—'किं नाम भवतः ? पूर्वं च कदाऽपि समायातो न वा ?' अथ स आह—'तानरङ्गनामाऽहं कदाचन युष्मत्कर्णमस्पृशम्। न पूर्वं कदाऽपि ममात्रोपस्थातुं संयोगोऽभूत्, अद्य भाग्यान्यनुकूलानि चेत्, श्रीमन्तमवलोकयिष्यामि' इति। स च 'आम्' इत्युदीर्य पुनः प्रविश्य क्षणानन्तरं निर्गत्य च, विचित्रगायकममुं सह निनाय।

व्याख्या—इतस्तु=अपरतस्तु, छलेन=कपटेन, अस्मत्स्वामिसहचराः=अपजलखानसहायकाः, शिवम्=शिववीरम्, पाशैर्बद्ध्वा=रज्जुभिः निगडयित्वा, पिञ्जरे=पक्षिपालनपात्रे, स्थापयित्वा=निक्षिप्य, तम्=शिवम्, जीवन्तमेव=प्राणन्तमेव, वशंवदम्=स्ववशम्, करिष्यन्ति=विधास्यन्ति, परन्तु=किन्तु, गोप्यतमोऽयम्=केवलश्राव्यमिदम्, विषयः=वस्तु, मा स्म भूत्=न भवेत्, कस्यापि=शिवपक्षीयस्यापि, कर्णगतः=श्रोत्रचरम्, इति=इत्थम्, कर्णान्तिकम्=कर्णसमीपम्, मुखमानीय=वक्त्रं संश्लिष्य, उत्तरयतः=उत्तरं ददतः, साङ्ग्रामिकभटान्=सामरिकवीरान्, अवलोकयन्=पश्यन्, धन्याः=धन्यवादार्हाः, भवन्तः=श्रीमन्तः, येषाम्, गोप्यतमा अपि=अतिशयेन गोप्या अपि, विषयाः=पदार्थाः, एवम्=अनेन प्रकारेण, वीथिषु=रथ्यासु, विकीर्यन्ते=उत्क्षिप्यन्ते, महाराष्ट्राः=महाराष्ट्रदेशवास्तव्याः, धूर्ताचार्याः=वञ्चकविशिष्टाः, नैतेषु=नहि महाराष्ट्रजनेषु, भवताम्=श्रीमताम्, धूर्तता=वञ्चकता, सफला=फलवती, भवति, इति=एतादृशम्, आत्मनि=स्वीये मनसि, एव=निश्चयेन, आत्मना=स्वीयेनैव, कथयन्=वदन्, स्वप्रभाधर्षितसकलरक्षकगणः=निजकान्तिजितसम्पूर्णप्रहरीगणः, स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव=निजप्रभया वशीकुर्वन्निव, विश्वेषाम्=समस्तानाम्, मनांसि=हृदयानि, सपद्येव=शीघ्रमेव, प्रधानपटकुटीरद्वारमाससाद=मुख्यवसनगेहद्वारमाजगाम। तत्र=पटकुटीद्वारे च, प्रहरिणम्=यामिकम्, आलोकयदुक्तवांश्च=अपश्यत् अवदच्च, यत्, पुण्यनगरनिवासी=पूनानगरवास्तव्यः, गायकोऽहम्=गानकरोऽहम्, अत्रभवन्तम्=पूज्यम्, गानरसरसायनैः=गीतिरसरसायनैः, अमन्दम्=बहु, आनन्दयितुम्=प्रीणयितुम्, इच्छामि=अभिलषामि, इति। तदवगत्य=

तज्ज्ञात्वा, सः=प्रहरी, भ्रूसञ्चारेण=नेत्रसञ्चारेण, कञ्चित्=कमपि, निवेदकम्=सन्देशवाहकम्, सूचितवान्=असूसुचत्। सः=सङ्केतितो जनः, च=पुनः, अन्तः प्रविश्य=आभ्यन्तरं गत्वा, क्षणानन्तरम्=पलोत्तरम्, पुनः=भूयः, बहिः=बाह्यदेशम्, निर्गत्य=निष्क्रम्य, गायकमपृच्छत्=गानकर्तारं पप्रच्छ, किं नाम भवतः=कानि ते नामाक्षराणि? पूर्वञ्च कदापि समायातो न वा?=प्रथममेवागतो वा पूर्वमप्यागतो भवान्? अथ=प्रश्नं समाकर्ण्य, सः=गायकः, आह=अवदत्, तानरङ्गनामाऽहम्=तानरङ्गनाम्ना प्रथितोऽस्मि, कदाचन, युष्मत्कर्णमस्पृशम्=श्रीमच्छ्रोत्रमागमम्, न=नहि, पूर्वं=प्रथमम्, अत्र=अपजलखानशिविरे, कदापि, उपस्थातुम्=आगन्तुम्, मम=गायकस्य, संयोगः=अवसरः, अभूत्=अभवत्, अद्य=अस्मिन् दिवसे, भाग्यानि=भागधेयानि, अनुकूलानि=साहाय्यकराणि, चेत्=यदि, श्रीमन्तम्=पूज्यम्, अवलोकयिष्यामि=द्रक्ष्यामि, इति। सः=यामिकसङ्केतगृहीता च, आम्=शोभनम्, इति=एवम्, उदीर्य=कथयित्वा, पुनः=भूयः, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, क्षणानन्तरम्=पलोत्तरम्, निर्गत्य=निष्क्रम्य च, विचित्रगायकममुम्=न पूर्वं श्रुतं न वा दृष्टं गानकर्तारममुम्, सह=साकम्, निनाय=नीतवान्।

समासः—वशं वदतीति वशंवदस्तं वशंवदम्। अस्माकं स्वामिनः सहचराः अस्मत्स्वामिसहचराः। कर्णयोः अन्तिकम् इति कर्णान्तिकम्। सङ्ग्रामस्य इमे साङ्ग्रामिकाः, ते एव भटाः, तान् साङ्ग्रामिकभटान्। धूर्तानाम् आचार्याः धूर्ताचार्याः। स्वप्रभया धर्षितः सकलः रक्षकाणां गणः येन सः स्वप्रभाधर्षितसकलरक्षकगणः। प्रधानस्य पटकुटीरस्य द्वारं प्रधानपटकुटीद्वारम्। पुण्यनगरस्य निवासी पुण्यनगरनिवासी। गानरसस्य रसायनैः गानरसरसायनैः। भ्रुवः सञ्चारेण भ्रूसञ्चारेण। युष्माकं कर्णं युष्मत्कर्णम्।

व्याकरणम्—वशंवदम्—वश्+खच् (मुम्)+वद्+अच्। उत्तरयतः—उद्+तर्+शतृ (द्वि० ब० व०)। अवलोकयन्—अव+लोक+शतृ। विकीर्यन्ते—वि+कृ+यक्+लट् (झ)। कथयन्—कथ्+शतृ। आकर्षयन्—आ+कृष्+शतृ। आससाद—आ+षद्+लिट् (तिप्)। उक्तवान्—वच्+क्तवतु। समायातः—सम्+आ+या+क्त। उपस्थातुम्—उप्+स्था+तुमुन्। निर्गत्य—निर्+गम्+क्त्वा+ल्यप्। निनाय—णी+लिट् (तिप्)।

शब्दार्थ—इतस्तु=इधर तो, अस्मत्स्वामिसहचराः=हमारे स्वामी के

सहचर, बद्ध्वा=बाँधकर, पिञ्जरे=पिंजड़े में, स्थापयित्वा=रखकर, जीवन्तम्=जीवित ही, वशंवदम्=वश में हुए, गोप्यतमः=अत्यन्त गोपनीय, मा स्म भूत्=न हो, कर्णंगतः=कान में पहुँचना, कर्णान्तिकम्=कान के पास में, आनीय=ले जाकर, उत्तरयतः=उत्तर देते हुए, साङ्ग्रामिकभटान्=युद्ध करनेवाले वीरों को, अवलोकयन्=देखते हुए, वीथिषु=मार्गों में, विकीर्यन्ते=फैलाये जाते हैं, महाराष्ट्राः=मराठे, धूर्ताचार्याः=धूर्तता में प्रवीण हैं, आत्मनि एव आत्मना=अपने में अपने से ही अर्थात् मन ही मन, कथयन्=कहता हुआ, स्वप्रभाधर्षितसकलरक्षकगणः=अपने तेज से समस्त पहरेदारों को हतप्रभ कर, स्वसौन्दर्येण=अपने सौन्दर्य से, आकर्षयन्निव=आकृष्ट करता हुआ-सा, विश्वेषाम्=सभी के, प्रधानपटकुटीरद्वारम्=मुख्य शिविर के द्वार पर, आससाद=पहुँचा, प्रहरिणम्=पहरेदार को, आलोकयत्=देखा, उक्तवान्=कहा, च=और, अमन्दम्=अधिक, आनन्दयितुम्=आनन्दित करने के लिए, भ्रूसञ्चारेण=भौंहों के सङ्केत से, निवेदकम्=सन्देशवाहक को, सूचितवान्=सूचित किया, अन्तः प्रविश्य=अन्दर प्रवेश करके, बहिर्निर्गत्य=बाहर निकलकर, समायातः=आये हो, कदाचन=कभी, युष्मत्कर्णम्=आपके कान को, अस्पृशम्=स्पर्श किया होगा, उपस्थातुम्=उपस्थित होने के लिए, संयोगः=सुअवसर, अवलोकयिष्यामि=देखूँगा, उदीर्य=कहकर, क्षणानन्तरम्=एक क्षण बाद, निर्गत्य=निकलकर, विचित्रगायकम्=अद्भुत गीतकार को, अमुम्=इस तानरङ्ग को, सह=साथ, निनाय=ले गया।

हिन्दी—इधर हमारे स्वामी के सहचर शिवाजी को छल से रस्सियों में बाँधकर, पिंजड़े में बन्द करके जीते जी ही अपने अधीन कर लेंगे, किन्तु यह विषय अत्यन्त गोपनीय है, किसी के कान में न पड़ने पाये। इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन ही मन आपलोग धन्य हैं, जिनके अति गोप्य विषय भी मार्गों में इस प्रकार फैलाये जाते हैं। किन्तु मराठे धूर्तता में निपुण हैं, आपकी धूर्तता इन लोगों के समक्ष सफल नहीं हो सकती, ऐसा कहते हुए अपनी कान्ति से समस्त पहरेदारों को हतप्रभ कर अपनी सुन्दरता से निखिल जनों के मानस को अपनी ओर समाकर्षित करते हुए गौरसिंह (तानरङ्ग) प्रधान शिविर के द्वार पर पहुँच गये। वहाँ पहरेदार को देखा और कहा कि पूना नगर-निवासी एक गीतकार मैं श्रीमान् को गानरस के रसायन से अधिक आनन्दित करना चाहता हूँ। उनका भाव समझकर उसने भौंहों के सङ्केत से एक सन्देशवाहक

को सूचित किया। उसने अन्दर जाकर क्षणभर बाद पुनः बाहर आकर गायक से पूछा—आपका क्या नाम है ? आप पहले कभी आये हैं या नहीं ? गायक ने कहा—मेरा नाम तानरङ्ग है, सम्भवतः यह नाम कभी आपके कान में पड़ा हो। मुझे पहले कभी यहाँ आने का सुअवसर नहीं मिला, आज यदि भाग्य ने साथ दिया तो मालिक के दर्शन कर सकूँगा। वह 'अच्छा' कहकर पुनः भीतर जाकर और कुछ समय बाद ही बाहर आकर उस अद्भुत गायक को अपने साथ ले गया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'स्वसौन्दर्येणाकर्षयन्निव विश्वेषां मनांसि' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार है। साथ ही इस गद्यांश में यवनसैनिकों और सेनापति के विलासप्रियता और अदूरदर्शिता का सुन्दर चित्रण किया गया है॥ २८॥

तानरङ्गस्तु तेनैव तानपूरिका—हस्तेन बालकेनाऽनुगम्यमानः, शनैः शनैः प्रविश्य, प्रथमं द्वितीयं तृतीयं च द्वारमतिक्रम्य, कांश्चित् मृदङ्ग-स्वरान् सन्दधतः, कांश्चिद् वीणावरणमुन्मुच्य, प्रवालं प्रोञ्छ्य, कोणं कलयतः, कांश्चिदविचलोऽयमेतेनैव सह योज्यन्तामपरवाद्यानीति वंशीरवं साक्षीकुर्वतः, कांश्चित् कलित-नेपथ्यान्, पादयोर्नूपुरं बध्नतः; कांश्चित् स्कन्धावलम्बिगुटिकातः करतालिकामुत्तोलयतः; कांश्चिच्च कर्णे दक्ष-करं निधाय, चक्षुषी सम्मील्य, नासामाकुञ्च्य, पातितोभयजानु उप-विश्य, वामहस्तं प्रसार्य, तन्त्रीस्वरेण स्व-काकलीं मेलयतः; सम्मुखे च पृष्ठतः पार्श्वतश्चोपविष्टैः कैश्चित् ताम्बूल-वाहकैः, अपरैर्निष्ठ्यूता-दान-भाजन-हस्तैः, अन्यैरनवरत-चालितचामरैः, इतरैर्बद्धाञ्जलि-भिर्ललाटिकैः परिवृतम्, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम्, सुवर्ण-सूत्र-रचित-विविध-कुसुम-कुड्मल-लता प्रतानाङ्कित-कञ्चुकं महोपबर्हमेकं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्धारितभुजद्वयम्, रजत-पर्य्यङ्के विविध-फेन-फेनिल-क्षीरधि-जल-तलच्छविमङ्गीकुर्वत्यां तूलिकायामुपविष्टमप-जलखानं च ददर्श।

व्याख्या—तानरङ्गस्तु=गौरसिंहस्तु, तेनैव=बालेनैव, तानपूरिकाहस्तेन= वाद्यविशेषपरिलसितकरेण, बालकेन=बालेन, अनुगम्यमानः=अनुगतः, शनैः शनैः=मन्दं मन्दम्, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, प्रथमं द्वितीयं तृतीयञ्च=प्रथमतः समारभ्य तृतीयपर्यन्तम्, द्वारम्=द्वारदेशम्, अतिक्रम्य=उल्लङ्घ्य, कांश्चित्,

मृदङ्गस्वरान् = मुरजस्वरान्, सन्दधतः = साधयतः, कांश्चित्, वीणावरणम् = विपञ्चीछादनम्, उन्मुच्य = अपवार्य, प्रवालम् = वीणादण्डम्, प्रोञ्छ्य = मार्जयित्वा, कोणम् = वादनोपयोगिनमुपकरणविशेषम्, कलयतः = धारयतः, कांश्चित्, अविचलोऽयम् = निश्चलोऽयम्, एतेनैव = वंशीशब्देनैव, सह = साकम्, योज्यन्ताम् = मेलयन्ताम्, अपरवाद्यानीति = शेषवाद्ययन्त्राणीति, वंशीरवम् = वीणाशब्दम्, साक्षीकुर्वतः = प्रत्यक्षदर्शितां नयतः, कांश्चित्, कलितनेपथ्यान् = गृहीतवेषान्, पादयोः = चरणयोः, नूपुरम् = किङ्किणीम्, बध्नतः = संयोजयतः, कांश्चित्, स्कन्धावलम्बिगुटिकातः = कन्धरलम्बमानवस्त्रमञ्जूषातः, करतालिकामुत्तोलयतः = वाद्यविशेषं वादयतः, कांश्चिच्च, कर्णे = श्रोत्रे, दक्षकरम् = दक्षिणं हस्तम्, निधाय = संस्थाप्य, चक्षुषी = नेत्रे, सम्मील्य = निमील्य, नासाम् = नासिकाम्, आकुञ्च्य = वक्रीकृत्य, पातितोभयजानु = भूमौ संस्थापितजानुद्वयः, उपविश्य = स्थित्वा, वामहस्तम् = सव्यकरम्, प्रसार्य = विस्तार्य, तन्त्रीस्वरेण = वीणारवेण, स्वकाकलीम् = निजसूक्ष्मकलम्, मेलयतः = सङ्गमयतः सम्मुखे = अग्रे, पृष्ठतः = पृष्ठभागे च, पार्श्वतः = पार्श्वभागे च, उपविष्टैः = आसीनैः, कैश्चित् ताम्बूलवाहकैः = नागवल्लीदायकैः, अपरैः = अन्यैः, निष्ठ्यूतादानभाजनहस्तैः = पतद्ग्रहपात्रकरैः, अन्यैः = इतरैः, अनवरतचालितचामरैः = निरन्तरोपवीज्यमानतालवृन्तैः, इतरैः = अन्यैः, बद्धाञ्जलिभिः = सम्पुटितकरैः, लालाटिकैः = भूपललाटदर्शनक्षमैः, परिवृतम् = कलितम्, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम् = मणिजटितटोपिकामस्तकम्, सुवर्णसूत्ररचितविविधकुसुमकुड्मललताप्रतानाङ्कितकञ्चुकम् = कनकसूत्रनिर्मितविविधपुष्पकोरकव्रततीवितानाङ्किताङ्गरक्षकम्, महोपबर्हमेकम् = महोपधानमेकम्, क्रोडे = अङ्के, संस्थाप्य = निधाय, तदुपरि = उपधानोपरि, सन्धारितभुजद्वयम् = स्थापितकरद्वयम्, रजतपर्यङ्के = राजतखट्वायाम्, विविधफेनफेनिलक्षीरधिजलतलच्छविम् = अनेकडिण्डीरफेनिलसागरवारितलकान्तिम्, अङ्गीकुर्वत्याम् = स्वीकुर्वत्याम्, तूलिकायाम् = तूलनिर्मितविष्टरे, उपविष्टम् = समासीनम्, अपजलखानम् = विजयपुराधीशसेनपञ्च, ददर्श = अपश्यत् ।

समासः—तानपूरिका हस्ते यस्य, तेन तानपूरिकाहस्तेन । मृदङ्गस्य स्वरान् मृदङ्गस्वरान् । वीणायाः आवरणं वीणावरणम् । अपराणि वाद्यानि अपरवाद्यानि । कलिताः नेपथ्याः यैस्तान् कलितनेपथ्यान् । स्कन्धे अवलम्बिनी या गुटिका ततः स्कन्धावलम्बितगुटिकातः । पातिते उभये जानुनी यस्मिन् तत्

पातियोभयजानु । ताम्बूलानां वाहकैः ताम्बूलवाहकैः । निष्ठ्यूतादानस्य भाजनं हस्ते येषां, तैः निष्ठ्यूतादानभाजनहस्तैः । अनवरतं चालितं चामरं यैस्तैः अनवरतचालितचामरैः । बद्धः अञ्जलिः यैस्तैः बद्धाञ्जलिभिः । रत्नैः जटिता उष्णीषिका मस्तके यस्य, तं रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम् । सुवर्णसूत्रेण रचिता या विविधा कुसुमकुड्मलता, तासां प्रतानैः अङ्कितः कञ्चुको यस्य, तं सुवर्णसूत्ररचितविविधकुसुमकुड्मलताप्रतानाङ्कितकञ्चुकम् । सन्धारितं भुजयोः द्वयं यत् सन्धारितभुजद्वयम् । रजतस्य पर्यङ्के रजतपर्यङ्के । विविधफेनेन फेनिलस्य क्षीरधेः जलतलस्य छविः, तं विविधफेनफेनिलक्षीरधिजलतलच्छविम् ।

कोषः—'वीणादण्डः प्रवालः स्यात्' इत्यमरः । 'काकली तु कले सूक्ष्मे' इत्यमरः । 'लालाटिकः प्रभोर्भालदर्शीकार्याक्षमश्च यः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—अनुगम्यमानः—अनु + गम् + यक् + शानच् । अतिक्रम्य—अति + क्रम् + क्त्वा + ल्यप् । सन्दधतः—सन् + धा + शतृ (द्वि० ब० व०) । उन्मुच्य—उत् + मुच् + ल्यप् । प्रोञ्छ्य—प्र + उछि + ल्यप् । योज्यन्ताम्—युज् + लोट् । उत्तोलयतः—उत् + तुल् + शतृ । सम्मील्य—सम् + मील् + ल्यप् । आकुञ्च्य—आ + कुञ्च + ल्यप् । उपविश्य—उप + विश् + ल्यप् । प्रसार्य—प्र + सृ + णिच् + ल्यप् । उपविष्टैः—उप् + विश् + क्त (तृ० ब० व०) । संस्थाप्य—सम् + स्था + ल्यप् । अङ्गीकुर्वत्याम्—अङ्ग + च्वि + कृ + शतृ + ङीष् (सप्तमी) । ददर्श—दृश् + लिट् + तिप् ।

शब्दार्थ—तानरङ्गः = तानरंग नामधारी गौरसिंह, तानपूरिकाहस्तेन = तानपुरे को हाथ में लिये हुए बालक से, अनुगम्यमानः = अनुगमन किया जाता हुआ, अतिक्रम्य = पार करके, कांश्चित् = कुछ को, स्वरान् सन्दधतः = स्वरों को साधते हुए, वीणावरणम् = वीणा के आवरण को, उन्मुच्य = उतारकर, प्रवालम् = वीणा-दण्ड को, प्रोञ्छ्य = पोंछकर, कोणम् = कोण (मिजराफ) को, कलयतः = धारण करते हुए, अविचलः = स्थिर, योज्यन्ताम् = मिलाइये, अपरवाद्यानि = दूसरे वाद्यन्त्रों को, वंशीरवम् = बाँसुरी के शब्द को, साक्षीकुर्वतः = साक्ष्यरूप में प्रस्तुत करते हुए, कलितनेपथ्यान् = वेष धारण करने वाले, नूपुरम् = घुँघरुओं को, बध्नतः = बाँधते हुए, स्कन्धावलम्बितगुटिकातः = कन्धे पर लटकने वाली झोली से, करतालिकाम् = करताल को, उत्तोलयतः = निकालते हुए, दक्षकरम् = दाँहिने हाथ को, निधाय = रखकर, चक्षुषी = नेत्रों को, सम्मील्य = बन्द करके, नासाम् = नासिका को, आकुञ्च्य = सिकोड़कर,

पातितोभयजानु=दोनों घुटनों के बल बैठकर, प्रसार्य=फैलाकर, तन्त्रीस्वरेण=वीणा की ध्वनि से, मेलयतः=मिलाते हुए, सम्मुखे=सामने; पृष्ठतः=पीछे, पार्श्वतः=पास में वाहकों द्वारा, अपरैः=दूसरे, निष्ठ्यूतादानभाजनहस्तैः=पीकदान हाथ में लिये हुए, अनवरतचालितचामरैः=निरन्तर चँवर डुलाने वाले, बद्धाञ्जलिभिः=हाथ जोड़े हुए, लालाटिकैः=चापलूसों से, परिवृतम्=घिरे हुए, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम्=रत्नों से जड़ी हुई टोपी सिर पर लगाये हुए, सुवर्णसूत्ररचितविविधकुसुमकुड्मलप्रतानाङ्कितकञ्चुकम्=सोने के तारों से बने हुए अनेक प्रकार के फूल-कलियाँ और लता-वितान जिसमें बने हैं ऐसे कुर्ते को, महोपबर्हम्=मसनद को, क्रोडे=गोद में, संस्थाप्य=रखकर, सन्धारितभुजद्वयम्=दोनों भुजाओं को रखे हुए, रजतपर्यङ्के=चाँदी की पलङ्ग पर, विविधफेनफेनिलक्षीरधिजलतलच्छविम्=प्रचुर फेन से फेनिल समुद्र के जलतल की शोभा को, अङ्गीकुर्वत्याम्=धारण करने वाली, तूलिकायाम्=तूलिका पर, उपविष्टम्=बैठे हुए, ददर्श=देखा।

हिन्दी—तानरङ्ग ने, जिसके पीछे-पीछे तानपूरा हाथ में लिये वह बालक चल रहा था, धीरे-धीरे प्रवेश कर पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पारकर किसी को मृदङ्ग के स्वर साधते, किसी को वीणा के वस्त्रावरण को उतारकर, वीणादण्ड को पोंछकर कोण (मिजराफ) पहनते, किसी को बाँसुरी का स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य वाद्ययन्त्रों को मिलाओ; यह कहते, किसी को वेष बनाकर पैरों में घुंघरू बाँधते, किसी को कन्धे पर लटकती झोली से करताल निकालते, किसी को कान पर दाहिना हाथ रखकर, आँखें मूँदकर, नाक सिकोड़ कर, घुटनों के बल बैठकर बाँया हाथ फैलाकर वीणा-ध्वनि के साथ अपनी काकली (सूक्ष्म कलगान) का मिलान करते और सामने-पीछे तथा दाँयें-बाँयें बैठे हुए ताम्बूलवाहकों, दूसरे हाथ में पीकदान लिये लोगों, अन्य चँवर डुला रहे लोगों तथा दूसरे हाथ जोड़े खड़े चापलूस नौकरों से घिरे हुए, सिर पर रत्न-जटित टोपी लगाये हुए, सोने के तारों से बने अनेक फूलों-कलियों और बेल-बूटों वाली अचकन पहने, गोद में एक बड़ी-सी मसनद रखकर उस पर अपने दोनों हाथ रखे हुए, चाँदी के पलङ्ग के ऊपर प्रचुर फेन से फेनिल समुद्र-जल के सदृश सुन्दर गद्दे पर बैठे अफजलखान को देखा ॥ २९ ॥

ततस्तु तानरङ्ग-प्रभा-वशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यतामास्य-

तामास्यताम्' इति कथयत्सु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण-हस्तेनाऽऽदर-सूचक-सङ्केत-सहकारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलञ्चकार।

ततस्तु इतरगायकेषु सगर्वं सासूयं सक्षोभं साक्षेपं सचक्षुर्विस्फारण सशिरःपरिवर्तनं च तमालोकयत्सु अपजलखानेन सह तस्यैवमभूदालापः—

अपजलखानः—किन्देशवास्तव्यो भवान् ?

तानरङ्गः—श्रीमन् ! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि।

अपजल०—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?

तान०—आम् ! श्रीमन् !

अप०—तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?

तान०—सेनापते ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशाद् देशं पर्याटयति।

अप०—आः ! एवम् ! तत् किं प्रायः पर्य्यटति भवान् ?

तान० - एवं चमूपते ! नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुं नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कलयितुम् एधमान-महाभिलाष एष जनः।

अप०—अहो ! ततस्तु बहुदर्शी बहुज्ञश्च भवान्। अथ वङ्गदेशे गतो भवान् ? श्रूयतेऽतिवैलक्षण्यं तद्देशस्य।

व्याख्या—ततस्तु=तदनन्तरं तु, तानरङ्गप्रभावशीभूतेषु=तन्नामागायक-दीप्तिस्तब्धीभूतेषु, सर्वेषु=निखिलेषु, आगम्यताम् आगम्यताम्=आगच्छतु आगच्छतु, आस्यताम् आस्यताम्=समुपविशतु समुपविशतु, इति=एवम्, कथयत्सु=वदत्सु, तानरङ्गोऽपि=तन्नामागायकोऽपि, सादरम्=सम्मानपूर्वकम्, दक्षिणहस्तेन=सव्यकरेण, आदरसूचकसङ्केतसहकारेण=सम्मानसूचकसङ्केतेन सह, यथानिर्दिष्टम्=सङ्केतानुसारम्, स्थानम्=स्थलम्, अलञ्चकार=संशोभितवान्।

ततस्तु=तदानीं तु, इतरगायकेषु=अन्यगानकरेषु, सगर्वम्=साभिमानम्, सासूयम्=सेर्ष्यम्, सक्षोभम्=क्षोभसहितम्, साक्षेपम्=आक्षेपयुक्तम्, सचक्षुर्विस्फारणम्=सनेत्रस्फालनम्, सशिरःपरिवर्तनञ्च=सशिरःकम्पम्, च=पुनः, तम्=तानरङ्गम्, आलोकयत्सु=पश्यत्सु, अपजलखानेन=सेनापतिना, सह=

साकम्, तस्य=तानरङ्गस्य, एवम्=इत्थम्, आलापः=संलापः, अभूत्=अभवत् ।

अपजलखानः--किन्देशवास्तव्यो भवान् ?=कस्मिन् देशे निवसति भवान् ?

तानरङ्गः—श्रीमन्=भगवन् ! राजपुत्रदेशीयोऽहम्=राजपुत्रदेशवास्तव्योऽहम् ।

अपजलखानः—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?=राजपुत्रदेशे वासं करोषि त्वम् ?

तानरङ्गः—आम् !=वाढम्, श्रीमन् !=भगवन् !

अपजलखानः—तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?=तर्हि कस्मात् कारणादस्मिन् देशे आगतः ?

तानरङ्गः—सेनापते !=पृतनापते ! मम=तानरङ्गस्य, देशाटनव्यसनम्=देशभ्रमणस्वभावः, माम्=तानरङ्गम्, देशाद्देशम्=देशदेशान्तरम्, पर्याटयति=भ्रामयति ।

अपजलखानः—आः ! एवम् ! तत्किं प्रायः पर्यटति भवान् ?=तत्केन हेतुना प्रायः परिभ्रमति भवान् !

तानरङ्गः—एवं चमूपते !=इत्थं पृतनापते ! नव्यान् देशान्=नूतनानि स्थलानि, अवलोकयितुम्=द्रष्टुम्, नवा नवा भाषाः=नूतना नूतनाः वाणीः, अवगन्तुम्=ज्ञातुम्, नूतना नूतना गानपरिपाटीश्च=प्रत्यग्रा प्रत्यग्रा गानशैलीः, कलयितुम्=साधयितुम्, एधमानः=वृद्धिं गच्छन्, महाभिलाषः=अतिस्पृहः, एषः=अयम्, जनः=मानवः ।

अपजलखानः—अहो !=विस्मयसूचकमव्ययम्, ततस्तु=तदा तु, बहुदर्शी=बह्वालोकयिता, बहुज्ञश्च=बहूनां विषयाणां ज्ञाता, भवान्=तानरङ्गः । अथ=किम्, वङ्गदेशे=बङ्गालनाम्नि देशे, गतः=यातः, भवान् ?, श्रूयते=समाकर्ण्यते, अतिवैलक्षण्यम्=अतिवैचित्र्यम्, तद्देशस्य=बङ्गालदेशस्य ।

समासः—तानरङ्गस्य प्रभया वशीभूतास्तेषु तानरङ्गप्रभावशीभूतेषु । निर्दिष्टमनतिक्रम्य इति यथानिर्दिष्टम् । चक्षुषोः विस्फारणमिति चक्षुर्विस्फारणम्, तेन सहितम् इति सचक्षुर्विस्फारणम् । देशानाम् अटनस्य व्यसनमिति देशाटनव्यसनम् । एधमानः महान् अभिलाषः यस्य सः एधमानमहाभिलाषः ।

व्याकरणम्—कथयत्सु—कथ्+शतृ (स० ब० व०) । अलञ्चकार—अलम्+कृ+लिट्+तिप् । आलोकयत्सु—आ+लोक्+शतृ (स० ब० व०)।

पर्यटयति—परि+आ+अट्+णिच्+लट्+तिप्। अवगन्तुम्—अव+गम्+तुमुन्।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, तानरङ्गप्रभावशीभूतेषु=तानरङ्ग की कान्ति से वशीभूत, आगम्यताम्=आइये, आस्यताम्=बैठिये, इति=इस प्रकार से, सर्वेषु कथयत्सु=सबों के कहने पर, सादरम्=सम्मानपूर्वक, दक्षिणहस्तेन=दाहिने हाथ से, आदरसूचकसङ्केतसहकारेण=सम्मानसूचक सङ्केत के साथ अर्थात् प्रणामपूर्वक, यथानिर्दिष्टम्=सङ्केतित, स्थानम्=स्थान को, अलञ्चकार=संशोभित किया। इतरगायकेषु=दूसरे गायकों के, सासूयम्=ईर्ष्यापूर्वक, साक्षेपम्=आक्षेप सहित, सचक्षुर्विस्फारणम्=आँखें फैलाकर देखने के साथ, सशिरःपरिवर्तनम्=मस्तक हिला-हिलाकर, तम्=उस तानरङ्ग को, अवलोकयत्सु=देखने पर, अभूत्=हुआ, आलापः=वार्तालाप, किन्देशवास्तव्यः=किस देश के रहने वाले, राजपुत्रदेशीयः=राजपूत देश का, देशाटनव्यसनम्=देश-देशान्तर घूमने का शौक, देशाद्देशम्=एक देश से दूसरे देश को, पर्यटयति=भ्रमण कराता है, चमूपते=सेनापते! अवगन्तुम्=जानने के लिए, गानपरिपाटी=गाने की विद्या को, कलयितुम्=सीखने के लिए, एधमानमहाभिलाषः=बढ़ती हुई इच्छाओं वाला, बहुदर्शी=बहुत कुछ देखने वाला, बहुज्ञः=बहुत कुछ जानने वाला, अतिवैलक्षण्यम्=नितान्त विलक्षण है, तद्देशस्य=उस देश की।

हिन्दी—तदनन्तर तानरङ्ग की दीप्ति से सबों के वशीभूत हो जाने पर, निखिल जनों के 'आइये, आइये, बैठिये' कहने पर तानरङ्ग भी दाहिने हाथ से सलाम (प्रणाम) करते हुए यथानिर्दिष्ट स्थान पर बैठ गया। दूसरे गायकों के अभिमान, ईर्ष्या, आक्षेप एवं निन्दा के साथ आँखें फाड़-फाड़कर तथा मस्तक हिला-हिलाकर तानरङ्ग को देखने पर अफजलखान के साथ तानरङ्ग का इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

अफजलखान—आप किस देश के निवासी हैं?
तानरङ्ग—सेनापते! मैं राजपुताने का हूँ।
अफजलखान—ओह! राजपुताने के?
तानरङ्ग—हाँ, सेनापते!
अफजलखान—तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे आगमन हुआ?

तानरङ्ग—सेनापतिजी ! मेरा देश-भ्रमण का शौक मुझे एक देश से दूसरे देश में घुमाता रहता है ।

अफजलखान—अच्छा, यह बात है । तो क्या आप प्रायः भ्रमण ही करते रहते हैं ?

तानरङ्ग—ऐसा ही है सेनापतिजी ! नये-नये देशों को देखने, नई-नई भाषाओं को सीखने और नूतन-नूतन गान-विधाओं को जानने का यह जन अत्यधिक शौकीन है ।

अफजलखान—अरे ! तब तो आप वहुत कुछ जानने वाले और बहुदर्शी हैं । क्या आप बङ्गाल गये हैं ? सुनते हैं, वह देश अत्यन्त विलक्षण है ।। ३० ।।

तान०—सेनापते ! वर्षत्रयात् पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संस्नाय, उज्जयिनी-देशीय-क्षत्रिय-कुलालङ्कृतं भोजपुरदेशमालोक्य, गङ्गा-गण्डक-तटोपविष्टं हरिहरनाथं प्रणम्य, बिलासि-कुल-विलसितं पाटलिपुत्र-पुरमुल्लङ्घ्य सीताकुण्ड-विक्रमचण्डिकादि-पीठ-पटल-पूजितं विक्रम-यशःसूचक-दुर्गविशेष-शोभितं देवधुनी-तरङ्गक्षालित-प्रान्तं मुद्गलपुरं निरीक्ष्य, कर्ण-दुर्ग-स्थानेन तद्यशोमहामुद्रयेवाङ्कितमङ्गदेशं दिनत्रय-मध्युष्य, अतिवर्द्धमानवैभवं वर्द्धमान-नगरं च सम्यक् समालोक्य यथोचित-सम्भारैस्तारकेश्वरमुपस्थाय, ततोऽपि पूर्वं वङ्गदेशे पूर्ववङ्गेऽपि च चिरमहमटाट्यामकार्षम् ।

व्याख्या—सेनापते !=पृतनापते ! वर्षत्रयात्=शरत्त्रितयात्, पूर्वम्=प्रथमम्, अहम्=तानरङ्गः, काश्याम्=वाराणस्याम्, गङ्गायाम्=भागीरथ्याम्, संस्नाय=स्नानं विधाय, उज्जयिनीदेशीयक्षत्रियकुलालङ्कृतम्=उज्जयिनी-मूलक्षत्रियान्वयशोभितम्, भोजपुरदेशम्=एतन्नामकबिहारप्रान्तस्थप्रदेशम्, आलोक्य=वीक्ष्य, गङ्गागण्डकतटोपविष्टम्=भागीरथीगण्डकीकूलस्थम्, हरिहरनाथम्=एतन्नामकमहादेवं सोनपुरोपकण्ठम्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, विलासिकुलविलसितम्=रसिकसमुदयशोभितम्, पाटलिपुत्रपुरम्='पटना' नाम्ना प्रथितं नगरम्, उल्लङ्घ्य=उत्तीर्य, सीताकुण्डविक्रमचण्डिकादिपीठ-पटलपूजितम्=एतत्स्थानद्वयादिस्थानसमूहार्चितम्, विक्रमयशःसूचकदुर्गविशेष-शोभितम्=विक्रमादित्यनृपतिकीर्तिज्ञापकदुर्गविशेषलसितम्, देवधुनीतरङ्ग-क्षालितप्रान्तम्=गङ्गावीचिस्नापितप्रान्तम्, मुद्गलपुरम्=एतन्नामकं नगरम्,

निरीक्ष्य=समवलोक्य, कर्णदुर्गस्थानेन=कर्णदुर्गनाम्ना प्रथितेन स्थानेन, तद्यशोमहामुद्रयेवाङ्कितम्=कर्णकीर्तिमुद्रालसितम्, अङ्गदेशम्=कर्णशासित-प्रदेशम्, दिनत्रयमध्युष्य=दिवसत्रयमुषित्वा, अतिवर्द्धमानवैभवम्=बहूपचीय-मानसम्पदम्, वर्द्धमाननगरम्='वर्दवान'नाम्ना प्रसिद्धं नगरञ्च, सम्यक्=सुष्ठु, समालोक्य=दृष्ट्वा, यथोचितसम्भारैः=यथायोग्यसामग्रीभिः, तारके-श्वरम्=एतन्नामकभगवन्तम्, उपस्थाय=पूजयित्वा, ततोऽपि=तारकेश्वर-स्थानादपि, पूर्वम्=प्राचीस्थम्, वङ्गदेशे='बङ्गाल' नाम्ना विख्याते देशे, पूर्ववङ्गेऽपि च='पूर्वी बङ्गाल' इति नाम्ना ख्यातेऽपि च, चिरम्=वहुकालम्, अहम्=तानरङ्गः, अटाट्याम्=पर्यटनम्, अकार्षम्=अकरवम्।

समासः—वर्षाणां त्रयात् वर्षत्रयात्। उज्जयिनीदेशीयैः क्षत्रियकुलैः अलङ्कृतम् उज्जयिनीदेशीयक्षत्रियकुलालङ्कृतम्। गङ्गायाः गण्डकस्य तटेषू-पविष्टं गङ्गागण्डकतटोपविष्टम्। विलासिनां कुलैः विलसितं विलासिकुल-विलसितम्। सीताकुण्डविक्रमचण्डिकादेः पीठानां पटलैः पूजितम् इति सीता-कुण्डविक्रमचण्डिकादिपीठपटलपूजितम्। विक्रमस्य यशसः सूचकेन दुर्गविशेषेन शोभितम् इति विक्रमयशःसूचकदुर्गविशेषशोभितम्। देवधुन्याः तरङ्गैः क्षालितम् इति देवधुनीतरङ्गक्षालितम्। अत्यन्तं वर्द्धमानं वैभवं यस्य तत् अति-वर्द्धमानवैभवम्।

व्याकरणम्—संस्नाय—सम्+स्ना+क्त्वा+ल्यप्। उल्लङ्घ्य—उत्+लङ्घि+क्त्वा+ल्यप्। निरीक्ष्य—निर्+ईक्ष्+क्त्वा+ल्यप्। अध्युष्य—अधि+वस्+क्त्वा+ल्यप्। उपस्थाय—उप+स्था+क्त्वा+ल्यप्।

शब्दार्थ—तानरङ्गः=गौरसिंह, सेनापते=यवनसेनानायक! वर्षत्रयात् पूर्वम्=तीन वर्ष पूर्व, संस्नाय=स्नान करके, उज्जयिनीदेशीयक्षत्रियकुला-लङ्कृतम्=उज्जैन देश के क्षत्रिय-कुलों से विभूषित, आलोक्य=देखकर, गङ्गागण्डकतटोपविष्टम्=गङ्गा और गण्डक के तट पर विराजमान, विलासि-कुलविलसितम्=विलासियों के कुल से समलङ्कृत, पाटलिपुत्रम्=पटना नगर को, उल्लङ्घ्य=पार करके, सीताकुण्डविक्रमचण्डिकादिपीठपटलपूजितम्=सीताकुण्ड और विक्रमचण्डिका आदि देवालयों से संपूजित, विक्रमयशःसूचक-दुर्गविशेषशोभितम्=विक्रमादित्य के यश के सूचक किले के अवशेषों (खण्ड-हरों) से सुशोभित, देवधुनीतरङ्गक्षालितप्रान्तम्=गङ्गा की लहरों से धोये गये प्रान्त वाले, मुद्गलपुरम्=मुँगेर को, निरीक्ष्य=देखकर, कर्णदुर्गस्थानेन=

कर्ण के किला से, तद्यशोमहामुद्रया इव=मानो उसके (कर्ण के) यशरूपी महामुद्रा (मुहर) के द्वारा, अङ्कितम्=चिह्नित, अध्युष्य=निवास कर; अतिवर्द्धमानवैभवम्=अत्यधिक सम्पदा वाले, यथोचितसम्भारैः=यथायोग्य सामग्रियों से, उपस्थाय=पूजा करके, ततोऽपि पूर्वम्=उसके भी पूर्व दिशा में, अटाटयाम्=पर्यटन्, अकार्षम्=किया ।

हिन्दी—तानरङ्ग—सेनापतिजी ! तीन वर्ष पूर्व मैंने वाराणसी (काशी) में गङ्गास्नान करके उज्जैन देश के क्षत्रिय-कुलों से विभूषित भोजपुर देश को देखकर, गङ्गा और गण्डक नदियों के तट पर विराजमान हरिहरनाथ को प्रणाम करके, विलासी जनों से सुशोभित पटना नगर को पार कर, सीताकुण्ड, विक्रमचण्डिका आदि पीठों से संपूजित, वीर विक्रमादित्य के यश के परिचायक दुर्गों (किलों) के अवशेषों (खण्डहरों) से शोभित और गङ्गा की लहरों से प्रक्षालित मुँगेर प्रान्त का दर्शन कर कर्णदुर्ग स्थान से मानो उसके (कर्ण के) यशरूपी महामुद्रा से अङ्कित अङ्गदेश में तीन दिन रहकर महासमृद्धिशाली वर्द्धवान नगर को विधिवत् देखकर, यथायोग्य सामग्रियों से भगवान् तारकेश्वर की पूजा करके, उससे भी पूर्व में संस्थित बङ्गाल में और पूर्वी बङ्गाल में भी बहुत समय तक मैंने पर्यटन (भ्रमण) किया ।। ३१ ।।

अप०—किं किं किं पूर्ववङ्गेऽपि ?

तान०—आम् श्रीमन् ! पूर्ववङ्गमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः, यत्र प्रान्त-प्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पयः-पूर-प्रवाह-परम्पराभिः पद्मा प्रवहति, यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रु-सेना-नाशन-कुशलः ब्रह्म-देशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं क्षालयति, यत्र साम्ल-सुमधुर-रस-पूरितानि फूत्कारोद्धूत-भूति-ज्वलदङ्गार-विजित्वर-वर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारङ्गाण्युद्भवन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां तालानां नारिकेलानां खर्जूराणां च महिमा सर्वदेशरसज्ञानां साम्रेडं कर्णं स्पृशति, यत्र च भयङ्कराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलासु स्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपणीः क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, बडिशं योजयन्तः, कुवेणीस्थ-म्रियमाणमत्स्यपरीवर्त्तनालोकमालोकमानन्दतः, अदृष्टतटे-ष्वपि महाप्रवाहेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फक्किकाकारया नौकया भिन्ना-

ञ्जन-लिप्ता इव मसी-स्नाता इव साकारा अन्धकारा इव काला धीवर-बाला निर्भयाः क्रीडन्ति ।

व्याख्या—अपजलखानः—किं किम् = किं कथितम्, किं कथितम्; पूर्ववङ्गेऽपि ?—पूर्वबङ्गाले गतोऽसि ?

तानरङ्गः—आम् श्रीमन् !—एवमेव महाभाग ! पूर्ववङ्गमपि = 'पूर्वी बङ्गाल' इति नाम्ना प्रथितं देशमपि, सम्यग् = चारुतया, अवालुलोकत् = अपश्यत्, एषः = सम्मुखस्थोऽयम्, जनः = नरः, यत्र = यस्मिन् क्षेत्रे, प्रान्तप्ररूढाम् = तटोपान्तसमुद्गताम्, पद्मावलीम् = कमलपङ्क्तीम्, परिमर्दयन्ती = घर्षयन्ती, पद्मा = लक्ष्मी, इव = यथा, द्रवीभूता = तरलिता, पयःपूरप्रवाहपरपम्पराभिः = जलप्रवाहश्रेणीभिः, पद्मा = एतन्नामिका नदी, प्रवहति = वहति, यत्र = यस्मिन् देशे, ब्रह्मपुत्र इव = गरलविशेष इव, शत्रुसेनानाशनकुशलः = रिपुपृतनाविनाशपटुः, ब्रह्मदेशं विभजन् = वर्मानामकदेशं द्विधा कुर्वन्, ब्रह्मपुत्रो नाम = एतन्नामा, नदः = सरिद्वरः, भूभागम् = धरांशम्, क्षालयति = सिञ्चति. यत्र = प्रदेशे, साम्लसुमधुररसपूरितानि = खट्टमिष्ठरसभरितानि, फूत्कारोद्धूतभूतिज्वलदङ्गारविजित्वरवर्णानि = मुखवायूड्डायितभस्मप्रकाशमानाङ्गारजयनशीलवर्णानि, जगत्प्रसिद्धानि = विश्वप्रथितानि, नारङ्गाणि = नारङ्गफलानि, उद्भवन्ति = जायन्ते, यद्देशीयानां = यद्देशोद्भवानाम्, जम्बीराणाम्, रसालानाम् = आम्राणाम्, तालानाम् = तालफलानाम्, नारिकेलानाम् = नारिकेलफलानाम्, खर्जूराणाञ्च, महिमा = माहात्म्यम्, सर्वदेशरसज्ञानाम् = सकलदेशरसलम्पटानाम्, साम्रेडम् = वारं वारम्, कर्णम् = श्रोत्रम्, स्पृशति = स्पर्शं करोति, यत्र च = वङ्गे च, भयङ्करावर्तसहस्राकुलासु = भीमजलभ्रमसहस्राकुलासु, स्रोतस्वतीषु = नदीषु, सहोहोकारम् = हो-होकारसंयुतम्, क्षेपणीः = नौकादण्डान्, क्षिपन्तः = निक्षिपन्तः, अरित्रम् = केनिपातकम्, चालयन्तः = सञ्चालयन्तः, वडिशम् = मत्स्यवेधनम्, योजयन्तः = लगयन्तः, कुवेणीस्थम्रियमाणमत्स्यपरीवर्तनालोकमालोकमानन्दन्तः = मत्स्याधानीस्थासन्नमरणमत्स्यपार्श्वपरिवर्तनान् दर्शं दर्शमानन्दन्तः, अदृष्टतटेष्वपि = अज्ञातकुलेष्वपि, महाप्रवाहेषु = भयङ्करजलधारेषु, स्वल्पया = लघ्वाकारया, कूष्माण्डफक्किकाकारया = कर्कारुखण्डाकारया, नौकया = नावा तरणिकया वा, भिन्नाञ्जनलिप्ता इव = पिष्टकज्जलसंलिप्ता इव, मसीस्नाताः = श्यामलिकाक्तस्नानाः, साकाराः =

सशरीराः, अन्धकारा इव=तमोनिचया इव, कालाः=कृष्णाः, धीवरबालाः= धीवरपुत्राः, निर्भयाः=भीतिविरहिताः, क्रीडन्ति=खेलन्ति ।

समासः—प्रान्तेषु प्ररूढां प्रान्तप्ररूढाम् । पयसां पूरस्य यः प्रवाहः, तस्य परम्पराभिः पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः । शत्रूणां सेनायाः नाशने कुशलः शत्रुसेनानाशनकुशलः । साम्लेन सुमधुरेण रसेन पूरितानि साम्लसुमधुररसपूरितानि । फूत्कारेण उद्‌धूता भूतिः येषां तादृशा ये ज्वलदङ्गाराः, तेषां विजित्वरा वर्णा येषां तानि फूत्कारोद्‌धूतभूतिज्वलदङ्गारविजित्वरवर्णानि । सर्वस्य देशस्य रसज्ञानां सर्वदेशरसज्ञानाम् । भयङ्करेण आवर्तानां सहस्रेण आकुलासु भयङ्करावर्तसहस्रसाकुलासु । कुवेण्यां तिष्ठति इति कुवेणीस्थाः, तत्रत्या म्रियमाणाः मत्स्याः, तेषां परीवर्तान् कुवेणीस्थम्रियमाणमत्स्यपरीवर्तान् । कूष्माण्डस्य फक्किकाया आकार इव आकारो यस्याः, तया कूष्माण्डफक्किकाकारया ।

कोषः—'ब्रह्मपुत्रः प्रदीपनः' इत्यमरः । 'स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रमः' इत्यमरः । 'नौकादण्डः क्षेपणी स्यात्' इत्यमरः । 'अरित्रं केनिपातः' इत्यमरः । 'बडिशं मत्स्यवेधनम्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—अवालुलोकत्—अव+लोक्+लङ्+तिप् । परिमर्दयन्ती—परि+मृद्+णिच्+शतृ+ङीप् । उद्‌धूत—उद्+धूञ्+क्त । देशीय—देश+छ । स्रोतस्वतीषु—स्रोतस्+मतुप्+ङीप् (स० ब० व०) । म्रियमाणः—मृङ्+शानच् ।

शब्दार्थ—अवालुलोकत्=देखा, एष जनः=यह व्यक्ति (तानरङ्ग), प्रान्तप्ररूढाम्=किनारे पर उगी हुई, पद्मावलीम्=कमल की पंक्ति को, परिमर्दयन्ती=मसलती हुई, पद्मा इव=शोभासदृश, द्रवीभूता=जलसदृश, पयःपूरप्रवाहपरम्पराभिः=जलाप्लावित प्रवाह की परम्परा से, ब्रह्मपुत्र इव= ब्रह्मपुत्र विष के समान, शत्रुसेनानाशनकुशलः=शत्रुओं की सेना के नाश में निपुण, विभजन्=विभाग करता हुआ, क्षालयति=धोता है, साम्लसुमधुररसपूरितानि=खट्टे और मीठे रस से भरे हुए, फूत्कारोद्‌धूतभूतिज्वलदङ्गारविजित्वरवर्णानि=फूंकने से उड़ा दी गई है भस्म जिनकी, ऐसे धधकते अङ्गारों के विजयी रङ्गवाले, नारङ्गाणि=सन्तरे, उद्भवन्ति=उत्पन्न होते हैं, यद्देशीयानाम्=जिस देश के, जम्बीराणाम्=नीबुओं के, सर्वदेशरसज्ञानाम्=समस्त देश के रसिकों को, साम्रेडम्=बार-बार, भयङ्करावर्तसहस्राकुलासु=हजारों भयङ्कर लहरों से व्याप्त, स्रोतस्वतीषु=नदियों में, क्षेपणीः

=नाव की डाँड़, क्षिपन्तः=डालते हुए, अरित्रम्=पतवार, बडिशम्=जाल को, योजयन्तः=डालते हुए, कुवेणीस्थम्रियमाणमत्स्यपरीवर्तान्=जाल में फँसी मरणासन्न मछलियों के छटपटाने को, आलोकमालोकम्=देख-देखकर, आनन्दन्तः=आनन्दित होते हुए, अदृष्टतटेपु=तट न दिखलाई पड़नेवाले, कूष्माण्डफक्किकाकारया=कद्दू के फाँक जैसी आकृतिवाली, भिन्नाञ्जनलिप्ता इव=पिसे हुए काजल से लिपे-पुते जैसे, मसीस्नाता इव=स्याही से स्नान किये जैसे, साकारा=शरीरधारी, कालाः=काले, धीवरबालाः=मछुओं के लड़के, निर्भयाः=भयरहित होकर, क्रीडन्ति=खेलते हैं।

हिन्दी—अफजलखाँ—क्या, क्या, क्या, पूर्वीबङ्गाल में भी ?

तानरङ्ग—हाँ सेनापतिजी ! मैंने पूर्वी बङ्गाल भी अति सुचारु ढंग से देखा है, जहाँ किनारे पर उगी हुई कमलों की पंक्ति को जलप्रवाह से मसलती हुई द्रवीभूत हुई लक्ष्मी के सदृश पद्मा नदी बहती है, ब्रह्मपुत्र विष के समान शत्रुओं की सेना के नाश करने में दक्ष, ब्रह्मपुत्र नाम का नद ब्रह्मदेश को भारतवर्ष से पृथक् करता हुआ भूमिभाग को सींचता है। जहाँ खट्टे-मीठे रस में भरे हुए, फूंककर के उड़ा दी गई है राख जिनकी, ऐसे प्रज्वलित अङ्गारों के वर्ण को जीत लेने वाले जगत्प्रसिद्ध सन्तरे समुत्पन्न होते हैं, जहाँ के नीबू, आम, ताल, नारियल और खजूर की महिमा समस्त देशों के रसिकों के कर्ण-विवर को बार-बार संस्पर्श करती है। जहाँ सहस्रों भयङ्कर आवर्तों से व्याप्त नदियों में हो-हो करते हुए, डाँड़ डालते और पतवार चलाते हुए, बंसी डालते, जाल में फँसी मरणासन्न मछलियों का तड़पना देखकर प्रमुदित होते हुए, जिनके तट भी नहीं दिखलाई पड़ते, ऐसे महाप्रवाहों में भी छोटी-सी कुँभड़े की फाँक के आकार जैसी नाव से पिसे हुए काजल से संलिप्त हुए से, स्याही से स्नान किये शरीरधारी अन्धकार के समान धीवरों (मछुओं) के लड़के निर्भय होकर क्रीड़ा करते हैं ॥ ३२ ॥

अप०—(स्वयं हसन्, सर्वांश्च हसतः पश्यन्) सत्यं सत्यम् !! धन्यो भवान्, योऽल्पेनैव वयसैव विदेश-भ्रमणैश्चातुरीं कलयति।

तान०—धन्य एव यदि युष्मादृशैरभिनन्द्ये !

अप०—(क्षणानन्तरम्) अथ भवान् मूर्छना-प्रधानं गायति, तान-प्रधानं वा ?

तान०—ईदृक्षं तादृक्षं च ।

अप०—(क्षणानन्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन रागः ।

तान०—(किञ्चिद् विचार्य) आज्ञा चेदेकां राग-माला-गीतिं गायामि, यत्र प्रत्याभोगं नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत्, तत्तद्-राग-नामानि च तत्रैव प्राप्येरन् ।

अप०—आः ! किमेवम् ? ईदृशं तु गानं न प्रायः श्रूयते, तद् गीयताम् ।

व्याख्या—अपजलखानः—(स्वयम्=अपजलखानः, हसन्=हासं विदधत्, सर्वान्=अन्यान्, च=पुनः, हसतः=हासं कुर्वतः, पश्यन्=अवलोकयन्) सत्यं सत्यम्=समीचीनं समीचीनम्, धन्यः=साधुवादार्हः, भवान्=त्वम्, यः=तानरङ्गः, अल्पेनैव=न्यूनेनैव, वयसा=अवस्थया, एवम्=एतादृशम्, विदेश-भ्रमणैः=देशदेशाटनैः, चातुरीम्=निपुणताम्, कलयति=सन्धारयति ।

तानरङ्गः—धन्य एव=धन्योऽहम्, यदि=चेत्, युष्मादृशैः=भवादृशैः, अभिनन्द्ये=प्रशंसनीयो भवामि ।

अपजलखानः—(क्षणानन्तरम्=किञ्चित्कालानन्तरम्) अथ=इति प्रश्ने, भवान्=तानरङ्गः, मूर्छनाप्रधानम्=आरोहावरोहक्रमयुक्तस्वरसमूहम्, गायति=गानं विदधाति, वा=अथवा, तानप्रधानम्=आरोहक्रमयुक्तस्वर-समूहम् ?

तानरङ्गः—ईदृक्षम्=मूर्छनाप्रधानम्, तादृक्षञ्च=तानप्रधानञ्च (उभावपीत्याशयः) ।

अपजलखानः—(क्षणानन्तरम्=स्तोकसमयानन्तरम्) अस्तु=युक्तम्, आलप्यताम्=आलापं क्रियताम्, कश्चन रागः=किमपि रञ्जकस्वरम् ।

तानरङ्गः—(किञ्चिद् विचार्य=स्तोकं विचारं विधाय) आज्ञा चेत्=निदेशः स्याद् यदि, एकाम्=केवलम्, रागमालागीतिम्=एतन्नाम्नीं गीतिम्, गायामि=गानं करोमि, यत्र=यस्मिन्, प्रत्याभोगम्=प्रतिगेयखण्डम्, नवीन एव=नूतन एव, रागः=आलापः, भवेत्=स्यात्, एकेनैव च, ध्रुवेण=स्थिरपदेन, सङ्गच्छेत्=सम्मेलयेत, तत्तद्रागनामानि=गीतिप्रयुक्तप्रतिराग-नामानि, च=पुनः, तत्रैव=रागे, प्राप्येरन्=लभेरन् ।

अपजलखानः—आः ! किमेवम्=एतदस्ति, ईदृशं तु=एतद्विधं तु,

गानम्=गीतिः, न=नहि, प्रायः=सामान्यरूपेण, श्रूयते=समाकर्ण्यते तद्, गीयताम्=आलप्यताम् ।

समासः—तानं प्रधानं यस्मिन् तत् तानप्रधानम् । मूर्छना प्रधानं यस्मिन् तत् मूर्छनाप्रधानम् । आभोगम् आभोगं प्रतीति प्रत्याभोगम् ।

व्याकरणम्—हसन्—हस्+शतृ । रागः—रञ्ज+घञ् ।

शब्दार्थ—हसन्=हँसता हुआ, सत्यम्=सच है, अल्पेनैव=कम ही, वयसा=अवस्था से, विदेशभ्रमणैः=विदेशों के भ्रमण से, चातुरीम्=निपुणता को, कलयति=धारण कर लिया है, युष्मादृशैः=आप जैसे लोगों के द्वारा, अभिनन्द्ये=प्रशंसनीय होता हूँ, मूछर्नाप्रधानम्=मूर्छना-प्रधान, तान-प्रधानम्=तान-प्रधान, आलप्यताम्=अलापिये, रागमालागीतिम्=एक विशेष प्रकार के रागवाला गीत, प्रत्याभोगम्=प्रत्येक गेय खण्ड, ध्रुवेण=स्थिर पद, (सभी पदों के अन्त में जिसका उच्चारण बार-बार किया जाता है, उसे ध्रुव कहा जाता है।) सञ्चच्छेत्=चले, तत्तद्रागनामानि=उन-उन रागों के नाम, प्राप्येरन्=प्राप्त हो जाता है, ईदृशम्=इस प्रकार, श्रूयते=सुना जाता है, गीयताम्=गाइये ।

हिन्दी—अफजलखान—(स्वयं हँसते हुए और अन्य समस्त जनों को हँसते हुए देखकर) सच है, सच है । आप धन्य हैं, जिसने थोड़ी अवस्था में ही इस प्रकार देश-देशान्तर के भ्रमण से चतुरता प्राप्त कर ली है ।

तानरङ्ग—यदि आप जैसे लोगों द्वारा प्रशंसित किया जाऊँ तो अवश्य ही मैं धन्य हूँ ।

अफजलखान—(कुछ क्षण बाद) अच्छा, तो आप मूर्छना-प्रधान गाते हैं अथवा तान-प्रधान ?

तानरङ्गः—ऐसा भी और वैसा भी । अर्थात् मूर्च्छना-प्रधान और तान-प्रधान दोनों गाता हूँ ।

अफजलखान—(कुछ समय बाद) ठीक है, कोई राग अलापिये ।

तानरङ्ग—(कुछ विचार कर) अगर श्रीमान् का आदेश हो तो एक रागमाला गीत सुनाऊँ, जिस गीत के प्रत्येक खण्ड में एक नूतन ही राग होगा और एक ही ध्रुव से चलेगा और उन समस्त रागों के नाम भी उसी में प्राप्त हो जायेंगे ।

अफजलखान—अच्छा, ऐसा है क्या ? ऐसा गाना तो प्रायः नहीं सुना जाता है, तो गाइये ।

टिप्पणी—राग, स्वर, आलाप, मूच्छंना, तान आदि संगीतशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं—

राग—रञ्जयतीति रागः । जिसको सुनने से समस्त जनों को आनन्द प्राप्त होता है, उसे 'राग' कहते हैं ।

स्वर=संगीत में सात प्रकार के स्वर पाये जाते हैं । यथा—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद । सा, रे, ग, म, प, ध, नि—इन्हीं सात स्वरों के सङ्केतवाचक हैं ।

आलाप—गीत प्रारम्भ करने से पूर्व बिना पदच्छेद के राग की ध्वनि का उद्गिरण 'आलाप' कहा जाता है ।

मूच्छंना—गीत के स्वरों को आरोह-अवरोह (चढ़ाव-उतराव) पूर्वक बोलना 'मूच्छंना' है ।

तान—गीत के बोलों को शनैः-शनैः आरोह-क्रम से ले जाना 'तान' कहलाता है । यहाँ सङ्गीतशास्त्रकार मतङ्ग का निम्न लक्षण ध्यातव्य है—'आरोहावरोहक्रमयुक्तः स्वरसमुदायो मूच्छंनेत्युच्यते, तानस्त्वारोहक्रमेण भवती'ति ॥ ३३ ॥

ततस्तानपूरिकायाः स्वरान् सम्मेल्य पातित-वाम-जानुस्तान-पूरिका-तुम्बं क्रोडे निधाय दक्षपादस्योत्थितजानुनि च दक्ष-हस्त-कूर्पर-स्थापन-पुरःसरं तेनैव हस्तेन तर्जन्यङ्गुल्या तानपूरिकां रणयन् स्वकण्ठेनापि त्रीन् ग्रामान् सप्त स्वरांश्च समधात् ।

व्याख्या—ततः=अफजलखानाऽऽदेशानन्तरम्, तानपूरिकायाः=वाद्ययन्त्रविशेषायाः, स्वरान्=शब्दान्, सम्मेल्य=संयोज्य, पातितवामजानुः=निपातितसव्यजानुः, तानपूरिकातुम्बम्=वाद्यदीर्घमाम्, क्रोडे=अङ्के, निधाय==स्थापयित्वा, दक्षपादस्योत्थितजानुनि च=वामेतरचरणस्योत्थितजानुनि च, दक्षहस्तकूर्परस्थापनपुरःसरम्=वामेतरकरकफोणिस्थापनपुरःसरम्, तेनैव=दक्षिणेनैव, हस्तेन=करेण, तर्जन्यङ्गुल्या=अङ्गुष्ठसमीपवर्तिन्या अङ्गुल्या, तानपूरिकाम्=वाद्ययन्त्रविशेषम्, रणयन्=वादयन्, स्वकण्ठेनापि=निजगल-

विलेनापि, त्रीन्=त्रिसङ्ख्यकान्, ग्रामान्=षड्जमध्यमगान्धारान्, सप्त स्वरान्=सा-रे-ग-म-प-ध-नि—इति सप्तसङ्ख्यकान् स्वरान्, समधात्=समयोजयत् ।

समासः—पातितं वामजानु येन सः पातितवामजानुः । उत्थिते जानुनि उत्थितजानुनि । दक्षस्य हस्तस्य यः कूर्परः, तत् स्थापनम्, तेन पुरःसरम् इति दक्षहस्तकूर्परस्थापनपुरस्सरम् ।

कोषः—'स्यात् कफोणिस्तु कूर्परः' इत्यमरः । 'निषादर्षभगान्धारषड्ज-मध्यमधैवताः । पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः' ॥ इत्यमरः ।

व्याकरणम्—सम्मेल्य—सम्+मिल्+क्त्वा+ल्यप् । निधाय—नि+धा+क्त्वा+ल्यप् । रणयन्—रण्+णिच्+शतृ । समधात्—सम्+धा+लुङ् ।

शब्दार्थाः—ततः=तदनन्तर, तानपूरिकायाः, स्वरान्=तानपूरे के स्वरों को, सम्मेल्य=मिलाकर, पातितवामजानुः=बांये घुटने को गिराकर, क्रोडे=गोद में, निधाय=रखकर, दक्षपादस्य=दाहिने पैर के, उत्थितजानुनि=उठे हुए घुटने पर, दक्षहस्तकूर्परस्थापनपुरःसरम्=दाहिने हाथ की कोहनी पर रखकर, तर्जन्यङ्गुल्या=अँगूठे के बगल की अँगुली से, रणयन्=बजाते हुए, त्रीन् ग्रामान्=तीन ग्रामों को, सप्त स्वरान्=निषदादि सप्त स्वरों को, समधात्=समायोजित किया ।

हिन्दी—तदनन्तर तानपूरे के स्वरों को मिलाकर, बायाँ घुटना टेक कर, तानपूरे की तुम्बी को गोद में रखकर, दाहिने पैर की उठी हुई जंघा पर दाहिने हाथ की कुहनी रखकर, उसी हाथ की तर्जनी अंगुलि से तानपूरे को बजाते हुए तानरङ्ग ने अपने कण्ठ से भी तीन ग्रामों और निषादादि सात स्वरों को आलपित किया ।

टिप्पणी—ग्रामान्—

'यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि ।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ॥
षड्जग्रामो भवेदादौ मध्यमग्राम एव च ।
गान्धारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम्' ॥ इति ॥ ३४ ॥

तन्मात्रश्रवणेनैव मुग्धेष्विवाऽखिलेषु इमां राग-माला-गीतिमगायत्—

सखि ! हे नन्द-तनय आगच्छति । सखि० ॥
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति ॥

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः ।
कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ॥
सारङ्गैः सारङ्ग-सुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः ।
चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः ॥
श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीशः ।
सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गवीशः ॥
गौरी-पतिना सदा भावितो बर्हिण-बर्ह-किरीटः ।
कनककशिपु-कदनो बलि-मथनो विहत-दशानन-कीटः ॥

व्याख्या—तन्मात्रश्रवणेनैव=स्वरसमायोजनमात्रश्रवणेनैव, मुग्धेषु=मोहमापन्नेषु, इव=यथा, अखिलेषु=सर्वेषु, इमाम्=अग्रे वक्ष्यमाणाम्; 'सखि हे नन्दतनय आगच्छति' इति रूपाम्, रागमालागीतिम्=एतन्नामिकां गीतिम्, अगायत्=गायति स्म—

हे सखि !=भो आलि ! नन्दतनयः=नन्दसुतः, आगच्छति=आयाति ! मन्दं मन्दम्=शनैः शनैः, मुरलीरणनैः=मुरलीस्वरैः, समधिकसुखम्=भृशमानन्दम्, प्रयच्छति=प्रददाति । पापिजनानाम्=दुष्टमानवानाम्, भैरवरूपः भीतिप्रदः, सताम्=सज्जनानाम्, सुखकरः=सुखदः, देवः=श्रीकृष्णः । कलितललितमालतीमालिकः=सुन्दरमालतीमालिकया सुशोभितः, सुरवरवाञ्छितसेवः=देवश्रेष्ठेप्सितसेवः, सारङ्गसुन्दरः=मनसिज इव रमणीयः, सारङ्गैः=हरिणैः, दृग्भिः=लोचनैः, निपीयमानः=सन्दृश्यमानः । चपलाचपलचमत्कृतिवसनः=विद्युदिव चञ्चलचाकचिक्यापूरितटः, विहितमनोहरगानः=गीयमानरमणीयगीतिः, श्रीवत्सेन=भृगुपदेन, हृदये=वक्षःस्थले, लाञ्छितः=चिह्नितः, श्रीलः=श्रीमान्, श्रीदः=लक्ष्मीप्रदायकः, श्रीशः=लक्ष्म्या अधीश्वरः, सर्वश्रीभिः=निखिलशोभाभिः, युतः=सहितः, श्रीपतिः=लक्ष्मीपतिः, श्रीमोहनः=लक्ष्मीं वशीकर्तुं शक्तः, गवीशः—गवीनां=वेदवचसाम्, इन्द्रियाणां धेनूनां वा, ईशः=स्वामी, गौरीपतिना=शिवेन, सदा=सर्वदा, भावितः=सेवितः, बर्हिणबर्हकिरीटः=मयूरपिच्छमुकुटः, कनककशिपुकदनः=हिरण्यकशिपुविनाशकः, बलिमथनः=बलिविध्वंसी, विहतदशाननकीटः=नाशितदशग्रीवकीटः (देवः आगच्छति) ।

समासः—कलिता ललिता मालतीमालिका येन सः कलितललितमालती-

मालिकः। सुखरैः वाञ्छिता सेवा यस्य सः सुखरवाञ्छितसेवः। सारङ्ग इव सुन्दरः सारङ्गसुन्दरः। चपला इव चपलानि चमत्कृतीनि च वसनानि यस्य सः चपलाचपलचमत्कृतिवसनः। गवीनाम् ईशः गवीशः। गौर्य्याः पतिस्तेन गौरीपतिना। बर्हिणः वर्हं एव किरीटः यस्य सः बर्हिणबर्हंकिरीटः। विहतः दशाननः एव कीटः येन सः विहतदशाननकीटः।

कोषः—'सारङ्गो मृगपक्षिणः' इत्यमरः। 'श्रीलः श्रीमान् स्निग्धासु वत्सलः' इत्यमरः।

व्याकरणम्—प्रयच्छति—प्र+दाण्+लट्+तिप्। निपीयमानः—नि+पा+य+शानच्। आगच्छति—आ+गम्+लट्+तिप्।

शब्दार्थ—तन्मात्रश्रवणेनैव=इतना सुनने मात्र से ही, मुग्धेषु=प्रसन्न हो जाने पर, इमाम्=इस, रागमालागीतिम्=रागमाला गीत को, अगायत् =गाया। नन्दतनयः=नन्द के पुत्र कृष्ण, मुरलीरणनैः=मुरली की ध्वनि से, समधिकसुखम्=अत्यधिक आनन्द को, प्रयच्छति=प्रदान कर रहे हैं, भैरवरूपः =भयंकर आकृति वाले, कलितललितमालतीमालिकः=मनोहारी मालती की माला से समन्वित, सुखरवाञ्छितसेवः=पुरन्दरादि देवता जिसकी सेवा की इच्छा करते हैं, सारङ्गसुन्दरः=कामदेव के समान सुन्दर, दृग्भिः=लोचनों से, निपीयमानः=पिये जाते हुए अर्थात् देखे जाते हुए, चपलाचपलचमत्कृतिवसनः=विद्युत्-सदृश चमकते वस्त्रोंवाले, श्रीवत्सेन=महर्षि भृगु के पदचिह्न से, लाञ्छितः=चिह्नित, श्रीलः=शोभावान्, श्रीदः=धन-सम्पत्ति प्रदान करने वाले, श्रीशः=लक्ष्मी के स्वामी, सर्वश्रीभिः=समस्त प्रकार की शोभा से, युतः=समन्वित, श्रीमोहनः=लक्ष्मी को मोहित करने वाले, गवीशः= वेदवाणी के आविष्कारक, गौरीपतिना=भगवान् शङ्कर के द्वारा, भावितः= ध्यान किये जाते हुए, बर्हिणबर्हंकिरीटः=मोरपंख के मुकुट धारण करने वाले, कनककशिपुकदनः=हिरण्यकश्यप को मारने वाले, बलिमथनः=बलि का ध्वंस करने वाले, विहतदशाननकीटः=रावण रूपी कीड़े को मारने वाले हैं।

हिन्दी—इतना सुनते ही समस्त जनों के मुग्ध-से हो जाने पर इस रागमाला गीत को गाया—

हे सखि! नन्दात्मज श्रीकृष्ण आ रहे हैं। मुरली के मन्द-मन्द ध्वनि से वे अत्यन्त आनन्द प्रदान कर रहे हैं। ये भगवान् श्रीकृष्ण पातकी पुरुषों के लिए भीतिप्रद और सज्जनों के लिए सुख देनेवाले हैं। उन्होंने सुन्दर मालती

पुष्प की माला धारण कर रखी है। इन्द्र आदि देवगण भी उनकी सेवा करने को समुत्सुक रहते हैं। कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण का हरिण निर्निमेष नयनों से दर्शन कर रहे हैं। विद्युत्-सदृश चमकीले वस्त्रवाले नन्दसूनु मनोहर गीत गा रहे हैं। उनका वक्षःस्थल 'श्रीवत्स' नाम के चिह्न से सुशोभित है। वे श्रीमान्, सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, शोभा के धाम, अशेष सुन्दरता से समन्वित, लक्ष्मी के पति, रमा (लक्ष्मी) को भी मोहित करनेवाले और वेदवाणी के आविष्कारक, जितेन्द्रिय तथा वृन्दावन के पशुओं के स्वामी है। भगवान् शङ्कर सर्वदा उनका ध्यान किया करते हैं। वे मोर-पंख का मुकुट धारण करनेवाले, हिरण्यकशिपु के विनाशक, बलि का विध्वंस करनेवाले तथा दशाननरूपी कीड़े को मारनेवाले हैं।

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में भगवान् श्रीकृष्ण के सौन्दर्य एवं सामर्थ्य का नितान्त मनोरम चित्रण किया गया है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं रूपक आदि अलंकारों की छटा भी दर्शनीय है। इसी प्रकार इस गेयखण्ड में भैरव, ललित, सारंग, श्री एवं गौरी आदि रागों का नाम भी पाया जाता है ।। ३५ ।।

अथ एतावदेव श्रुत्वा अतितरां प्रसन्नेषु पारिषदेषु, ससाधुवादं वितीर्णकङ्कणे च अपजलखाने, तानरङ्गोऽपि सप्रसादं तानपूरिकां भूमौ संस्थाप्य अपजलखानस्य गुणग्राहितां प्रशशंस।

अथ अपजलखानः क्रमशो मैरेय-मद-परवशतां वहन् उवाच यत्—कथ्यतामस्मिन् प्रान्ते भवादृशानां गुण-ग्राहकाः के सन्ति ? के वा कवितायाः सङ्गीतस्य च मर्माऽवगच्छन्ति ?

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, एतावदेव=इयन्मात्रमेव, श्रुत्वा=समाकर्ण्य, अतितराम्=नितान्तम्, प्रसन्नेषु=सन्तुष्टेषु, पारिषदेषु=सभासदेषु, ससाधुवादम्=प्रशंसापूर्वकम्, वितीर्णकङ्कणे=प्रदत्तकङ्कणे, च, अपजलखाने=एतन्नामके सेनापतौ, तानरङ्गोऽपि=एतन्नामा गायकोऽपि, सप्रसादम्=सहर्षम्, तानपूरिकाम्=वाद्यविशेषाम्, भूमौ=धरायाम्, संस्थाप्य=निधाय, अपजलखानस्य=सेनापतेः, गुणग्राहिताम्=गुणज्ञताम्, प्रशशंस=प्रशंसयामास।

अथ=अनन्तरम्, अपजलखानः=तन्नामकः सेनापतिः, क्रमशः=क्रमेण, मैरेयमदपरवशताम्=आसवमदाधीनताम्, वहन्=धारयन्, उवाच=जगाद, यत्, कथ्यताम्=निगद्यताम्, अस्मिन् प्रान्ते=इह प्रदेशे, भवादृशानाम्=

त्वत्सदृशानाम्, गुणग्राहकाः=गुणग्राहिणः, के सन्ति=के विद्यन्ते, के वा=के जनाः वा, कवितायाः=काव्यस्य, सङ्गीतस्य=गानस्य, च, मर्म=रहस्यम्, अवगच्छन्ति=जानन्ति ?

समासः—परिषदि साधवः पारिषदाः, तेषु पारिषदेषु। मैरेयस्य यः मदः, तस्य परवशताम् इति मैरेयमदपरवशताम्।

व्याकरणम्—प्रशशंस—प्र+शंस्+लिट्+तिप्। वहन्—वह+शतृ। अवगच्छन्ति—अव+गम्+लट्+झि।

शब्दार्थं—अथ=अनन्तर, एतावदेव=इतना ही, श्रुत्वा=सुनकर, अतितराम्=अत्यधिक, प्रसन्नेषु=प्रसन्न होने पर, पारिषदेषु=सभासदों के, ससाधुवादम्=धन्यवादपूर्वक, वितीर्णकङ्कणे=पुरस्कार-स्वरूप कङ्कण प्रदान कर देने पर, सप्रसादम्=प्रसन्नतापूर्वक, संस्थाप्य=रखकर, भूमौ=पृथिवी पर, गुणग्राहिताम्=गुणग्राहकता को, प्रशशंस=प्रशंसा की, मैरेयमदपरवशताम्=शराब के नशे की विवशता को, वहन्=धारण किये हुए, कथ्यताम्=कहिये, अस्मिन् प्रान्ते=इस प्रदेश में, भवादृशानाम्=आप जैसे लोगों के, गुणग्राहकाः=गुण ग्रहण करने वाले, के सन्ति=कौन हैं, मर्म=रहस्य को, अवगच्छन्ति=जानते हैं।

हिन्दी—तदनन्तर इतना ही सुनकर समस्त सभासदों के अत्यधिक प्रसन्न हो जाने पर और अफजलखान के धन्यवाद सहित तथा प्रशंसापूर्वक सुवर्ण-निर्मित कङ्कण पुरस्कारस्वरूप प्रदान कर देने पर तानरङ्ग ने भी प्रमुदित होकर तानपूरे को पृथिवी पर रखकर अफजलखान की गुणग्राहकता की प्रशंसा की।

उसके बाद क्रमशः शराब के नशे में चूर होता हुआ अफजलखान ने कहा—बतलाइये, इस प्रदेश में आप जैसे लोगों के गुणग्राहक कौन हैं ? अथवा काव्य (कविता) और सङ्गीत के मर्म को जानने वाले कौन हैं ? ।। ३६ ।।

ततस्तानरङ्गोऽचकथत्—को नामाऽपरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवाऽऽरोह-विद्या-सिन्धुः, स एव चन्द्रहास-चालने चतुरः, स एव मल्ल-विद्या-मर्मज्ञः, स एव बाणविद्या-वारिधिः, स एव पण्डित-मण्डल-मण्डनः, स एव धैर्य-धारि-धौरेयः, स एव वीर-वार-वरः, स एव पुरुष-पौरुष-परीक्षकः, स एव दीन-दुःख-दाव-दहनः,

स एव स्वधर्मरक्षण-सक्षणः, स एव विलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृश-गुणि-गण-गुण-ग्रहणाऽऽग्रही वर्तते।

अथ अपजलखाने—"तत् किं शिव एष एवंगुण-गण-विशिष्टोऽस्ति ? एवं वा वीर-वरोऽस्ति ?" इति सचकितं सभयं सतर्कं सरोमोद्गमं च कथयति, किञ्चिद् विचार्येव नीति-कौशल-पुरःसरं गौरः पुनरवादीत्।

व्याख्या—ततः=अपजलखानप्रश्नश्रवणोत्तरम्, तानरङ्गः=गौरसिंहः, अचकथत्=अवदत्, को नाम, अपरः=अन्यः, शिववीरात्='शिवाजी' इति प्रथितात्, स एव=शिववीर एव, राजनीतौ=नृपनये, निष्णातः=पण्डितः, स एव=शिववीर एव, सैन्धवाऽऽरोहविद्यासिन्धुः=घोटकाऽऽरोहविद्यासागरः, स एव, चन्द्रहासचालने=खड्गप्रहारे, चतुरः=पण्डितः, स एव, मल्लविद्यामर्मज्ञः=मल्लविद्याधुरन्धरः, स एव, बाणविद्यावारिधिः=धनुर्विद्यासागरः, स एव, पण्डितमण्डलमण्डनः=विद्वद्वर्गविभूषणः, स एव, धैर्यधारिधौरेयः=धीरधुरीणः, स एव, वीरवारवरः=शूरसमूहश्रेष्ठः, स एव, पुरुषपौरुषपरीक्षकः=नरपौरुषनिकषोपलः, स एव, दीनदुःखदावदहनः=अनाथक्लेशविपिनाग्निः, स एव, स्वधर्मरक्षणसक्षणः=निजधर्मावनसोत्साहः, स एव, विलक्षणविचक्षणः=विशिष्टविद्वान्, स एव, च, मादृशगुणिगणगुणग्रहणाऽऽग्रही=मद्विधगुणिसमूहगुणग्रहणाऽऽग्रही, वर्तते=विद्यते।

अथ=अनन्तरम्, अपजलखाने=सेनापतौ, तत् किम्, शिवः=शिववीरः, एषः=अयम्, एवम्=ईदृग्, गुणगणविशिष्टः=गुणगणसमन्वितः, अस्ति=वर्तते, एवं वा=ईदृग् वा, वीरवरोऽस्ति=वीरश्रेष्ठो विद्यते, इति=एवम्, सचकितम्=आश्चर्ययुतम्, सभयम्=भीतिसहितम्, सतर्कम्=तर्केण सह, सरोमोद्गमम्=रोमाञ्चान्वितम्, च, कथयति=वदति, किञ्चिद्=ईषद्, विचार्य इव=चिन्तयित्वेव, नीतिकौशलपुरःसरम्=नीतिचातुर्यपूर्वकम्, गौरः=गौरसिंहः, पुनः=भूयः, अवादीत्=जगाद।

समासः—सैन्धवानामारोहविद्यायाः सिन्धुः सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः। चन्द्रहासस्य चालने चन्द्रहासचालने। मल्लविद्यायाः मर्मज्ञः मल्लविद्यामर्मज्ञः। बाणविद्यायाः वारिधिः बाणविद्यावारिधिः। पण्डितानां मण्डलस्य मण्डनः पण्डितमण्डलमण्डनः। धैर्यधारिषु धौरेयः धैर्यधारिधौरेयः। वीराणां वारेषु

वरः वीरवारवरः । पुरुषाणां पौरुषस्य परीक्षकः पुरुषपौरुषपरीक्षकः । दीनानां दुःखदावस्य दहनः दीनदुःखदावदहनः । स्वस्य धर्मस्य रक्षणे सक्षणः स्वधर्मरक्षणसक्षणः । मादृशानां गुणिगणानां गुणग्रहणे आग्रही मादृशगुणिगणगुणग्रहणाऽऽग्रही । वीरेषु वरः वीरवरः । रोमोद्गमेन सहितं सरोमोद्गमम् ।

व्याकरणम्—निष्णातः—नि + ष्णा + क्त । सैन्धवः—सिन्धु + अण् । वर्तते—वृतु + लट् + त । अस्ति—अस् + लट् + तिप् । अवादीत्—वद् + लुङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, तानरङ्गः = गायक, अचकथत् = कहा, को नाम = कौन, राजनीतौ = राजनीति में, निष्णातः = दक्ष अर्थात् पारङ्गत, सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः = अश्वारोहण-विद्या के सागर, चन्द्रहासचालने = खड्ग चलाने में, मल्लविद्यामर्मज्ञः = मल्लविद्या (शारीरिक युद्धविद्या) के रहस्य को जानने वाले, बाणविद्यावारिधिः=धनुर्विद्या में निपुण, पण्डितमण्डलमण्डनः= विद्वत्समाज के विभूषण, धैर्यधारिधौरेयः=धैर्यशालियों में अग्रणी, वीरवारवरः= वीर-समूह में श्रेष्ठ, पुरुषपौरुषपरीक्षकः = पुरुषों के पौरुष (शक्ति) के पारखी, दीनदुःखदावदहनः = दीन-दुःखियों के दुःखरूपी विपिन को भस्म करने वाले, स्वधर्मरक्षणसक्षणः = निज धर्म के रक्षण में उत्साही, विलक्षणविचक्षणः = विशिष्ट विद्वान्, मादृशगुणिगणगुणग्रहणाऽऽग्रही = हमारे सदृश गुणियों के गुण-ग्रहण में अभिरुचि रखने वाला, वर्तते = है, वीरवरः = शूरों में श्रेष्ठ, सचकितम् = आश्चर्य के साथ, सतर्कम् = अनुमानपूर्वक, सरोमोद्गमम् = रोमाञ्च के साथ, विचार्य इव = विचार-सा करके, नीतिकौशलपुरःसरम् = नीतिकौशलपूर्वक, अवादीत् = कहा ।

हिन्दी—तदनन्तर तानरङ्ग ने कहा—शिवाजी को छोड़कर ऐसा कौन है ? वे ही राजनीति में पारङ्गत हैं, वे ही अश्वारोहण-विद्या में दक्ष हैं, वे ही खड्ग चलाने में निपुण हैं, वे ही मल्लविद्या के रहस्य को जानने वाले हैं, वे ही धनुर्विद्या के समुद्र हैं, वे ही विद्वद्वर्ग के विभूषण हैं, वे ही धैर्यशालियों में अग्रणी हैं, वे ही शूरों में श्रेष्ठ हैं, वे ही पुरुषों के पौरुष (शक्ति) के वास्तविक पारखी हैं, वे ही दीन-दुःखियों के क्लेशरूपी विपिन के लिए दावाग्नि सदृश हैं, वे ही अपने धर्म की रक्षा में उत्साह रखते हैं, वे ही विशिष्ट विद्वान् हैं और वे ही हमारे सदृश गुणियों के गुण में अभिरुचि रखने वाले हैं ।

इसके अनन्तर अफजलखान के—तो क्या यह शिववीर इस प्रकार के गुणों से युक्त और इतना वीर है ? इस प्रकार आश्चर्य, भय, अनुमान और रोमाञ्च के साथ कहने पर मानों कुछ विचार कर, नीतिकौशलपूर्वक गौरसिंह ने पुनः कहा—

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड को 'सैन्धवारोहविद्यासिन्धुः' 'बाणविद्यावारिधिः' 'पण्डितमण्डलमण्डनः' और 'दीनदुःखदावदहनः' आदि स्थलों पर सागर आदि का समारोप होने के कारण रूपकालङ्कार है। इसके अतिरिक्त महाकवि ने अनुप्रास तथा उत्प्रेक्षालङ्कारों का भी उत्तम निदर्शन दिया है ॥ ३७ ॥

"भगवन् ! सामान्य-राजभृत्यस्य पुत्रः शिववीरो यदि नाम नाऽभविष्यत् स्वयमीदृश ऊर्जस्वलः, तत् कथं स्वर्णदेव-सदृशसहचरं प्राप्स्यत् ? तद्द्वारा समस्तं कल्याण-प्रदेशं कल्याण-दुर्गं च स्वहस्त-गतमकरिष्यत् ? कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजनतामकलयिष्यत् ? कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्वतस्य शिखरे महेन्द्र-मन्दिर-खण्ड-मिव धर्षितारि-वर्गं डमरु-हुडुक्कार-तोषित-भर्गं रायगढनामकं महादुर्गं व्यरचयिष्यत् ? कथं वा तपनीय-भित्तिका-जटित-महारत्न-किरणावली-वितन्यमान-महावितान-वितति-विरोचित-प्रताप-तापित-परिपन्थिनिवहं चन्द्रचुम्बन-चतुर-चारुशिखर-निकरं भुशुण्डिका-किणाङ्कित-प्रचण्ड-भुजदण्ड-रक्षक-कुल-विधीयमान-परस्सहस्र-परिक्रमं धमद्धमद्दोधूयमाना-ऽनेक-ध्वज-पटल-निर्मथित-महाकाशं प्रताप-दुर्गं निरमापयिष्यत् ? कथं वा 'आगत एष शिववीरः'—इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृत-शस्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाऽऽकुञ्चितोदरा विशिथिल-वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणिपात-परम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते।

व्याख्या—भगवन् !=श्रीमन् ! सामान्यराजभृत्यस्य=साधारणराज-सेवकस्य, पुत्रः=सुतः, शिववीरः=शिवः, यदि नाम=चेदेवम्, नाभविष्यत्=न स्यात्, स्वयम्=शिववीरः, ईदृशः=ईदृग्विधः, ऊर्जस्वलः=तेजस्वी, तत्, कथम्=केन प्रकारेण, स्वर्णदेवसदृशम्=स्वर्णदेवसमम्, सहचरम्=सहायकम्,

प्राप्स्यत्=अवाप्स्यत् ? तद्द्वारा=स्वर्णदेवद्वारा, समस्तम्=निखिलम्, कल्याणप्रदेशं कल्याणदुर्गञ्च=एतन्नामकं प्रदेशं दुर्गञ्च, स्वहस्तगतम्=स्वाधीनम्, अकरिष्यत्=सम्पादयिष्यत् ? कथम्=केन प्रकारेण, तोरणदुर्गभोगभाजनताम्=एतन्नामकदुर्गभोग्यपात्रताम्, अकलयिष्यत्=अकरिष्यत् ? कथम्=कया रीत्या, तोरणदुर्गाद्=एतद्दुर्गाद्, दक्षिणपूर्वस्याम्=दक्षिणपूर्वायाम्, पर्वतस्य=गिरेः, शिखरे=शृङ्गे, महेन्द्रमन्दिरखण्डमिव=पुरन्दरप्रासादशकलमिव, धर्षितारिवर्गम्=भयभीतरिपुवर्गम्, डमरुहुडुक्कारतोषितभर्गम्=डमरुध्वनितोषितशिवम्, रायगढनामकम्=एतन्नामानं महादुर्गम्, व्यरचयिष्यत्=अघटयिष्यत् ? कथं वा, तपनीयभित्तिकाजटितमहारत्नकिरणावलीवितन्यमानमहावितानवितति-विरोचितप्रतापतापितपरिपन्थिनिवहम्=हिरण्यभित्तिखचितहीरकादिमयूखसमूह-विस्तार्यमाणमहोल्लोचविस्तारशोभिततेजोज्ज्वलितशत्रुसमूहम्, चन्द्रचुम्बन-चतुरचारुशिखरनिकरम्=शशिस्पर्शपटुसुन्दरशिखरसमूहम्, भुशुण्डिकाकिणा-ङ्कितप्रचण्डभुजदण्डरक्षककुलविधीयमानपरस्सहस्रपरिक्रमम्=बन्दूकनामकास्त्र-विशेषाघातचिह्नितभीमबाहुदण्डरक्षकसमूहक्रियमाणपरस्सहस्रमण्डलम्, धमद्ध-मद्दोधूयमानाऽनेकध्वजपटलनिर्मथितमहाकाशम्=धम्-धम् इत्याकारकशब्द-सञ्चलदनेकपताकानिवहनिर्मथितगगनाभोगम्, प्रतापदुर्गम्=एतन्नामकदुर्गम्, निरमापयिष्यत्=व्यरचयिष्यत् ? कथं वा, आगतः=समायातः, एषः=अयम्, शिववीरः=शिवः, इति=ईदृग्विधेन, भ्रमेणाऽपि=भ्रान्त्याऽपि, सम्भाव्य=भावयित्वा, अस्य=शिवस्य, विरोधिषु=शत्रुषु, केचन=केचित्, मूर्च्छिताः=संज्ञारहिताः, निपतन्ति=धराशायिनो भवन्ति, अन्ये=इतरे, विस्मृतशस्त्रास्त्राः=शस्त्रास्त्रस्मृतिविरहिताः, पलायन्ते=दूरं यान्ति, इतरे=अपरे, महात्रासा-ऽऽकुञ्चितोदराः=महाभयकृशोदराः, विशिथिलवाससः=विश्लथवसनाः, नग्नाः=निर्वस्त्राः, भवन्ति=जायन्ते, अपरे च=इतरे च, शुष्कमुखाः=विशुष्कवदनाः, दशनेषु=दन्तेषु, तृणम्=घासम्, सन्धाय=धृत्वा, साम्रेडम्=वारं वारम्, प्रणिपातपरम्पराः=नमस्कारपद्धतयः, रचयन्तः=घटयन्तः, जीवनम्=प्राणान्, याचन्ते=भिक्षन्ते ।

समासः—सामान्यस्य राजभृत्यस्य सामान्यराजभृत्यस्य । स्वर्णदेवेन सदृशं स्वर्णदेवसदृशम् । सह चरतीति सहचरस्तं सहचरम् । तोरणदुर्गभोगस्य भाजनतां तोरणदुर्गभोगभाजनताम् । महेन्द्रमन्दिरस्य खण्डमिव महेन्द्रमन्दिरखण्ड-मिव । धर्षितः अरीणां वर्गः यत्र तत् धर्षितारिवर्गम् । डमरोः हुडुक्कारेण

तोषितः भर्गः यत्र तत् डमरुहुडुक्कारतोषितभर्गम् । तपनीयस्य भित्तिकासु जटितानां महारत्नानां किरणावलीभिः वितन्यमानस्य महावितानस्य, वितत्या विरोचितेन प्रतापेन तापितः परिपन्थिनिवहः येन, तं तपनीयभित्तिका-जटितमहारत्नकिरणावलीवितन्यमानमहावितानविततिविरोचितप्रतापतापितपरि-पन्थिनिवहम् । चन्द्रस्य चुम्बने चतुरः चारुः शिखराणां निकरः यस्य, तं चन्द्रचुम्बनचतुरचारुशिखरनिकरम् । भुशुण्डिकानां किणैः अङ्किताः प्रचण्डाः भुजाः दण्डाः इव येषाम्, येषां रक्षकाणाम्, कुलेन विधीयमानाः परस्सहस्रपरि-क्रमाः यस्य, तं भुशुण्डिकाकिणाङ्कितप्रचण्डभुजदण्डरक्षककुलविधीयमानपरस्स-हस्रपरिक्रमम् । धमद्धमदिति शब्देन दोधूयमानानाम् अनेकेषां ध्वजानां पटलेन निर्मथितः महाकाशः येन, तं धमद्धमद्दोधूयमानानेकध्वजपटलनिर्मथितमहा-काशम् । विस्मृतानि शस्त्राणि अस्त्राणि येषां ते विस्मृतशस्त्रास्त्राः । महात्रासेन आकुञ्चितानि उदराणि येषां ते महात्रासाऽऽकुञ्चितोदराः । विशिथिलानि वासांसि येषां ते विशिथिलवाससः । शुष्कं मुखं येषां ते शुष्कमुखाः । प्रणिपातानां परम्पराः प्रणिपातपरम्पराः ।

व्याकरणम्—अभविष्यत्—भू + लृङ् + तिप् । सह चरतीति सहचरः—सह् + चर् + अच् । अकलयिष्यत्—कल् + णि + लृङ् + तिप् । व्यरचयिष्यत्—वि + रच् + लृङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—भगवन् = श्रीमान्, सामान्यराजभृत्यस्य = राजा के साधारण सेवक का, अभविष्यत् = होते, ईदृशः = इस प्रकार, ऊर्जस्वलः = बलशाली, स्वर्णदेवसदृशम् = स्वर्णदेव की तरह, सहचरम् = साथी को, प्राप्स्यत् = प्राप्त करते, तद्द्वारा = स्वर्णदेव के द्वारा, स्वहस्तगतम् = अपने हाथ में, अकरि-ष्यत् = प्राप्त कर लेते, तोरणदुर्गभोगभाजनताम् = तोरण दुर्ग को भोग का पात्र, आकलयिष्यत् = बना लेते, तोरणदुर्गात् = तोरण नामक दुर्ग से, दक्षिणपूर्व-स्याम् = दक्षिण और पूर्व के, शिखरे = शिखर पर, महेन्द्रमन्दिरखण्डमिव = इन्द्र-भवन के खण्ड के समान, धर्षितारिवर्गम् = शत्रुवर्ग को भयभीत करने वाले, डमरुहुडुक्कारतोषितभर्गम् = डमरु की ध्वनि से शंकर को प्रसन्न करने वाले, महादुर्गम् = विशाल किले को, व्यरचयिष्यत् = रचना कर पाते ? तप-नीयभित्तिकाजटितमहारत्नकिरणावली = दीवारों पर जड़े हुए हीरे आदि महा-रत्नों की किरणावलियों से, वितन्यमानमहावितानविततिविरोचितः = ताने हुए

विशाल मण्डप से सुशोभित, प्रतापतापितपरिपन्थिनिवहम् = अपने तेज से शत्रुओं को संतापित करनेवाले, चन्द्रचुम्बनचतुरचारुशिखरनिकरम् = चंद्रमा को स्पर्श करते हुए अनेक शिखरों वाले, भुशुण्डिकाकिणाङ्कितप्रचण्डभुजदण्ड-रक्षककुलविधीयमानपरस्सहस्रपरिक्रमम् = बन्दूक पकड़ने से पड़े हुए गड्ढों से अंकित प्रचण्ड भुजदण्डोंवाले रक्षकों के कुल में जिसकी हजारों परिक्रमाएँ की जा रही हैं, धमद्धमद्दोधूयमानाऽनेकध्वजपटलनिर्मथितमहाकाशम् = धमद्-धमद् ध्वनि से फहराते हुए ध्वज-समूह से मथ डाला है आकाश को जिसने, निरमापयिष्यत् = बनवा लेते, सम्भाव्य = सम्भावना करके, मूर्च्छिताः = संज्ञा रहित (अचेत) हुए, विस्मृतशस्त्रास्त्राः = अस्त्र-शस्त्रों को भूल जाने वाले, पलायन्ते = भाग जाते हैं, महात्रासाकुञ्चितोदराः = अत्यन्त भय के कारण संकुचित हो गया है उदर जिनका, विशिथिलवाससः = ढीले हो गये हैं वस्त्र जिनके, शुष्कमुखाः = सूखे मुखवाले, दशनेषु = दांतों में, तृणम् = घास को, सन्धाय = रखकर, प्रणिपातपरम्पराम् = नमस्कार की परम्परा को, रचयन्तः = करते हुए, याचन्ते = माँगते हैं।

हिन्दी—श्रीमन् ! एक सामान्य राजा के नौकर के लड़के शिवाजी यदि स्वयं इस प्रकार के तेजस्वी न होते तो स्वर्णदेव के सदृश सहचर (साथी) कैसे पाते और उनके द्वारा समस्त कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को अपने अधीन कैसे करते ? तोरण दुर्ग को अपना योग्य कैसे बनाते और तोरण दुर्ग से दक्षिण-पूर्व की ओर पर्वत की चोटी पर पुरन्दर (इन्द्र) के महल के एक भाग के समान, शत्रुओं को भयभीत करने वाले, डमरु की हुडुक-हुडुक ध्वनि से भगवान् शिव को प्रसन्न करने वाले रायगढ़ नामक महादुर्ग का निर्माण कैसे कर लेते ? अथवा स्वर्ण-निर्मित दीवारों पर जड़े हुए हीरे आदि महारत्नों की किरणावलियों से ताने गये विशाल मण्डप से सुशोभित तेज से शत्रुओं को संतापित करने वाले, अनेक चन्द्र-चुम्बी शिखरों वाले, बन्दूक लिये रहने से पड़ गये घट्ठों से युक्त प्रबल हाथों वाले रक्षकों से हजारों गस्त लगा-लगाकर रक्षा किये जाने वाले, फहराती हुई ध्वजाओं के समूह से महाकाश को मथने वाले प्रतापगढ़ को ही कैसे बनवा लेते ? अथवा 'ये वीर शिवाजी आ गये' यह भ्रम होने पर भी इनके विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर क्यों गिर पड़ते हैं ? कुछ शस्त्रास्त्र भूलकर पलायित क्यों हो जाते हैं ? कुछ भीतिवश पेट के कृश हो जाने अतएव वस्त्रों के ढीले हो जाने से नग्न (निर्वस्त्र) क्यों हो जाते

हैं ? और दूसरे शुष्क मुखवाले दाँतों में तृण दबाकर बार-बार प्रणाम करते हुए गिड़गिड़ाकर जीवन की भिक्षा क्यों माँगने लगते हैं ?

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में 'महेन्द्रमन्दिरखण्डमिव' इस स्थल पर उपमालंकार दृष्टिगोचर होता है। प्रतापदुर्ग का सातिशय वर्णन करने के कारण उदात्तालंकार है। प्रतापदुर्ग की शिखरें चन्द्रचुम्बिनी बतलाई गई हैं, अतः 'अतिशयोक्ति' अलंकार भी परिलक्षित होता है ।। ३८ ।।

ततस्तस्य महाप्रतापमवगत्य किञ्चिद् भीते इव तच्छत्रूणां चावहेलामाकलय्य किञ्चिदरुण-नयने इव, दक्षिण-हस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां श्मश्र्वग्रं परिमृजति यवन-सेनापतौ; तानरङ्गः पुनर्न्यवेदयत्—

परन्त्वद्य सिंहेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इयमस्तमनवेला तत्प्रतापसूर्यस्य ।

तत् कर्णे कृत्वा सन्तुष्ट इव सकन्धराकम्पं सेनापतिरुवाच—'अथाऽत्र सङ्ग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच—श्रीमन् ! यदि शिवस्य साहाय्यं साक्षाच्छिव एव न कुर्यात्; तद् विजयपुरस्यैव विजयः ।'

अथ सहासं सोऽब्रवीत्—'को नाम खपुष्पायितः शशशृङ्गायितः कमठी-स्तन्यायितः सरीसृप-श्रवणायितः भेक-रसनायितः वन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एवैषोऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते ।'

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, तस्य=शिववीरस्य, महाप्रतापम्=महाप्रभावम्, अवगत्य=ज्ञात्वा, किञ्चित्=ईषत्, भीते=धर्षिते, इव=यथा, तच्छत्रूणाम्=शिववीररिपूणाम्, च, अवहेलाम्=निन्दाम्, आकलय्य=समाकर्ण्य, किञ्चिदरुणे=ईषदुक्ते, इव=यथा, नयने=लोचने, दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्=वामेतरकराङ्गुष्ठतर्जनीभ्याम्, श्मश्र्वग्रम्=मुखरोम्णामग्रभागम्, परिमृजति=संस्पृशति, यवनसेनापतौ=अपजलखाने, तानरङ्गः=तन्नामा गायकः, पुनः=भूयः, न्यवेदयत्=अप्रार्थयत्—

परन्तु=किन्तु, अद्य=अस्मिन् दिवसे, सिंहेन सह=शार्दूलेन साकम्, शिवस्य=शिववीरस्य, साम्मुख्यम्=आभिमुख्यम्, अस्ति=विद्यते, तन्मन्ये=

तस्मादवगच्छामि, इयम्=एषा, अस्तमनवेला=अस्ताचलगमनसमयः, तत्प्रताप-सूर्यस्य=शिवप्रतापभास्करस्य ।

तत्कर्णे कृत्वा=एतन्निशम्य, सन्तुष्टः=परितुष्टः, इव=यथा, सकन्धराकम्पम्=ग्रीवाकम्पनपूर्वकम्, सेनापतिः=अपजलखानः, उवाच=अवदत्, अथ, अत्र=अस्मिन्, सङ्ग्रामे=सङ्गरे, रणे वा, कस्य=जनस्य, विजयः=जयः, सम्भाव्यते=अनुमीयते ?

सः=तानरङ्गः, उवाच=जगाद, श्रीमन्=भगवन् ! यदि=चेत्, शिवस्य=शिववीरस्य, साहाय्यम्=सहायताम्, साक्षाच्छिवः=प्रत्यक्षरूपेण शङ्करः, एव, न=नहि, कुर्यात्=विदध्यात्, तद् विजयपुरस्यैव=अपजलखानस्यैव, विजयः=जयः ।

अथ=तदा, सहासम्=हासपूर्वकम्, सः=अपजलखानः, अब्रवीत्=अवदत्, को नाम=कश्चेत्, खपुष्पायितः=गगनकुसुमायितः, शशशृङ्गायितः=शशविषाणायितः, कमठीस्तन्यायितः=कच्छपीस्तन्यायितः, सरीसृपश्रवणायितः=सर्पश्रोत्रायितः, भेकरसनायितः=मण्डूकीजिह्वायितः, वन्ध्यापुत्रायितश्च=वन्ध्यासुतायितश्च, शिवः=शङ्करः, अस्ति=वर्तते, यः एनम्=शिववीरम्, रक्षिष्यति=रक्षां विधास्यति, दृश्यताम्=अवलोक्यताम्, श्व एव=आगामिनि दिवसे एव, एषः=शिववीरः, अस्माभिः=यवनैः, पाशैः=रज्जुभिः, बद्ध्वा=संयम्य, चपेटैः, ताड्यमानः=प्रताडितः सन्, विजयपुरम्=अस्मत्स्वामिनगरम्, नीयते=नेष्यते ।

समासः—महांश्चासौ प्रतापस्तं महाप्रतापम् । अरुणे नयने यस्य सः; तस्मिन् अरुणनयने । तस्य प्रताप एव सूर्यस्तस्य तत्प्रतापसूर्यस्य । कन्धरायाः कम्पस्तेन सहितं सकन्धराकम्पम् । हासेन सहितं सहासम् । खपुष्पमिवाचरितः इति खपुष्पायितः । यहाँ 'तद्वदाचरति' इस अर्थ में 'क्यच्' प्रत्यय हुआ है ।

व्याकरणम्—अवगत्य—अव+गम्+ल्यप् । भीते—भी+क्त (सप्त० वि०) । आकलय्य—आ+कल्+ल्यप् । परिमृजति—परि+मृज्+लट्+शतृ (स० वि०) । सम्भाव्यते—सम्+भावि+लट् । खपुष्पायितः—खपुष्प+क्यच्+क्त ।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, तस्य=शिवाजी के, महाप्रतापम्=महाप्रताप को, अवगत्य=जानकर, किञ्चिद् भीते=कुछ भयभीत हुए, तच्छत्रूणाम्=उस (शिवाजी) के शत्रुओं को, अवहेलाम्=अवमानना को, आकलय्य=

सुनकर, किञ्चिदरुणनयने=कुछ रक्तवर्ण नेत्रोंवाले, दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्याम्=दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से, श्मश्रवग्रम्=मूँछ के अग्र-भाग को, परिमृजति=संस्पर्श करते हुए, यवनसेनापती=यवन-सेनापति के, पुनः=फिर, न्यवेदयत्=निवेदन किया, साम्मुख्यम्=सामना, मन्ये=मानता हूँ, अस्तमनवेला=अस्त होने का समय, तत्प्रतापसूर्यस्य=उसके प्रतापरूपी सूर्य का, सकन्धराकम्पम्=कन्धों को हिलाता हुआ, सम्भाव्यते=सम्भावना की जाती है, साहाय्यम्=सहायता, साक्षात्=प्रत्यक्ष रूप से स्वयम्, शिवः=भगवान् शङ्कर, सहासम्=हँसीपूर्वक, खपुष्पायितः=आकाश-कुसुम के जैसा, शशश्रृङ्गायितः=खरगोश के सींग जैसा, कमठीस्तन्यायितः=कछुई के स्तन के समान, सरीसृपश्रवणायितः=सर्प के कान के सदृश, भेकरसनायितः=मेढक की जीभ के समान, वन्ध्यापुत्रायितः=वन्ध्या (बाँझ स्त्री) के पुत्र के समान, एनम्=शिवाजी को, रक्षिष्यति=रक्षा करेगा, दृश्यताम्=देखिये, पाशैः=जालों या रस्सियों से, चपेटैः=थप्पड़ों से, ताड्यमानः=मारते हुए, नीयते=ले जाया जायेगा।

हिन्दी—उसके बाद शिवाजी के महाप्रताप को जानकर, यवन-सेनापति के कुछ भयभीत-सा हो जाने पर और शिवाजी के शत्रुओं की अवमानना सुनकर कुछ कुपित जैसा हो जाने पर तथा दाहिने हाथ के अँगूठे और तर्जनी से मूँछ के अग्रभाग पर हाथ फेरने पर तानरङ्ग ने पुनः निवेदन किया—

किन्तु आज सिंह के साथ शिवाजी का सामना है, अतः मैं ऐसा मानता हूँ कि यह उनके प्रताप-सूर्य के अस्त होने का समय है।

यह सुनकर सन्तुष्ट हुआ-सा यवन-सेनापति कन्धों को हिलाता हुआ बोला—ठीक है, इस युद्ध में किसकी विजय की सम्भावना है ?

तानरङ्ग ने कहा—श्रीमन् ! अगर शिवाजी की सहायता स्वयं भगवान् शङ्कर न करें तो विजयपुर की ही जीत होगी।

तब हँसते हुए अफजलखान ने कहा—अच्छा, आकाशकुसुम के समान, खरगोश के सींग के सदृश, कछुई के स्तन जैसा, सर्प के कान के समान, मेढक की जीभ जैसा और वन्ध्या के पुत्र की तरह शङ्कर भी कोई चीज है, जो उसकी रक्षा करेगा ? देखना कल ही जाल अथवा रस्सी में बाँधकर हम लोग उसे थप्पड़ मारते हुए विजयपुर ले जायेंगे।

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में 'प्रतापसूर्यस्य' इस स्थल पर रूपकालङ्कार है।

'खपुष्पायितः' से लेकर 'बन्ध्यापुत्रायितश्च' पर्यन्त आकाशकुसुम, शशशृङ्ग, कमठीस्तन, सर्प-कर्ण, भेकरसना और वन्ध्यापुत्र को भगवान् शिव के उपमान के रूप में अभिहित किया गया है, किन्तु 'इव' वाचक शब्द नहीं हैं। अतः यहाँ लुप्तोपमालंकार है ॥ ३९ ॥

—इति सकष्टमाकर्ण्य, "स्यादेवं भगवन् !" इति कथयति तानरङ्गे अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्—'भो-भो योद्धारः ! सूर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्चाऽपि सहस्राणि सादिनां दशाऽपि च सहस्राणि पत्तीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथ-पण्डित-द्वाराऽऽहूतोऽस्ति मया शिव-वराकः। तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः, अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूलीकरिष्यामः। यद्यप्येवं स्पष्टमुदीरणं राजनीति-विरुद्धम्, तथाऽपि मदावेशस्तु न प्रतीक्षते विवेकम्'।

व्याख्या—इति=एतद्, सकष्टम्=सपीडम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, स्यादेवं भगवन् !=सम्भवोऽयमपि श्रीमन् ! इति=इत्थम्, कथयति=वदति, तानरङ्गे=गौरसिंहे, अभिमानपरवशः=गर्वनिर्भरः, सः=यवनसेनापतिः, स्वसहचरान्=निजसैनिकान्, सम्बोध्य=अभिमुखीकृत्य, पुनः=भूयः, आदिशत्=समादिदेश, भो भो योद्धारः=सैनिकाः ! सूर्योदयात्=रव्युदयात्, प्रागेव=पूर्वमेव, भवन्तः=श्रीमन्तः, पञ्चापि सहस्राणि, सादिनाम्=वाजिनाम्, दशाऽपि च सहस्राणि पत्तीनाम्=पदातीनाम्, सज्जीकृत्य=सुसज्जितान् विधाय, युद्धाय=समराय, तिष्ठत=प्रतीक्षध्वम्, गोपीनाथपण्डितद्वारा=एतन्नामकपण्डितेन, आहूतोऽस्ति=समाकारितो विद्यते, मया=अपजलखानेन, शिववराकः=पामरः शिवः, तद्, यदि=चेत्, विश्वस्य=विश्वासं कृत्वा, सः=शिववीरः, समागच्छेत्=समाव्रजेत्, ततस्तु=तदा तु, बद्ध्वा=बन्दीकृत्य, जीवन्तम्=प्राणान् धारयन्तमेव, नेष्यामः=प्रापयिष्यामः, अन्यथा तु, सदुर्गम्=दुर्गसहितम्, एनम्=शिवम्, धूलीकरिष्यामः=धूलिसात् विधास्यामः, यद्यपि, एवम्=इत्थम्, स्पष्टम्=अगोप्यम्, उदीरणम्=कथनम्, राजनीतिविरुद्धम्=नृपनयविपरीतम्, तथापि=पुनरपि, मदावेशस्तु=ममोत्साहस्तु, न=नहि, प्रतीक्षते=प्रतीक्षां करोति, विवेकम्=बौद्धिकताम्, इति।

समासः—कष्टेन सहितं सकष्टम्। अभिमानस्य परवशः अभिमानपर-

वशः । सह चरतीति सहचरस्तान् सहचरान् । सूर्यस्य उदयः सूर्योदयः, तस्मात् सूर्योदयात् । दुर्गेन सहितं सदुर्गम् ।

कोषः—'अश्वारोहास्तु सादिनः' इत्यमरः । 'पदातिपत्तिपदगपादातिकपदातयः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—आदिशत्—आ + दिश् + लङ् + तिप् । विश्वस्य—वि + श्वस् + क्त्वा + ल्यप् ।

शब्दार्थ—इति=इतना, सकष्टम्=क्लेशपूर्वक, स्यादेवम्=ऐसा हो सकता है, कथयति=कहने पर, अभिमानपरवशः=अहङ्कार के वशीभूत, सम्बोध्य=सम्बोधित करके, आदिशत्=आदेश दिया, पञ्चापि सहस्राणि=पाँचों हजार, सादिनाम्=अश्वारोहियों के, दशापि सहस्राणि=दशों हजार, पत्तीनाम्=पदातियों (पैदलों) के, सज्जीकृत्य=तैयार करके, तिष्ठत=प्रतीक्षा करो, आहूतः=बुलाया गया, शिववराकः=बेचारा शिवाजी, विश्वस्य=विश्वास करके, समागच्छेत्=आ जाय, बद्ध्वा=बाँधकर, जीवन्तम्=जीवित, नेष्यामः=ले चलेंगे, धूलीकरिष्यामः=धूलि में मिला देंगे, उदीरणम्=कहना, राजनीतिविरुद्धम्=राजनीति के विरुद्ध, मदावेशः=मेरा आवेश (जोश या उत्साह), न प्रतीक्षते=प्रतीक्षा नहीं करता है, विवेकम्=कर्तव्याकर्तव्य विचार को ।

हिन्दी—इतना कष्टपूर्वक सुनकर 'ऐसा हो सकता है, श्रीमन् !' तानरङ्ग के यह कहने पर अहङ्कार के वशीभूत होकर उसने अपने सहचरों को सम्बोधित करके पुनः आदेश दिया—हे सैनिको ! आप लोग कल सूर्योदय से पूर्व ही पाँचो हजार घुड़सवारों और दसों हजार पैदल सैनिकों को सजाकर युद्ध करने के लिए तैयार रहना । गोपीनाथ पण्डित द्वारा मैंने बेचारे शिवाजी को बुलाया है । अगर वह विश्वास करके आ जायेगा, तब तो बाँधकर जीवित ही ले चलेंगे । अन्यथा दुर्गसहित उसे धूल में मिला देंगे । यद्यपि इस प्रकार सुस्पष्ट समुद्घोष करना राजनीति के विपरीत है, तथापि मेरा आवेश (उत्साह) विवेक की प्रतीक्षा नहीं करता है ।। ४० ।।

तदवधार्य समस्तक-कूर्चान्दोलनम्—'यदाज्ञाप्यते यदाज्ञाप्यते' इति वाचां धारासम्पातैरिव स्नापयत्सु पारिषदेषु, 'गोपनीयोऽयं वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?' इति दुर्मनायमानेष्विव च अकस्मादेव प्रविश्य

सूदेनोक्तम्—'श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमयः'। तत् श्रुत्वा 'आ ! एवं किलैतत्' इति सोत्प्रासं सविस्मयं सकूर्चोद्धूननं सोपबर्हताडनमुच्चार्य सपद्युत्थाय, 'पुनरागम्यताम्' इति तानरङ्गं विसृज्य सेनापतिरन्तः प्रविवेश। तानरङ्गश्च यथागतं निववृते।

इतस्तु प्रतापदुर्गे विहिताहार-व्यापारे रजत-पर्य्यङ्किकामेकामधिष्ठिते किञ्चित् तन्द्रा-परवशे इव गोपीनाथे, शिववीरः शनैरुपसृत्य प्रणम्य, उपाविशदवोचच्च—'अहो ! भाग्यमस्माकं यदालयं युष्मादृशा भूदेवाः स्वचरणरजोभिः पावयन्ति'—इति।

व्याख्या—तदवधार्य=तच्छ्रुत्वा, समस्तककूर्चान्दोलनम्=सशिरोदाढिकाकम्पम्, 'यदाज्ञाप्यते=यदादिश्यते ? इति, वाचाम्=गिराम्, धारासम्पातैरिव=मूसलाधारवृष्टिभिरिव, स्नापयत्सु=स्नानं कारयत्सु, पारिषदेषु=सभासदेषु, 'गोपनीयोऽयम्=अतिगोप्योऽयम्, वृत्तान्तः=समाचारः, कथम्=केन प्रकारेण, स्पष्टम्=प्रत्यक्षतः, कथ्यते=निगद्यते' इति, दुर्मनायमानेष्विव=विमनायमानेष्विव, च, अकस्मादेव=सहसैव, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, सूदेन=पाचकेन, उक्तम्=निगदितम्, श्रीमन् !=भगवन् ! व्यत्येति=अवसानमेति, भोजनसमयः=आहारकालः, तत् श्रुत्वा=एतन्निशम्य, आः, एवम्, किलैतत्=किमेवम् ? इति सोत्प्रासम्=उत्साहसहितम्, सविस्मयम्=साश्चर्यम्, सकूर्चोद्धूननम्=श्मश्रूल्लसनेन सह, सोपबर्हताडनम्=उपधानप्रहारेण साकम्, उच्चार्य=निगद्य, सपदि=तत्क्षणम्, उत्थाय=उत्तिष्ठितो भूत्वा, 'पुनः=भूयः, आगम्यताम्=आगच्छतु' इति=एवम्, तानरङ्गम्=तन्नामकं गायकं गौरसिंहं वा, विसृज्य=प्रस्थाप्य, सेनापतिः=अपजलखानः, अन्तः प्रविवेश=अन्तर्जगाम। तानरङ्गः=गायकः, च, यथागतं=यथा यातम्, निववृत्ते=प्रत्यावृत्तः।

इतस्तु, प्रतापदुर्गे=एतद्दुर्गे, विहिताहारव्यापारे=कृतभोजनव्यापारे, रजतपर्यङ्किकाम्=रजतास्कन्दिकाम्, एकाम्=केवलाम्, अधिष्ठिते=विराजमाने, किञ्चिद्=ईषद्, तन्द्रापरवशे इव=निद्रावशीभूते इव, गोपीनाथे=एतन्नामके पण्डिते, शिववीरः=महाराष्ट्राधीश्वरः, शनैः=मन्दम्, उपसृत्य=उपगम्य, प्रणम्य=नमस्कृत्य, उपाविशत्=उपविष्टः, अवोचत्=जगाद, च, 'अहो ! अस्माकम्=शिववीरस्य, भाग्यम्=सौभाग्यम्, यद्, आलयम्=गृहम्,

युष्मादृशाः=भवत्सदृशाः, भूदेवाः=विप्राः, स्वचरणरजोभिः=निजपाद-धूलिभिः, पावयन्ति=पूतं कुर्वन्ति, इति।

समासः—मस्तककूर्चयोः आन्दोलनम्, तेन सहितम् इति समस्तककूर्चान्दोलनम्। अदुर्मनसो दुर्मनसो भवन्तीति दुर्मनायमानाः, तेषु दुर्मनायमानेषु। कूर्चस्य उद्धूननम्, तेन सहितम् इति सकूर्चोद्धूननम्। उपबर्हे ताडनम्, तेन सहितं सोपबर्हताडनम्। विहितः आहारव्यापारः येन, तस्मिन् विहिताहार-व्यापारे।

व्याकरणम्—तदवधार्य—तद्+अव्+धृ+ल्यप्। स्नापयत्सु—स्ना+णिच्+पुक्+शतृ (सप्तमी ब० व०)। गोपनीयः—गुप्+अनीयर्। दुर्मनाय-मानेषु—दुर्+मनस्+क्यङ्+शानच् (सप्तमी ब० व०)। व्यत्येति—वि+अति+इण्+लट्+तिप्। विसृज्य—वि+सृज्+ल्यप्। प्रविवेश—प्र+विश्+लिट्+तिप्। अधिष्ठिते—अधि+स्था+क्त (सप्त० वि०)। उपसृत्य—उप+सृ+ल्यप्। उपाविशत्—उप्+विश्+लङ्+तिप्।

शब्दार्थ—तदवधार्य=यह सुनकर, समस्तककूर्चान्दोलनम्=शिर और दाढ़ी हिलाने के साथ, धारासम्पातैः=मूसलाधार वृष्टि से, स्नापयत्सु=स्नान कराने पर, पारिषदेषु=सभासदों के, गोपनीयः=छिपाने योग्य, स्पष्टम्=प्रत्यक्षरूप में, कथ्यते=कहा जा रहा है, दुर्मनायमानेषु=कुछ रुष्ट जैसे होने पर, सूदेन=पाचक के द्वारा, व्यत्येति=समाप्त हो रहा है, सोत्प्रासम्=हास-पूर्वक, सकूर्चोद्धूननम्=दाढ़ी हिलाते हुए, सोपबर्हताडनम्=मसनद पर हाथ पटकते हुए, उच्चार्य=उच्चारण करके, सपदि=शीघ्र ही, उत्थाय=उठकर, विसृज्य=भेजकर, अन्तः प्रविवेश=अन्दर प्रवेश किया, यथागतम्=जैसे आया था, निववृते=लौट आया, विहिताहारव्यापारे=भोजन कर चुकने पर, रजतपर्यङ्किकाम्=चाँदी के पलङ्ग पर, अधिष्ठिते=बैठने पर, तन्द्रापरवशे=अलसाये हुए, उपसृत्य=पास जाकर, उपाविशत्=बैठ गया, युष्मादृशाः=आपके समान, भूदेवाः=ब्राह्मण, स्वचरणरजोभिः=अपने चरण की धूलियों से, आलयम्=घर को, पावयन्ति=पवित्र करते हैं।

हिन्दी—यह सुनकर सभासदों के शिर और दाढ़ी हिला-हिलाकर 'जो आज्ञा, जो आज्ञा' यों मानो वाणियों की मुसलाधार वृष्टि से स्नान-सा कराने पर तथा यह गोपनीय बात स्पष्टरूप से कैसे कही जा रही है, यह सोचकर कुछ रुष्ट जैसा हुए पाचक (रसोइये) ने प्रवेश करके कहा—'महाराज!

खाने का समय बीत रहा है'। यह सुनकर थोड़ा मुस्कराकर, विस्मयपूर्वक दाढ़ी हिलाकर, मसनद पर हाथ पटककर 'ओह! क्या ऐसा है' यह कहकर तानरङ्ग को 'पुनः आइयेगा' कहकर विदा देकर सेनापति ने अन्दर प्रवेश किया और तानरङ्ग जैसे आया था उसी मार्ग से वापस लौट गया।

इधर प्रताप दुर्ग में जब गोपीनाथ पण्डित भोजन करके एक चाँदी की पलङ्ग पर लेटे ऊँघ रहे थे, तब शिवाजी धीरे से पास जाकर उन्हें प्रणाम करके बैठ गये और बोले—अहो! हमारा सौभाग्य है कि आप जैसे ब्राह्मण मेरे घर को अपनी चरणधूलि से पवित्र करते हैं॥ ४१॥

अथ तयोरेवमभूवन्नालापाः—

गोपीनाथः—'राजन्! कोऽत्र सन्देहः सर्वथा भाग्यवानसि, परं साम्प्रतं नाऽहं पण्डितत्वेन कवित्वेन वा समायातोऽस्मि, किन्तु यवन-राजदूतत्वेन। तत् श्रूयतां यदहं निवेदयामि।'

शिववीरः—'शिव! शिव! खलु खलु खल्विदमुक्त्वा, येषां श्रीमतां चरणेनाऽङ्कितं विष्णोरपि वक्षःस्थलमैश्वर्य-मुद्रयेव मुद्रितं विभाति; न तेषां ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकराणां यवन-कैङ्कर्य-कलङ्क-पङ्को युज्यते, यं शृण्वतोऽपि मम स्फुटत इव कर्णौ। तथाऽपि कुलीना निर-भिमाना भवन्ति – इति आनीतश्चेत् कश्चित् सन्देशः, तदेष आज्ञाप्यतां श्रीमच्चरण-कमल-चञ्चरीकः।'

गोपीनाथः—'वीर! कलिरेष कालः, यवनाऽऽक्रान्तोऽयं भारत-भूभागः, तन्नाऽस्माकं तथा तानि तेजांसि, यथा वर्णयसि। साम्प्रतं तु विजयपुराधीश-वितीर्णां भृतिं भुञ्जे इति तदाज्ञामेव परिपालयामि। तत् श्रूयतां तदादेशः।'

शिववीरः—'आर्य! अवदधामि।'

व्याख्या—अथ=तदनन्तरम्, तयोः=शिववीरगोपीनाथयोः, एवम्= इत्थम्, अभूवन्=सञ्जाताः, आलापाः=वार्ताः—

गोपीनाथः—राजन्!=स्वामिन्! कः, अत्र=अस्मिन् कथने, सन्देहः= संशयः, सर्वथा=समस्तप्रकारेण, भाग्यवान्=सौभाग्यशाली, असि=वर्तसे, परम्=किन्तु, साम्प्रतम्=सम्प्रति, न=नहि, अहं=गोपीनाथः, पण्डित-

त्वेन=विद्वद्रूपेण, कवित्वेन=कविरूपेण, वा=अथवा, समायातः=आगतः, अस्मि, किन्तु, यवन-राजदूतत्वेन=यवनपतेः सन्देशवाहकत्वेन, तत्=अत एव, श्रूयताम्=शृणोतु, यत्, अहम्, निवेदयामि=निवेदनं करोमि।

शिववीरः—शिव, शिव, खलु खलु खल्विदमुक्त्वा=ईदृग् न वाच्यम्, येषां श्रीमताम्=पूज्यानाम्, चरणेनाऽङ्कितम्=पादेन चिह्नितम्, विष्णोरपि=लक्ष्मीपतेरपि, वक्षःस्थलम्=उरः, ऐश्वर्यमुद्रयेव=सौभाग्यशोभयेव, मुद्रितम्=अङ्कितम्, विभाति=शोभते, न तेषाम्, ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणाम्=द्विजान्वयपद्मदिनकराणाम्, यवनकैङ्कर्यकलङ्कपङ्कः=तुरुष्कसेवादोषमलीमसः, युज्यते=युक्तं प्रतिभाति, यम्, शृण्वतोऽपि=श्रवणनिरतस्यापि, मम=शिवस्य, स्फुटतः=भिद्यत इव, कर्णौ=श्रोत्रौ, तथापि=पुनरपि, कुलीनाः=सद्वंशीयाः, निरभिमानाः=अहङ्काररहिताः, भवन्ति=सम्पद्यन्ते, इति=इत्थम्, विचार्य, आनीतश्चेत्=समानीतश्चेत्, कश्चित्, सन्देशः=कथनीयवाक्यसन्दोहः, तदेषः, आज्ञाप्यताम्=उच्यताम्, श्रीमच्चरणकमलचञ्चरीकः=त्वत्पादारविन्दभ्रमरः।

गोपीनाथः—वीर !=शूर ! एषः=अयम्, कलिकालः=कलियुगः, अयम्=एषः, भारतभूभागः=भारतवर्षस्य भूप्रदेशः, यवनाक्रान्तः=यवनैः सम्पीडितः तत्=अत एव, अस्माकम्=विप्राणाम्, तानि, तेजांसि=बलानि, तथा न यथा, वर्णयसि=वर्णनं करोषि, साम्प्रतं तु=इदानीन्तु, विजयपुराधीशवितीर्णां=विजयपुरेश्वरप्रदत्ताम्, वृत्तिम्=वेतनम्, भुञ्जे=भोगं करोमि, जीवननिर्वाहं करोमीत्याशयः, इति, तदाज्ञाम्=तदादेशम्, एव, परिपालयामि=धारयामि, तत्=अत एव, तदादेशः=तस्य आज्ञा, श्रूयताम्=आकर्ण्यताम्।

शिववीरः—आर्य !=द्विजश्रेष्ठ ! अवदधामि=सतर्कोऽस्मि।

समासः—ऐश्वर्यस्य मुद्रया ऐश्वर्यमुद्रया। ब्राह्मणस्य कुलमेव कमलम्, तस्य दिवाकराणां ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणाम्। यवनानां कैङ्कर्यमेव कलङ्कपङ्कः यवनकैङ्कर्यकलङ्कपङ्कः। श्रीमतां चरणकमलानां चञ्चरीकः श्रीमच्चरणकमलचञ्चरीकः। यवनैः आक्रान्तः यवनाक्रान्तः। विजयपुरस्य अधीशेन वितीर्णा, तां विजयपुराधीशवितीर्णाम्।

व्याकरणम्—आलापाः—आङ्+लप्+घञ् (प्र० वि० ब०)। पण्डितत्वेन—पण्डा+इतच्=पण्डित+त्व=पण्डितत्वेन (तृ० ए० व०)। कवित्वेन—कवि+त्व (तृ० ए० व०)। 'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' इस वार्तिक

से पण्डितत्वेन और कवित्वेन में तृतीया विभक्ति हुई है। समायातः—सम्+आङ्+या+क्त। श्रीमताम्—श्री+मतुप् (ष० ब० व०)। विभाति—वि+भा दीप्तौ+लट्+तिप् (प्र० पु० ए० व०)। शृण्वतः—श्रु+क्तवतु। स्फुटतः—स्फुट विकसने+लट्+तस् (प्र० पु० द्वि० व०)। आनीतः—आङ्+नी+क्त। आज्ञाप्यताम्—आ+ज्ञा+णिच्+पुक्+लोट्। आक्रान्तः—आङ्+क्रमु पादविक्षेपे+क्त। वितीर्णा—वि+तृ+क्त। अवदधामि—अव+धा+लट्+मिप् (उ० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, तयोः=उन दोनों (शिववीर एवं गोपीनाथ) में, आलापाः=बातचीत, अत्र=इस कथन में, सन्देहः=संशय, सर्वथा=समस्त प्रकार से, भाग्यवान्=सौभाग्यशाली, पण्डितत्वेन=विद्वान् के रूप में, कवित्वेन=कवि रूप में, समायातोऽस्मि=आया हूँ, यवनराजदूतत्वेन=यवनराज के दूत के रूप में, श्रूयताम्=सुनो, खलु=मत, यह निश्चय और निषेध दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है, उक्त्वा=कहकर, श्रीमताम्=महानुभावों से, ऐश्वर्यमुद्रया=गौरवचिह्न से, मुद्रितम्=अङ्कित, विभाति=शोभित होता है। ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणाम्=विप्र-कुल रूपी कमल के सूर्य के समान, यवनकैङ्कर्यकलङ्कपङ्कः=यवनों की सेवा से उत्पन्न कलङ्करूपी कीचड़, शृण्वतः=सुनते हुए, स्फुटतः=फूट रहे हैं, निरभिमानाः=अभिमान रहित, आनीतः=लाया गया है, आज्ञाप्यताम्=आज्ञा दीजिये, श्रीमच्चरणकमलचञ्चरीकः=श्रीमान् के चरणरूपी कमलों का भ्रमर, कलिकालः=कलियुग, यवनाक्रान्तः=यवनों से आक्रान्त, साम्प्रतम्=इस समय, विजयपुराधीशवितीर्णाम्=विजयपुर के स्वामी द्वारा दी गई, भृतिं=वेतन को, भुञ्जे=भोगता हूँ, श्रूयताम्=सुनो, अवदधामि=सतर्क हूँ।

हिन्दी—इसके बाद दोनों (शिववीर और गोपीनाथ) में इस प्रकार वार्तालाप प्रारम्भ हुआ—

गोपीनाथ—राजन्! इसमें क्या सन्देह है? आप वस्तुतः सौभाग्यशाली हैं। किन्तु इस समय मैं पण्डित अथवा कवि के रूप में नहीं, अपितु यवनराज के दूत के रूप में आया हूँ, अतः मैं जो निवेदन करता हूँ, उसे सुनिये।

शिववीर—शिव! शिव! ऐसा मत कहें। जिन आप लोगों के चरण से अङ्कित होने से भगवान् विष्णु का वक्षःस्थल भी गौरव के चिह्न से मुद्रित-सा सुशोभित होता है, उन विप्र-कुल रूपी कमल के लिए सूर्य जैसों को यवनों की

नौकरीरूप कलङ्क-कीचड़ शोभा नहीं देता, जिसे सुनकर भी मेरे कर्ण-युगल फट रहे हैं ! यह सत्य है कि कुलीन लोग अभिमान रहित होते हैं । इसलिये यदि आप कोई सन्देश लाये हों तो अपने चरणकमलों के भ्रमर इस जन को आदेश दीजिये ।

गोपीनाथ—वीर ! यह कलियुग है, भारतभूमि यवनों से आक्रान्त है, अतः हमलोगों में जैसा आप वर्णन कर रहे हैं, वैसा तेज नहीं रहा । इस समय विजयपुर के नरेश द्वारा दिये गये वेतन से अपना जीवन निर्वाह कर रहा हूँ और उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हूँ, अतः उनका आदेश सुनिये ।

शिववीर—आर्य ! मैं सावधान हूँ ।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में उत्प्रेक्षा और रूपकालङ्कारों की अधिकता है । अपनी मर्यादा का परित्याग कर आश्रयदाता यवनों के आदेश का परिपालन करने वाले ब्राह्मणों पर शिववीर द्वारा किये गये कटाक्ष से ग्रन्थकार ने तत्का-लीन ब्राह्मण-समाज के अपकर्ष को प्रस्तुत किया है ॥ ४२ ॥

गोपीनाथः—'कथयति विजयपुरेश्वरो यद्—वीर ! परित्यज नवा-मिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वदपेक्षयाऽत्यन्तमधिकं बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोषः, महती सेना, बहूनि दुर्गाणि, बहवश्च वीराः सन्ति । तच्छुभमात्मन इच्छसि चेत्, त्यक्त्वा निखिलां चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, करप्रदत्तामङ्गीकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम् । मत्तः प्राप्त-पदश्चिरं जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं निहतः कथावशेषः संवत्स्र्यसि । तत् केवलं त्वयि दययैव सन्देशं प्रेषयामि, अङ्गीकुरु । मा स्म वृद्धायाः प्रसविन्या रजतश्वेतां पक्ष्मपङ्क्तिमश्रु-प्रवाह-दुर्दिने पातय'—इति ।

व्याख्या—गोपीनाथः=तन्नामको जनः, कथयति=वदति, विजयपुरेश्वरः= बीजापुरसुलतानाभिधानेन प्रथितः, यद्, वीर !=भटवर ! परित्यज=मुञ्च, नवामिमाम्=नूतनामिमाम्, चञ्चलताम्=अस्थिरताम्, अस्माभिः=राजा-धिराजैः, सह=साकम्, युद्धस्य=समरस्य, त्वदपेक्षया=भवदपेक्षया, अत्यन्त-मधिकम्=प्रभूतम्, बलिनः=बलसम्पन्नाः, वयम्=यवनाः, प्रवृद्धोऽत्र= बहुसङ्ख्यकोऽत्र, कोषः=धनानि, महती=विशाला, सेना=पृतना, बहूनि= अनेकानि, दुर्गाणि=प्राचीराणि, बहवश्च=बहुसङ्ख्यकाश्च, वीराः=भटाः,

सन्ति = वर्तन्ते । तत्, शुभम् = कल्याणम्, आत्मनः = स्वस्य, इच्छसि = वाञ्छसि, चेत् = यदि, त्यक्त्वा = परित्यज्य, निखिलाम् = समस्ताम्, चञ्चलताम् = चपलताम्, शस्त्रम् = आयुधम्, दूरतः = दूरात्, परित्यज्य = विमुच्य, करप्रदत्ताम् = करदानम्, अधीनत्वमिति भावः, अङ्गीकृत्य = स्वीकृत्य, समागच्छ = आयाहि, मत्सभायाम् = अस्माकं परिषदि, मत्तः = यवनशासकात्, प्राप्तपदः = लब्धप्रतिष्ठितस्थानकः, चिरम् = बहुकालम्, जीविष्यसि = जीवनं धारयिष्यसि, अन्यथा तु, सदुर्दंशम् = दुर्दशासहितम्, निहतः = व्यापादितः, कथावशेषः = वृत्तान्तमात्रशेषः, संवत्स्र्यसि = भविष्यसि, तत् केवलम् = मात्रम्, दययैव = कृपयैव, सन्देशम् = सूचनाम्, प्रेषयामि = प्रहिणोमि, अङ्गीकुरु = स्वीकुरु । मा स्म = न च, वृद्धायाः = जरत्याः, प्रसविन्याः = मातुः, रजतश्वेताम् = रजतसमशुभ्राम्, पक्ष्मपङ्क्तिम् = भ्रूराजिम्, अश्रुप्रवाहदुर्दिने = लोचनजलधारासारे, पातय = मज्जय, इति ।

समासः—विजयपुरस्य ईश्वरः विजयपुरेश्वरः । करस्य प्रदत्ता, तां करप्रदत्ताम् । प्राप्तं पदं येन सः प्राप्तपदः । मम सभायाम् इति मत्सभायाम् । दुर्दशया सहितं सदुर्दशम् । रजत इव श्वेतां रजतश्वेताम् । पक्ष्मणोः पङ्क्ति पक्ष्मपङ्क्तिम् । अश्रूणां प्रवाहेण दुर्दिने अश्रुप्रवाहदुर्दिने ।

व्याकरणम्—परित्यज—परि + त्यज् + लोट् + सिप् (म० पु० ए० व०) । चञ्चलताम्—चञ्चल + तल् + टाप् । अस्माभिः सह—'सहयुक्तेऽप्रधाने' इस पाणिनीय सूत्र से 'सह' के योग में तृतीया विभक्ति हुई है । बलिनः—बल् + णिनि + जस् । प्रवृद्धः—प्र + वृधु वर्धने + क्त । त्यक्त्वा—त्यज् + क्त्वा । दूरतः—यहाँ पञ्चमी के अर्थ में तसिल् प्रत्यय है । परित्यज्य—परि + त्यज् + क्त्वा + ल्यप् । निहतः—नि + हन् + क्त । संवत्स्र्यसि—सम् + वृत + लृट् + सिप् (म० पु० ए० व०) । प्रसविन्याः—प्रसव + णिनि (ष० ए० व०) । पातय—पत् + णिच् + लोट् + सिप् (म० पु० ए० व०) ।

शब्दार्थ—कथयति = कहता है, विजयपुरेश्वरः = विजयपुर का अधिपति, यत् = कि, परित्यज = छोड़ दो, चञ्चलताम् = चपलता को, अस्माभिः सह = हमारे साथ, त्वदपेक्षया = तुम्हारी अपेक्षा, बलिनः = शक्तिशाली, प्रवृद्धः = समृद्ध; महती = बड़ी, त्यक्त्वा = छोड़कर, निखिलाम् = सम्पूर्ण, परित्यज्य = छोड़कर, दूरतः = दूर से, करप्रदत्ताम् = कर प्रदान करना, मत्सभायाम् = मेरी सभा में, मत्तः = मुझसे, प्राप्तपदः = पद प्राप्त किये हुए, जीविष्यसि = जीवित

रहोगे, सदुर्दशम्=दुर्दशा सहित, निहतः=मारे गये, कथावशेषः=कहानी मात्र अवशिष्ट, संवत्स्यंसि=होगे, प्रेषयामि=भेज रहा हूँ, अङ्गीकुरु=स्वीकार करो, वृद्धायाः प्रसविन्याः=वृद्धा माता की, रजतश्वेताम्=चाँदी के समान सफेद, पक्ष्मपङ्क्तिम्=आँख की बरौनियों को, अश्रुप्रवाहदुर्दिने=आँसू बहाने वाले दुर्दिन में, पातय=गिराओ, मा=नहीं।

हिन्दी—गोपीनाथ—बीजापुर के अधिपति कहते हैं कि—वीर! हमारे साथ संग्राम करने की इस नूतन चपलता को छोड़ दो, हम तुम्हारी अपेक्षा अत्यधिक शक्तिशाली हैं, हमारा कोष नितान्त समृद्ध है, हमारी सेना विशाल हैं, हमारे पास अनेक किले हैं और प्रचुर सैनिक वीर हैं। अतः यदि अपना कल्याण चाहते हो तो समस्त चपलता छोड़कर, शस्त्र का सर्वथा परित्याग कर, मुझे कर देना अङ्गीकार करके मेरी सभा में आ जाओ। मुझसे कोई अत्यन्त उच्च पद पाकर बहुत दिनों तक जीवित रहोगे। अन्यथा दुर्दशा सहित मारे जाओगे और तुम्हारी कहानी मात्र अवशिष्ट रह जायेगी। अतः केवल तुम्हारे ऊपर दया करके ही सन्देश संप्रेषित कर रहा हूँ, उसे स्वीकार करो। वृद्धा माता की रजत सदृश शुभ्र बरौनियों को अश्रु-प्रवाह रूपी दुर्दिन में मत गिराओ अर्थात् डुबाओ।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'अश्रुप्रवाहदुर्दिने' इस स्थल पर रूपकालङ्कार है। इस अनुच्छेद से यह विदित होता है कि अनेक शक्तिशाली राजा बलहीन राजाओं को जीतकर उन्हें कुछ प्रदेश शासन हेतु दे देते थे। प्रतिदान में वे निर्बल भूपतिगण स्वामी को कर प्रदान करते थे॥ ४३॥

शिववीरः—'भगवन्! कथयेदेवं कश्चिद् यवनराजः, परं किं भवानपि मामनुमन्यते—यद् ये अस्मदिष्टदेवमूर्तीर्भङ्क्त्वा, मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पक्कणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेद-पुस्तकानि विदार्य च आर्यवंशीयान् बलाद् यवनीकुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरञ्जलिं बद्ध्वा लालाटिकतामङ्गीकुर्याम्? एवं चेद् धिङ् मां कुल-कलङ्कं क्लीबम्; यः प्राणभयेन सनातनधर्म-द्वेषिणां दासेरकतां वहेत्। यदि चाऽहमाहवे म्रियेय, वध्येय ताडयेय वा, तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भवादृशां विदुषामत्र का सम्मतिः?'

गोपीनाथः—(विचार्य) 'राजन्! धर्मस्य तत्त्वं जानासि, तन्नाऽहं

स्वसम्मतिं कामपि दिदर्शयिषामि । महती ते प्रतिज्ञा, महत्तवोद्देश्य-मिति प्रसीदामितमाम् । नारायणस्तव साहाय्यं विदधातु ।'

शिववीरः—'करुणानिधान ! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारैव । तत् प्रतिज्ञायतां काऽपि सहायता ।'

गोपीनाथः—'राजन् ! कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न मामधर्मः स्पृशेत् तथैव विधास्यामि ।'

शिववीरः—'शान्तं पापम् ! कोऽत्राधर्मः ? केवलं श्वोऽस्मिन्नुद्यान-प्रान्तस्थ-पट-कुटीरे यवन-सेनापतिरपजलखान आनेयः; यथा तेनैकाकिनाऽहमेकाकी मिलित्वा किमप्यालपामि ।'

गोपीनाथः—'तत् सम्भवति ।'

व्याख्या—शिववीरः—भगवन् !=श्रीमन् ! कथयेत्=वदेत्, एवम्=इत्थम्, कश्चिद्, यवनराजः=यवननरपतिः, परम्=किन्तु, किम्, भवानपि=श्रीमानपि, माम्=शिववीरम्, अनुमन्यते=अनुज्ञायते, यद् ये, अस्मदिष्टदेव-मूर्तीः=अस्मत्प्रियदेवप्रतिमाः, भङ्क्त्वा=विभज्य, मन्दिराणि=देवायतनानि, समुन्मूल्य=मूलघातं नाशयित्वा, तीर्थस्थानानि=तीर्थास्पदानि, पक्कणीकृत्य=शबरसदनीकृत्य, पुराणानि=व्यासवचनानि, पिष्ट्वा=निष्पिष्य, वेदपुस्तकानि=श्रुतीः, विदार्य=विभेद्य, च, आर्यवंशीयान्=भारतीयान्, बलात्=हठात्, यवनीकुर्वन्ति=तुरुष्कीकुर्वन्ति, तेषामेव=एतादृशानामेव, चरणयोः=पादयोः, अञ्जलिम्=करसम्पुटम्, बद्ध्वा=संयोज्य, लालाटिकताम्=भृत्य-ताम्, अङ्गीकुर्याम्=स्वीकुर्याम् ? एवं चेद्, धिङ् माम्, कुलकलङ्कम्=वंश-दूषकम्, क्लीबम्=नपुंसकम्, यः=शिववीरः, प्राणभयेन=जीवनलोभेन, सनातनधर्मद्वेषिणाम्=आर्यधर्मविनाशिनाम्, दासेरकताम्=दासताम्, वहेत्=सन्धारयेत्, यदि=चेत्, च अहम्=शिववीरः, आहवे=युद्धे, म्रियेय=मरणं प्राप्नुयाम्, वध्येय=वधं वा प्राप्नुयाम्, ताड्येय वा=ताडनं वा प्राप्नुयाम्, तदैव, धन्योऽहम्=धन्यवादार्होऽहम्, धन्यौ=पुण्यात्मानौ, च, मम=शिववीर-स्य, पितरौ=मातापितरौ, कथ्यताम्=उच्यताम्, भवादृशाम्=भवद्विधानाम्, विदुषामत्र=सुमनसां बुधानामस्मिन् विषये, का सम्मतिः=कः परामर्शः ?

गोपीनाथः—(विचार्य=विभाव्य) राजन् !=महीपते ! धर्मस्य= सनातनमतस्य, तत्त्वम्=रहस्यम्, जानासि=अवगच्छसि, तत्=तस्मात्, न= नहि, अहम्=गोपीनाथः, कामपि स्वसम्मतिम्=निजाभिप्रायम्, दिदर्शयिषामि=दर्शयितुमभिलषामि, महती=विशाला, ते=तव, प्रतिज्ञा=शपथः, महत्=उन्नतम्, तव=भवतः, उद्देश्यम्=लक्ष्यम्, इति=एतावता, प्रसीदामितमाम्=अत्यन्तं तुष्यामि, नारायणः=विष्णुः, तव=भवतः, साहाय्यम्= सहायताम्, विदधातु=करोतु ।

शिववीरः—करुणानिधान !=दयानिधे ! नारायणः=विष्णुः, स्वयम्= सशरीरः, प्रकटीभूय=आविर्भूय, न=नहि, प्रायेण=प्रायः, साहाय्यम्= सहायताम्, विदधाति=करोति, किन्तु=परम्, भवादृशमहाशयद्वारा=भवद्विधमहापुरुषद्वारा, एव, तत्=तस्मात्, प्रतिज्ञायताम्=प्रणं विधीयताम्, काऽपि सहायता=किमपि साहाय्यम् ।

गोपीनाथः—राजन् !=भूपते ! कथ्यताम्=वदतु, किम्, अहम्= गोपीनाथः, कुर्याम्=विधेयम्, परं=किन्तु, यथा=येन प्रकारेण, न=नहि, माम्=गोपीनाथम्, अधर्मः=पापम्, स्पृशेत्=स्पर्शं कुर्यात्, तथैव=तेनैव प्रकारेण, विधास्यामि=करिष्यामि ।

शिववीरः—शान्तम्=विनष्टम्, पापम्=दोषः, कोऽत्र, अधर्मः=पापम्, केवलम्=एकमात्रम्, श्वः=आगामिनि दिवसे, अस्मिन्=एतस्मिन्, उद्यानप्रान्तस्थपटकुटीरे=उपवनोपान्तवसनगेहे, यवनसेनापतिः=तुरुष्कपृतनाध्यक्षः, अपजलखानः=एतन्नामा, आनेयः=आनेतव्यः, यथा=यस्मात्, एकाकिना तेन=सहायकरहितेन अपजलखानेन, अहम्=शिववीरः, एकाकी=जनविरहितः एको वा, मिलित्वा=सम्पर्कं विधाय, किमपि=किञ्चिद्, आलपामि= वार्तां विधास्यामि ।

गोपीनाथः—तत्=इदम्, सम्भवति=सम्भवो विद्यते ।

समासः—इष्टानां देवानां मूर्तीः इष्टदेवमूर्तीः । तीर्थानां स्थानानि तीर्थस्थानानि । वेदानां पुस्तकानि वेदपुस्तकानि । सनातनस्य धर्मस्य द्वेषिणां सनातनधर्मद्वेषिणाम् । उद्यानस्य प्रान्ते स्थितः यः पटस्य कुटीरः, तस्मिन् उद्यानप्रान्तस्थपटकुटीरे । यवनानां सेनापतिः यवनसेनापतिः ।

व्याकरणम्—कथयेत्—कथ्+वि० लिङ्+तिप् (प्र० पु० ए० व०) । अनुमन्यते—अनु+मन्+लट्+त (प्र० पु० ए० व०) । भङ्क्त्वा—भञ्जो

आमर्दने + क्त्वा। समुन्मूल्य—सम् + उत् + मूल् + क्त्वा + ल्यप्। पक्कणीकृत्य—पक्कण + च्वि + कृ + क्त्वा + ल्यप्। विदार्य—वि + दृ विदारणे + क्त्वा + ल्यप्। आर्यवंशीयान्—आर्यवंशे भवान् आर्यवंशीयान्, आर्यवंश + छ। बद्ध्वा—बध् + क्त्वा। लालाटिकताम्—ललाटं पश्यतीति लालाटिकः, तस्य भावः, ताम्। कुलकलङ्कम्—कुलस्य कलङ्कः, यः, तम्। प्राणभयेन—प्राणानां भयेन इति। वहेत्—वह् + वि० लिङ् + तिप्। म्रियेय—मृङ् प्राणत्यागे + णिच् + वि० लिङ्। वध्येय—वध् + णिच् + वि० लिङ्। ताड्येय—ताड् + णिच् + लिङ्। कथ्यताम्—कथ् + यक् + लोट्। भवादृशाम्—भवत् + दृश् + क्विन् (ष० ब० व०)। सम्मतिः—सम् + मन् + क्तिन्। दिदर्शयिषामि—दृश् + सन् + लोट् + मिप् (उ० पु० ए० व०)। प्रसीदामितमाम्—प्रसीदामि + तमाम्। साहाय्यम्—सहाय + ष्यञ्। विदधातु—वि + धा + लोट् + तिप् (प्र० पु० ए० व०)। प्रकटीभूय—प्रकट + च्वि + भू + ल्यप्। प्रतिज्ञायताम्—प्रतिज्ञा + क्यच् + लोट् (प्र० पु० ए० व०) आनेयः—आङ् + नी + यत्। मिलित्वा—मिल् + क्त्वा। आलपामि—आङ् + लप् + लोट् + मिप् (उ० पु० ए० व०)। सम्भवति—सम् + भू + लट् + तिप् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—भगवन्! = श्रीमन्! कथयेत् = कहे, यवनराजः = यवनों के राजा, अनुमन्यते = अनुमति देते हैं, अस्मदिष्टदेवमूर्तीः = हमारे इष्ट देवताओं की मूर्तियों को, भङ्क्त्वा = तोड़कर, समुन्मूल्य = मूलसहित पूर्णतया समाप्त करके, पक्कणीकृत्य = भीलों की बस्ती बनाकर, पुराणानि = पुराणों को, पिष्ट्वा = पीसकर, वेदपुस्तकानि = ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद—इन चार वेदों को, विदार्य = फाड़कर, आर्यवंशीयान् = आर्यवंश के लोगों को, यवनीकुर्वन्ति = मुसलमान बनाते हैं, बद्ध्वा = बांधकर, लालाटिकताम् = दासता को, अङ्गीकुर्याम् = स्वीकार करूँ, एवं चेत् = यदि इस प्रकार हो, कुलकलङ्कम् = कुल के कलङ्क, क्लीबम् = पुरुषार्थविहीन, प्राणभयेन = प्राणों के भय से, सनातनधर्मद्वेषिणाम् = सनातन धर्म के द्वेषियों को, दासेरकताम् = दासता को, वहेत् = ग्रहण करे, आहवे = युद्ध में, म्रियेय = मर जाऊँ, वध्येय = मार डाला जाऊँ, ताड्येय = पीड़ित होऊँ, पितरौ = माता-पिता, कथ्यताम् = कहिये, भवादृशाम् = आप जैसों की, सम्मतिः = विचार, दिदर्शयिषामि = दर्शन कराने की इच्छा करता हूँ, प्रसीदामितमाम् = अत्यन्त प्रसन्न हूँ, साहाय्यम् = सहायता, विदधातु = करें, करुणानिधान = दया के आगार, प्रकटीभूय =

प्रकट होकर, भवादृशमहाशयद्वारैव=आप जैसे महापुरुषों के द्वारा ही, प्रतिज्ञायताम्=प्रतिज्ञा करें, यथा न मामधर्मः स्पृशेत् तथैव विधास्यामि=जिससे मुझे अधर्म स्पर्श न करे वैसा ही करूँगा, शान्तं पापम्=पाप शान्त हो; उद्यानप्रान्तस्थपटकुटीरे=उपवन के किनारे स्थित तम्बू में, आनेयः=लाया जाना चाहिए, मिलित्वा=मिलकर, आलपामि=बात करूँ, सम्भवति=सम्भव है।

हिन्दी—शिववीर—श्रीमन्! कोई यवनराज ऐसा भले ही कहे, परन्तु क्या आप भी हमें यह अनुमति देते हैं कि जो हमारे इष्ट देवताओं की मूर्तियों को तोड़कर, मन्दिरों को समूल विनाशकर, तीर्थस्थानों को भीलों की बस्ती बनाकर, पुराणों को पीसकर, वेदों को फाड़कर, आर्यवंशियों को बलपूर्वक मुसलमान बनाते हैं; हम उन्हीं के चरणों में अञ्जलि बाँधकर उनकी भृत्यता स्वीकार करें? यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझ कुलकलंकी कायर को धिक्कार है, जो अपने प्राणों के भय से सनातन धर्म के शत्रुओं की सेवा करे। यदि मैं युद्ध में मर जाऊँ, मार डाला जाऊँ या पीड़ित किया जाऊँ, तो मेरा अहोभाग्य है और मेरे माता-पिता धन्य हैं। कहिये, आप जैसे विद्वान् का इस विषय में क्या परामर्श है?

गोपीनाथ—(विचार कर) राजन्! आप स्वयं धर्म-तत्त्व के ज्ञाता हैं, अतः मैं अपनी कोई सम्मति दर्शाना नहीं चाहता। आपकी प्रतिज्ञा और आपका उद्देश्य महान् है; एतावता मैं बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान् विष्णु तुम्हारी सहायता करें।

शिववीर—दयानिधे! भगवान् नारायण प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं अपितु आप जैसे महानुभावों के द्वारा ही सहायता करते हैं। इसलिये आप कोई सहायता करने की प्रतिज्ञा करें।

गोपीनाथ—राजन्! कहिये, मैं क्या करूँ? परन्तु जिस प्रकार अधर्म मुझे स्पर्श न करे, मैं वैसा ही करूँगा।

शिववीर—पाप शान्त हो। इसमें अधर्म की क्या बात है? केवल कल इसी उद्यान के किनारे पर संस्थित तम्बू में यवनसेनापति अफजलखान लाये जाने चाहिए, जिससे मैं एकाकी (अकेले में) मिलकर कुछ बात कर सकूँ।

गोपीनाथ—यह सम्भव है।

टिप्पणी—इस अनुच्छेद से यह सुस्पष्ट विदित होता है कि तत्कालीन यवनशासकों द्वारा सनातन धर्म का समूल विनाश किया जाता रहा है। यहाँ

तक कि यवनभूपति हिन्दू धर्म के चिह्नों को भी धूलधूसरित कर हिन्दुओं को बलपूर्वक यवन (मुसलमान) बनाते थे ॥ ४४ ॥

ततः परं गोपीनाथेन सह शिववीरस्य बहुविधा आलापा अभूवन्; यैः शिववीरस्य उदारहृदयतां धार्मिकतां शूरतां चाऽवगत्य गोपीनाथोऽतितरां पर्य्यतुष्यत् ।

अथ स तमाशीर्भिरनुयोज्य यावत् प्रतिष्ठते, तावदुपातिष्ठत् ससहचरस्तानरङ्गः। गोपीनाथस्तु तमनवलोकयन्निव तस्मिन्नेव निशीथे दुर्गादवातरत् । कपट-गायको गौरसिंहस्तु शिववीरेण सह बहुश आलप्य, सेनाऽभिनिवेश-विषये च सम्मन्त्र्य, तदाज्ञातः स्ववासस्थानं जगाम ।

शिववीरोऽप्यन्य-सेनापतीन् यथोचितमादिश्य, स्वशयनागारं प्रविश्य होरात्रयं यावत् किञ्चन निद्रा-सुखमनुभूय, अल्पशेषायामेव रजन्यामुदतिष्ठत् ।

शिववीर-सेनास्तु यथासङ्केतं प्रथममेव इतस्ततो दुर्ग-प्राचीरान्तरालेषु गहन-लता-जालेषु उच्चावच-भूभाग-व्यवधानेषु सज्जाः पर्यवातिष्ठन्त । बहवोऽश्वारोहा यवन-पट-कुटीर-कदम्बकं परिक्रम्य ततः पश्चादागत्य अवसरं प्रतिपालयन्ति स्म ।

व्याख्या—ततः परम्=तदनन्तरम्, गोपीनाथेन=एतन्नामकेन जनेन, सह=साकम्, शिववीरस्य='शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितस्य, बहुविधाः=नैकप्रकाराः, आलापाः=वार्ताः, अभूवन्=सञ्जाताः, यैः=संलापैः, शिववीरस्य=तन्नामकस्य जनस्य, उदारहृदयताम्=हृदयविशालताम्, धार्मिकताम्=धर्मपरायणताम्, शूरताम्=वीरताम्, च=पुनः, अवगत्य=विज्ञाय, गोपीनाथः=तन्नामको जनः, अतितराम्=भृशम्, पर्यतुष्यत्=तृप्तिमलभत ।

अथ=अनन्तरम्, सः=गोपीनाथः, तम्=शिववीरम्, आशीर्भिः=आशीर्वचनैः, अनुयुज्य=संयोज्य, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, प्रतिष्ठते=प्रस्थानं विदधाति, तावत्=तस्मिन्नेव काले, ससहचरः=ससखः, तानरङ्गः=गौरसिंहः, उपातिष्ठत्=आगच्छत् । गोपीनाथस्तु=तन्नामको जनस्तु, तम्=तानरङ्गम्, अनवलोकयन्=न पश्यन्, इव=यथा, तस्मिन्नेव, निशीथे=अर्ध-

रात्रौ, दुर्गात्=प्रतापदुर्गात्, अवातरत्=अवारोहत्, कपटगायकः=छद्म-सङ्गीतज्ञः, गौरसिंहस्तु=तन्नामा जनस्तु, शिववीरेण='शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितेन, सह=साकम्, बहुशः=अनेकशः, आलप्य=वार्तां विधाय, सेनाभिनिवेशविषये=वाहिनीस्थितिसम्बन्धे, च=पुनः, सम्मन्त्र्य=सम्यग् विचार्य, तदाज्ञातः=शिववीरानुज्ञाधिगतः, स्ववासस्थानम्=निजनिवासगेहम्, जगाम=गतवान् ।

शिववीरोऽपि=तन्नामको जनोऽपि, अन्यसेनापतीन्=इतरपृतनाध्यक्षान्, यथोचितम्=यथायोग्यम्, आदिश्य=निर्देशं दत्त्वा, स्वशयनागारम्=निजविश्रामगृहम्, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, होरात्रयम्=घण्टात्रयम्, यावत्, किञ्चन=स्वल्पम्, निद्रासुखम्=शयनानन्दम्, अनुभूय=समधिगत्य, अल्पशेषायाम्=स्तोकावशिष्टायाम्, एव, रजन्याम्=रात्रौ, उदतिष्ठत्=उत्थितवान् ।

शिववीरसेनास्तु=शिववीरवाहिनी तु, यथासङ्केतम्=सङ्केतानुसारम्, प्रथममेव=पूर्वमेव, इतस्ततः=यत्र-तत्र, दुर्गप्राचीरान्तरालेषु=क़िलावेष्टिनीमध्येषु, गहनलताजालेषु=सान्द्रवल्लरीव्रातेषु, उच्चावचभूभागव्यवधानेषु=उन्नतभूमिप्रदेशमध्येषु, सज्जाः=सुमज्जिताः, पर्यवतिष्ठन्त=स्थिता आसन् । बहवः=भूरिशः, अश्वारोहा=सादिनः, यवनपटकुटीरकदम्बकम्=तुरुष्कवसनभवनसमूहम्, परिक्रम्य=परिभ्रम्य, ततः=तस्मात् स्थानात्, पश्चात्=अनन्तरम्, आगत्य=प्रतिनिवृत्त्य, अवसरम्=यथोचितसमयम्, प्रतिपालयन्ति स्म=प्रतीक्षन्ते स्म ।

समासः—उदारं हृदयं यस्य स उदारहृदयः, तस्य भावः, ताम् उदारहृदयताम् । सहचरेण सहितः इति ससहचरः । न अवलोकयन् इति अनवलोकयन् । कपटेन गायकः कपटगायकः । सेनायाः अभिनिवेशस्य विषयः, तस्मिन् सेनाऽभिनिवेशविषये । तेन आज्ञातः तदाज्ञातः । स्वस्य शयनस्य आगारम् तं स्वशयनागारम् । निद्रायाः सुखं निद्रासुखम् । अल्पं शेषं यस्याः सा, तस्याम् अल्पशेषायाम् । शिववीरस्य सेना शिववीरसेना । दुर्गाणां प्राचीराणाम् अन्तरालेषु इति दुर्गप्राचीरान्तरालेषु । गहनाः लताः, तासां जालानि, तेषु गहनलताजालेषु । उच्चानि अवचानि च यानि भूभागानि तेषां व्यवधानेषु इति उच्चावचभूभागव्यवधानेषु । अश्वान् आरोहन्ति ये ते अश्वारोहाः । यवनानां पटकुटीराः तेषां कदम्बकम् इति यवनपटकुटीरकदम्बकम् ।

व्याकरणम्—आलापः—आङ्+लप्+घञ्। अवगत्य—अव+गम्+क्त्वा+ल्यप्। पर्यंतुष्यत्—परि+तुष्+लङ्+तिप् (प्र० पु० ए० व०)। अनुयोज्य—अनु+युज्+क्त्वा+ल्यप्। प्रतिष्ठते—प्र+स्था+लट्+त (प्र० पु० एकवचन)। उपातिष्ठत्—उप+स्था+लङ्+तिप् (प्र० पु० एकवचन)। अवलोकयन्—अव+लोक+शतृ। अवातरत्—अव+तॄ+लङ्+तिप्। गायकः—गै+ण्वुल्। आलप्य—आङ्+लप्+क्त्वा+ल्यप्। अभिनिवेश—अभि+नि+विश+अच्। सम्मन्त्र्य—सम्+मन्त्रि+क्त्वा+ल्यप्। जगाम—गम्+लिट्+तिप् (प्र० पु० एकवचन)। आदिश्य—आङ्+दिश्+क्त्वा+ल्यप्। प्रविश्य—प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्। अनुभूय—अनु+भू+क्त्वा+ल्यप्। उदतिष्ठत्—उत्+स्था+लङ्+तिप्। पर्यवतिष्ठन्त—परि+अव+स्था+लङ्+झ (प्र० पु० बहु व०)। अश्वारोहाः—अश्व+आ+रुह्+अच्। परिक्रम्य—परि+क्रमु+क्त्वा+ल्यप्।

शब्दार्थ—ततः परम्=उसके बाद, गोपीनाथेन सह=गोपीनाथ के साथ, बहुविधाः=अनेक प्रकार की, आलापाः=बातें, उदारहृदयताम्=हृदय की विशालता को, धार्मिकताम्=धर्मपरायणता को, शूरताम्=वीरता को, अवगत्य=जानकर, पर्य्यंतुष्यद्=सन्तुष्ट हुआ, अथ=इसके बाद, सः=वह गोपीनाथ, आशीभिः=शुभाशिषों से, अनुयुज्य=योजित करके, यावत्=जब तक, प्रतिष्ठते=प्रस्थान किया, तावत्=तबतक, ससहचरः=अपने सहचर (साथी) के साथ, उपातिष्ठत्=समीप आया, अनवलोकयन्=न देखते हुए, निशीथे=अर्धरात्रि में, अवातरत्=उतरे, कपटगायकः=कपट से गायक का वेष धारण किये हुए, आलप्य=बात-चीत करके, सेनाभिनिवेशविषये=सेना की व्यूह-रचना के सम्बन्ध में, सम्मन्त्र्य=अच्छी तरह मन्त्रणा करके, तदाज्ञातः=उनकी आज्ञा प्राप्त किये हुए, जगाम=गये, आदिश्य=आदेश देकर, स्वशयनागारम्=अपने शयन-कक्ष को, प्रविश्य=प्रवेश करके, होरात्रयम्=तीन घण्टे, निद्रासुखम्=निद्रा के आनन्द को, अनुभूय=अनुभव करके, अल्पशेषायाम्=थोड़ी अवशिष्ट रहने पर ही, उदतिष्ठत्=उठ गये, शिववीरसेनाः=शिवाजी की सेनायें, दुर्गप्राचीरान्तरालेषु=किले की चहारदिवारी के अन्दर, गहनलताजालेषु=घनी झाड़ियों में, उच्चावचभूभागव्यवधानेषु=ऊँची-नीची ऊबड़-खाबड़ भूमि के मध्यभाग में, सज्जाः=सुसज्जित, पर्यवतिष्ठन्त=चारों ओर खड़ी थीं, अश्वारोहाः=घुड़सवार, यवनपटकुटीरकदम्बकम्=

यवनों के तम्बूओं को, परिक्रम्य=चक्कर लगाकर, ततः=वहां से, पश्चादागत्य =पीछे आकर, प्रतिपालयन्ति स्म=प्रतीक्षा कर रहे थे।

हिन्दी—इसके अनन्तर गोपीनाथ के साथ शिववीर (शिवाजी) की अनेक प्रकार की बातें हुईं, जिससे शिवाजी के हृदय की विशालता, धर्म-परायणता और धीरता को जानकर गोपीनाथ अत्यधिक प्रसन्न हुआ।

इसके बाद गोपीनाथ शिवाजी को अनेक शुभाशीर्वचन प्रदान कर जबतक प्रस्थान किया ही था कि तब तक अपने सहचर के साथ तानरङ्ग आ पहुँचा। गोपीनाथ उसको (तानरङ्ग को) न देखते हुए की तरह अनदेखा कर उसी अर्धरात्रि में दुर्ग (किले) से नीचे उतरा। कपट से गायक वेषधारी गौरसिंह ने शिवाजी के साथ अनेक बातें करके और सेना की व्यूह-रचना के सम्बन्ध में परामर्श करके उनकी आज्ञा प्राप्त कर अपने निवासस्थान को चला गया।

वीर शिवाजी भी अन्य सेनापतियों को यथोचित आदेश देकर, अपने शयनागार में प्रवेश कर, तीन घण्टे तक कुछ निद्रा-सुख का अनुभव कर थोड़ी अवशिष्ट रात्रि के रहते ही उठ गये।

शिवाजी की सेना तो संकेतानुसार पहले से ही इधर-उधर किले की चहारदिवारी के अन्दर, झाड़ियों के समूह में, ऊँची-नीची भूमि के मध्यभाग में सुसज्जित चारों ओर खड़ी थी। बहुत से घुड़सवार यवनों के तम्बूओं का चक्कर लगाकर, वहाँ से पीछे आकर, समुचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

टिप्पणी—शिववीरसेनास्तु·········प्रतिप्रालयन्ति स्म' इस गद्यखण्ड से सुस्पष्ट प्रतीत होता है कि तत्कालीन मराठे सेनानायकों को व्यूह-रचना का सम्यग् ज्ञान था ॥ ४५ ॥

इतश्च सूर्यप्रभाभिररुणीक्रियमाणे भूभागे अरुण-श्मश्रवोऽपि सेनाः सज्जीकृतवन्तः।

बहवो—"वयमद्य शिवमवश्यमेव विजेष्यामहे; परं तथाऽपि न जानीमहे किमिति कम्पत इव हृदयम्, अहो ! विलक्षणः प्रताप एतस्य, पवनेऽपि प्रवहति, पतत्रेऽपि पतति, पत्रेऽपि मर्मरीभवति, स एवाऽऽगत इत्यभिशङ्क्यतेऽस्माभिः। अहह !! विचित्रोऽयं वीरो, यो दुर्ग-प्राचीर-मुल्लङ्घ्य, प्रहरि-परीवारमविगणय्य, लोहार्गल-शृङ्खला-सहस्र-नद्धानि

करि-कुम्भाघात-सहानि द्वाराणि प्रविश्य, विकोशचन्द्रहासाऽसिधेनुका-रिष्टि-तोमर-शक्ति-त्रिशूल-मुद्गर-भुशुण्डी-कराणां रक्षकाणां मण्डल-मवहेल्य, प्रियाभिः सह पर्य्यङ्केषु सुप्तानामपि प्रत्यर्थिनां वक्षःस्थल-मारोहति. निद्रास्वपि तान् न जहाति, स्वप्नेष्वपि च विदारयति । कथ-मेतस्य चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्य-चिल्लीभूत-चक्षुष्काः सम-राङ्गणे स्थास्यामः ?" इति चिन्ताचक्रमारूढा अपि कथं कथमपि कैश्चित् वीरवरैर्वर्धितोत्साहाः समर-भूमिमवातरन् ।

व्याख्या—इतश्च, सूर्यप्रभाभिः = रविकिरणैः, अरुणीक्रियमाणे = रक्ततां सम्पाद्यमाने, भूभागे = महीतले, अरुणश्मश्रवोऽपि = रक्तश्मश्रवोऽपि, सेनाः = पृतनाः, सज्जीकृतवन्तः = सुसज्जिताः विहितवन्तः ।

बहवः = यवनसैनिकाः, कथयन्ति स्म—वयम् = यवनाः, अद्य = अस्मिन् दिवसे, शिवम् = शिववीरम्, अवश्यमेव = निश्चितमेव, निजेष्यामहे = विजयं प्राप्स्यामहे, परम् = किन्तु, तथाऽपि = पुनरपि, न = नहि, जानीमहे = जानीमः किमिति = किमर्थम्, कम्पते = वेपते, इव = यथा, हृदयम् = मनः, अहो ! विलक्षणः = विचित्रः, प्रतापः = तेजोराशिः, एतस्य = शिवस्य, पवनेऽपि = वायौ अपि, प्रवहति = चलति, पतत्रेऽपि = पक्षिणि अपि, पतति = उड्डीयमाने, पत्रेऽपि = शुष्कपर्णेऽपि, मर्मरो भवति = मर्मरध्वनिं कुर्वति, सः एव = शिव एव आगतः = समायातः, इति = एवम्, अभिशङ्क्यते = शङ्का विधीयते, अस्माभिः = यवनैः, अहह ! = आश्चर्यम्, विचित्रः = विलक्षणः, अयम् = मस्तिष्कोपस्थितः, वीरः = भटः, यः = शिवः, दुर्गप्राचीरम् = दुर्गप्राकारम्, उल्लङ्घ्य = उत्तीर्य, प्रहरिपरीवारम् = रक्षकगणम्, अविगणय्य = तिरस्कृत्य, लोहार्गलश्रृङ्खलासहस्र-बद्धानि = कृष्णायसार्गलश्रृङ्खलासहस्ररचितानि, करिकुम्भाघातसहानि = गज-कुम्भप्रहारसहानि, द्वाराणि = कपाटानि, प्रविश्य = प्रवेशं विधाय, विकोशचन्द्र-हासाऽसिधेनुकरिष्टतोमरशक्तित्रिशूलमुद्गरभुशुण्डीकराणाम् = नग्नखड्गाऽसिधेनु-कारिष्टितोमरशक्तित्रिशूलमुद्गरभुशुण्डीहस्तानाम्, रक्षकाणाम् = प्रहरीणाम्, मण्डलम् = समूहम्, अवहेल्य = तिरस्कृत्य, प्रियाभिः = रमणीभिः, सह = साकम्, पर्यङ्केषु = शोभनखट्वासु, सुप्तानामपि = निद्रितानामपि, प्रत्यर्थिनाम् = रिपूणाम्, वक्षःस्थलम् = उरः, आरोहति, निद्रास्वपि = सुप्तेष्वपि, तान् = शत्रून्, न = नहि, जहाति = त्यजति, स्वप्नेष्वपि = स्वप्नदर्शनकालेष्वपि, विदारयति =

विभजति भागद्वये, कथम् = केन प्रकारेण, एतस्य = शिवस्य, चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कारचाकचक्यचिल्लीभूतचक्षुष्काः = चलत्खड्गचमत्कृतिचाकचक्यक्लिन्नी-भूतनयनाः, समराङ्गणे = युद्धे, स्थास्यामः = स्थिता भविष्यामः, इति = इत्थम्, चिन्ताचक्रमारूढा अपि = चिन्तनचक्रमारूढा अपि, कथं कथमपि = येन केनाऽपि प्रकारेण, कैश्चित् वीरवरैः = भटश्रेष्ठैः, वर्धितोत्साहाः = समृद्धोत्साहाः, समर-भूमिम् = युद्धभुवम्, अवातरन् = समागच्छन् ।

समासः—सूर्यस्य प्रभाभिः सूर्यप्रभाभिः । भुवः भागः, तस्मिन् भूभागे । अरुणाः श्मश्रवः येषां ते अरुणश्मश्रवः । दुर्गस्य प्राचीरं दुर्गप्राचीरम् । प्रहरीणां परीवारं प्रहरिपरीवारम् । लोहार्गलस्य शृङ्खलानां सहस्रैः नद्धानि लोहार्गलशृङ्खलासहस्रनद्धानि । करीणां कुम्भस्य आघातसहानि करिकुम्भाघात-सहानि । विकोशः चन्द्रहासः असिधेनुका, रिष्टिः तोमरं शक्तिः त्रिशूलं मुद्गरं भुशुण्डी च करे येषाम्, तेषां विकोशचन्द्रहासासिधेनुकारिष्टितोमरशक्तित्रिशूल-मुद्गरभुशुण्डीकराणाम् । चञ्चतां चन्द्रहासानां चमत्कारस्य चाकचक्येन चिल्ली-भूतानि चक्षूंषि येषां ते चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारचाकचक्यचिल्लीभूतचक्षुष्काः । चिन्तायाः चक्रं चिन्ताचक्रम् । वर्धिता उत्साहाः येषां ते वर्धितोत्साहाः । समरस्य भूमिं समरभूमिम् ।

व्याकरणम्—अरुणीक्रियमाणे—अरुण + च्वि + कृ + णिच् + शानच् । सज्जीकृतवन्तः—सज्ज + च्वि + कृ + क्तवतु । विजेष्यामहे—वि + जि + लृट् (उ० पु० बहुवचन), 'विपराभ्यां जेः' इस सूत्र से आत्मनेपद । जानीमहे—ज्ञा अवबोधने + लट्, आत्मनेपद (उ० पु० बहुवचन) । मर्मरीभवति—मर्मर + च्वि + भू + शतृ । आगतः—आङ् + गम् + क्त । उल्लङ्घ्य—उत् + लंघि + क्त्वा + ल्यप् । अविगणय्य—अ + वि + गण् + क्त्वा + ल्यप् । नद्धानि—णह् + क्त । अवहेल्य—अव + हेला + क्त्वा + ल्यप् । प्रत्यर्थिनाम्—प्रति + अर्थिन् (ष० बहुवचन) । आरूढाः—आङ् + रुह् + क्त ।

शब्दार्थ—इतः = इधर, सूर्यप्रभाभिः = भास्कर की किरणों से, अरुणी-क्रियमाणे = लाल किये गये, भूभागे = पृथ्वी के भाग में, अरुणश्मश्रवः = लाल मूँछों वाले, सज्जीकृतवन्तः = सुसज्जित किये गये, विजेष्यामहे = जीतेंगे, जानीमहे = जानते हैं, कम्पत इव = मानो काँप रहा है, त्रिलक्षगः = अद्भुत, पतत्रे = पक्षी के, मर्मरीभवति = मर्मर ध्वनि होने पर, आगतः = आये हुए, दुर्गप्राचीरम् = किले की चहारदीवारी को, उल्लङ्घ्य = लाँघकर, प्रहरिपरी-

वारम्=पहरेदारों के समूह को, अविगणय्य=अवहेलना करके, लोहार्गल-शृङ्खलासहस्रनद्धानि=सहस्रों लोहे की जंजीरों से बँधे हुए, करिकुम्भाघात-सहानि=गजमस्तक के आघातों को सहन करने योग्य, विकोशचन्द्रहासाऽसि-धेनुकारिष्टितोमरशक्तित्रिशूलमुद्गरभुशुण्डीकराणाम्=नग्न तलवार, छुरी, रिष्टि, तोमर, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर और बन्दूक को हाथों में धारण करने वाले रक्षकों की, अवहेल्य=अवहेलना करके, प्रियाभिः सह=प्रियाओं के साथ, प्रत्यर्थिनाम्=शत्रुओं के, चञ्चच्चन्द्रहासचमत्कारचाकचिक्यचिल्लीभूत-चक्षुष्काः=चमकती हुई तलवार की चमचमाहट से चकाचौंध हुए नेत्रों वाले, समराङ्गणे=युद्धभूमि में, चिन्ताचक्रम्=चिन्ता-चक्र पर, आरूढाः=चढ़े हुए, वीरवरैः=वीरों में श्रेष्ठ, वर्धितोत्साहाः=जिसका उत्साह बढ़ाया गया है, समरभूमिम्=युद्धस्थल में, अवातरन्=उतरे।

हिन्दी—इधर सूर्य के तेज से भूमण्डल के लाल हो जाने पर लाल दाढ़ी-मूंछ वाले यवनों ने भी अपनी सेना सुसज्जित की।

"हम आज शिवाजी को अवश्य जीतेंगे, किन्तु फिर भी न जाने क्यों हृदय जैसे काँप रहा है। ओह, शिवाजी का प्रताप अत्यन्त विलक्षण है, वायु प्रवाहित होने पर भी, पक्षी के उड़ने पर भी पत्रों के खड़खड़ाने पर भी हमलोगों को 'शिवाजी आ गया' यह आशङ्का होती है। अहा! यह वीर अद्भुत है, जो किले की चहारदीवारी लाँघकर, पहरेदारों को कुछ न समझ, हजारों लोहे की जञ्जीरों से बँधे हाथी के मस्तक के आघात को भी सह सकने वाले दरवाजों में घुसकर नङ्गी तलवार, छुरी, बर्छी, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर और बन्दूक हाथ में लिये हुए पहरेदारों की अवमानना कर अपनी प्रियाओं के साथ पलङ्गों पर सोये हुए शत्रुओं के वक्षःस्थल पर चढ़ता है, निद्रा में भी उनको नहीं छोड़ता है, स्वप्न में भी विदारण करता है। इसकी चल रही तलवार की चमत्कार की चमचमाहट से चकाचौंध पड़े नेत्रों वाले हमलोग युद्धभूमि में कैसे टिक सकेंगे?' इस प्रकार की चिन्ताओं से समाक्रान्त होते हुए भी अनेक यवन-सैनिक, किसी प्रकार कुछ वीरों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर युद्धभूमि में उतरे।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'कम्पत इव हृदयम्' इस स्थल पर क्रियोत्प्रेक्षा-लंकार है। कहीं-कहीं पर वृत्त्यनुप्रास भी है। इस अनुच्छेद से शिवाजी की वीरता का ज्ञान होता है॥ ४६॥

अथ कथञ्चित् प्रकाश-बहुले संवृत्ते नभःस्थले, परस्परं परिचीयमानासु आकृतिषु, कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु, भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि-पङ्क्तिषु, चाटकैर-चकचकायितेषु कवच-चमत्कारेषु, गोपीनाथ-पण्डितो वारमेकं शिववीर-दिशि परतश्च यवन-सेनापति-दिशि गतागतं विधाय, सेनाद्वयस्य मध्य एव कस्मिंश्चित् पट-कुटीरे अपजलखानमानेतुं प्रबबन्ध ।

शिववीरोऽपि कौशेय-कञ्चुकस्याऽन्तर्लोह-वर्म्म परिधाय, सुवर्ण-सूत्र-ग्रथितोष्णीषस्याऽप्यधस्तादायसं शिरस्त्राणं संस्थाप्य, सिंह-नख-नामकं शस्त्रविशेषं करयोरारोप्य, दृढबद्ध-कटिरपजलखान-साक्षात्काराय सज्जस्तिष्ठति स्म ।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, कथञ्चित् = केनापि प्रकारेण, प्रकाशबहुले = प्रभूतप्रकाशयुक्ते, संवृत्ते = भूते, नभःस्थले = आकाशे, परस्परम् = अन्योऽन्यम्, परिचीयमानासु = संस्तवविषयतामागतासु, आकृतिषु = आकारेषु, कमलेष्विव = पद्मेष्विव विकचतामासादयत्सु = विकासमागच्छत्सु, वीरवदनेषु = भटमुखेषु, भ्रमरालिष्विव = द्विरेफमालास्विव, परितः = सर्वतः, प्रस्फुरन्तीषु = स्फुरणशीलासु, असिपङ्क्तिषु = खड्गचक्रेषु, चाटकैरचकचकायितेषु = चटकापुत्राणां चकचकमिवाचरितेषु, कवचचमत्कारेषु = उरश्छदतादृशशब्देषु, गोपीनाथपण्डितः = एतन्नामा यवनसन्देशहरः, वारमेकम् = सकृत्, शिववीरदिशि = शिवराजदिशायाम्, परतश्च = द्वितीयवारम्, यवनसेनापतिदिशि = तुरुष्कगणपदिशायाम्, गतागतम् = चङ्क्रमणम्, विधाय = कृत्वा, सेनाद्वयस्य = बलोभयस्य, मध्ये एव = अन्तराले एव, कस्मिंश्चित् = कस्मिन्, पटकुटीरे = वसनगेहे, अपजलखानमानेतुम् = यवनसेनापतिमानेतुम्, प्रबबन्ध = प्रबन्धमकरोत् ।

शिववीरोऽपि = 'शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितः जनोऽपि, कौशेयकञ्चुकस्य = दुकुलशरीरपरिवेष्टनवस्त्रस्य, अन्तः = अधस्तात्, लोहवर्म = कवचम्, परिधाय = धारयित्वा, सुवर्णसूत्रग्रथितोष्णीषस्य = काञ्चनतारविनिर्मितशिरोवेष्टनस्य, अधस्तात् = अधः, आयसम् = लोहनिर्मितम्, शिरस्त्राणम् = शिरसः रक्षाकवचम्, संस्थाप्य = सन्धार्य, सिंहनखनामकम् = एतन्नामकम्, शस्त्रविशेषम् = विशिष्टास्त्रम्, करयोः = हस्तयोः, आरोप्य = परिधाय, दृढबद्धकटिः = सन्नद्ध-

शरीरमध्यस्थभागः, अपजलखानसाक्षात्काराय = अपजलखानस्य दर्शनाय, सज्जः = सन्नद्धः, तिष्ठति स्म = उपविशति स्म ।

समासः—प्रकाशं बहुलं यस्मिंतत् प्रकाशबहुलम्, तस्मिन् प्रकाशबहुले । वीराणां वदनेषु वीरवदनेषु । यवनानां सेनापतेः दिशि यवनसेनापतिदिशि । सेनयोः द्वयम्, तस्य सेनाद्वयस्य । सुवर्णस्य सूत्रैः ग्रथितः यः उष्णीषः तस्य सुवर्णसूत्रग्रथितोष्णीषस्य । दृढेन बद्धा कटिः यस्य सः दृढबद्धकटिः । अपजलखानस्य साक्षात्काराय अपजलखानसाक्षात्काराय ।

व्याकरणम्—परिचीयमानासु–परि + चि + णिच् + शानच् (स० बहु०) । विकचताम्—विकचस्य भावः, विकच + तल् । आसादयत्सु—आङ् + सद् + णिच् + शतृ (स० ब० व०) । भ्रमरालिषु—भ्रमराणाम् आलिषु । प्रस्फुरन्तीषु—प्र + स्फुर् + शतृ + ङीप् (स० बहु० व०) । चकचकायितेषु—चकचकमिव कुर्वन्तीति चकचकायिताः, तेषु । कवचचमत्कारेषु—कवचानां चमत्कारेषु । शिववीरदिशि—शिववीरस्य दिक्, तस्याम् । परतः—पर + तसिल् । गतागतम्—गत् + क्त, आङ् + गम् + क्त । विधाय—वि + धा + क्त्वा + ल्यप् । प्रबबन्ध—प्र + बन्ध + लिट् । आनेतुम्—आङ् + नी + तुमुन् । परिधाय—परि + धा + क्त्वा + ल्यप् । आयस—अयस् + अण् । संस्थाप्य—सम् + स्था + क्त्वा + ल्यप् । आरोप्य—आङ् + रूप् + क्त्वा + ल्यप् । बद्धः—बध् + क्त । सज्जः—सज्ज् + क्त ।

शब्दार्थ :—अथ = इसके पश्चात्, कथञ्चित् = किसी प्रकार, प्रकाशबहुले = पर्याप्त प्रकाश के, संवृत्ते = फैलने पर, परिचीयमानासु = पहचाने जाते हुए, वीरवदनेषु = वीरों के मुखों के, विकचताम् = प्रफुल्लता को, आसादयत्सु = प्राप्त होने पर, भ्रमरालिषु = भ्रमरों की पङ्क्तियों के, प्रस्फुरन्तीषु = चमकने पर, चाटकैर = पक्षियों (चिड़ियों) के, चकचकायितेषु = चक-चक करने पर, कवचचमत्कारेषु = कवचों के ध्वनि करने पर, शिववीरदिशि = शिवाजी की ओर, परतः = दूसरी ओर, यवनसेनापतिदिशि = यवन-सेनापति की ओर, गतागतम् = गमनागमन, विधाय = करके, सेनाद्वयस्य = दोनों सेनाओं के, मध्य एव = मध्य में ही, पटकुटीरे = तम्बू में, प्रबबन्ध = प्रबन्ध किया, आनेतुम् = लाने के लिए, लोहवर्म = लोहे का कवच, परिधाय = पहन कर, सुवर्णसूत्रग्रथितोष्णीषस्य = सोने के तारों से बनी पगड़ी के, अधस्तात् = नीचे, आयसम् = लोहनिर्मित, शिरस्त्राणम् = पगड़ी को, संस्थाप्य = रखकर, सिंहनखनामकं

शस्त्रविशेषम् = 'सिंहनख' नामक विशिष्ट शस्त्र को, अर्थात् बघनखा को, करयोः = हाथों में, आरोप्य = धारण कर, दृढबद्धकटिः = कमर कसकर बाँधे हुए, अपजलखानसाक्षात्काराय = अपजलखान से मिलने के लिए, सज्जः = तैयार, तिष्ठति स्म = बैठे थे।

हिन्दी—इसके अनन्तर आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर परस्पर आकृतियाँ जब पहचान में आने लगीं, वीरों के मुखों के कमलों की भाँति प्रफुल्लित हो जाने पर भ्रमरों की पङ्क्ति के समान चारों ओर तलवारों की पंक्तियों से चमकने पर, कवचों के गौरैयों के चहचहाने जैसी ध्वनि करने पर गोपीनाथ पण्डित ने एक बार शिवाजी की तरफ दूसरी बार यवन-सेनापति की ओर चक्कर लगाकर दोनों सेनाओं के बीच में ही किसी तम्बू में अफजलखान को लाने का प्रबन्ध किया।

शिवाजी भी रेशमी कुर्ते के अन्दर लोहे का कवच धारण कर, सोने के तारों से बनी पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रखकर, हाथों में बघनखा पहनकर, दृढ़ता से कमर कसकर अफजलखान से मिलने के लिए तैयार बैठे थे।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में 'कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु' और 'भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असिपंक्तिषु' इन स्थलों पर उपमालंकार है॥ ४७॥

अपजलखानोऽपि च—"यदाऽहमेनं साक्षात्कृत्य, करताडनमेकं कुर्य्याम्; तदैव तालिकाध्वनि-समकालमेव अमुकामुकैः श्येनैरिवाऽभिपत्य पाशैरेष बन्धनीयः सेनया च क्षणात् तत्सेना झञ्झया घनघटेवाऽपनेया"—इति सङ्केत्य, सूक्ष्म-वसन-परिधानः, वज्रकजटितोष्णीषिकः, गल-विलुलित-पद्मराग-मालः, मुक्ता-गुच्छ-चोचुम्ब्यमान-भालः, निःश्वास-प्रश्वास-परिमथित-मद्य-गन्ध-परिपूरित-पार्श्व-देशान्तरालः, शोण-श्मश्रु-कूर्च-विजित-नूतन-प्रवालः, कञ्चुक-स्यूत-काञ्चन-कुसुम-जालः, विविध-वर्ण-वर्णनीय-शिविकामारुह्य निर्दिष्ट-पटकुटीराभिमुखं प्रतस्थे।

इतस्तु कुरङ्गमिव तुरङ्गं नर्त्तयन् रश्मिग्राह-वेषेण गौरसिंहेनाऽनुगम्यमानः माल्यश्रीक-प्रभृतिभिर्वीर-वरैर्युद्ध-सज्जैः सतर्कं निरीक्ष्य-

माणः शिववीरोऽपि तस्यैव सङ्केतितस्य समागमस्थानस्य निकटे एव सव्यकरेण वल्गामाकृष्याऽश्वमवारुधत् ।

व्याख्या—अपजलखानोऽपि=यवनसेनापतिरपि च, यदा=यस्मिन् काले, अहम्=अपजलखानः, एनम्=शिववीरम्, साक्षात्कृत्य=सम्मिल्य, करताडनमेकम्=हस्तताडनमेकम्, कुर्य्याम्=विदध्याम्, तदैव=तत्क्षणमेव, तालिकाध्वनिसमकालमेव=करतलशब्दसमसमयमेव, अमुकामुकैः=निर्दिष्ट-वीरैः, श्येनैरिवाभिपत्य=शशादनापातैरिव आक्रम्य, पाशैः=रज्जुभिः, एषः=शिववीरः, बन्धनीयः=बन्धितुं योग्यः, सेनया=पृतनया, च, क्षणात्=तत्क्षणम्, तत्सेना=शिववीरस्य वाहिनी, झञ्झया=झञ्झावातेन, घनघटेव=मेघमालेव, अपनेया=दूरे करणीया, इति=एवम्प्रकारेण, सङ्केत्य=सङ्केतं विधाय, सूक्ष्मवसनपरिधानः=सूक्ष्मवस्त्रवेषः, वज्रकजटितोष्णीषिकः=हरिक-खचितोष्णीषिकः, गलविलुलितपद्मरागमालः=कण्ठलोलपद्मरागहारः, मुक्ता-गुच्छचोचुम्ब्यमानभालः=मौक्तिकसमूहस्पष्टललाटः, निःश्वासप्रश्वासपरि-मथितमद्यगन्धपरिपूरितपार्श्वदेशान्तरालः=श्वासोच्छ्वासपरिमथितमदिरागन्ध-पूरितसमीपदेशभागः, शोणश्मश्रुकूर्चविजितनूतनप्रवालः=रक्तश्मश्रुकूर्चजितनव-पल्लवः, कञ्चुकस्यूतकाञ्चनकुसुमजालः=अङ्गरक्षकस्यूतसुवर्णपुष्पसमूहः, विविधवर्णवर्णनीयशिबिकाम्=अनेकरङ्गप्रशंसनीयपुरुषवाह्ययानम्, आरुह्य=स्थित्वा, निर्दिष्टपटकुटीराभिमुखम्=सङ्केतितवसनगेहाभिमुखम्, प्रतस्थे=प्रस्थानमकरोत् ।

इतस्तु=शिवपक्षे तु, कुरङ्गमिव=हरिणमिव, तुरङ्गम्=घोटकम्, नर्तयन्=चालयन्, रश्मिग्राहवेषेण=रज्जुग्राहवेषेण, गौरसिंहेनानुगम्यमानः=एतन्नामकसहायकेनानुव्रज्यमानः, माल्यश्रीकप्रभृतिभिः=माल्यश्रीकादिभिः, वीरवरैः=भटश्रेष्ठैः युद्धसज्जैः=समरोद्यतैः, सतर्कम्=सतर्कतापूर्वकम्, निरीक्ष्यमाणः=अवलोक्यमानः, शिववीरोऽपि=एतन्नामकोऽपि जनः, तस्यैव, सङ्केतितस्य=कृतसङ्केतस्य, समागमस्थानस्य=मिलनस्थानस्य, निकटे=समीपे एव, सव्यकरेण=वामहस्तेन, वलाम्=खलीलम्, आकृष्य=आकुञ्चय, अश्वम्=तुरङ्गम्, अवारुधत्=निरुद्धवान् ।

समासः—करयोः ताडनं करताडनम् । तालिकायाः ध्वनेः समकालमेव तालिकाध्वनिसमकालमेव । घनानां घटा घनघटा । सूक्ष्माणि वसनानि परि-धानानि यस्य सः सूक्ष्मवसनपरिधानः । वज्रकेण जटितः उष्णीषः यस्य सः

वज्रकजटितोष्णीषिकः। गले विलुलिता पद्मरागाणां माला यस्य सः गलविलुलितपद्मरागमालः। मुक्तानां गुच्छेन चोचुम्ब्यमानः भालः यस्य सः मुक्तागुच्छचोचुम्ब्यमानभालः। निःश्वासप्रश्वासाभ्यां परिमथितो यो मद्यगन्धः, तेन परिपूरितं पार्श्वदेशान्तरालं येन सः निःश्वासप्रश्वासपरिमथितमद्यगन्धपरिपूरितपार्श्वदेशान्तरालः। शोणाभ्यां श्मश्रुकूर्चाभ्यां विजितो नूतनः प्रवालः येन सः शोणश्मश्रुकूर्चविजितनूतनप्रवालः। कञ्चुके स्यूतं काञ्चनानां कुसुमानां जालं यस्य सः कञ्चुकस्यूतकाञ्चनकुसुमजालः। विविधानि वर्णानि, तेभ्यः वर्णनीया या शिविका, तां विविधवर्णवर्णनीयशिबिकाम्। निर्दिष्टः यः पटकुटीरः, तस्य अभिमुखम् निर्दिष्टपटकुटीराभिमुखम्। रश्मि गृह्णाति यः सः रश्मिग्राहः, रश्मिग्राहस्य वेषः तेन इति रश्मिग्राहवेषेण। युद्धाय सज्जाः, तैः युद्धसज्जैः। समागमस्य स्थानम्, तस्य समागमस्थानस्य।

व्याकरणम्—साक्षात्कृत्य—साक्षात्+कृ+क्त्वा+ल्यप्। अभिपत्य—अभि+पत्+क्त्वा+ल्यप्। बन्धनीयः—बन्ध्+अनीयर्। अपनेया—अप्+नी+यत्+टाप्। वसन—वस्+ल्युट् (भावे)। परिधान—परि+धा+ल्युट्। चोचुम्ब्यमानः—चुवि+यङ्+शानच्। परिमथित—परि+मथ्+क्त। विजित—वि+जि+क्त। निर्दिष्ट—निर्+दिश्+क्त। प्रतस्थे—प्र+स्था+लिट् (प्र० पु० ए० व०)। नर्तयन्—नृत्+णिच्+शतृ। अनुगम्यमानः—अनु+गम्+णिच्+शानच्। निरीक्ष्यमाणः—निर्+ईक्ष्+णिच्+शानच्। समागम—सम्+आङ्+गम्+अण्। आकृष्य—आङ्+कृष्+क्त्वा+ल्यप्। अवारुधत्—अव्+रुध्+लङ्+तिप् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—अपजलखानोऽपि च=और अफ़जलखान ने भी, यदाऽहम्=जैसे ही मैं, एनम्=शिवाजी को, साक्षात्कृत्य=देखकर, करताडनं कुर्याम्=ताली बजाऊँ. तदैव=वैसे ही, तालिकाध्वनिसमकालमेव=ताली की ध्वनि के साथ ही, अमुकामुकैः=अमुक-अमुक के द्वारा, श्येनैरिव=बाज की भाँति, अभिपत्य=झपट कर अर्थात् आक्रमण कर, बन्धनीयः=बांध लेना चाहिए, तत्सेना=उसकी सेना, झञ्झया=आँधी से, घनघटा इव=बादलों की घटा की तरह, अपनेया=हटा देनी चाहिए, इति सङ्केत्य=ऐसा सङ्केत देकर, सूक्ष्मवसनपरिधानः=महीन कपड़े पहने, वज्रकजटितोष्णीषिकः=हीरा जड़ी टोपी लगाये, गलविलुलितपद्मरागमालः=गले में पद्मराग मणियों की माला पहने, मुक्तागुच्छचोचुम्ब्यमानभालः=मस्तक पर मोतियों का गुच्छा

लगाये, निःश्वासप्रश्वासपरिमथितमद्यगन्धपरिपूरितपार्श्वदेशान्तरालः=श्वास-प्रश्वास के कारण मद्य की गन्ध से आसपास के भाग को दूषित करता हुआ, शोणश्मश्रुकूर्चविजितनूतनप्रवालः=जिसने रक्तवर्ण की मूंछ और दाढ़ी से नवीन पल्लव को तिरस्कृत कर दिया है, कञ्चुकस्यूतकाञ्चनकुसुमजालः=सोने के तारों से कढ़े फूलों से भरी, विविधवर्णवर्णनीयशिविकाम्=अनेक रंगों के कारण मनोहर पालकी पर, आरुह्य=चढ़कर, निर्दिष्टपटकुटीराभिमुखम्=निश्चित तम्बू की ओर, प्रतस्थे=प्रस्थान किया, इतस्तु=इधर, नर्तयन्=नचाते हुए, रश्मिग्राहवेषेण=सारथि के वेष में, अनुगम्यमानः=अनुगमन किया जाता हुआ, युद्धसज्जैः=युद्ध के लिए तैयार, निरीक्ष्यमाणः=निरीक्षण किये जाते हुए, समागमस्थानस्य=मिलने के स्थान के, वल्गाम्=लगाम को, आकृष्य=खींचकर, अश्वम्=घोड़े को, अवारुधत्=रोका।

हिन्दी—अफजलखान ने भी 'जैसे ही मैं उससे मिलकर एक ताली बजाऊँ, वैसे ही ताली की आवाज के साथ ही अमुक-अमुक लोग बाज की भाँति उस पर टूटकर उसे रस्सियों से बाँध लें और हमारी सेना क्षण भर में उसकी सेना को बादलों को झञ्झावात की तरह भगा दें' यह संकेत देकर, महीन कपड़े पहने, हीरा जड़ी टोपी लगाये, गले में पद्मराग मणियों की माला पहने, मस्तक पर मोतियों का गुच्छा लगाये, आस-पास के वातावरण को श्वास-प्रश्वास से निकली मद्य की दुर्गन्ध से दूषित करता हुआ रक्त दाढ़ी-मूँछों से नूतन पल्लवों को भी विजित किये हुए, सौवर्णिक पुष्प-समूह से युक्त कञ्चुक धारण किये हुए, अनेक रंगों की मनोहर पालकी में बैठकर मिलने के लिए पहले से सुनिश्चित तम्बू की ओर प्रस्थान किया।

इधर हरिण सदृश घोड़े को नचाते हुए, सारथि के वेष में गौरसिंह द्वारा अनुगमन किये जाते हुए, युद्ध के लिए तैयार माल्यश्रीक आदि श्रेष्ठ वीरों के द्वारा सतर्कतापूर्वक देखे जाते हुए शिवाजी ने उसी संकेतित मिलने के स्थान के निकट ही बाँये हाथ से लगाम खींचकर घोड़े को रोका।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में कई स्थलों पर उपमालंकार का प्रयोग किया गया है। साथ ही इस अनुच्छेद से धनी यवनों की वेष-भूषा का परिचय संप्राप्त होता है॥ ४८॥

ततस्तु, इतोऽश्वात् शिववीरः, ततस्तु शिबिकातोऽपजलखानः अपि युगपदेवाऽवातरताम्, परस्परं साक्षात्कृत्य च उभावप्युत्सुकाभ्यां

नयनाभ्याम्, सत्वराभ्यां पादाभ्याम्, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण वदनेन आश्लेषाय प्रसारिताभ्यां च हस्ताभ्यां कौशेयास्तरण-विरोचितायां बहिर्वेदिकायां धावमानौ परस्परमालिलिङ्गतुः।

शिववीरस्तु आलिङ्गन-च्छलेनैव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं गृहीत्वा सिंहनखैर्जत्रुणी कन्धरां च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटि-प्रदेशे समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽपोथयत्।

व्याख्या—ततस्तु=समराङ्गणावतरणोत्तरं तु, इतोऽश्वात्=सकतः घोटकात्, शिववीरः='शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितो जनः, ततस्तु=शिव-वीरानन्तरं तु, शिविकातोऽपजलखानः=पुरुषवाह्ययानात् यवनसेनापतिरपि, युगपदेव=सहैव, अवातरताम्=अवारुहताम्, परस्परम्=अन्योऽन्यम्, साक्षात्कृत्य=विलोक्य च, उभावपि=द्वावपि, उत्सुकाभ्याम्=सोत्कण्ठाभ्याम्, नयनाभ्याम्=लोचनाभ्याम्, सत्वराभ्याम्=शीघ्रतायुक्ताभ्याम्, पादाभ्याम्=चरणाभ्याम्, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण=स्वागतं स्वागतम् इति भाषणे लीनेन, वदनेन=मुखेन, आश्लेषाय=आलिङ्गनाय, प्रसारिताभ्याम्=विस्तारिताभ्याञ्च, हस्ताभ्याम्=कराभ्याम्, कौशेयास्तरणविरोचितायाम्=क्षौमास्तरणशोभि-तायाम्, बहिर्वेदिकायाम्=बहिर्वेद्याम्, धावमानौ=धावन्तौ, परस्परम्=अन्योऽन्यम्, आलिलिङ्गतुः=आलिङ्गनमकुरुताम्।

शिववीरस्तु=एतन्नामको जनस्तु, आलिङ्गनच्छलेनैव=आश्लेषव्याजेनैव, स्वहस्ताभ्याम्=निजकराभ्याम्, तस्य=अपजलखानस्य, स्कन्धौ=अंशौ, दृढम्=गाढम्, गृहीत्वा=समाकृष्टय, सिंहनखैः=व्याघ्रनखरैः, जत्रुणी=स्कन्धसन्धी, कन्धराञ्च=स्कन्धञ्च, व्यपाटयत्=व्यदारयत्, रुधिरदिग्धम्=रक्तक्लिन्नञ्च, तच्छरीरम्=अपजलखानदेहम्, कटिप्रदेशे=कटिभागे, समुत्तोल्य=समुत्थाप्य, भूपृष्ठे=धराफलके, अपोथयत्=न्यपातयत्।

समासः—स्वागतस्य आम्रेडने तत्परेण स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण। कौशेयेन आस्तरणेन विरोचितायां कौशेयास्तरणविरोचितायाम्। आलिङ्गनस्य छलेन आलिङ्गनच्छलेन। रुधिरेण दिग्धं रुधिरदिग्धम्। तस्य शरीरम् इति तच्छरीरम्।

व्याकरणम्—अवातरताम्—अव+तृ+लङ् लकार (प्र० पु० द्वि० व०)। आश्लेषाय—आङ्+श्लिष्+अच् (च० एकवचन)। प्रसारिता-भ्याम्—प्र+सृ+णिच्+क्त (तृ० द्वि० व०)। धावमानौ—धाव्+शानच्।

आलिलिङ्गतुः—आङ्+लिङ्ग+लिट् लकार (प्र० पु० द्वि० व०)। गृहीत्वा—ग्रह+क्त्वा। दिग्धम्—दिह्+क्त। समुत्तोल्य—सम्+उत्+तुल+क्त्वा+ल्यप्। अपोथयत्—पुथ्+लङ् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—ततस्तु=उसके बाद, इतः=यहाँ, अश्वात्=घोड़े से, शिववीरः=शिवाजी, ततस्तु=वहाँ तो, शिबिकातः=पालकी से, अपजलखानोऽपि=अफजलखाँ भी, युगपदेव=साथ ही साथ, अवातरताम्=उतरे, परस्परं साक्षात्कृत्य=एक-दूसरे को देखकर, उत्सुकाभ्यां नयनाभ्याम्=उत्कण्ठित नेत्रों से, सत्वराभ्यां पादाभ्याम्=तीव्र गति से, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण=बार-बार 'स्वागत-स्वागत' कहने में तत्पर, आश्लेषाय=आलिङ्गन के लिए, प्रसारिताभ्यां हस्ताभ्याम्=फैलाये हुए हाथों से, कौशेयास्तरणविरोचितायाम्=रेशमी चादर से सुशोभित, धावमानौ=दौड़ते हुए, आलिलिङ्गतुः=आलिङ्गन किये, आलिङ्गनच्छलेन=आलिङ्गन के बहाने, स्वहस्ताभ्याम्=अपने हाथों से, तस्य स्कन्धौ=उसके कन्धों को, दृढं गृहीत्वा=दृढ़तापूर्वक पकड़कर, सिंहनखैः=सिंहनख नामक शस्त्र-विशेष से, जत्रुणी=कन्धे के जोड़ों को कन्धराम्=ग्रीवा को, व्यपाटयत्=चीर डाला, रुधिरदिग्धम्=खून से लथपथ, तच्छरीरम्=उसके शरीर को, कटिप्रदेशे=कमर तक, समुत्तोल्य=उठाकर, भूपृष्ठे=जमीन पर, अपोथयत्=पटक दिया।

हिन्दी—इसके बाद इधर घोड़े से शिवाजी और पालकी से अफजलखान भी साथ ही साथ उतरे और परस्पर एक-दूसरे को देखकर, दोनों ही समुत्कण्ठित लोचनों से, तीव्रगति के पादक्षेपों से, बार-बार 'स्वागत' कहने में तत्पर मुख से, आलिङ्गन के लिए फैलाये हुए हाथों से, रेशमी चादर से सुशोभित बाहर के चबूतरे पर दौड़ते हुए एक-दूसरे का आलिङ्गन किया।

शिवाजी ने आलिङ्गन के ही बहाने अपने हाथों से उसके कन्धों को दृढ़तापूर्वक पकड़ कर सिंहनखों (बघनखों) से कन्धे के जोड़ों और ग्रीवा को चीर डाला और रुधिर से व्याप्त उसके शरीर को कटिभाग तक उठाकर जमीन पर पटक दिया।

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में यह दिखलाया गया है कि अपने को छल से पकड़ने वाले अफजलखान को वीर शिवाजी ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' इस नीतिवाक्य का पालन करते हुए आलिङ्गन के व्याज से मार डाला॥ ४९॥

तत्क्षणादेव च शिववीर-ध्वजिन्यां महाध्वज एकः समुच्छ्रितः। तत्समकालमेव यवन-शिविरस्य पृष्ठस्थिता शिववीर-सेना शिविरमग्निसात्कृतवती, पुरःस्थित-सेनासु च अकस्मादेव महाराष्ट्र-केसरिणः समपतन्। तेषां 'हर हर महादेव'गर्जनपुरस्सरं 'छिन्धि-भिन्धि-मारय-विपोथय'—इति कोलाहलः, प्रत्यर्थिनां च 'खुदा-तोबा-अल्लादि' पारस्य-पदमयः कलकलो रोदसी समपूरयत्।

व्याख्या—तत्क्षणादेव च = सद्य एव च, शिववीरध्वजिन्याम् = शिववीर-पृतनायाम्, महाध्वजः = महापताका, एकः, समुच्छ्रितः = नभसि समुल्लसितः, तत्समकालमेव = ध्वजसमुच्छ्रयणकालमेव, यवनशिविरस्य = तुरुष्कपटगेहस्य, पृष्ठस्थिता = पृष्ठभागवर्तमाना, शिववीरसेना = शिववीरवाहिनी, शिबिरम् = यवनसेनापटगृहम्, अग्निसात्कृतवती = भस्मीचकार, पुरःस्थितसेनासु च = अग्रस्थवाहिनीषु च, अकस्मादेव = सहसैव, महाराष्ट्रकेसरिणः = शिववीर-सैनिकाः, समपतन् = आक्रमितवन्तः, तेषाम् = शिवसैनिकानाम्, 'हर हर महादेव'-गर्जनपुरस्सरम् = 'हर हर महादेव' इति तारोच्चारणपूर्वकम्, छिन्धि भिन्धि = छिन्नं कुरु, भिन्नं कुरु; मारय = ताडय, विपोथय = निपातय, इति = एवम्, कोलाहलः = शब्दः, प्रत्यर्थिनां च = शत्रूणाञ्च, खुदा, तोबा, अल्लादि, पारस्य-पदमयः = पारसीशब्दप्रचुरः, कलकलः = ध्वनिः, रोदसी = द्यावापृथिव्यौ, समपूरयत् = पूरितवान्।

समासः—शिववीरस्य ध्वजिनी, तस्यां शिववीरध्वजिन्याम्। महत् चासौ ध्वजः महाध्वजः। यवनानां शिबिरस्य यवनशिबिरस्य। पृष्ठे स्थिता या सा पृष्ठस्थिता। शिववीरस्य सेना शिववीरसेना। पुरः स्थितः सेना, तासु पुरः-स्थितसेनासु। महाराष्ट्रस्य केसरिणः महाराष्ट्रकेसरिणः।

व्याकरणम्—ध्वजिनी—ध्वज + इनि + ङीप्। समुच्छ्रितः—सम् + उत् + श्रि + क्त। स्थिता—स्था + क्त + टाप्। अग्निसात्कृतवती—अग्नि + सात् + कृ + क्तवतु + ङीप्। समपतन्—सम् + पत् + लङ् लकार (प्र० पु० ब० व०)। छिन्धि—छिद् + लोट् लकार (म० पु० ए० व०)। भिन्धि—भिद् + लोट् लकार (म० पु० ए० व०)। मारय—मृ + लोट् लकार (म० पु० ए० व०)। विपोथय—वि + पुथ् + लोट् लकार (म० पु० ए० व०)। समपूरयत्—सम् + पूर् + लङ् लकार।

शब्दार्थ—तत्क्षणादेव च=और उसी समय, शिववीरध्वजिन्याम्=शिवाजी की सेना में, महाध्वजः=बड़ी पताका, समुच्छ्रितः=फहराई गई, तत्समकालमेव=ध्वजा फहराने के साथ ही, यवनशिविरस्य=यवनों के शिविर के, पृष्ठस्थिता=पीछे स्थित, शिववीरसेना=शिवाजी की सेना ने, शिबिरम्=शिविर को, अग्निसात्कृतवती=जला दिया, पुरःस्थितसेनासु=आगे स्थित सेनाओं पर, महाराष्ट्रकेसरिणः=महाराष्ट्र के सिंह अर्थात् सिंह सदृश वीर सैनिक, समपतन्=टूट पड़े, तेषाम्=उन मराठों के, 'हर हर महादेव'गर्जनपुरस्सरम्='हर-हर महादेव' की ध्वनि के साथ, छिन्धि=फाड़ो, भिन्धि=कांटो, मारय=मारो, विपोथय=पटको, इति कोलाहलः=ऐसा कोलाहल, च=और, प्रत्यर्थिनाम्=शत्रुओं के, खुदा-तोबा-अल्लादि पारस्यपदमयः=खुदा, तोबा, अल्लाह आदि फारसी शब्दमय, कलकलः=कोलाहल ने, रोदसी=आकाश और पृथिवी को, समपूरयत्=पूर्ण कर दिया।

हिन्दी—और उसी समय शिवाजी की सेना में एक महाध्वज (पताका) फहरा उठा। ध्वजा के फहराने के साथ ही यवनशिविर के पीछे स्थित शिवाजी की सेना ने शिविर में आग लगा दी और सामने संस्थित सेनाओं पर सहसा ही सिंहसदृश महाराष्ट्रीय वीर सैनिकों ने आक्रमण कर दिया। उनके 'हर हर महादेव' इस गर्जन के साथ ही छेदन करो, भेदन करो, मारो, पटको आदि इस कोलाहल से तथा शत्रुओं के 'खुदा-तोबा-अल्लाह' आदि फारसी शब्दमय कोलाहल ने आकाश और पृथ्वी को परिपूर्ण कर दिया॥ ५०॥

ततो यवन-सेनासु शतशः सादिनः, गगनं चोचुम्ब्यमानाः, कृत-दिगन्त-प्रकाशाः, कडकडा-ध्वनि-धर्षित-प्रान्त-प्रजाः उड्डीयमान–दन्दह्यमान–परस्सहस्र–पटखण्ड–विहित–हैम–विहङ्गम–विभ्रमाः, ज्योतिरिङ्गणायित–परस्कोटि–स्फुलिङ्ग–रिङ्गित-पिङ्गीकृत–प्रान्ताः, दोधूयमान–धूम–घटा–पटल–परिपात्यमान–भसित–सितीकृतानोकहाः, सकलकलध्वनि पलायमानैः पतत्रि-पटलैरिव सोसूच्यमानाः शिबिर-घस्मरा ज्वालमाला अवलोक्य, स-हाहा-कारं तदभिमुखं प्रयाताः। अपरे च महाराष्ट्राऽसि-भुजङ्गिनीभिर्दन्दश्यमाना, केचन "त्रायस्व-त्रायस्व" इति साम्रेडं व्याहरमाणाः पलायमानाः, अन्ये धीरा वीराश्च—

"तिष्ठत रे तिष्ठत धूर्त-धुरीणाः! महाराष्ट्र-हतकाः! किमिति

चौरा इव, लुण्ठका इव दस्यव इव च यवन-सेनापतीनाक्राम्यथ ? समागच्छत सम्मुखम्, यथा शाम्येदस्मच्चन्द्रहासानां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्र-रुधिराऽऽस्वाद-तृषा"।

—इति सक्ष्वेडं सङ्गर्ज्य युद्धाय सज्जाः समतिष्ठन्त ।

तेषां चाऽश्वानां सव्यापसव्यमार्गैः खुरक्षुण्णा व्यदीर्यत वसुधा । खड्ग-खटखटाशब्दैः सह च प्रादुरभूवन् स्फुलिङ्गाः । रुधिरधाराभिः जपा-सुमनस्समाच्छन्नमिवाऽभूद् रणाङ्गणम् ।

व्याख्या—ततः=कलकलध्वनिसमाप्त्यनन्तरम्, यवनसेनासु=तुरुष्क-वाहिनीषु, शतशः=सङ्ख्यातीताः, सादिनः=अश्वारोहाः, गगनम्=आकाशम्, चोचुम्ब्यमानाः=पस्पृश्यमानाः, कृतदिगन्तप्रकाशाः=विहितदिगन्तप्रकाशाः, कडकडाध्वनिधर्षितप्रान्तप्रजाः=कडकडाशब्दत्रासितसमीपजनताः, उड्डीयमान-दन्दह्यमानपरस्सहस्रपटखण्डविहितहैमविहङ्गमविभ्रमाः= उत्पतज्ज्वलत्परस्सहस्र-वसनांशकृतसौवर्णपक्षिविभ्रमाः, ज्योतिरिङ्गणायितपरस्कोटिस्फुलिङ्गरिङ्गित-पिङ्गीकृतप्रान्ताः =खद्योतायितासङ्ख्याग्निकणोड्डयनपिञ्जरीकृतपरिसरभूमि-भागाः, दोधूयमानधूमघटापटलपरिपात्यमानभसितसितीकृतानोकहाः= बहुकम्पमानधूम्रलेखासमूहविकीर्यमाणभस्मशुभ्रीकृतवृक्षाः, सकलकलध्वनि-पलायमानैः=ककलशब्दयुक्तपलायनरतैः, पतत्रिपटलैरिव=पक्षिगणैरिव, सोसूच्यमानाः=बोबुध्यमानाः, शिबिरघस्मरा=पटगृहभक्षिका, ज्वालामाला= वह्निगणाः, अवलोक्य=दृष्ट्वा, सहाहाकारम्=हाहाकारसंयुतम्, तदभिमुखम्= शिबिराभिमुखम्, प्रयाताः=गताः, अपरे च=अन्ये च, महाराष्ट्रासिभुजङ्गि-नीभिः=शिवसैनिकासिसर्पिणीभिः, दन्दश्यमाना=खण्डचमाना, केचन= केचित्, त्रायस्व त्रायस्व=रक्ष रक्ष, इति=एवम्, साम्रेडम्=वारं-वारम्, व्याहरमाणाः=वदन्तः, पलायमानाः=पलायनं कुर्वन्तः, अन्ये=इतरे, धीरा वीराश्च=धैर्यशालिनो भटाश्च, तिष्ठत रे तिष्ठत=स्थिरा भवत ! रे स्थिरा भवत ! धूर्तधुरीणाः=धूर्तधोरेयाः, महाराष्ट्रहतकाः=दुष्टमहाराष्ट्रीयाः, किमिति=किमर्थम्, चौरा इव=स्तेना इव, लुण्ठका इव, दस्यव इव, च यवनसेनापतीनाक्राम्यथ=तुरुष्कबलाधिपतीन् आक्रान्तान् कुरुथ, समागच्छत= समापतत, सम्मुखम्=वदनसमक्षम्, यथा=येन, शाम्येत्=शान्तिमधिगच्छेत्, अस्मच्चन्द्रहासानाम्=मत्खड्गानाम्, चिरप्रवृद्धा=बहुकालविवृद्धा, महाराष्ट्र-

रुधिरास्वादतृषा=शिवभटरक्तास्वादपिपासा, इति=एवम्, सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम्, सङ्गर्ज्य=गर्जनं विधाय, युद्धाय=समराय, सज्जाः=उद्यताः, समतिष्ठन्त=समजायन्त ।

तेषाम्=यवनानाम्, चाश्वानाम्=घोटकानाञ्च, सत्यापसव्यमार्गैः=दक्षिणवाममार्गैः, खुरक्षुण्णा=पादमर्दिता, व्यदीर्यत=विदारिताऽभवत्, वसुधा=पृथ्वी, खड्गखटखटाशब्दैः=चन्द्रहासखटखटाध्वनिभिः, सह=साकम्, च, प्रादुरभूवन्=समजायन्त, स्फुलिङ्गाः=वह्निकणाः, रुधिरधाराभिः=रक्तप्रवाहैः, जपासुमनस्समाच्छन्नमिव=जयाप्रसूनव्याप्तमिव, अभूत्=अभवत्, रणाङ्गनम्=युद्धस्थलम् ।

समासः—कृतः दिगन्तेषु प्रकाशो याभिस्ताः कृतदिगन्तप्रकाशाः । कडकडेति ध्वनिना धर्षिताः प्रान्तस्य प्रजाः याभिस्ताः कडकडाध्वनिधर्षितप्रान्तप्रजाः । उड्डीयमानैः दन्दह्यमानैः परस्सहस्रैः पटखण्डैः विहितः हैमानां विहङ्गमानां विभ्रमो याभिस्ताः उड्डीयमानदन्दह्यमानपरस्सहस्रपटखण्डविहितहैमविहङ्गमविभ्रमाः । ज्योतिरिङ्गणायितानां परस्कोटीनां स्फुलिङ्गानां रिङ्गितैः पिङ्गीकृता प्रान्ता याभिस्ताः ज्योतिरिङ्गणायितपरस्कोटिस्फुलिङ्गरिङ्गितपिङ्गीकृतप्रान्ताः । दोधूयमानानां धूमघटानां पटलेन परिपात्यमानैः भसितैः सितीकृता अनोकहाः याभिस्ताः दोधूयमानधूमघटापटलपरिपात्यमानभसितसितीकृतानोकहाः । महाराष्ट्राणाम् असय एव भुजङ्गिन्यः, ताभिः महाराष्ट्रासिभुजङ्गिनीभिः । धूर्तेषु धुरीणाः धूर्तधुरीणाः । महाराष्ट्राणां रुधिरस्य आस्वादः, तस्य तृषा इति महाराष्ट्ररुधिरास्वादतृषा ।

व्याकरणम्—चोचुम्ब्यमानाः—चुबि+यङ्+शानच् । उड्डीयमानः—उत्+डीङ्+शानच् । दन्दह्यमानः—दह+यङ्+शानच् । सोसूच्यमानाः—सूच+यङ्+शानच् । प्रयाताः—प्र+या+क्त । दन्दंश्यमानः—दंश+यङ्+शानच् । व्याहरमाणाः—वि+आ+हृ+शानच् ।

शब्दार्थ—ततः=तदनन्तर, यवनसेनासु=यवनों की सेना में, शतशः=सैकड़ों, सादिनः=घुड़सवार, चोचुम्ब्यमानाः=बार-बार चूमने वाली, कृतदिगन्तप्रकाशाः=दिशाओं के छोर तक प्रकाशित करनेवाली, कडकडाध्वनिधर्षितप्रान्तप्रजाः=कड़-कड़ ध्वनि से समीप के लोगों को भयभीत कर देनेवाली, उड्डीयमानदन्दह्यमानपरस्सहस्रपटखण्डविहितहैमविहङ्गमविभ्रमाः=उड़ते हुए जलते हजारों वस्त्रखण्डों से सुनहरे पक्षियों का भ्रम पैदा करने वाली,

ज्योतिरिङ्गणायितपरस्कोटिस्फुलिङ्गरिङ्गितपिङ्गीकृतप्रान्ताः=जुगनू के समान करोड़ों चिनगारियों के उड़ने से प्रान्तभाग को पीला बना देने वाली, दोधूयमानधूमघटापटलपरिपात्यमानभसितसितीकृतानोकहाः=ऊपर को उठते हुए धुएँ के समूह के चारों ओर बिखर जानेवाली भस्म से वृक्षों को सफेद बना देने वाली, सकलकलध्वनिपलायमानैः=कल-कल ध्वनि के साथ भागते हुए, पतत्रिपटलैः इव=पक्षी-समुदायों के सदृश, सोसूच्यमानाः=बार-बार सूचना देनेवाली, शिबिरघस्मराः=शिविर को जलानेवाली, ज्वालामालाः=ज्वालाओं की माला को, अवलोक्य=देखकर, सहाहाकारम्=हाहाकार के साथ, तदभिमुखम्=उसी ओर, प्रयाताः=चल पड़े, महाराष्ट्रासिभुजङ्गिनीभिः=मराठों की तलवार रूपी सर्पिणी द्वारा, दन्दश्यमानाः=डँसे जाते हुए, साम्रेडम्=बार-बार, व्याहरमाणाः=कहते हुए, पलायमानाः=भागते हुए, तिष्ठत=रुको, धूर्तधुरीणाः=धुर्ताग्रणियो, महाराष्ट्रहतकाः=दुष्टमराठो ! लुण्ठकाः=लुटेरों, दस्यवः=डाकुओं, आक्रम्यथ=आक्रमण करते हो, समागच्छत=आओ, शाम्येत्=शान्त हो सके, अस्मच्चन्द्रहासानाम्=हमारी तलवारों की, चिरप्रवृद्धाः=बहुत दिनों से बढ़ी हुई, महाराष्ट्ररुधिरास्वादतृषा=मराठों के खून के स्वाद की प्यास, सक्ष्वेडम्=सिंहनादपूर्वक, सङ्गर्ज्य=गर्जना करके, समतिष्ठन्त=खड़े हो गये, सव्यापसव्यमार्गैः=दाँये-बाँये पैतरें बदलने से, खुरक्षुण्णा=खुरों से खुदी हुई, व्यदीर्यत=फट गई, खड्गखटखटाशब्दैः=तलवारों के खट-खट शब्दों से, प्रादुरभूवन्=पैदा हुए, स्फुलिङ्गाः=चिनगारियाँ, जपासुमनस्समाच्छन्नम्=जपापुष्पों से समाच्छादित, रणाङ्गणम्=युद्धभूमि ।

हिन्दी—तदनन्तर यवनसेना के सैकड़ों घुड़सवार, आकाश को छूनेवाली, दिशाओं को संप्रकाशित कर देनेवाली, कड़-कड़ की ध्वनि से समीप के लोगों को भयभीत कर देनेवाली, उड़ने एवं जलनेवाले हजारों वसनखण्डों से स्वर्णपक्षियों का भ्रम समुत्पन्न करनेवाली, जुगनू के सदृश करोड़ों चिनगारियों के उड़ने से पार्श्वभाग को पीला बना देने वाली, निरन्तर ऊपर उठती हुई धूमघटाओं से चारों ओर बिखेरी जा रही भस्म से वृक्षों को श्वेत वर्ण का बना देनेवाली, कल-कल ध्वनि के साथ भागते हुए पक्षियों से मानो जिसकी सूचना दी जा रही है, ऐसी शिविर को भस्म कर देने वाली अग्नि को देखकर हाहाकार करते हुए उसी ओर दौड़े । अन्य यवन मराठों की तलवार रूपी सर्पिणी से डँसे जा रहे

थे, कुछ 'रक्षा करो, रक्षा करो' कहते हुए पलायित हो रहे थे, अन्य कुछ धैर्यशाली वीर सैनिक 'अरे धूर्तराजो ! अरे दुष्ट मराठो ! रुको रुको ! क्यों चोरों और लुटेरों तथा डाकुओं की तरह सेनापति पर आक्रमण कर रहे हों ? सामने आओ, जिससे हमारी तलवारों की चिरकाल से बढ़ी हुई पिपासा शान्त हो' ऐसा कहकर सिंहनादपूर्वक गरज कर युद्ध के लिए तैयार हो गये।

उनके घोड़ों के दाँयें-बाँयें पैंतरा बदलने से खुरों से खुदकर पृथ्वी फट-सी गई और तलवार के खट खट शब्दों के साथ ही चिनगारियाँ निकलने लगीं। रुधिर की धारा से युद्धभूमि जपापुष्पों से समाच्छन्न जैसी हो गई।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में रूपक, उत्प्रेक्षा, उपमा और अनुप्रास का सुन्दर चित्रण किया गया है। जलते हुए शिविरों का नैसर्गिक वर्णन भी प्रशंसनीय है ॥ ५१ ॥

तदवलोक्य गौरसिंहो मृतस्याऽपजलखानस्य शोणित-शोणं शोणशरीरं प्रलम्ब-वेणु-दण्डाग्रेषु बद्ध्वा समुत्तोल्य सर्वान् सन्दर्श्य सभेरीनादं घोषितवान् यद्—"दृश्यतां दृश्यतामितो हतोऽयं यवन-सेनापतिः, ततश्चाऽग्निसात्कृतानि ससकल-सामग्री-जातानि शिविराणि, परितश्च बहूनि विनाशितानि यवन-वीर कदम्बकानि, तत् किमिति अवशिष्टा यूयं मुधा बक-गृध्र-शृगालानां भोज्याः संवर्तध्वे ? शस्त्राणि त्यक्त्वा पलायध्वं पलायध्वम्, यथा नेयं भूः कदुष्णैर्भवतां सद्यश्छिन्न-कन्धरा-गलद्रुधिरप्रवाहैर्भवद्रमणीनां च कज्जल-मलिनैर्बाष्प-पूरैरार्द्रा भवेद्"—इति। तदवधार्य दृष्ट्वा च रुधिर-दिग्धं क्रीडापुत्तलायितं स्वस्वामिशरीरम्, सर्वे ते हतोत्साहा विसृज्य शस्त्राणि कान्दिशीका दिशो भेजुः।

ससेनः शिववीरश्च विजय-शङ्खनादै रोदसी सम्पूर्य, रणाङ्गण-शोधनाधिकारं माल्यश्रीकाय समर्प्य, प्रताप-दुर्गं प्रविश्य मातुश्चरणौ प्रणनाम।

इति द्वितीयो निश्वासः।

व्याख्या—तदवलोक्य = यवनविनाशं दृष्ट्वा, गौरसिंहः = एतन्नामा शिववीरसहायकः, मृतस्य = अपगतासोः, अपजलखानस्य = यवनसेनापतेः, शोणितशोणम् = रुधिररक्तम्, प्रलम्बवेणुदण्डाग्रेषु = सुदीर्घवंशदण्डाग्रेषु, बद्ध्वा = नियम्य, समुत्तोल्य = समुत्थाप्य, सर्वान् = समस्तान् यवनसैनिकान्, सन्दर्श्य = दर्शयित्वा, सभेरीनादम् = सडिण्डिमनादम्, घोषितवान् = अघोषयत्, दृश्यतां दृश्यताम् = निरीक्ष्यतां, निरीक्ष्यताम्, इतः = अत्र, हतोऽयम् = व्यापादितोऽयम्, यवनसेनापतिः = तुरुष्कगणनायकः, ततश्च = तदनन्तरञ्च, अग्निसात्कृतानि = दग्धानि, ससकलसामग्रीजातानि = निखिलवस्तुसहितानि, शिविराणि = पटगृहाणि, परितश्च = सर्वतश्च, बहूनि = अनेकानि, विनाशितानि = समुन्मूलितानि, यवनवीरकदम्बकानि = तुरुष्कभटसमूहानि, तत्किम् = तत्कथम्, इति, अवशिष्टाः = शेषाः, यूयम् = यवनाः, मुधा = व्यर्थम्, बकगृध्रशृगालानाम् = बकगृध्रगोमायुप्रभृतीनाम्, भोज्याः = खाद्याः, संवर्तध्वम् = भवथ। शस्त्राणि = आयुधानि, त्यक्त्वा = परित्यज्य, पलायध्वं पलायध्वम् = पलायनं कुरुत, पलायनं कुरुत, यथा = येन, न = नहि, इयम् = पुरो वर्तमाना, भूः = धरा, कदुष्णैः = ईषदुष्णैः, भवताम् = श्रीमताम्, सद्यः = झटिति, छिन्नकन्धरागलद्रुधिरप्रवाहैः = भिन्नकण्ठपतद्रक्तधाराभिः, भवद्रमणीनाम् = श्रीमल्ललनानाम्, कज्जलमलिनैः = अञ्जनश्यामैः, बाष्पपूरैः = अश्रुप्रवाहैः, आर्द्रा = क्लिन्ना, भवेत् = स्यात् इति। तदवधार्य = विज्ञाय, दृष्ट्वा = विलोक्य च, रुधिरदिग्धम् = रक्तक्लिन्नम्, क्रीडापुत्तलायितम् = खेलनिर्मितपटादिमूर्तिवदाचरन्तम्, स्वस्वामिशरीरम् = निजप्रधानपतिदेहम्, सर्वे ते = यवनसैनिकाः, हतोत्साहाः = नष्टोत्साहाः, विसृज्य = त्यक्त्वा, शस्त्राणि = आयुधानि, कान्दिशीकाः = भयभीताः, दिशः = आशाः, भेजुः = प्रापुः।

ससेनः = सेनया समन्वितः, शिववीरः = 'शिवाजी' इति नाम्ना प्रथितः, च = पुनः, विजयशङ्खनादैः = विजयशङ्खादिध्वनिभिः, रोदसी = द्यावापृथिवी, सम्पूर्य = पूरयित्वा, रणाङ्गणशोधनाधिकारम् = युद्धभूमिशोधनकार्यम्, माल्यश्रीकाय = एतन्नाम्ने जनाय, समर्प्य = अर्पयित्वा, प्रतापदुर्गम् = एतन्नामकं दुर्गम्, प्रविश्य = प्रवेशं विधाय, मातुः = जनन्याः, चरणौ = पादौ, प्रणनाम = नमश्चकार।

समासः—शोणितेन शोणम् इति शोणितशोणम्। प्रलम्बस्य वेणोः दण्डस्य अग्रेषु इति प्रलम्बवेणुदण्डाग्रेषु। सकलेन सामग्रीणां जातेन सहितानि ससकल-

सामग्रीजातानि । यवनवीराणां कदम्बकानि यवनवीरकदम्बकानि । बकाः गृध्राः शृगालाश्च, तेषां बकगृध्रशृगालानाम् । छिन्नाभ्यः कन्धराभ्यः गलन्तः ये रुधिराणां प्रवाहास्तैः छिन्नकन्धरागलद्रुधिरप्रवाहैः । रुधिरेण दिग्धं रुधिरदिग्धम् । स्वस्य स्वामिनः शरीरम् इति स्वस्वामिशरीरम् । हताः उत्साहाः येषां ते हतोत्साहाः । सेनया सहितः ससेनः । रणाङ्गणस्य शोधनं, तस्य अधिकारस्तं रणाङ्गणशोधनाधिकारम् ।

कोषः—'कान्दिशीको भयद्रुतः' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—समुत्तोल्य—सम् + उत् + तुल + क्त्वा + ल्यप् । सन्दर्श्य—सम् + दृश् + क्त्वा + ल्यप् । अग्निसात्कृतानि—अग्नि + साति + कृ + क्त । भोज्याः—भुज् + ण्यत् । संवर्तध्वे—सम् + वृत् + लट् (म० पु० ब० व०) । त्यक्त्वा—त्यज् + क्त्वा । छिन्न—छिद् + क्त । अवधार्य—अव + धृ + क्त्वा + ल्यप् । दिग्धम्—दिह + क्त । क्रीडापुत्तलायितम्—क्रीडायां पुत्तलमिवाचरितम्, क्रीडा + पुत्तल + क्यच् । विसृज्य—वि + सृज + क्त्वा + ल्यप् । समर्प्य—सम् + अर्प + क्त्वा + ल्यप् ।

शब्दार्थ—तदवलोक्य = यह देखकर, मृतस्य = मरे हुए, शोणितशोणम् = रक्त से लथपथ, शोणम् = लाल (शरीर), प्रलम्बवेणुदण्डाग्रेषु = लम्बे बाँस के नोंक पर, समुत्तोल्य = उपर उठाकर, सन्दर्श्य = दिखाकर, सभेरीनादम् = भेरी-नादपूर्वक अर्थात् डुग्गी पीटकर, अग्निसात्कृतानि = जला दिये गये हैं, ससकलसामग्रीजातानि शिविराणि = समस्त सामग्रियों से युक्त शिबिरों को, यवनवीरकदम्बकानि = यवनसैनिकों का समूह, अवशिष्टाः = बचे हुए, मुधा = व्यर्थ में, बकगृध्रशृगालानाम् = बगुले, गीधों और सियारों का, भोज्याः = भोजन, संवर्तध्वे = हो रहे हो, त्यक्त्वा = छोड़कर, पलायध्वम् = भाग जाओ, कदुष्णैः = कुछ कुछ गरम, सद्यः = शीघ्र ही, छिन्नकन्धरागलद्रुधिरप्रवाहैः = कटी गर्दन से बह रही खून की धाराप्रवाहों से, कज्जलमलिनैः = काजल से मलिन, बाष्पपूरैः = आँसुओं के प्रवाह से, आर्द्रा = गीली, तदवधार्य = यह सुनकर, दृष्ट्वा=देखकर, रुधिरदिग्धम् = रक्त से लथपथ, क्रीडापुत्तलायितम् = खेल के लिए बनाई गई कपड़े आदि की पुतली के समान, स्वस्वामिशरीरम् = अपने स्वामी के शरीर को, हतोत्साहाः = हतोत्साहित होकर, विसृज्य = छोड़कर, कान्दिशीकाः = भयभीत, दिशः = दिशाओं को, भेजुः = भागने लगे ।

ससेनः=सेना के साथ, विजयशंखनादैः=विजय की शंखनाद से, रोदसी=पृथिवी और आकाश को, सम्पूर्ण=भरकर, रणाङ्गणशोधनाधिकारम्=रणभूमि के शुद्ध (साफ) करने के अधिकार को, समर्प्य=समर्पित करके, प्रविश्य=प्रवेश करके, मातुः=माता के, चरणौ=चरणों को, प्रणनाम=प्रणाम किया।

हिन्दी—यह देखकर गौरसिंह ने मरे हुए अफजलखान के खून से लथपथ लाल शरीर को लम्बे बांस के डण्डे के अग्रभाग में बांधकर, ऊपर उठाकर, समस्त जनों को दिखाकर, भेरीनादपूर्वक अर्थात् डुग्गी पिटाकर यह घोषणा कर दी—'देखो, देखो. इधर यह अफजलखान यवनसेनापति मार डाला गया है और उधर निखिल सामग्रियों सहित समस्त शिविर जला दिये गये हैं, चारों तरफ अनेक यवनवीरों के समूह नष्ट कर दिये गये हैं, तो बचे हुए तुम लोग व्यर्थ में बगुलों, गीधों और सियारों का भोजन क्यों बनते हो ? शस्त्र छोड़कर भागो, भागो, जिससे यह पृथ्वी तुम्हारी सद्यः कटी गर्दन से बह रही गरम-गरम खून की धाराओं और तुम्हारी स्त्रियों के काजल से मैले आँसुओं के प्रवाहों से गीली न हो। यह सुनकर और अपने सेनापति के खिलौने बनाये गये रुधिर से लथपथ देह को देखकर वे सभी हतोत्साहित हो शस्त्र छोड़कर भयभीत हुए चारों ओर भाग खड़े हुए।

वीर शिवाजी ने सेना के साथ विजय-शंखनाद से पृथ्वी और आकाश को सम्पूरित करके, समरभूमि की सफाई का काम माल्यश्रीक को सौंप कर प्रतापगढ़ नामक दुर्ग में प्रवेश कर माता के चरणों में प्रणाम किया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड के 'क्रीड़ापुत्तलायितम्' (खिलौने के समान) इस स्थल पर लुप्तोपमालंकार दृष्टिगोचर होता है ॥ ५२ ॥

॥ द्वितीय निश्वास समाप्त ॥

अथ तृतीयो निश्वासः

'जीवन् नरो भद्रशतानि पश्येत् ।' —स्फुटकम्

'संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम् ।'

—भर्तृहरिः

व्याख्या—जीवन् = जीवितः सन्, नरः = मानवः, भद्रशतानि = अनन्त-सुखानि, पश्येत् = अवलोकयेत् ।

संसारे = महीमण्डले, भूमण्डले वा, सति = भवत्यपि, इन्द्रजालम् = मायाबन्धनम्, अपरम् = अन्यम्, यद्यस्ति = चेद् विद्यते, तेनापि = तदिन्द्रजाले-नापि, किम् = किम्प्रयोजनम्, न किमपि प्रयोजनमिति भावः ।

समासः—भद्राणां शतानि इति भद्रशतानि ।

कोषः—'मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः । स्युः पुमांसः पञ्च-जनाः पुरुषाः पूरुषा नरः' ।। इत्यमरः । 'अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः ।

व्याकरणम्—जीवन्—जीव + शतृ । नरः— नृ + अच् । संसारे—सम् + सृ + घञ् (सप्त० वि० ए० व०) ।

शब्दार्थ—जीवन् = जीवित रहता हुआ, नरः = मनुष्य, भद्रशतानि = सैकड़ों सुखों को, पश्येत् = देखे ।

संसारे = संसार के, अपि = भी, सति = रहने पर, इन्द्रजालम् = इन्द्रजाल अर्थात् जादू, अपरम् = दूसरा, यद्यपि = यदि हो, तेनापि = तो भी, किम् = क्या प्रयोजन है ?

हिन्दी—'जीवित रहने पर मानव सैकड़ों सुखों को देख सकता है' । 'संसारे के रहते हुए भी यदि कोई दूसरा इन्द्रजाल हो तो उससे क्या ?' अर्थात् सृष्टि का सबसे बड़ा इन्द्रजाल (जादू) तो संसार ही है ।। १ ।।

तत्र पर्ण-कुटीरे तु कथं कथमपि दाडिमाद्यास्वादन-तत्परां कुसुमगुच्छैर्मनो विनोदयन्तीं बालिकां गुरोः समीपे परित्यज्य तदाज्ञया तत्पितरौ समन्वेष्टुम्, अन्तर्गोपित-क्षुर-प्रच्छुरिकां यष्टिकामेकां हस्तेन धृत्वा, तैरेव श्याम-श्यामैः गुच्छ-गुच्छैः लोल-लोलैः कुञ्चित-कुञ्चितैः कचैः ब्रह्मचारि-बटु-वेष एव श्यामबटु-रासन्न-ग्रामटिका-दिशि समगात् ।

व्याख्या—तत्र पर्णकुटीरे = तस्मिन् शुष्कपत्रनिर्मितगृहे, तु कथं कथमपि = येन केनापि प्रकारेण, दाडिमाद्यास्वादनतत्पराम् = मालूरफलादिभक्षणलीनाम्, कुसुमगुच्छैः = पुष्पस्तबकैः, मनो विनोदयन्तीम् = चित्तरञ्जनरताम्, बालिकां = कन्यकाम्, गुरोः = मुनेः, समीपे = निकटे, परित्यज्य = विसृज्य, तदाज्ञया = मुनेरादेशेन, तत्पितरौ = बालिकामातापितरौ, समन्वेष्टुम् = गवेषयितुम्, अन्तर्गोपितक्षुरप्रच्छुरिकाम् = आभ्यन्तरस्थापिततीक्ष्णासिधेनुकाम्, यष्टिकाम् = लकुटिकाम्, एकाम् = केवलाम्, हस्तेन = करेण, धृत्वा = गृहीत्वा, तैरेव, श्यामश्यामैः = कृष्णवर्णैः, गुच्छगुच्छैः = अतिगुच्छैः, लोललोलैः = चपलैः, कुञ्चितकुञ्चितैः = ग्रन्थिलैः, कचैः = बालैः, ब्रह्मचारिबटुवेष एव = ब्रह्मचारिवेष एव, श्यामबटुः = कृष्णवर्णः ब्रह्मचारी, आसन्नग्रामटिकादिशि = समीपस्थलघुसंवसथदिशि, समगात् = गतवान् ।

समासः—पर्णकुटीरे—पर्णानां कुटीरस्तस्मिन् पर्णकुटीरे । दाडिमाद्यानाम् आस्वादने तत्परां दाडिमाद्यास्वादनतत्पराम् । कुसुमानां गुच्छैः कुसुमगुच्छैः । तस्य आज्ञया तदाज्ञया । माता च पिता च पितरौ, तस्याः पितरौ इति तत्पितरौ । अन्तर्गोपिते क्षुरप्रच्छुरिके यस्यां, ताम् अन्तर्गोपितक्षुरप्रच्छुरिकाम् ।

व्याकरणम्—कुटीरः—कुटी + रक् । विनोदयन्तीम्—वि + नुद् + शतृ । परित्यज्य—परि + त्यज् + क्त्वा + ल्यप् । समन्वेष्टुम्—सम् + अनु + इष् + तुमुन् ।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ, पर्णकुटीरे = पर्णकुटी में, कथं कथमपि = किसी प्रकार, दाडिमाद्यास्वादनतत्पराम् = अनार आदि के खाने में संलग्न, कुसुमगुच्छैः = पुष्पों के गुच्छों से, मनो विनोदयन्तीम् = मन बहलाती हुई, परित्यज्य = छोड़कर, तदाज्ञया = मुनि के आदेश से, तत्पितरौ = उसके माता-पिता को, समन्वेष्टुम् = खोजने के लिए, अन्तर्गोपितक्षुरप्रच्छुरिकाम् = अन्दर छुपी हुई तेज छुरी वाली, श्यामश्यामैः = अधिक कृष्णवर्ण के, गुच्छगुच्छैः = घने-घने, लोललोलैः = चञ्चल, कुञ्चितकुञ्चैः = घुंघराले, आसन्नग्रामटिकादिशि = समीप के छोटे गाँव की दिशा में ।

हिन्दी—उस पर्णकुटी में किसी प्रकार अनार आदि खाने में संलग्न, पुष्पों के गुच्छों से मन को बहलाती हुई बालिका को गुरु के समीप छोड़कर, उस मुनि की आज्ञा से उसके माता-पिता को खोजने के लिए एक लकड़ी की गुप्ती, जिसमें तेज छुरी छिपी थी, हाथ में लेकर काले-काले, नितान्त घने, सुन्दर

तथा घुंघराले बालों वाला श्यामवर्ण का बालक ब्रह्मचारी वेष में ही समीप के गांव की ओर चल दिया ॥ २ ॥

ततो 'हन्त ! कथमद्यापि शूली त्रिशूलेन नैतान् शूलाकरोति ? कथं खड्गिनी खड्गेन न खण्डयति ? कथं चक्री चक्रेण न चूर्णयति ? कथं पाशी पाशैर्न पाशयति ? कथं हली हलेन नाऽवहेलयति ? कथं वा जम्भारातिर्दम्भोलिघातैर्दम्भिन एतानम्भोधि-जल-स्तम्भाऽऽरम्भेषु न पातयति ? अहह ! क इतोऽप्यधिकोऽनर्थो भविता यद् भगवानवतरिष्यति ? शिव ! शिव !! न शक्यते द्रष्टुमपि यदेतैर्निर्दय-हृदयैः परम-पूजनीयानां ब्राह्मणानामपि अत्यल्पवयस्का अपि बालिका अपह्रियन्ते । धिगेतान् धर्मादपि निर्भीकान् अभीकान्'—इति चिन्ता-सन्तान-वितानैकताने एव ब्रह्मचारि-गुरौ, सपद्येव न्यविशत श्यामबटुः सह देवशर्म्मणा वर्षीयसा ब्राह्मणेन । स तु बाष्प-क्षालितोपनयनः शोकाधिक-कम्पित-गात्रयष्टिः प्रविश्यैव, दृष्ट्वैव तां बालिकां 'कुतः कुतः कोशले !' इत्युदीर्य तामङ्के जग्राह ।

व्याख्या—ततः = गमनानन्तरम्, 'हन्त = कष्टम्, कथम् = किम्, अद्यापि = अधुनाऽपि, शूली = शिवः, त्रिशूलेन = अस्त्रविशेषेण, न = नहि, एतान् = यवनहतकान्, शूलाकरोति = शूलेन पचति, कथम् खड्गिनी = दुर्गा, खड्गेन = चन्द्रहासेन, न खण्डयति = खण्डं खण्डं न विदधाति, कथम्, चक्री = विष्णुः, चक्रेण = शस्त्रविशेषेण, न = नहि, चूर्णयति = विधूनयति, कथम्, पाशी=वरुणः, पाशैः = बन्धनसाधनैः, न = नहि, पाशयति = बध्नाति, कथम्, हली=बलरामः, हलेन = लाङ्गलेन, न = नहि, अवहेलयति = तिरस्करोति, कथं वा, जम्भारातिः = इन्द्रः, दम्भोलिघातैः = वज्रपातैः, दम्भिनः = अहङ्कारिन्, एतान् = यवनान्, अम्भोधिजलस्तम्भारम्भेषु = सागरजलस्तम्भोपक्रमेषु, न पातयति = न मज्जयति, अहह = कष्टम्, क, इतोऽप्यधिकोऽनर्थः = अस्मादप्यधिकोपद्रवः, भविता, यद् भगवान् = जनिता यद् विष्णुः, अवतरिष्यति = भूमौ समागमिष्यति, शिव ! शिव !! = शङ्कर ! शङ्कर !! न शक्यते = न वारयते, द्रष्टुमपि = अवलोकयितुमपि, यदेतैः = यवनैः, निर्दयहृदयैः = दयादरिद्रैः, परमपूजनीयानां = समाराध्यानाम्, ब्राह्मणानामपि = द्विजानामपि, अल्पवयस्काः = अतिन्यूनवया अपि, बालिकाः = कन्यकाः, अपह्रियन्ते = चोर्यन्ते, धिगेतान् = यवनान् धिक्,

धर्मादपि, निर्भीकान् = भयरहितान्, अभीकान् = कामुकान्, इति, चिन्तासन्तानवितानैकताने = चिन्तासमूहविस्तारस्थिरचित्ते, एव, ब्रह्मचारिगुरौ = श्यामवटुशिक्षके, सपद्येव = झटित्येव, न्यविशत् = प्राविशत्, श्यामवटुः = एतन्नामा ब्रह्मचारी, सह = साकम्, देवशर्मणा = एतन्नामकेन, वर्षीयसा = वृद्धेन, ब्राह्मणेन = द्विजेन। स तु = ब्राह्मणस्तु, वाष्पक्षालितोपनयनः = अश्रुधौतोपनेत्रः, शोकाधिककम्पितगात्रयष्टिः = करुणाधिकवेपमानदेहयष्टिः, प्रविश्यैव = प्रवेशं विधायैव, दृष्ट्वैव = अवलोक्य एव, ताम् = वटुगोपिताम्, बालिकाम् = कन्यकाम्, कुतः कुतः कोशले = भो कोशलाभिधाने ! कुतः सम्प्राप्तासि, इति = एवम्, उदीर्य = निगद्य, ताम् = बालिकाम्, अङ्के = क्रोडे, जग्राह = अगृह्णात्।

समासः—शूलमस्यास्तीति शूली। जम्भस्य आरातिः हृति जम्भारातिः। दम्भोलेः घातास्तैः दम्भोलिघातैः। अम्भांसि दधाति इति अम्भोध्नि, अम्भोधौ जलस्तम्भा इव आरम्भास्तेषु अम्भोधिजलस्तम्भारम्भेषु। निर्दयानि हृदयानि येषां तैः निर्दयहृदयैः। परमाश्च ते पूजनीयास्तेषां परमपूजनीयानाम्। अल्पं वयो यासां ताः अल्पवयस्काः। निर्गता भीः येषां तान् निर्भीकान्। चिन्तानां सन्तानस्य विताने एकतानस्तस्मिन् चिन्तासन्तानवितानैकताने। अतिशयेन वृद्धः वर्षीयान्, तेन वर्षीयसा। वाष्पेण क्षालितम् उपनयनं यस्य सः वाष्पक्षालितोपनयनः। शोकेम अधिकं कम्पिता गात्रमेव यष्टिः यस्य सः शोकाधिककम्पितगात्रयष्टिः।

कोषः—'प्रचेता वरुणः पाशी', 'दम्भोलिरशनिर्द्वयोः', 'कम्रः कामयिताऽभीकः' इति सर्वत्राप्यमरः।

व्याकरणम्—शूली—शूल + इनि (प्र० ए० व०)। शूलाकरोति—शूल + आ + कृ + लट् + तिप्। खड्गिनी—खड्ग + इनि + ङीप् (स्त्री०)। चक्री—चक्र + इनि (प्र० ए० व०)। हली—हल + इनि (प्र० ए० व०)। अवहेलयति—अव + हेला + णिच् + लट् + तिप्। दम्भिनः—दम्भ + इनि (द्वि० ब० व०)। अम्भोधिः—अम्भस् + धा + ई। भविता—भू + लुट् + तिप्। भगवान्—भग + मतुप् (प्र० ए० व०)। अवतरिष्यति—अव + तृ + णिच् + लृट् + तिप्। द्रष्टुम्—दृश् + तुमुन्। अपह्रियन्ते—अप् हृ + य + लट् (भावे)। निर्भीकान्—निर् + भी + क (द्वि० व० व०)। न्यविशत्—नि + विश् + लङ्। प्रविश्य—प्र + विश् + क्त्वा + ल्यप्। उदीर्य—उद् + ईर् + क्त्वा + ल्यप्। अङ्के—अङ्क + अच् (स० त्रि० ए०)।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, हन्त = ओह ! खेदसूचक, शूली = त्रिशूल-धारी शङ्करजी, शूलाकरोति = शूल द्वारा वध कर देते, खड्गिनी = खड्ग-धारिणी दुर्गा, खण्डयति = टुकड़े-टुकड़े कर देती, चक्री = चक्रधारी भगवान् विष्णु, चूर्णयति = चूर-चूर कर देते हैं, पाशी = पाश धारण करने वाले भगवान् वरुण, पाशैः = जालों से, पाशयति = बाँध देते हैं, हली = हल धारण करने वाले बलराम, अवहेलयति = अवहेलना करते हैं, जम्भारातिः = इन्द्र, दम्भोलिघातैः = वज्र के प्रहार से, दम्भिनः = अहंकारियों को, एतान् = इन राक्षसों को, अम्भोधिजलस्तम्भारम्भेषु = सागर में जलस्तम्भ के रूप में, पातयति = गिरा देते हैं, अहह = ओह !, कः = कौन, इतः = इससे, अनर्थः = भविता = होगा, अवतरिष्यति = अवतार लेगा, शक्यते = सकता है, द्रष्टुम् = देखने के लिए, एतैः = इन यवनों के द्वारा, निर्दयहृदयैः = निर्दयतापूर्वक, परमपूजनीयानां = परमपूज्य, अल्पवयस्काः = कम उम्र वाली, अपह्रियन्ते = चुरा ली जाती हैं, धिक् एतान् = धिक्कार है इन्हें, निर्भीकान् = निडर, अभी-कान् = कामुकों को, चिन्तासन्तानवितानैकताने = चिन्ताओं की अधिकता से चिन्तित होने पर भी, ब्रह्मचारिगुरौ = ब्रह्मचारी के गुरु के, सपदि एव = शीघ्र ही, न्यविशत् = प्रवेश किया, देवशर्मणा सह = देवशर्मा के साथ, वर्षीयसा = अतिवृद्ध, ब्राह्मणेन = ब्राह्मण से, वाष्पक्षालितोपनयनः = आँसुओं से धुले हुए चश्मे वाले, प्रविश्य = प्रवेश करके, इति उदीर्य = ऐसा कहकर, ताम् = उस कन्या को, अङ्के = गोद में, जग्राह = ले लिया।

हिन्दी—तदनन्तर ओह ! इतना अनर्थ होने पर भी भगवान् शङ्कर त्रिशूल से इन दुराचारियों को क्यों नहीं बेंध देते ? खड्गधारिणी भगवती दुर्गा अपने खड्ग से इनके खण्ड-खण्ड क्यों नहीं कर देती ? चक्रधारी भगवान् विष्णु इन्हें चक्र से क्यों नहीं चूर-चूर कर डालते ? वरुणदेव इन्हें पाश से बाँध क्यों नहीं देते ? हलधर बलराम हल से इनकी अवहेलना क्यों नहीं करते ? जम्भनाशक भगवान् इन्द्र इन अभिमानियों को वज्र से मारकर सागर के जल-स्तम्भों में क्यों नहीं फेंक देते ? ओह ! क्या इससे भी बढ़कर दुराचार हो सकता है, जब भगवान् अवतार लेंगे। शिव ! शिव !! देखा भी नहीं जाता। ये निर्दय हृदय वाले यवन परमपूज्य विप्रों की भी अल्पवयस्क बालिकाओं को चुरा लेते हैं। धिक्कार है, धर्म से भी नहीं डरने वाले इन कामुक लोगों को। ब्रह्मचारी गुरु इन्हीं चिन्ताओं से चिन्तित हो रहे थे कि वृद्ध ब्राह्मण देवशर्मा के

साथ श्यामवर्ण के ब्रह्मचारी ने प्रवेश किया। उस वृद्ध ब्राह्मण का उपनेत्र (चश्मा) आंसुओं से प्रक्षालित हो रहा था। प्रवेश करके और बालिका को देखकर ही उसने 'कोशला ! कोशला ! तुम यहाँ कैसे ?' कहकर गोद में उठा लिया ॥ ३ ॥

साऽपि प्रक्षिप्य दाडिम-खण्डम्, निरस्य च कोरक-स्तवक-क्रीडनकम्, तं कराभ्यां कण्ठे गृहीत्वा मुक्तकण्ठं रुरोद।

वृद्धोऽपि च एकं करं तत्पृष्ठे विन्यस्य अन्येन च तस्याः शिरः परिमृशन् 'कोशले ! कानि पातकानि पूर्वजन्मनि कृतवत्यसि, यद् बाल्य एव त्वत्पिता सङ्ग्रामे म्लेच्छ-हतकैर्धर्मराजनगरादध्वन्यध्वन्यः कृतः ? माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेश्यावेव आखेट-व्यसनिनौ महार्ह-भूषण-भूषितौ तुरगावारुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृताविति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव मयैव सह नीता, वर्द्धसे च। अहह ! कथं वारं वारं बालैव सुन्दरकन्या-विक्रय-व्यसनिभिर्यवनवराकैरपह्रियसे ? भगवदनुग्रहेण च कथं कथमपि मत्कर-मुक्ता पुनः प्राप्यसे। परमात्मन् ! त्वमेव रक्षैनामनाथां दीनां क्षत्रिय-कुमारीम्'—इति सकरुणं विललाप।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि चकिताः स्तब्धाः अश्रुमुखाश्च संवृत्ताः। कुटीराध्यक्षो ब्रह्मचारी च निजमपि किञ्चिद् बन्धु-वियोग-दुःखं स्मारित इव बाष्प-व्रजोद्गम-दुर्दिन-ग्लपित-मुखः कथं कथमपि धैर्यमाधाय वदनं पटेन परिमृज्य पुनरवदधे।

व्याख्या—साऽपि = कोशलाऽपि, प्रक्षिप्य = परित्यज्य, दाडिमखण्डम् = दाडिमभागम्, निरस्य = परिहाय च, कोरकस्तबकक्रीडनकम् = कलिकागुच्छक्रीडनकम्, तं = देवशर्माणम्, कराभ्यां = हस्ताभ्याम्, कण्ठे = ग्रीवायाम्, गृहीत्वा = प्राप्य, मुक्तकण्ठम् = उन्नतस्वरेण, रुरोद = अरुदत्। वृद्धोऽपि = देवशर्माऽपि, च, एकम्, करं = हस्तम्, तत्पृष्ठे = कोशलायाः पृष्ठभागे, विन्यस्य = निक्षिप्य, अन्येन = अन्यहस्तेन, च, तस्याः = कोशलायाः, शिरः = मस्तकम्, परिमृशन् = स्पृशन् कोशले ! = एतन्नामिके, कानि, पातकानि = पापाचाराणि, पूर्वजन्मनि = प्राक्तनजन्मनि, कृतवत्यसि = विहितवत्यसि ? यद्, बाल्य एव =

बाल्यावस्थायामेव, त्वत्पिता = तव जनकः, सङ्ग्रामे = युद्धे, म्लेच्छहतकैः = दुष्ट-म्लेच्छैः, धर्मराजनगराध्वनि = यमपुरमार्गे, अध्वन्यः = पान्थः, कृतः = विहितः, माता = जननी, च, तव = ते, ततोऽपि = पितृमरणादपि, पूर्वमेव = प्रथममेव, कथावशेषा = स्मृतिविषया, संवृत्ता = अभूत्, यमलौ = यमौ, भ्रातरौ = बान्धवौ च, तव = कन्यायाः, द्वादशवर्षदेशीयावेव = आदित्यसंख्यवर्षकल्पादेव, आखेट-व्यसनिनौ = मृगयाव्यसनिनौ, महार्हभूषणभूषितौ = बहुमूल्यालङ्करणालङ्कृतौ, तुरगावारुह्य = घोटकावारुह्य, वनम् = विपिनम्, गतौ = प्राप्तौ, दस्युभिः = चौरैः, अपहृताविति = चोरिताविति, न = नहि, श्रूयते = आकर्ण्यते, तयोः = भ्रात्रोः, वार्ता = समाचारः अपि, त्वं = भवती, तु, मम = देवशर्मणः, यजमानस्य = ऋत्विजः, पुत्रीति = कन्यकेति, स्वपुत्रीव = निजसुतेव, मयैव = देवशर्मणैव, सह = साकम्, नीता = आनीता, वर्द्धयसे = पाल्यसे च, अहह ! = दारुणम्, कथम् = केन प्रकारेण, वारं वारम् = पुनः पुनः, बालैव = बालिकैव, सुन्दर-कन्याविक्रयव्यसनिभिः = रूपवतीकन्याविक्रयव्यसनिभिः, यवनवराकैः = नीच-यवनैः, अपह्रियसे = चोर्यसे, भगवदनुग्रहेण = ईश्वरानुकम्पया च, कथं कथमपि येन केनाऽपि प्रकारेण, मत्करमुक्ता = देवशर्महस्तत्यक्ता, पुनः = भूयः, प्राप्स्यसे अवाप्स्यसे, परमात्मन् ! = भगवन् ! त्वमेव = भवानेव, रक्ष = अव, एनाम् = मत्सम्मुखीनाम्, अनाथाम् = मातुपितृविहीनाम्, दीनाम् = दुःखकातराम्, क्षत्रियकुमारीम् = क्षत्रियबालिकाम्, इति, सकरुणम् = सशोकम्, विललाप = रुरोद ।

तदाकर्ण्य = पुरोहितस्य वचनं श्रुत्वा, सर्वेऽपि = निखिलाः जनाः, चकिताः आश्चर्ययुक्ताः, स्तब्धाः = किङ्कर्त्तव्यविमूढाः, अश्रुमुखाः = अश्रुसिक्ताः, संवृत्ताः = अभवन् । कुटीराध्यक्षः = आश्रमाध्यक्षः ब्रह्मचारी, च, निजमपि = आत्मानमपि, किञ्चिद् = स्तोकम्, बन्धुवियोगदुःखम् = प्रियजनविरहशोकम्, स्मारितः = अनुभावितः, इव = सदृशम्, वाष्पदंजोद्गमदुर्दिनग्लपितमुखः = अश्रुप्रवाह-दुर्दिनमलिनमुखः, कथं कथमपि = केनापि प्रकारेण, धैर्यमाधाय = धीरो भूत्वा, वदनम् = मुखम्, पटेन = वस्त्रेण, परिमृज्य = प्रोञ्छ्य, पुनः = भूयः, अवदधे = तस्थौ ।

समासः—दाडिमस्य खण्डं दाडिमखण्डम् । कोरकाणां स्तवकानि तेषां क्रीडनकम् इति कोरकस्तबकक्रीडनकम् । धर्मराजस्य नगरं, तस्य अध्वनि इति धर्मराजनगराध्वनि । कथा एव अवशेषा यस्याः सा कथावशेषा । आखेटस्य

व्यसनं ययोस्तौ आखेटव्यसनिनौ। महार्हैः भूषणैः भूषितौ इति महार्हभूषण-भूषितौ। सुन्दरकन्यानां विक्रयस्य व्यसनं येषां ते, तैः सुन्दरकन्याविक्रय-व्यसनिभिः। मत्कराभ्यां मुक्ता मत्करमुक्ता। करुणया सहितं सकरुणम्। अश्रुभिः पूर्णानि मुखानि येषां ते अश्रुमुखाः। बन्धूनां वियोगस्य दुःखं बन्धु-वियोगदुःखम्। वाष्पानां व्रजस्य उद्गमेन ग्लपितं मुखं यस्य सः वाष्पव्रजोद्गम-दुर्दिनग्लपितमुखः।

व्याकरणम्—प्रक्षिप्य—प्र+क्षिप्+ल्यप्। निरस्य—निर्+अस्+ल्यप्। गृहीत्वा—ग्रह+क्त्वा। रुरोद—रुद्+लिट्+तिप्। विन्यस्य—वि+नि+अस्+ल्यप्। परिमृशन्—परि+मृश्+शतृ। कृतवती—कृ+क्तवतु+ङीप् (स्त्री०)। अध्वन्यः—अध्वन्+यत् (प्र० ए० व०)। आरुह्य—आङ्+रुह्+ल्यप्। अपहृतौ—अप्+हृ+क्त (प्र० द्वि० व०)। नीता—नी+क्त (टाप्)। विललाप—वि+लप्+लिट्। संवृत्ताः—सम्+वृ+क्त। स्मारितः—स्मृ+नि+क्त (प्रेरणार्थकः), आघ्राय—आङ्+घ्रा+ल्यप्। परिमृज्य—परि+मृज्+ल्यप्। अवदध्रे—अव्+धा—लिट्।

शब्दार्थ—साऽपि=वह लड़की भी, प्रक्षिप्य=छोड़कर, दाडिमखण्डम्=अनार के टुकड़ों को, निरस्य=पृथक् करके, कोरकस्तवकक्रीडनकम्=फूलों के गुच्छों के खिलौने को, कण्ठे गृहीत्वा=कण्ठ से ग्रहण कर के, मुक्तकण्ठम्=उन्नत स्वर से, रुरोद=रोने लगी, तत्पृष्ठे=उसकी पीठ पर, विन्यस्य=रखकर, अन्येन=दूसरे हाथ से, तस्याः=उस लड़की के, परिमृशन्=सहलाता हुआ, पातकानि=पापों को, पूर्वजन्मनि=पूर्व जन्म में, कृतवती=किया था, बाल्ये=बचपन में, म्लेच्छहतकैः=दुष्ट यवनों द्वारा, धर्मराजनगराध्वनि=मृत्युमार्ग पर, अध्वन्यः=पथिक, कथावशेषा=कथामात्र शेषवाली, द्वादश-वर्षदेश्यौ=लगभग बारह वर्ष वाले, आखेटव्यसनिनौ=शिकार के प्रेमी, महार्हभूषणभूषितौ=बहुमूल्य आभूषणों से विभूषित, अश्वमारुह्य=घोड़े पर चढ़कर, दस्युभिः=डाकुओं द्वारा, अपहृतौ=चुरा लिये गये, श्रूयते=सुनी जाती है, यजमानस्य=यजमान की, स्वपुत्रीव=अपनी पुत्री के समान, नीता=लाई गई, वद्धर्चसे=पालित-पोषित हो रही हो, बालैव=बचपन में ही, सुन्दरकन्याविक्रयव्यसनिभिः=सुन्दर कन्याओं के विक्रय के शौकीन, यवन-वराकैः=दुष्ट यवनों द्वारा, अपह्रियसे=अपहरण की जा रही हो, भगवदनु-ग्रहेण=भगवान् की कृपा से, मत्करमुक्ता=मेरे हाथों से छुटी हुई, प्राप्स्यसे=

प्राप्त होती रही हों, रक्ष=रक्षा करो, एनाम्=इसको, दीनाम्=दीन ('कुमारीम्' का विशेषण), अनाथाम्=संरक्षकविहीन, क्षत्रियकुमारीम्=क्षत्रियकुमारी को, सकरुणम्=करुणापूर्वक, विललाप=विलाप करने लगा, तदाकर्ण्य=यह सुनकर, चकिताः=आश्चर्ययुक्त, स्तब्धाः=मूढ, अश्रुमुखाः=रुदितमुख, संवृत्ताः=हो गये, कुटीराध्यक्षः=कुटी के अध्यक्ष, निजमपि=स्वयं को भी, बन्धुवियोगदुःखम्=प्रिय वियोग से दुःखी, स्मारित इव=स्मरण कराये गये की भाँति, वाष्पव्रजोद्गमदुर्दिनग्लपितमुखः=अश्रुप्रवाहरूप दुर्दिन से क्षीणकान्ति मुख वाले, आधाय=धारण करके, कथं कथमपि=किसी प्रकार से, परिमृज्य=पोंछकर, अवदधे=सावधान हुए।

हिन्दी—वह कन्या भी अनार के टुकड़ें और कलियों के गुच्छें—जिससे वह क्रीडा कर रही थी—उसे फेंककर, उस वृद्ध के गले में बाँहें डालकर मुक्त कण्ठ से रोने लगी।

वृद्ध भी एक हाथ उसकी पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से उसका शिर सहलाते हुए इस प्रकार करुण विलाप करने लगा—

कोशले! पूर्वजन्म में तुमने कौन से पाप किये थे, जो तेरे पिता तेरे बचपन में ही रणस्थल में दुष्ट यवनों द्वारा मार डाले गये। तुम्हारी माता उससे भी पूर्व पञ्चत्व को प्राप्त हो गई। तुम्हारे जुड़वा भाई लगभग बारह वर्ष की अवस्था में, जो आखेटव्यसनी थे, बहुमूल्य आभूषणों को धारण करके घोड़ों पर सवार होकर वन में गये और दस्युओं (डांकुओं) के द्वारा हरण कर लिये गये। इस प्रकार उन दोनों का कोई समाचार भी नहीं मिला। तुम मेरे यजमान की पुत्री थी, इसलिये अपनी पुत्री के समान समझ कर मैंने तुझे अपने साथ रखा और पालन-पोषण किया। ओह! सुन्दर कन्याओं के व्यापारी दुष्ट यवनों के द्वारा कई बार तेरा अपहरण किया गया, पर भगवान् की कृपा से किसी-न-किसी प्रकार उनसे छूटकर मुझे प्राप्त होती रही। भगवन्! तुम्हीं इस अनाथ-दीन क्षत्रियकुमारी की रक्षा करना।

यह सुनकर सभी लोग आश्चर्यचकित एवं स्तब्ध तथा अश्रुपूर्ण मुखवाले हो गये। कुटी के अध्यक्ष और ब्रह्मचारी अपने किसी बन्धुवियोग के दुःख को स्मरण कराये गये की भाँति अश्रुप्रवाह रूप दुर्दिन से क्षीणकान्ति मुखवाले किसी प्रकार धैर्य को धारण करके मुँह को उत्तरीय वस्त्र से पोंछकर पुनः सावधान हुए।

टिप्पणी—इस गद्यांश में उत्प्रेक्षा अलंकार का नितान्त मनोरम चित्रण हुआ है। ग्रन्थकार ने गौरसिंह, उसके भाई तथा बहन आदि के कारुणिक घटनाओं का यहाँ अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रित किया है। उनके कष्ट से निखिल जनसमुदाय अश्रुपूर्ण हो उठता है ॥ ४ ॥

तावत् कुटीराद् बहिः कस्मिंश्चित् कार्ये व्यासक्तो गौरबटु-र्विलापेनैतेन कर्णयोराकृष्यमाण इव त्वरितमन्तः प्रविवेश। पौनःपुन्येन दृष्ट्वा च तां कन्यां देवशर्म्माणं वृद्धं ब्राह्मणं च, परिपक्व-तालीदलीभूत-कपोल-पालीकः, उदञ्चित-रोममाली, त्वरित-कोष्ण-श्वास-प्रश्वास-शाली, शारदशर्वरी-शर्वरी-सार्वभौम-किरण-किरणोद्भूतोद्भूत-कीला-लाली-व्यालीढ-चन्द्रकान्त-जालीभूत-लोचनः, बाष्पावरुद्धकण्ठः कमपि वृत्तान्तं स्मारित इव, कमपि चिरविनष्टं प्रेयांसं प्रापित इव, किमपि चिरानुभूतं दुःखं पुनरनुभावित इव च स्मारं स्मारमिव किमपि स्व-समानदशं श्यामबटुं सम्बोध्य कातरेण भज्यमानेन कम्पमानेन च स्वरेणाऽचकथत्—

'श्याम ! श्याम ! शृणोषि शृणोषि ?' इति।

अथ श्यामबटुरपि अश्रुभिः स्नातो गौरस्य करं गृहीत्वा 'तात ! शृणोमि, सेयं सौवर्णी अस्मद्भगिनी, स चाऽयं पूज्यपादः पुरोहितः' इति कथयन् गौरमपि प्रकटं रोदयन् रुरोद।

व्याख्या—तावत् = समयान्तरालेऽस्मिन्, कुटीरात् = पर्णशालातः, बहिः = बाह्यम्, कस्मिश्चित्, कार्ये = व्यापारे, व्यासक्तः = लीनः, गौरबटुः = गौर-ब्रह्मचारी, विलापेन = रोदनेन, एतेन = अनेन, कर्णयोः = श्रोत्रयोः, आकृष्य-माण इव = विहिताकर्षण इव, त्वरितम् = शीघ्रम्, अन्तः = आभ्यन्तरम्, प्रविवेश = प्रविष्टो बभूव, पौनःपुन्येन = वारं-वारम्, दृष्ट्वा = विलोक्य च, ताम् = सम्मुखीनाम्, कन्याम् = बालिकाम्, देवशर्माणम् = एतन्नामकम्, वृद्धम् = वर्षीयसम्, ब्राह्मणञ्च = द्विजञ्च, परिपक्वतालीदलीभूतकपोलपालीकः=पूर्ण-पक्वतालीदलीभूतगण्डप्रान्तः, उदञ्चितरोममाली = प्रोद्गतलोमावली, त्वरित-कोष्णश्वासप्रश्वासशाली = शीघ्रकदुष्णश्वासोच्छ्वासयुक्तः, शारदशर्वरीशर्वरी-भौमकिरणकिरणोद्भूतकीलालालीव्यालीढचन्द्रकान्तजालीभूतलोचनः = शरत्का-लिकनिशाशशिरश्मिक्षेपात्यन्तर्निर्यातपानीयपङ्क्तिग्रस्तचन्द्रकान्तजालीभूतनयनः,

बाष्पावरुद्धकण्ठः = अश्रुनिरुद्धगलविलः, कमपि = पूर्वानुभूतम्, वृत्तान्तम् = समाचारम्, स्मारित इव = कृतस्मरण इव, कमपि = अनिर्वचनीयम्, चिरविनष्टम् = बहुदिननष्टम्, प्रेयांसम् = प्रेमास्पदम्, प्रापित इव = लम्भित इव, किमपि = पूर्वस्थम्, चिरानुभूतम् = बहुकालानुभवजन्यम्, दुःखम् = कष्टम्, पुनरनुभावित इव = अनुभवविषयं प्रापित इव च, स्मारं स्मारमिव = स्मृत्वा स्मृत्वा इव, किमपि, स्वसमानदशम् = निजसमावस्थम्, श्यामवटुम् = निजसहचरम्, सम्बोध्य = अभिमुखीकृत्य, कातरेण = दुःखबहुलेन, भज्यमानेन = त्रुटयमानेन, कम्पमानेन = वेपमानेन च, स्वरेण = शब्देन, अचकथत् = अवदत् ।

श्याम ! श्याम ! = एतन्नामक ब्रह्मचारिन् ! शृणोषि = आकर्णयसि, इति = एवम् ।

अथ = ततः, श्यामवटुरपि = एतन्नामा ब्रह्मचारी अपि, अश्रुभिः = वाष्पैः, स्नातः = अभिषिक्तः, गौरस्य = गौरसिंहस्य, करं = हस्तं, गृहीत्वा = सङ्गृह्य, तात ! = ज्येष्ठभ्रातः ! शृणोमि = आकर्णयामि, सेयं = कोशला, सौवर्णी = एतन्नाम्नी कन्या, अस्मद्भगिनी = अस्मत्स्वसा, स च, अयं पूज्यपादः, गौरमपि = गौरसिंहमपि, प्रकटं = प्रत्यक्षम्, रोदयन् = विलापयन्, (स्वयमपि) रुरोद = विललाप ।

समासः—परिपक्वं यत् तालीदलं तदिव भूतं कपोलयोः पालीकं यस्य सः परिपक्वतालीदलीभूतकपोलपालीकः । उदञ्चिता रोमानां माला यस्य सः उदञ्चितरोममाली । त्वरिता कोष्णा च श्वासप्रश्वासानां शाला अस्ति अस्मिन् इति त्वरितकोष्णश्वासप्रश्वासशाली । शरदि भवा शारदी, सा चासौ शर्वरी च, तस्याः शर्वरी सार्वभौमस्य किरणानां किरणेन उद्भूतोद्भूतं यत् कीलालम्, तस्य आली, तया व्यालीढः यः चन्द्रकान्तः, तस्य जालीभूते लोचने यस्य सः शारदशर्वरीशर्वरीसार्वभौमकिरणकिरणोद्भूतोद्भूतकीलालालीव्यालीढचन्द्रकान्तजालीभूतलोचनः । वाष्पैः अवरुद्धः कण्ठो यस्य सः वाष्पावरुद्धकण्ठः । स्वेन समाना दशा यस्य तं स्वसमानदशम् । पूज्यौ पादौ यस्य सः पूज्यपादः । पुरः हितं यस्य सः पुरोहितम् ।

व्याकरणम्—व्यासक्तः—वि + आ + सञ्ज + क्त (प्र० ए० व०)। आकृष्यमाण—आ + कृष् (कर्षणे) + य + शानच् । प्रविवेश—प्र + विश् + लिट् (तिप्)। उदञ्चित—उद् + अञ्च + क्त । रोममाली—रोममाला + इनि । अवरुद्धः—अव + रुध् + क्त । स्मारित—स्मर + णिच् + क्त । विनष्टम्—

वि + नश् + क्त । प्रापितः—प्र + आप् + क्त । अनुभावित—अनु + भू + णि + क्त । सम्बोध्य—सम् + बुध् + क्त्वा + ल्यप् । भज्यमानेन—भज् + य + शानच् (तृ० ए० व०) । कम्पमानेन—कम्प् + शानच् (तृ० ए० व०) । स्नातः—स्ना + क्त (प्र० ए० व०) । रोदयन्—रुद् + णिच् + शतृ (प्र० ए० व०) । रुरोद—रुद् + लिट् + तिप् ।

शब्दार्थ—तावत् = तब तक, कुटीरात् = आश्रम से, बहिः = बाहर, कस्मिश्चित् = किसी, कार्ये = कार्य में, व्यासक्तः = लगा हुआ, आकृष्यमाण इव = आकृष्ट किया जाता हुआ-सा, त्वरितम् = शीघ्र ही, अन्तः = अन्दर, प्रविवेश = प्रवेश किया, परिपक्वतालीदलीभूतकपोलपालीकः = पके हुए ताल-पत्र के सदृश पीले पड़े हुए कपोल वाले, उदञ्चितरोममाली = रोमाञ्चित शरीर वाला, त्वरितकोष्णश्वासप्रश्वासशाली = जल्दी-जल्दी कुछ गरम श्वास-प्रश्वास लेने वाला, शारदशर्वरीशर्वरीसार्वभौमकिरणोद्भूतोद्भूतकीलालालीव्यालीढ-चन्द्रकान्तजालीभूतलोचनः = शरत्कालीन रात्रि की चन्द्रमा की किरणों के पड़ने से समुत्पन्न जलकणों से व्याप्त चन्द्रकान्तमणि के समान अश्रु से पूर्ण नेत्रों वाला, वाष्पावरुद्धकण्ठः = अश्रुओं से अवरुद्ध कण्ठवाला, वृत्तान्तम् = वृत्तान्त को, स्मारितः = याद कराया गया, चिरविनष्टम् = चिरकाल से नष्ट हुए, प्रेयांसम् प्रिय को, प्रापितः = प्राप्त कराया गया, चिरानुभूतम् = चिरकाल से अनुभव किये जाने वाले, पुनरनुभावित इव = पुनः अनुभव कराया जाता हुआ-सा, स्मारं स्मारं = पुनः-पुनः स्मरण करके, स्वसमानदशम् = अपनी ही समान अवस्था वाले को, सम्बोध्य = सम्बोधित करके, कातरेण = दीन, भज्यमानेन = टूटते हुए, कम्पमानेन = काँपते हुए से, स्वरेण = स्वर से, अचकथत् = कहा, स्नातः = स्नान किया हुआ, शृणोमि = सुनता हूँ, अस्मद्भगिनी = मेरी बहिन, कथयन् = कहता हुआ, प्रकटम् = स्पष्ट रूप से, रोदयन् = रुलाता हुआ, रुरोद = रोने लगा ।

हिन्दी—उस कुटी के बाहर किसी कार्य में लगा हुआ गौर ब्रह्मचारी इस विलाप के कान में पड़ते ही खिंचा हुआ-सा शीघ्र ही अन्दर प्रवेश किया । उस कन्या और देवशर्मा नामक वृद्ध ब्राह्मण को बार-बार देखकर, जिसके गाल पके हुए ताड़ के पत्ते के समान पीले हो गये थे, शरीर रोमाञ्चित हो गया था, वह शीघ्रतापूर्वक श्वास-प्रश्वास लेने लगा; आँखें शरच्चन्द्रिका के संस्पर्श से समुत्पन्न जलकणों से व्याप्त चन्द्रकान्तमणि सदृश हो गईं । अश्रुओं से उसका

कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वह किसी वृत्तान्त को संस्मरण करते हुए की भाँति, किसी चिरवियुक्त प्रेमी को प्राप्त किये हुए की भाँति, किसी समनुभूत दुःख को पुनः अनुभूत किये हुए के समान, कुछ याद करता हुआ अपने समान दशा वाले श्याम ब्रह्मचारी को सम्बोधित करके कातरता से लड़खड़ाते हुए एवं काँपते हुए स्वर से बोला—

श्याम ! श्याम ! सुनते हो, सुनते हो ?

इसके अनन्तर श्यामवटु भी आँसुओं से नहाये हुए गौरवटु का हाथ पकड़ कर हा भाई ! सुन रहा हूँ। यही हमारी बहन सौवर्णी है और यह हमारे पूज्य पुरोहित हैं। यह कहता हुआ गौर ब्रह्मचारी को भी प्रकट रूप में रुलाता हुआ स्वयं रोने लगा ॥ ५ ॥

तदाकर्ण्यं क्षणं सर्वेऽपि कुटीरस्थाः काष्ठविग्रहा इव चित्रलिखिता इव च संवृत्ताः।

देवशर्माऽपि च स्तब्धीभूतामिव कन्यकां तस्मिन्नेव कुशविष्टरे उपवेश्य चक्षुषी स्थिरीकृत्य 'वत्सौ ! किं वीरस्य खड्गसिंहस्य तनयौ युवाम् ?' इति कथयन् बली-पंलितौ वार्द्धक्यवेपमानौ बाहू प्रससार। तौ चाऽऽत्मनः पित्रोरपि पूजनीयं पुरोहितं साष्टाङ्गं प्रणेमतुः। स च कथमप्युत्थाय, उत्थाप्य च तौ, समाश्लिष्य स्वनयनवारिधाराभिस्ताव-भ्यषिञ्चत्।

ततो मुहूर्त्तं यावत्तु परितः प्रसर्पिभिः करुणोद्गार-प्रवाहैरेव पर्यपूर्यंत सा कुटी।

व्याख्या—तदाकर्ण्य=तन्निशम्य, क्षणं=किञ्चित्कालम्, सर्वेऽपि= निखिला अपि, कुटीरस्थाः=कुटीरवासिनः, काष्ठविग्रहाः=काष्ठदेहाः, इव= यथा, चित्रलिखिता इव=चित्रिता इव, च=पुनः, संवृत्ताः=सञ्जाताः, देवशर्माऽपि=तन्नामकः पुरोहितोऽपि, स्तब्धीभूतामिव=स्तब्धतामिव गताम्, कन्यकाम्=बालिकाम्, तस्मिन्नेव=स्वाधिष्ठिते एव, कुशविष्टरे=कुशासने, उपवेश्य=उपस्थाप्य, चक्षुषी=नेत्रे, स्थिरीकृत्य=निश्चले विधाय, वत्सौ= पुत्रौ, किम्=इति प्रश्ने, वीरस्य=शूरस्य, खड्गसिंहस्य=तन्नामकस्य, तनयौ=पुत्रौ, युवाम्=गौर-श्यामौ, इति=एवं, कथयन्=निगदन्, बली-पलितौ=धवलरोमयुक्तौ, वार्द्धक्यवेपमानौ=वृद्धावस्थया कम्पायमानौ, बाहू=

भुजे, प्रससार = प्रसारितवान् । तौ च = गौरश्यामौ, आत्मनः = स्वस्य, पित्रोरपि = मातापित्रोरपि, पूजनीयं = पूज्यं, पुरोहितम् = पुरोधसम्, साष्टाङ्गम् = अष्टाङ्गसहितम्, प्रणेमतुः = नमश्चक्रतुः । स च = देवशर्मा च, कथमपि = केनापि प्रकारेण, उत्थाय = सचेष्टो भूत्वा, उत्थाप्य = उपगृह्य, च, तौ = गौरश्यामौ, समाश्लिष्य = समालिङ्ग्य, स्वनयनवारिधाराभिः = अश्रुधाराभिः, तौ = ब्रह्मचारिणौ, अभ्यषिञ्चत् = सिञ्चितवान् ।

ततो, मुहूर्तं यावत् = किञ्चित्कालं यावत्, परितः = समन्तात्, प्रसर्पिभिः = व्याप्नुवद्भिः, करुणोद्गारप्रवाहैः = करुणोद्गारधाराभिः, इव, पर्यपूर्यत = पूरिताऽभवत्, सा कुटी = स आश्रमः ।

समासः—कुटीरे तिष्ठन्तीति कुटीरस्थाः । काष्ठस्य विग्रहो येषां ते काष्ठविग्रहाः । चित्रे लिखिताः चित्रलिखिताः । कुशानां विष्टरे कुशविष्टरे । वलीभिः पलितौ वलीपलितौ । अष्टाङ्गैः सहितं साष्टाङ्गम् ।

'जानुभ्यां च तथा पद्भ्यां पाणिभ्यामुरसा धिया ।
शिरसा वचसा दृष्ट्या प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः' ॥

व्याकरणम्—आकर्ण्य—आ + कर्ण + क्त्वा + ल्यप् । संवृत्ता—सम् + वृत् + क्त । अस्तब्धा स्तब्धेव भूता इति स्तब्धीभूताम्—स्तब्ध + च्वि + भू + क्त । स्थिरीकृत्य—स्थिर + च्वि + कृ + ल्यप् । वेपमानः—वेपृ + शानच् । प्रससार—प्र + सृ + लिट् + तिप् । पूजनीयम्—पूज + अनीयर् (द्वि० ए० व०) । प्रणेमतुः— प्र + णम् + लिट् + तस् ।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य = वह रोदन सुनकर, क्षणम् = कुछ समय तक, कुटीरस्थाः = कुटी में स्थित, काष्ठविग्रहाः = लकड़ी की मूर्ति, चित्रलिखिताः = चित्र में लिखित की तरह, संवृत्ताः = हो गये, स्तब्धीभूताम् = जड़ हुई-सी, कन्यकाम् = बालिका को, कुशविष्टरे = कुशासन पर, उपवेश्य = बैठाकर, चक्षुषी = नयनों को, स्थिरीकृत्य = स्थिर करके, वलीपलितौ = झुर्रियों से समन्वित श्वेत रोमों वाले, वार्द्धक्यवेपमानौ = वृद्धावस्था के कारण प्रकम्पित, बाहू = भुजाओं को, प्रससार = फैला दिया, आत्मनः = अपने, पित्रोरपि = पितरों के भी, पूजनीयम् = पूज्य, साष्टाङ्गं प्रणेमतुः = साष्टाङ्ग प्रणाम किये ।

सः = वह देवशर्मा, उत्थाय = उठकर, उत्थाप्य = उठाकर, समाश्लिष्य = आलिङ्गन कर, स्वनयनवारिधाराभिः = अपनी अश्रुधारा से, अभ्यषिञ्चत =

नहला दिया, परितः = चारों ओर, प्रसर्पिभिः = फैलने वाली, करुणोद्गार-प्रवाहैः = करुणोद्गार के प्रवाहों से, पर्यंपूरत = भर गई।

हिन्दी—उस रोदन को सुनकर कुटी में स्थित सभी जन कुछ समय के लिए कठपुतली की भाँति चित्रलिखित से हो गये।

देवशर्मा ने भी स्तब्ध हुई-सी उस बालिका को उसी कुशासन पर बैठाकर आँखें स्थिर करके 'पुत्रो ! क्या तुम दोनों बीर खड्गसिंह के आत्मज हो !' यह कहते हुए श्वेत रोमों से समन्वित और वृद्धावस्था के कारण काँपती हुई बाहों को फैला दिया और उन दोनों ने अपने पिता के भी पूज्य पुरोहित को साष्टाङ्ग प्रणाम किया। देवशर्मा ने किसी तरह उठकर और उन दोनों को उठाकर, उनका आलिङ्गन कर उन दोनों को अपनी अश्रुधारा से अभिषिञ्चित कर दिया।

इसके बाद थोड़ी देर के लिए वह कुटी चारों ओर फैली हुई करुणोद्गार की धारा से परिपूरित हो गई॥ ६ ॥

अथ कथमपि रिङ्गत्तुङ्ग-तिमिङ्गिल-गिल-परिवर्त्त-प्रसङ्ग-सङ्ग-सभङ्ग-तरङ्ग-रङ्गप्राङ्गण-सोदरीभूतं हृदयं वशीकृत्य, अनुजां सुवर्ण-वर्णां सौवर्णीनाम्ना बाल्य एव प्रसिद्धां कोशलामङ्के संस्थाप्य, समुपविष्टे गौरे; श्यामेऽपि च तस्या एव समीपे समुपविश्य तस्या एव पृष्ठं परिमृजति; पूज्यपादे पुरोहिते च क्रियासमभिहारेणोद्गच्छतो बाष्पान् पटान्तेन परिहरति; कुटीराध्यक्षः कुतुक-परवशः सम्बोध्य गौरश्यामौ समुवाच—

व्याख्या—अथ = करुणप्रवाहप्रसारानन्तरम्, कथमपि = केनापि प्रकारेण, रिङ्गत्तुङ्गतिमिङ्गिलगिलपरिवर्तप्रसङ्गसङ्गसभङ्गतरङ्गरङ्गप्राङ्गणसोदरीभूतम् = चलन्महन्मत्स्यविशेषपार्श्वपरिवर्तावसरसंसर्गसमुच्छलितवीचिनर्तनचत्वरसदृशम्, हृदयम् = मानसम्, वशीकृत्य = स्वाधीनतामानीय, अनुजाम् = भगिनीम्, सुवर्ण-वर्णाम् = कनकाभाम्, सौवर्णीनाम्ना = एतदभिधानेन, बाल्ये एव = बाल्यकाले एव, प्रसिद्धाम् = प्रथिताम्, कोशलाम् = कोशलानामिकाम्, अङ्के = क्रोडे, संस्थाप्य = उपवेश्य, समुपविष्टे = स्थिते, गौरे = गौरवटौ, श्यामेऽपि च = श्यामवटावपि च, तस्याः = बालिकायाः एव, समीपे = निकटे, समुपविश्य = स्थित्वा, तस्याः = बालिकायाः, एव, पृष्ठम् = पृष्ठभागम्, परिमृजति=परामृशति,

पूज्यपादे = समाराध्यचरणे, पुरोहिते च, क्रियासमभिहारेण = पौनःपुन्येन च, उद्गच्छतः = निःसरतः, बाष्पान् = अश्रुकणान्, पटान्तेन = वस्त्रान्तभागेन, परिहरति = परिमृजति, कुटीराध्यक्षः = गुरुः, कुतुकपरवशः = सकौतुकः, सम्बोध्य, गौरश्यामौ = एतन्नामानौ शिष्यौ, समुवाच = अकथयत् ।

समासः—रिङ्गन्तः तुङ्गाश्च ये तिमिङ्गिलगिलास्तेषां परिवर्तस्य प्रसङ्गस्तस्य सङ्गेन भङ्गेन सहिताः ये तरङ्गास्तेषां रङ्गप्राङ्गणेन इव सोदरीभूतम् इति रिङ्गत्तुङ्गतिमिङ्गिलगिलपरिवर्तप्रसङ्गसङ्गसभङ्गतरङ्गरङ्गप्राङ्गणसोदरीभूतम् । सुवर्णस्य वर्णमिव वर्णं यस्यास्तां सुवर्णवर्णाम् । क्रियायाः समभिहारस्तेन क्रियासमभिहारेण । कुटीरस्य अध्यक्षः कुटीराध्यक्षः । कुतुकेन परवशः इति कुतुकपरवशः ।

व्याकरणम्—संस्थाप्य—सम् + स्था + णिच् + पुक् + ल्यप् । समुपविष्टे—सम् + उप् + विश् + क्त । समुपविश्य—सम् + उप् + विश् + ल्यप् । परिमृजति—परि + मृज् + शतृ (स० ए० व०) । उद्गच्छतः—उद् + गम् + शतृ (द्वि० व० व०) । परिहरति—परि + हृ + शतृ (स० ए० व०) । सम्बोध्य—सम् + बुध + णिच् + ल्यप् । समुवाच—सम् + वच् + लिट् + तिप् ।

शब्दार्थ—अथ = तदनन्तर, कथमपि = किसी प्रकार, रिङ्गत्तुङ्गतिमिङ्गिलगिलपरिवर्त्तप्रसङ्गसङ्गसभङ्गतरङ्गरङ्गप्राङ्गणसोदरीभूतम् = चंचल एवं उन्नत तिमिङ्गिलगिल नामक मत्स्य के घूमने के कारण टूटी हुई लहरों वाले रंग-प्राङ्गण के समान हुए, हृदयम् = हृदय को, वशीकृत्य=वश में करके, अनुजाम्= छोटी बहन को, सुवर्णवर्णाम् = सोने के समान कान्ति वाली, सौवर्णीनाम्ना = सौवर्णी नाम से, बाल्ये = बचपन में, अङ्के = गोद में, संस्थाप्य = बैठाकर, समुपविष्टे = बैठ जाने पर, समुपविश्य = बैठकर, पृष्ठम् = पीठ को, परिमृजति= सहलाने पर, क्रियासमभिहारेण = बार-बार, उद्गच्छतः = निकलते हुए, वाष्पान् = आँसुओं को, पटान्तेन = कपड़े के छोर से, परिहरति = पोंछने पर, कुटीराध्यक्षः = कुटी का स्वामी, कुतुकपरवशः=कुतूहल से समाक्रान्त, सम्बोध्य = सम्बोधित करके, समुवाच = बोले ।

हिन्दी—तदनन्तर चंचल एवं उन्नत तिमिङ्गिल-गिल नामक मत्स्य के चारों ओर घूमने से टूटी हुई लहरों वाले रङ्गप्राङ्गण के समान हुए अपने हृदय को किसी प्रकार वश में करके, सुवर्ण वर्ण के समान कान्तिवाली, बाल्य-काल से ही 'सौवर्णी' नाम से प्रसिद्ध अपनी कोशला नामक छोटी बहन को

गोद में बिठाकर, गौर ब्रह्मचारी के बैठ जाने पर, श्याम ब्रह्मचारी के भी उस कन्या के पास बैठकर उसकी पीठ सहलाने लगने पर, पूज्यपाद पुरोहित के बार-बार निकलने वाले आँसुओं को कपड़े के छोर से पोंछने लगने पर कुतूहल से समाक्रान्त कुटी के स्वामी ने गौरसिंह और श्यामसिंह को सम्बोधित कर कहा ॥ ७ ॥

'वत्सौ गौर-श्यामौ ! जानेऽहं वां क्षत्रियोचिताचारेषु चातन्द्रितौ सनातनधर्म-विप्लवासहनौ नीतिकुशलौ परोपकार-व्यसनिनौ दुर्बलात्कार-परायण-तुच्छ-यवन-च्छेदेच्छोच्छल-च्छटाच्छन्नौ, बालावप्यबालपराक्रमौ, सकल-कला-कलाप-कोविदौ गुणि-गण-गणनीयौ च, किन्तु नाऽद्यावधि कदाऽपि भवतोर्जन्मस्थानादि-प्रश्न-प्रसङ्गोऽभूत्, आकर्ण्य च भवतोर्दुःखमयमपि विलापमयमपि चाऽऽलापं महत् कुतूहलमस्माकं वर्वर्ति । तत् समाश्वस्य धैर्यमाधाय सङ्क्षेपेण कथ्यतां का भवतोर्जन्मभूः ? कथमत्राऽऽगतौ ? किमेषा सहोदरा स्वसा ? सत्यमेव किं भुवं विरहय्य लोकान्तरं सनाथितवन्तौ युष्मत्पितरौ ? क्व यौष्माकीण-पैतृपितामहिक-सम्पत्तिः ? किं भवतोरुद्देश्यम् ?' इत्यादि ।

व्याख्या—वत्सौ !=पुत्रौ ! गौरश्यामौ=एतन्नामानौ, जाने=जानामि, अहम्=कुटीराध्यक्षः, वाम्=युवयोः, क्षत्रियोचिताचारेषु=क्षत्रियधर्मकार्येषु, च, अतन्द्रितौ=निरालस्यौ, सनातनधर्मविप्लवासहनौ=आर्यधर्मोपद्रवासहनौ, नीतिकुशलौ=नयनिष्णातौ, परोपकारव्यसनिनौ=परहितव्यसनिनौ, दुर्बलात्कारपरायणतुच्छयवनच्छेदेच्छोच्छलच्छटाच्छन्नौ = दुष्टसाहसनिरतनीचयवनखण्डनाभिलाषोद्गच्छद्हार्दावस्थाविशेषव्याप्तौ, बालौ=बाल्यावस्थासम्पन्नौ, अपि, अबालपराक्रमौ=महाबलौ, सकलकलाकलापकोविदौ=समस्तकलासमूहपण्डितौ, गुणिगणगणनीयौ=कलावित्समुदायगण्यौ, च, किन्तु=परन्तु, नाद्यावधि=एतावद्दिनपर्यन्तं न, कदापि=कस्मिंश्चित्काले, भवतोः=श्रीमतोः, जन्मस्थानादिप्रश्नप्रसङ्गोऽभूत्=जनिप्रदेशादिजिज्ञासाप्रसङ्गोऽभवत्, आकर्ण्य च=श्रुत्वा च, भवतोः=युवयोः, दुःखमयमपिः=पीडाबहुलमपि, विलापमयमपि=करुणामयमपि, च, आलापम्=संल्लापम्, महत्=भूयः, कुतूहलम्=कौतुकम्, अस्माकम्=मम, वर्वर्ति=वरीवर्ति । तत्=तस्मात्, समाश्वस्य=आश्वसितौ भूत्वा, धैर्यम्=धीरताम्, आधाय=आकलय्य, संक्षेपेण=समासेन,

कथ्यताम् = उच्यताम्, का = किन्नामा, भवतोः = श्रीमतोः, जन्मभूः = उत्पत्ति-स्थानम्, कथम् = केन प्रकारेण, अत्रागतौ = मत्समीपमायातौ, किमेषा = किमियम्, सहोदरा = समानोदरा, स्वसा = भगिनी ? सत्यमेव = वस्तुत एव, किम्, भुवम् = धराम्, विरहय्य = परित्यज्य, लोकान्तरम् = मृत्युलोकभिन्नं स्वर्गलोकमिति, सनाथितवन्तौ = गतवन्तौ, युष्मत्पितरौ = त्वदीयौ जननीजनकौ ? क्व = कुत्र, यौष्माकीणपैतृपितामहिकसम्पत्तिः ? = भवद्वंशानुगतधनम्, किम्, भवतोः = श्रीमतोः, उद्देश्यम् = लक्ष्यम् ? इत्यादि ।

समासः—क्षत्रियाणामुचिता आचारास्तेषु क्षत्रियोचिताचारेषु । तन्द्रा सञ्जाता ययोस्तौ तन्द्रितौ, न तन्द्रितौ अतन्द्रितौ । सनातनधर्मस्य विप्लवासहनौ सनातनधर्मविप्लवासहनौ । परोपकारस्य व्यसनं ययोस्तौ परोपकारव्यसनिनौ । दुर्बलत्कारे परायणानां तुच्छयवनानां छेदस्य इच्छया उच्छलन्ती या छटा तया छन्नौ दुर्बलात्कारपरायणतुच्छयवनच्छेदेच्छोच्छलच्छटाच्छन्नौ । बालश्चासौ पराक्रमः बालपराक्रमः, न बालपराक्रमः ययोः तौ अबालपराक्रमौ । सकलानां कलानां कलापस्तस्य कोविदौ सकलकलाकलापकोविदौ । गुणिनां गणस्तस्मिन् गणनीयौ गुणिगणगणनीयौ । जन्मनः स्थानम् आदौ यस्य तस्य प्रश्नस्तस्य प्रसङ्गः, जन्मस्थानादिप्रश्नप्रसङ्गः । समानम् उदरम् यस्याः सा सहोदरा । लोकस्य अन्तरम् इति लोकान्तरम् । यौष्माकीणः पैतृपितामहस्तस्येयं सम्पत्तिः यौष्माकीणपैतृपितामहिकसम्पत्तिः ।

व्याकरणम्—आकर्ण्य—आ + कर्ण + ल्यप् । दुःखमयम्—दुःख + मयट् । विलापमयम्—वि + लप् + घञ् + मयट् । आलापम् + आ + लप् + घञ् । वर्वर्ति—वृ + यङ् + लट् + तिप् । समाश्वस्य—सम् + आ + श्वस् + ल्यप् । आधाय—आ + धा + ल्यप् । विरहय्य—वि + रह + ल्यप् ।

शब्दार्थ—वत्सौ = पुत्रो ! जाने = जानता हूँ, वाम् = तुम दोनों को, क्षत्रियोचिताचारेषु = क्षत्रियों के उचित कार्यों में, अतन्द्रितौ = तन्द्रा से विरहित, सनातनधर्मविप्लवासहनौ = सनातन धर्म के विप्लव को न सहन करने वाले, नीतिकुशलौ = नीति में निपुण, परोपकारव्यसनिनौ = परोपकार के इच्छुक, दुर्बलात्कारपरायणतुच्छयवनच्छेदेच्छोच्छलच्छटाच्छन्नौ = दुर्व्यवहार में लगे हुए तुच्छ यवनों के विनाश की इच्छा से उत्पन्न कान्ति से युक्त (गौर-श्याम-वटु का विशेषण), अबालपराक्रमौ = अत्यधिक पराक्रम वाले, सकलकला-कलापकोविदौ = समस्त कलाओं से सम्पन्न, गुणिगणगणनीयौ = गुणियों के

समूह में गिने जाने योग्य, अद्यावधि=आज तक, जन्मस्थानादिप्रश्नप्रसङ्गः= जन्मस्थानादि के प्रश्न का प्रसङ्ग, आकर्ण्य=सुनकर, दुःखमयम्=दुःख से पूर्ण, विलापमयम्=शोक से परिपूर्ण, आलापम्=वार्तालाप, कुतूहलम्=उत्कण्ठा, वर्वर्ति=अत्यधिक रूप में विद्यमान है, समाश्वस्य=आश्वस्त होकर, आधाय= धारण करके, कथ्यताम्=कहिये, भवतोः=आप दोनों (गौर और श्याम बालकों) की, सहोदरा=सगोत्री, स्वसा=बहिन, विरहय्य=छोड़कर, लोकान्त-रम्=दूसरे लोक को, सनाथितवन्तौ=सनाथित किये, युष्मत्पितरौ=तुम्हारे माता-पिता, यौष्माकीणपैतृपितामहिकसम्पत्तिः=तुम्हारें पिता-पितामह की सम्पत्ति, किं भवतोरुद्देश्यम् ?=तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? इत्यादि ।

हिन्दी—'पुत्र गौर-श्याम ! मैं जानता हूँ कि तुम दोनों तन्द्रा (आलस्य) विरहित होकर क्षत्रिय धर्म का पालन करने वाले, सनातन धर्म के विनाश को न सहन करने वाले, नीति में निपुण, परोपकारी, दुराचारी दुष्ट यवनों के काटने की अभिलाषा से समुत्पन्न कान्ति से व्याप्त, बालक होते हुए भी महा-पराक्रमी, निखिल कलाओं से सम्पन्न, गुणियों के समूह में गिने जाने योग्य हो। किन्तु आज तक कभी भी तुम दोनों का जन्मस्थान आदि पूछने का प्रसङ्ग नहीं आया। आज तुम्हारे दुःखपूर्ण और विलापपरिपूर्ण वार्तालाप को सुनकर मुझे बहुत कुतूहल हो रहा है। अतः समाश्वस्त होकर धैर्य धारण कर संक्षेप में बताओ कि तुम्हारा जन्मस्थान कहाँ है ? तुम यहाँ कैसे आये ? क्या यह तुम्हारी सगी बहन है ? क्या तुम्हारे माता-पिता यथार्थ में संसार छोड़कर दूसरे लोक को सुशोभित कर रहे हैं ? तुम्हारे पिता, पितामह आदि पूर्व पुरुषों की सम्पत्ति कहाँ है ? तुम्हारा उद्देश्य क्या है ? इत्यादि ।

टिप्पणी—इस गद्यांश में 'तुच्छ-छन्नौ' इत्यादि स्थल पर अनुप्रास, 'बाला-वपि अबालपराक्रमौ' में विरोधाभास, 'सकलकला……गणनीयौ' आदि में सभङ्गपद यमक आदि अलंकार की सुषमा संदर्शनीय है ॥ ८ ॥

तदाकर्ण्य चक्षुषी विमृज्य मुखं प्रोञ्छ्य कण्ठं रुन्धतो बाष्पान् कथमपि संरुध्य इन्दीवरयोरुपरि भ्रमतो भ्रमरानिव लोचनयोरञ्चितान् कुञ्चित-कुञ्चितान् मेचकान् कचानपसार्य निस्तन्द्रेण मन्द्रेण स्वरेण गौरसिंहो वक्तुमारभत—

'अस्ति कश्चन धैर्य-धारि-धुरन्धरैः, धर्मोद्धार-धौरेयैः, सोत्साह-

साहस-चञ्चच्चन्द्रहासैः, सुशक्ति-सुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्न-परिपन्थि गल-गलच्छोणित-च्छुरित-च्छन्न-च्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूल-कुलोन्मूलनानुकूल-व्यापार-व्यासक्त-शूलैः, घन-विघ्न-विघट्टक-घर्घराघोष-घोर-शतघ्नीकैः, प्रत्यर्थि-शुण्डि-शुण्डा खण्डनोद्दण्ड-भुशुण्डीकैः प्रचण्ड-दोर्दण्ड-वैदग्ध्य-भाण्ड-काण्ड-प्रकाण्डैः, क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैरर्य-वर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्र-देशः ।

व्याख्या—तदाकर्ण्य=तच्छ्रुत्वा, चक्षुषी=लोचने, विमृज्य=प्रोञ्छ्य, मुखम्=आननम्, प्रोञ्छ्य=परिमृज्य, कण्ठं=कण्ठनलिकां, रुन्धतः=अवरुध्यमाणान्, वाष्पान्=अश्रूणि, कथमपि=कथञ्चित्, संरुद्ध्य=परिवार्य, इन्दीवरयोः=नीलकमलयोः, उपरि, भ्रमतः=भ्रमणं कुर्वतः, भ्रमरान्=षट्पदान्, इव=यथा, लोचनयोः=नयनयोः, अञ्चितान्=व्याप्तान्, कुञ्चित-कुञ्चितान्=वक्रान्, मेचकान्=कृष्णवर्णान्, कचान्=केशान्, अपसार्य=परिहृत्य, निस्तन्द्रेण=निरालसेन, मन्द्रेण=गम्भीरेण, स्वरेण=शब्देन, गौरसिंहः=गौरवटुः, वक्तुं=कथयितुम्, आरभत=आरेभे, अस्ति कश्चन=विद्यते कोऽपि, धैर्यधारिधुरन्धरैः=धैर्यधारणाग्रणीभिः, धर्मोद्धारधौरेयैः=धर्मोद्धाराग्रेसरैः, सोत्साहसाहसचञ्चच्चन्द्रहासैः=साध्यवसायसाहसचलदसिभिः, सुशक्तिसुशक्तिभिः=शुभकृपाणशोभनसामर्थ्यैः, सद्यश्छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः = तत्कालविहितशत्रुकण्ठस्रवद्रुधिरबिन्दुलिप्तासिधेनुकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः=भीघस्मरनालिकास्त्रैः, स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः=निजशत्रुवंशविध्वंसनोचितकर्तव्यलीनकुन्तैः, घनविघ्नविघट्टकघर्घराघोषघोरशतघ्नीकैः= विपुलप्रत्यूहविमर्दकघर्घराघोषभयावहशतमारिकैः, प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः=शत्रुकरिकरखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः, प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डकाण्डप्रकाण्डैः=प्रबलबाहुदण्डपाण्डित्यसदनप्रशस्तबाणैः, क्षत्रियवर्यैः=बाहुजश्रेष्ठैः, आर्यवर्यैः=ब्राह्मणश्रेष्ठैः, अर्यवर्यैः वैश्यश्रेष्ठैः, च, व्याप्तः=भूषितः, राजपुत्रदेशः='राजपूताना' इति नामको देशः वर्तते ।

समासः—धैर्यं धारितुं शीलं येषां तेषु धुरन्धराः, तैः धैर्यधारिधुरन्धरैः । धर्मस्य उद्धारे धौरेयाः तैः धर्मोद्धारधौरेयैः । सोत्साहेन साहसेन च चञ्चन्तः चन्द्रहासाः येषां तैः सोत्साहसाहसचञ्चच्चन्द्रहासैः । सद्यः छिन्नेभ्यः परिपन्थिनां

गलेभ्यः गलतां शोणितानां छुरितैः छन्नाः छुरिकाः येषां तैः सद्यःछिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः। भयोद्भेदनाः भिन्दिपालाः येषां तैः भयोद्भेदनभिन्दिपालैः। स्वप्रतिकूलानां कुलानाम् उन्मूलनानुकूलव्यापारेषु व्यासक्तानि शूलानि येषां, तैः स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः। घनानां विघ्नानां विघट्टकाः घर्घराघोषेण घोराः शतघ्नयः येषां तैः घनविघ्नविघट्टकघर्घराघोषघोरशतघ्नीकैः। प्रत्यर्थिशुण्डिनां शुण्डानां खण्डने उद्दण्डाः भुशुण्डीकाः येषां तैः प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः। प्रचण्डानां दोर्दण्डानां वैदग्ध्यस्य भाण्डानि प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डानि, तानि काण्डप्रकाण्डानि येषां, तैः प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डकाण्डप्रकाण्डैः।

व्याकरणम्—विमृज्य—वि + मृज् + ल्यप्। प्रोञ्छ्य—प्र + उञ्छ + ल्यप्। रुन्धतः—रुन्ध् + शतृ। संरुध्य—सम् + रुध् + ल्यप्। अपसार्य—अप + सृ + णिच् + ल्यप्। व्यासक्त—वि + आ + सञ्ज् + क्त।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य = यह सुनकर, चक्षुषी = आँखों को, विमृज्य = स्वच्छ कर, प्रोञ्छ्य = पोंछकर, रुन्धतः = रुँधने वाले, वाष्पान् = आँसुओं को, संरुध्य = रोककर, इन्दीवरयोः = नीलकमलों के, उपरि = ऊपर, भ्रमतः = घूमते हुए, अभ्रिरामम् = लटके हुए, कुञ्चितकुञ्चितान् = टेढ़े-मेढ़े (घुंघराले), मेचकान् = काले, कचान् = बालों को, अपसार्य = हटाकर, निस्तन्द्रेण = आलस्यहीन, मन्द्रेण = गम्भीर, आरभत = आरम्भ किया, धैर्यधारिधुरन्धरैः = धैर्य धारण करने वालों में अग्रगण्य, धर्मोद्धारधौरेयैः = धर्मोद्धार में अग्रगामी, सोत्साहसाहसचञ्चच्चन्द्रहासैः = उत्साहसमन्वित साहस से चमकती तलवारों वाले, सुशक्तिशक्तिभिः = सामर्थ्यशाली शक्तियों वाले, सद्यः = तुरन्त, छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः = कटे हुए शत्रुओं के गले से बहने वाले रक्तबिन्दुओं से लिप्त छूरी वाले, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः = भय विरहित करने वाली पिस्तौलों वाले, स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः = अपने प्रतिपक्षियों के कुल के अनुकूल व्यापार में लगे हुए शूलों वाले, घनविघ्नविघट्टकघर्घराघोषघोरशतघ्नीकैः = भयंकर घर्घर ध्वनि से विघ्नसमूह को दूर करने वाली तोपों वाले, प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः = शत्रुओं के हाथियों की सूँड़ काटने में दक्ष बन्दूकों वाले, प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्यभाण्डप्रकाण्डैः = प्रचण्ड भुजदण्डों की कुशलता के पात्र तथा प्रशस्त

बाणों वाले, क्षत्रियवर्यैः=क्षत्रिय वीरों से, आर्यवर्यैः=आर्य ब्राह्मणों से, अर्थवर्यैः=श्रेष्ठ वैश्यों से, व्याप्तः=भरा हुआ, राजपुत्रदेशः=राजपूताना देश है।

हिन्दी—यह सुनकर नेत्रों को स्वच्छ कर और मुख को पोंछकर, गला रुँधने वाले आँसुओं को किसी प्रकार रोककर नीलकमलों पर मँडराते भौंरों के सदृश आँखों पर आ रहे घुंघराले काले बालों को हटाकर आलस्यहीन गम्भीर स्वर से गौरसिंह ने कहना आरम्भ किया—'धैर्य धारण करने वालों में अग्रणी, धर्मोद्धार करने वालों में श्रेष्ठ, उत्साहपूर्ण साहस से चमकती तलवारों वाले, सामर्थ्यशाली शक्तियों वाले, शत्रुओं के तत्क्षण कटे कण्ठ से बहने वाले रक्तबिन्दुओं से लिप्त छुरों वाले, भयविरहित करने वाली पिस्तौलों वाले, विपक्षियों के संहार में लगे शूलों वाले, भयङ्कर घर्घर ध्वनि से विघ्नसमूह को दूर करने वाली तोपों वाले, शत्रुओं के हाथियों के सूँड़ काटने में दक्ष बन्दूकों वाले तथा प्रबल भुजदण्डों की कुशलता के पात्र और प्रशस्त बाणों वाले वीर क्षत्रियों, श्रेष्ठ ब्राह्मणों, श्रेष्ठ वैश्यों से युक्त एक राजपूताना नामक देश है ॥९॥

यत्र कोष-पूरिताः काञ्चनमया इव सानुमन्तः, महार्ह-मणि-गण-जटिल-जाम्बूनद-भूषणभूषिता गन्धर्वा इव जनाः, विचित्र-गवाक्ष-जालाऽट्टालिकाऽङ्गण-कपोतपालिका-चत्वर-गोष्ठ-भित्तिकाः विश्वकर्म-रचिता इव गृहाः, सादि-करस्थ-कशाग्र-चालन-सङ्केत-सञ्चलित-सप्ति-समूह-शफ-सम्मर्द-समुद्धूत-धूलि-धूसरिताश्च मार्गाः। अस्ति तस्मिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, यत्रत्याः क्षत्रियकुल-तिलका यवनराज-वशंवदता-कर्दम-सम्मर्देन कदाऽप्याऽऽत्मानं कलङ्कयामासुः' इति कथयत्येव गौरसिंहे, ब्रह्मचारिगुरुरपि कोष्णं निःश्वस्य—

व्याख्या—यत्र=राजपुत्रदेशे, कोषपूरिताः=निधानपूर्णाः, काञ्चनमया इव=सुवर्णमया इव, सानुमन्तः=शिखरिणः, महार्हमणिगणजटिलजाम्बूनद-भूषणभूषिताः=बहुमूल्यहीरकादिसमूहमिलितसुवर्णालङ्करणशोभिताः, गन्धर्वाः=देवयोनिविशेषाः, इव=यथा, जनाः=नराः, विचित्रगवाक्षजालाट्टालि-काङ्गणकपोतपालिकाचत्वरगोष्ठभित्तिकाः=विविधवातायनजालाट्टालिकाजिर-विटङ्कचत्वरगोशालाकुड्याः, विश्वकर्मरचिता इव=देवशिल्पिनिर्मिता इव, गृहाः=गेहाः, सादिकरस्थकशाग्रचालनसङ्केतसञ्चालितसप्तिसमूहशफसम्मर्द-समुद्धूतधूलिधूसरिताश्च=अश्ववाहहस्तस्थितकशाग्रधावनप्रेरणगच्छद्वाजिनिव-

हखुरकुट्टनोच्छलितरजोव्याप्ताश्च, मार्गाः=पन्थानः। अस्ति = वर्तते, तस्मिन्नेव= तत्रैव, राजपुत्रदेशे = राजपूतानानामके प्रदेशे, उदयपुरनाम्नी=उदयपुरनामिका, काचन, राजधानी = नृपसद्म, यत्रत्याः, क्षत्रियकुलतिलकाः=बाहुजान्वयभूषणाः, यवनराजवशंवदताकर्दमसम्मर्दैः = तुरुष्कराजवशंवदतापङ्कलेपैः, न = नहि, कदाप्यात्मानम् = स्वम्, कलङ्कयामासुः = दूषितं चक्रु, इति कथयत्येव = वदत्येव, गौरसिंहे, ब्रह्मचारिगुरुरपि = वटुशिक्षकोऽपि, कोष्णम् = कदुष्णम्, निःश्वस्य = दीर्घमुच्छ्वस्य (जगादेति अग्रिमेण सम्बन्धः)।

समासः—कोषेण पूरिताः कोषपूरिताः। महार्हाणां मणीनां गणेन जटिलैः जाम्बूनदभूषणैः भूषिताः महार्हमणिगणजटिलजाम्बूनदभूषणभूषिताः। विचित्राः गवाक्षाणां जालाः, अट्टालिकाः अङ्गणं कपोतपालिका चत्वरं गोष्ठं भित्तिकाश्च येषु ते विचित्रगवाक्षाट्टालिकाङ्गणकपोतपालिकाचत्वरगोष्ठभित्तिकाः। सादिकरस्थानां कशानामग्रस्य चालनसङ्केतेन सञ्चालितस्य सप्तिसमूहस्य शफसम्मर्दैः समुद्धूताभिः धूलिभिः धूसरिताः सादिकरस्थकशाग्रचालनसङ्केतसञ्चालित-सप्तिसमूहशफसम्मर्दसमुद्धूतधूलिधूसरिताः। क्षत्रियकुलानां तिलकाः क्षत्रिय-कुलतिलकाः। यवनराजस्य वशंवदता एव कर्दमः तत्सम्मर्दैः यवनराजवशंवदता-कर्दमसम्मर्दैः।

व्याकरणम्—सानुमन्तः—सानु (शिखर) + मतुप् (प्र० ब० व०)। भूषित—भूष + क्त। वशंवदता—वशं वदतीति वशंवदस्तस्य भावो वशंवदता, वश + मुम् + वद + खच्। सम्मर्दः—सम् + मृद् + घञ्। कलङ्कयामासुः—कलङ्क + आम् + आस् (लिट्, प्र० पु०)। कथयति—कथ् + शतृ (स० ए० व०)। कोष्णम्—ईषदुष्णम् इतिं कोष्णम्। निःश्वस्य—निः + श्वस् + क्त्वा + ल्यप्।

शब्दार्थ—यत्र = जहाँ, कोषपूरिताः = सुवर्णादि निधियों की खानों से परिपूर्ण, काञ्चनमयाः = सुवर्णमय, सानुमन्तः = पर्वतशिखर, महार्हमणिगण-जटितजाम्बूनदभूषणभूषिताः = बहुमूल्य मणियों से जटित सुवर्णालङ्कारों से विभूषित, गन्धर्वा इव = गायन में प्रवीण देवयोनि-विशेष, विचित्रगवाक्ष-जालाट्टालिकाऽङ्गणकपोतपालिकाचत्वरगोष्ठभित्तिकाः = नाना प्रकार की खिड़कियों, झरोखों, रोशनदानों, अटारियों, आँगनों, कबूतरों के दरबों, चबूतरों, गोशालाओं और दीवारों वाले, विश्वकर्मरचिता = विश्वकर्मा नामक

देवशिल्पी द्वारा बनाये गये, सादिकरस्थकशाग्रचालनसङ्केतसञ्चालितसप्तिसमूह-शफसम्मर्दसमुद्धूतधूलिधूसरिताश्च = अश्वारोहियों के हाथ की चाबुक के अग्र-भाग के हिलने के चलने के सङ्केत द्वारा तेज दौड़ने वाले घोड़ों की खुरों से खुदी हुई धूल से धूसरित, राजपुत्रदेशे = राजपूताना देश में, कांचन = कोई, यत्रत्या: = जहाँ के, क्षत्रिकुलतिलका: = क्षत्रियकुलों के श्रेष्ठ क्षत्रिय, यवनराज-वशंवदताकर्दमसम्मर्दै: = यवनराजाओं की अधीनता रूपी कीचड़ के सम्पर्क से, कदापि = कभी भी, आत्मानम् = अपने को, कलङ्कयामासु: = कलंकित होने दिये, कथयति एव = कहने पर ही, गौरसिंहे = गौरसिंह के, कोष्णम् = कुछ गरम, नि:श्वस्य = लम्बी साँस लेकर ।

हिन्दी—जहाँ सुवर्ण की खानों से परिपूर्ण पर्वत सुमेरु के समान और बहुमूल्य मणि-माणिक्यजटित स्वर्णाभूषण धारण करने वाले मनुष्य गन्धर्वों के समान हैं । जहाँ के नाना प्रकार की खिड़कियों, झरोखों, रोशनदानों, अटारियों, आँगनों, कबूतर पालने के दरबों, चबूतरों, गोशालाओं और दीवारों वाले महल देवशिल्पी विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये जैसे लगते हैं और जहाँ की सड़कें घुड़सवारों के हाथ की चाबुक के अग्रभाग के हिलने से चलने का संकेत पाकर तीव्रगति से दौड़ने वाले घोड़ों के खुरों से खुदकर उड़ने वाली धूल से व्याप्त हैं । उसी राजपूताना देश में उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलश्रेष्ठ राजाओं ने यवनराजाओं की अधीनतारूपी कीचड़ से अपने को कलंकित नहीं होने दिया । गौरसिंह ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी गुरु उष्ण नि:श्वास लेकर (बोले)—॥ १० ॥

'को न जानीते उदयपुर-राज्यम् ? यदीय-चित्रपूर-दुर्गे परस्सहस्रा: क्षत्रिय-कुलाङ्गना:, कमला इव विमला:, शारदा इव विशारदा:, अनसूया इवाऽनसूया:, यशोदा इव यशोदा:, सत्या इव सत्या:, रुक्मिण्य इव रुक्मिण्य: सुवर्णा इव च सुवर्णा:, सत्य इव सत्य:, सम्भाव्यमान-यवन-बलात्कार-धिक्कारोर्जस्वल-तेजस्का:, योगाग्निनेव पतिविरहाग्नि-नेव स्वक्रोधाग्निनेव च सन्दीपितासु ज्वालाजालाञ्चितासु चितासु, स्मारं स्मारं स्वपतीन्, पश्यतामेव स्वकीयानां परकीयाणां च क्षणात् पतङ्गतामङ्गीकृत्य, गङ्गाधरस्याऽङ्गभूषणतामगमन्'—इति मन्दं व्याजहार ।

व्याख्या—को न जानीते = केन न ज्ञायते, उदयपुरराज्यम् = एतन्नामक-राज्यम्, यदीयचित्रपूरदुर्गे = यदीयचित्तोडनामकदुर्गे, परस्सहस्राः = सहस्रतोऽधिकाः, क्षत्रियकुलाङ्गनाः = बाहुजान्वयललनाः, कमला इव = श्रिय इव, विमलाः = विशुद्धाः शारदा = सरस्वती, इव = यथा, विशारदाः = पण्डिताः, अनसूया = अत्रिपत्नी, इव = यथा, अनसूयाः = असूयारहिताः, यशोदा = कृष्ण-मातेव, यशोदाः = कीर्तिदाः, सत्या = सत्यभामा इव, सत्याः = सत्यभाषिण्यः, रुक्मिण्य इव = कृष्णपत्नी इव, रुक्मिण्यः = सुवर्णवत्यः, सुवर्णा इव = कनक-पदार्था इव च, सुवर्णाः = शोभनवर्णवत्यः, सत्य इव = पार्वत्यः इव, सत्यः = पतिव्रताः, सम्भाव्यमानयवनबलात्कारधिक्कारोर्जस्वलतेजस्काः = अनुमीयमान-तुरुष्कबलात्कारतिरस्कारोर्जस्वलतेजस्काः, योगाग्निनेव = योगसामर्थ्योत्पन्नाग्निनेव, पतिविरहाग्निनेव = स्वस्वामिवियोगाग्निनेव, स्वक्रोधाग्निनेव च = निजकोपाग्निनेव च, सन्दीपितासु = प्रज्वालितासु, ज्वालाजालाञ्चितासु = कीलकसमूहसमवेतासु, चितासु, स्मारं स्मारं = स्मृत्वा स्मृत्वा, स्वपतीन् = निजस्वामिनः, पश्यतामेव = अवलोकयतामेव, स्वकीयानाम् = आत्मीयानाम्, परकीयाणाञ्च = अन्यदीयानाञ्च, क्षणात् = पलात्, पतङ्गतामङ्गीकृत्य = शलभतां स्वीकृत्य, गङ्गाधरस्य = शिवस्य, अङ्गभूषणताम् = भूतिताम्, अगमन् = जग्मुः, इति, मन्दम् = मधुरम्, व्याजहार = अकथयत् ।

समासः—सम्भाव्यमानस्य यवनबलात्कारस्य धिक्कारे ऊर्जस्वलं तेजो यासां ताः सम्भाव्यमानयवनबलात्कारधिक्कारोर्जस्वलतेजस्काः । ज्वालानां जालैरञ्चितासु ज्वालाजालाञ्चितासु ।

व्याकरणम्—सम्भाव्यमान—सम् + भू + णिच् + यक् + शानच् । सन्दीपितासु—सम् + दीप् + क्त + टाप् (स० ब० व०) । स्मारं स्मारम्—स्मृञ् + णमुल् । पतङ्गताम्—पतङ्ग + तल् + टाप् ।

शब्दार्थ—को न जानीते = कौन नहीं जानता है, यदीयचित्रपूरदुर्गे = जिसके चित्तौड़गढ़ नामक किले में, परस्सहस्राः = हजारों, क्षत्रियकुलाङ्गनाः = क्षत्रिय कुल की ललनायें, कमला = लक्ष्मी, विमलाः = निर्मल, शारदा = सरस्वती, विशारदाः = विदुषी, अनसूया = अत्रि की पत्नी, अनसूयाः = (नास्ति असूया यासु ताः) निन्दारहित, यशोदाः = कृष्ण की माता, यशोदाः = यश प्रदान करने वाली, सत्याः = सत्यभामा, सत्याः = सत्य बोलने वाली, रुक्मिण्य इव = रुक्मिणी (कृष्ण की पत्नी) की भाँति, रुक्मिण्यः = स्वर्णभूषणों वाली,

सुवर्णाः=सोना, सुवर्णाः=सुन्दर वर्णों वाली, सत्य इव=सती अर्थात् पार्वती के समान, सत्यः=पतिव्रतायें, सम्भाव्यमानयवनबलात्कारधिक्कारोर्जस्वल-तेजस्काः=यवनों (मुसलमानों) के सम्भावित बलात्कार को धिक्कारने में समर्थ तेजवाली, योगाग्निना=यौगिक सामर्थ्य से समुत्पन्न वह्नि से, पति-विरहाग्निना=स्वामी के वियोग से उत्पन्न अग्नि के द्वारा, स्वक्रोधाग्निना=अपने कोपानल से, सन्दीपितासु=सुप्रज्वलित ('चितासु' का विशेषण), ज्वाला-जालाश्चितासु=ज्वालाओं के जाल से व्याप्त, चितासु=चिताओं पर, स्मारं स्मारं=पुनः-पुनः स्मरण करके, पश्यतामेव=देखते हुए ही, स्वकीयानाम्=निज जनों के, परकीयाणाम्=पराये लोगों के, पतङ्गताम्=पतंगभाव को, अङ्गीकृत्य=स्वीकार कर, गङ्गाधरस्य=भगवान् शङ्कर के, अङ्गभूषणताम्=अंग की शोभा को (भस्मरूपता), अगमन्=प्राप्त हो गईं, इति=इस प्रकार से, मन्दम्=धीसे से, व्याजहार=कहा ।

हिन्दी—उदयपुर राज्य को कौन नहीं जानता है ? जिसके चित्तौड़ नामक दुर्ग (किले) में हजारों क्षत्रिय-कुलाङ्गनायें लक्ष्मी के समान विमल, सरस्वती के समान विदुषी, अत्रिपत्नी अनसूया की भाँति निन्दाविरहित, श्रीकृष्णजननी यशोदा के समान यश देने वाली, सत्यभामा के सदृश सत्य बोलने वाली, रुक्मिणी की भाँति स्वर्णाभूषणों से समलंकृत, सोने के समान सुन्दर रङ्गवाली, पार्वती की तरह पतिव्रता, सम्भावित यवनों के बलात्कार को धिक्कारने में समर्थ तेज वाली, मानो योगाग्नि, पतिविरहानल अथवा स्वयं की कोपाग्नि से प्रदीप्त की गई ज्वालाओं वाली चिताओं में अपने पतियों को पुनः-पुनः स्मरण करती हुई, अपने और परायों के देखते-ही-देखते क्षणभर में पतंगभाव को स्वीकार करके अर्थात् जल करके भगवान् शङ्कर के शरीर की शोभा बन गईं'। इस प्रकार धीरे से कहा ॥ ११ ॥

तदाकर्ण्य करुणया दुःखेन कोपेन आश्चर्येण वैमनस्येन ग्लान्या च क्षालित-हृदयेषु निखिलेषु गौरसिंहः पुनः स्व-वृत्तान्तं वक्तुमुपचक्रमे यत्—

'तद्राज्यस्यैवाऽन्यतमो भू-स्वामी खड्गसिंहो नामाऽस्मत्तात-चरण आसीत् ।'

खड्गसिंहनाम्ना परिचित इव ब्रह्मचारी समधिकमबाधित । स च पूर्ववदेव वक्तुं प्रावृतत्—

व्याख्या—तदाकर्ण्य = तन्निशम्य, करुणया = शोकेन, दुःखेन = पीडया, कोपेन = क्रोधेन, आश्चर्येण = औत्सुक्येन, वैमनस्येन = अन्यमनस्कत्वेन, ग्लान्या = व्रीडया, च, क्षालितहृदयेषु = व्याप्तहृदयेषु, निखिलेषु = समाप्तेषु, गौरसिंहः = एतन्नामको जनः, पुनः = भूयः, स्ववृत्तान्तम् = निजवृत्तम्, वक्तुम् = कथयितुम्, उपचक्रमे = आरभत, यत्, तद्राज्यस्यैव = उदयपुरराज्यस्यैव, अन्यतमः = बहुष्वेकः, भूस्वामी = भूमिपतिः, खड्गसिंहः = एतन्नामकः, नाम, अस्मत्तातचरणः = मत्पूज्यपिता, आसीत् = अभवत् ।

खड्गसिंहनाम्ना = एतन्नाम्ना, परिचितः = अभिज्ञातः, इव = यथा, ब्रह्मचारी = मुनिः, समधिकम् = अत्यधिकम्, अबाधित = पीडामन्वभूत् । स च = गौरसिंहश्च, पूर्ववदेव = यथावत् एव, वक्तुम् = कथयितुम्, प्रावृतत् = प्रवृत्तः ।

समासः—विगतं मनः विमना, तस्य भावः वैमनस्यम्, तेन वैमनस्येन । क्षालितानि हृदयानि येषां तेषु क्षालितहृदयेषु ।

व्याकरणम्—वैमनस्येन—वि + मनस् + ष्यञ् (तृ०) । वक्तुम्—वच् + तुमुन् । उपचक्रमे—उप + क्रम् + लिट् (त) । अबाधित—बाध् + लुङ् + त । प्रावृतत्—प्र + वृत + लङ् (तिप्) ।

शब्दार्थ—तदाकर्ण्य = यह सुनकर, करुणया = करुणा से, वैमनस्येन = अनमनेपन से, ग्लान्या = ग्लानि से, क्षालितहृदयेषु = धुले हुये हृदय वाले हो जाने पर, निखिलेषु = सभी जनों के, स्ववृत्तान्तम् = अपना वृत्तान्त, वक्तुम् = कहने के लिए, उपचक्रमे = उपक्रम किया, तद्राज्यस्यैव = उसी राज्य का, अन्यतमः = अनेक में एक, भूस्वामी = जमींदार, अस्मत्तातचरणः = मेरे पिताजी, आसीत् = थे, परिचित इव = परिचित जैसा, समधिकम् = अत्यन्त, अबाधित = पीड़ित हुए, पूर्ववदेव = पहले की तरह, प्रावृतत् = प्रवृत्त हुए ।

हिन्दी—यह सुनकर करुणा, दुःख, क्रोध, आश्चर्य, वैमनस्य (उदासीनता) और ग्लानि से सभी जनों के हृदयों के धुल जाने पर गौरसिंह ने पुनः अपना वृत्तान्त कहना आरम्भ किया कि—

उसी राज्य के अर्थात् उदयपुर राज्य के बहुतों में एक जमींदार खड्गसिंह हमारे पिताजी थे ।

खड्गसिंह के नाम से परिचित की तरह ब्रह्मचारी ने अत्यधिक पीड़ा का अनुभव किया । वह गौरसिंह पहले की ही तरह कहता रहा ॥ १२ ॥

'अस्मज्जननी तु बालावेवाऽऽवां स्तनन्धयामेव चास्मत्सहोदरीं

सौवर्णीं परित्यज्य, भुवं विरहयाम्बभूव। अस्मत्तातचरणश्च कैश्चित् तुरुष्कैर्लुण्ठकप्रायैर्युद्ध-क्रीडां कुर्वन् पृष्ठतः केनाऽपि विशालभल्लेनाऽऽहतो वीरगतिमगमत्। ततः पुरोहितेनैव पाल्यमानावावामपि यमलौ भ्रातरौ गौर-श्यामौ एकदा मित्रैः सहाऽऽखेटार्थं निःसृतौ तुरगौ चालयन्तौ मार्ग-भ्रष्टौ अकस्मात् काम्बोजीय-दस्यु-वारेणाऽऽवृतौ तेनैवाऽपहृत-महार्ह-भूषणौ गृहीताश्वौ बद्धौ च सहैव वनाद् वनमनायिष्वहि। 'यद्यपि शत्रु-सन्ताना निर्दयं हन्तव्या एव; तथाऽपि नासा-भूषण-मौक्तिके इव वीणा-तुम्बाविव श्यामकर्ण-हयाविव च मनोहर रूपौ समानाकारौ समान-वयस्कौ समान-परिणाहौ समान-स्वभावौ समान-स्वरौ समान-गुणौ केवलं वर्णमात्रतो भिन्नौ रामकृष्णाविवामू गौर-श्यामौ बालकौ। तदवश्यं बहुमूल्याविति कुत्रापि कस्यचिदपि महाधनस्य हस्ते विक्रय-णीयौ' इति तेषां घोरतरान् संल्लापान् शृण्वन्तौ 'कथं पलायावहे? कथं वा मुच्यावहे?' इत्यनवरतं चिन्तयन्तौ कथं कथञ्चित् कञ्चित् समयमयापयाव।

व्याख्या—अस्मज्जननी=गौरश्याममाता तु, बालौ=बालकौ, एव, आवाम्=गौरश्यामौ, स्तनन्धयामेव=दुग्धपानरतामेव, च, अस्मत्सहोदरीम्=अस्मद्भगिनीञ्च, सौवर्णीम्=एतन्नामिकाम्, परित्यज्य=त्यक्त्वा, भुवम्=धराम्, विरहयाम्बभूव=अत्यजत्। अस्मत्तातचरणश्च=अस्मज्जनकश्च, कैश्चित्, तुरुष्कैः=यवनैः, लुण्ठकप्रायैः=लुण्ठनप्रायस्वभावैः, युद्धक्रीडाम्=समरखेलाम्, कुर्वन्=विदधत्, पृष्ठतः=पृष्ठभागात्, केनाऽपि=एकेन तुरुष्केण, विशालभल्लेन=दीर्घ-कुन्तेन, आहतः=मारितः, वीरगतिम्=परलोकम्, अगमत्=अगात्। ततः=पितृमरणोत्तरम्, पुरोहितेनैव=पुरोधसैव, पाल्यमानौ=पोष्यमाणौ, आवाम्, अपि, यमलौ=सहजौ, भ्रातरौ=बान्धवौ, गौरश्यामौ=गौरवर्णश्यामवर्णौ, एकदा=एकस्मिन् काले, मित्रैः=सुहृद्भिः, सह=साकम्, आखेटार्थम्=मृगयार्थम्, निःसृतौ=निर्गतौ, तुरगौ=घोटकौ, चालयन्तौ=वाहयन्तौ, मार्ग-भ्रष्टौ=विचलितपन्थानौ, अकस्मात्=सहसा, काम्बोजीयदस्युवारेण=कम्बोज-देशीयतस्करसमूहेन, आवृतौ=परिवृतौ, तेनैवापहृतमहार्हभूषणौ=तस्करचयेन गृहीतबहुमूल्यभूषणौ, गृहीताश्वौ=नियमितघोटकौ, बद्धौ=निगडितौ च, सहैव=साकमेव, वनाद् वनम्=विपिनात् विपिनान्तरम्, अनायिष्वहि=नीतौ,

यद्यपि, शत्रुसन्तानाः = रिपुसुताः, निर्दयम्=निष्कृपम्, हन्तव्या = व्यापादनीया, एव, तथापि = पुनरपि, नासाभूषणमौक्तिके इव = घोणालङ्कारमौक्तिके इव, वीणातुम्बौ = वल्लकीतुम्बौ, इव = यथा, श्यामकर्णहयाविव = कृष्णश्रोत्रघोटकाविव च, मनोहररूपौ = सुन्दराकारौ, समानाकारौ=तुल्यरूपौ, समानवयस्कौ = समावस्थायुक्तौ, समानपरिणाहौ = समविशालौ, समानस्वभावौ = समप्रकृतिकौ, समानस्वरौ = तुल्यस्वरौ, समानगुणौ = सदृशगुणौ, केवलं वर्णमात्रतो भिन्नौ = केवलं रङ्गमात्रतो भिन्नौ, रामकृष्णाविवामू = बलरामश्यामाविवामू, गौरश्यामौ = गौरवर्णश्यामवर्णौ, बालकौ = बालौ। तत् = तस्मात्, अवश्यम् = अनिवार्यत्वेन, बहूमूल्याविव = महार्हाविव, कुत्रापि = क्वऽपि, कस्यचित् अपि = कस्यापि, महाधनस्य = महाश्रेष्ठिनः, हस्ते = करे, विक्रयणीयौ = विक्रेय्यौ, इति = एवम्, तेषाम् = तस्कराणाम्, संल्लापान् = वार्तालापान्, शृण्वन्तौ = आकर्णयन्तौ, कथम् = केन प्रकारेण, पलायावहे = निर्गच्छाव: ? कथं = केन प्रकारेण, वा = अथवा, मुच्यावहे = मुक्ता भवाव, इति, अनवरतम् = सदा, चिन्तयन्तौ = विचारयन्तौ, कथं कथञ्चित् = येन केनाऽपि प्रकारेण, कञ्चित् = ईषत्, समयम् = कालम्, अयापयाव = व्यतीतवन्तौ।

समासः—अस्मज्जननी—अस्माकं जननी अस्मज्जननी। सहोदरीम्—समानम् उदरं यस्याः सा सहोदरी, ताम्। मार्गात् भ्रष्टौ मार्गभ्रष्टौ। अपहृतमहार्हभूषणौ—अपहृतानि महार्हाणि भूषणानि ययोस्तौ। गृहीताश्वौ—गृहीतौ अश्वौ ययोस्तौ। निर्दयम्—निर्गता दया यस्मिन् कर्मणि तत् निर्दयम्। नासाभूषणमौक्तिके—नासायाः आभूषणस्य मौक्तिके। वीणातुम्बौ—वीणायाः तुम्बौ। मनोहररूपौ—मनः हरतीति मनोहरम्, मनोहरं रूपं ययोस्तौ। समानवयस्कौ—समानं वयः ययोस्तौ। समानपरिणाहौ—समानः परिणाहः ययोस्तौ। बहुमूल्यौ—बहूनि मूल्यानि ययोस्तौ। महाधनस्य—महद् धनं यस्य सः, तस्य।

व्याकरणम्—स्तनन्धयाम्—स्तनं धयतीति, स्तन + मुम् + धेट् + खश्। परित्यज्य—परि + त्यज् + ल्यप्। विरहयाम्बभूव—विरह + क्यच् + आम् + भू + लिट् (तिप्)। कुर्वन्—कृ + शतृ। आहतः—आङ् + हन् + क्त (प्र० ए० व०)। पाल्यमानौ—पालि + शानच् (प्र० द्वि० व०)। निःसृतौ—निर् + सृ + क्त (प्र० द्वि० व०)। भ्रष्टौ—भ्रंश + क्त (प्र० द्वि० व०)। आवृतौ—आ + वृञ् + क्त (प्र० द्वि० व०)। बद्धौ—बध् + क्त। अनायिष्वहि—नी + णिच् + लुङ् (उ० प्र० द्वि० व०)। हन्तव्याः—हन् + तव्यत् (कर्मणि)।

वर्णमात्रतः—वर्णमात्र+तसिल्। विक्रयणीयौ—वि+क्री+अनीयर् (प्र० द्वि० व०)। संलापान्—सम्+लप्+घञ्। शृण्वन्तौ—श्रू+शतृ (प्र० द्वि० व०)। पलायावहे—परा+अय् (गतौ)+लट्+वहि (उ० पु० द्वि० व०)। मुच्यावहे—मुच्+यक्+लट् (आत्मनेपद उ० पु० द्वि० व०)। चिन्तयन्तौ—चिन्त (चुरादि)+शतृ (प्र० द्वि० व०)। अयापयाव+या णिच्+पुक् (लङ्)।

शब्दार्थ—अस्मज्जननी=हमारी माता, स्तनन्धयाम्=दूध पीती हुई, सहोदरी=सगी बहन, परित्यज्य=छोड़कर, विरहयाम्बभूव=विरहित कर दिया अर्थात् छोड़ दिया, अस्मत्तातचरणश्च=और हमारे पिताजी, तुरुष्कैः=तुर्कों द्वारा, लुण्ठकप्रायैः=लुटेरों द्वारा, युद्धक्रीडाम्=युद्धरूपी खेल को, कुर्वन्=करते हुए, पृष्ठतः=पीछे से, विशालभल्लेन=बड़े भाले से, आहतः=प्रहार किये गये, वीरगतिम्=वीरगति को अर्थात् उत्तम लोक को, युद्ध में मारा जाने वाला व्यक्ति श्रेष्ठ लोक को प्राप्त होता है, ऐसा स्मृतिवचन है। यथा—'द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः' ॥ अगमत्=प्राप्त किये, पुरोहितेनैव=पुरोहित द्वारा ही, पाल्यमानौ=पालित होते हुए, यमलौ=जुड़वे अर्थात् एक साथ समुत्पन्न होने वाले, आखेटार्थम्=शिकार के लिए, निःसृतौ=निकले हुए, चालयन्तौ=चलाते हुए, मार्गभ्रष्टौ=विस्मृतमार्गवाले, अकस्मात्=सहसा, कम्बोजीयदस्युवारेण=कम्बोज देश के लुटेरों के द्वारा, अपहृतमहार्हभूषणौ=छीन लिये गये हैं मूल्यवान् आभूषण जिनके, गृहीताश्वौ=जिनके घोड़े ले लिये गये हैं, बद्धौ=बँधे हुए, वनात् वनम्=एक वन से दूसरे वन को, अनायिष्वहि=ले जाये गये, शत्रुसन्तानाः=शत्रुओं के समूह, निर्दयम्=निर्दयतापूर्वक, हन्तव्याः=हत्या करनी चाहिए, नासाभूषणमौक्तिके=नासिका के आभूषण के मोती, वीणातुम्बौ इव=वीणा की तुम्बी के समान, श्यामकर्णहयौ इव=श्यामकर्ण घोड़े के समान, अश्वमेघयज्ञ के लिए समुपयुक्त घोड़े को श्यामकर्ण कहा जाता है। मनोहररूपौ=मनोहर रूप वाले, समानाकारौ=समान आकृति वाले, समानवयस्कौ=समान अवस्था वाले, समानपरिणाहौ=समान विशालता वाले, समानस्वभावौ=समान स्वभाव वाले, समानगुणौ=समान गुणवाले, वर्णमात्रतः=रङ्गमात्र से, भिन्नौ=अलग, बहुमूल्यौ=अधिक मूल्यवाले, कस्यचिदपि=किसी भी, महाधनस्य=अतिधनी व्यक्ति के, हस्ते=हाथ, में

विक्रयणीयौ=बेच देना चाहिए, घोरतरान्=भीषण, संल्लापान्=बातचीत को, शृण्वन्तौ=सुनते हुए, पलायावहे=भाग निकलें, मुच्यावहे=मुक्त होवें, अनवरतम्=निरन्तर, चिन्तयन्तौ=चिन्ता करते हुए, कथं कथञ्चित्=किसी-किसी प्रकार से, कञ्चित्=थोड़ा, समयम्=समय को, अयापयाव=व्यतीत किया।

हिन्दी—हमारी माता तो हम दोनों को बाल्यावस्था में और दुग्धपान करती हुई हमारी बहिन सौवर्णी को छोड़कर पृथ्वी को विरहित कर दिया अर्थात् स्वर्गलोक सिधार गई। हमारे पिताजी कुछ लुटेरे यवनों के साथ रण-क्रीड़ा करते हुए पीछे से किसी के द्वारा भीषण भाले से आहत होकर वीरगति को अर्थात् उत्तम लोक को प्राप्त हो गये। तब पुरोहित के द्वारा ही पाले जाते हुए हम दोनों जुड़वा भाई गौर और श्याम एक दिन सुहृदों के साथ आखेटार्थ अर्थात् शिकार खेलने के लिए निकले और अश्वों को चलाते हुए मार्ग भूल गये। अकस्मात् कम्बोज देश के लुटेरों ने हमें घेर लिया। हमारे मूल्यवान् आभूषण और घोटक (घोड़े) छीन लिये और हमें बाँधकर अपने साथ एक जंगल से दूसरे जंगल को ले गये। वे परस्पर में बातचीत करते थे कि यद्यपि शत्रुओं की सन्तानों को निर्दयतापूर्वक मार देना चाहिए, तथापि ये दोनों बालक नासिकाभूषण मोती के समान, वीणा की दो तुम्बियों की भाँति और श्यामकर्ण घोड़े की तरह मनोहर रूप वाले हैं। समान आकार, समान अवस्था, समान विशालता, सदृश स्वभाव, सदृश स्वर और सदृश गुणवाले, केवल रङ्गमात्र से भिन्न ये दोनों गौर और श्याम बालक बलराम और श्रीकृष्ण के सदृश हैं। अतः ये अवश्य ही बहूमूल्य हैं। इन्हें किसी महाधनी श्रेष्ठी (सेठ) के हाथ बेंच देना चाहिए। इस प्रकार की उन लोगों की भीषण बातचीत को सुनते हुए तथा किस प्रकार हम यहाँ से भागें? कैसे छूटें? अनवरत इसी चिन्ता में निमग्न हमने जिस-किसी प्रकार से कुछ समय व्यतीत किया ॥१३॥

अथैकदा कञ्चित् पान्थ-सार्थमवलोक्य तल्लुलुण्ठयिषया सर्वेष्वपि तस्य पन्थानमेवानुसृतेषु आवाभ्यामपि पलायनावसरो लब्धः। यावच्चाऽऽवां वस्त्राणि परिधाय, परिकरे असिधेनुकां बद्ध्वा, बाहुमूले निस्त्रिंशं चर्म्म च लम्बयित्वा, तद्भुशुण्डिकानामेवैकामेकामल्पीयसीमात्मोत्तोलन-योग्यां सज्जां करे धृत्वा, उपकारिकाया बहिर्निर्गतौ; तावद् दृष्टम्—यदेको रक्षकः खड्गहस्तो नौ बहिर्गमनाद् वारयतीति।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, एकदा=एकस्मिन् काले, कश्चित्, पान्थसार्थम्=पथिकव्रजम्, अवलोक्य=वीक्ष्य, तल्लुलुण्ठयिषया=यात्रिवर्गलुण्ठनेच्छया, सर्वेष्वपि=तस्करेषु, तस्य=यात्रिवर्गस्य, पन्थानम्=मार्गम्, एव, अनुसृतेषु=अनुगमनरतेषु, आवाभ्यामपि=गौरश्यामाभ्यामपि, पलायनावसरः=निष्क्रमणावसरः, लब्धः=प्राप्तः, यावत्=यावत्कालपर्यन्तम्, च, आवाम्=गौरश्यामौ, वस्त्राणि=वसनानि, परिधाय=धृत्वा, परिकरे=गात्रबन्धे, असिधेनुकाम्=छुरिकाम्, बद्ध्वा=संयोज्य, बाहुमूले=भुजमूले, निस्त्रिंशम्=खड्गम्, चर्म=अजिनं च, लम्बयित्वा=अवलम्ब्य, तद्भुशुण्डिकानाम्=तदाग्नेयास्त्राणाम्, एव, एकामेकाम्, अल्पीयसीम्=लघीयसीम्, आत्मोत्तोलनयोग्याम्=निजोद्वहनक्षमाम्, सज्जाम्=गोलिकापूर्णाम्, करे=हस्ते, धृत्वा=सङ्गृह्य, उपकारिकायाः=वसनगेहात्, बहिर्निर्गतौ=बहिर्निष्क्रान्तौ, तावत्=तावत्कालपर्यन्तम्, दृष्टम्=अवलोकितम्, यदेकः, रक्षकः=प्रहरी, खड्गहस्तः=कृपाणकरः, नौ=आवाम्, बहिर्गमनात्=बहिर्निष्क्रमणात्, वारयतीति=रुणद्धि इति ।

समासः—पान्थानां सार्थम् इति पान्थसार्थम् । तस्य लुलुण्ठयिषा, तया तल्लुलुण्ठयिषया । पलायनस्य अवसरः पलायनावसरः । तेषां भुशुण्डिकाः, तासां तद्भुशुण्डिकानाम् । आत्मना उत्तोलनयोग्याम् आत्मोत्तोलनयोग्याम् । खड्गः हस्ते यस्य सः खड्गहस्तः ।

व्याकरणम्—अवलोक्य—अव+लोक्+ल्यप् । लुलुण्ठयिषया—लुण्ठि+सन् (धातु को द्वित्व, तृ० ए० व०) । सर्वेष्वपि—'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' इस सूत्र से यहाँ सप्तमी विभक्ति हुई । अनुसृतेषु—अनु+सृ+क्त (स० वि० ब० व०) । लब्धः—लभ्+क्त । परिधाय—परि+धा+क्त्वा+ल्यप् । परिकरे—'भवेत्परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयोः । प्रगाढगात्रिकाबन्धे विवेकारम्भयोरपि' ।। (इत्यमरः) । बद्ध्वा—बन्ध+क्त्वा । चर्म—चर्मन्+अच् (टिलोप) । लम्बयित्वा—लम्ब+णिच्+क्त्वा । अल्पीयसीम्—अतिशयेन अल्पः अल्पीयस्—अल्प+इयसुन् (स्त्री० द्वि० ए० व०) । धृत्वा—धृ+क्त्वा । दृष्टम्—दृश्+क्त । नौ—अस्मद् शब्द की द्वितीया विभक्ति का द्विवचन ।

शब्दार्थ—अथ=अनन्तर, एकदा=एक बार, कश्चित्=किसी, पान्थसार्थम्=पथिक-समूह को, अवलोक्य=देखकर, तल्लुलुण्ठयिषया=उसे लूटने की इच्छा से, सर्वेष्वपि=सभी के, पन्थानम्=मार्ग की ओर, अनुसृतेषु=

अनुसरण कर लेने पर, पलायनावसरः = भागने का अवसर, लब्धः = प्राप्त किया, परिधाय = पहनकर, परिकरे = कमर में, असिधेनुकाम् = छुरी को, बद्ध्वा = बाँधकर, बाहुमूले = बगल में, निस्त्रिंशम् = तलवार को, चर्म = ढाल को, लम्बयित्वा = लटकाकर, तद्भुशुण्डिकानाम् = उन्हीं की बन्दूकों में से, एकामेकाम् = एक-एक को, अल्पीयसीम् = अत्यन्त छोटी, आत्मोत्तोलनयोग्याम् = अपने उठाने योग्य, सज्जाम् = गोली भरी हुई, धृत्वा = धारण करके, उपकारिकायाः = खेमे से, बहिर्निर्गतौ = बाहर निकले, तावद् = तभी, दृष्टम् = देखा, रक्षकः = प्रहरी, खड्गहस्तः = तलवार हाथ में लिये हुए, नौ = हम दोनों को, बहिर्गमनात् = बाहर जाने से, वारयतीति = रोकता है।

हिन्दी—तदनन्तर एक दिन किसी पथिक-समूह को देखकर, उसे लूटने की अभिलाषा से सभी के उसी ओर चले जाने पर हम दोनों ने भागने का अवसर प्राप्त कर लिया। जैसे ही हमदोनों वस्त्र धारण कर, परिकर (कमरकस) में छुरी बाँधकर, कक्ष या बगल में तलवार-ढाल लटकाकर, उन्हीं की बन्दूकों में से अपने उठाने योग्य एक-एक गोलिकापूर्ण बन्दूक हाथ में लेकर पटभवन (खेमे) से बाहर निकले, वैसे ही देखा कि हाथ में तलवार लिये हुए एक प्रहरी (पहरेदार) हम दोनों को बाहर जाने से रोक रहा है ॥१४॥

अथाऽऽवाभ्यां भुशुण्डिकां सन्धायोक्तम्—'अलमलं कदर्य! किमप्यधिकं वक्ष्यसि तत्स्थानात् पादमेकामपि च प्रचलिष्यसि चेत्; क्षणेन परेतपति-पालित-पुरी-पान्थं विधास्यावः' इत्याकलय्य भयेन काष्ठभूते तस्मिन् मूढ-रक्षके; मयि च तथैव बद्ध-लक्ष्ये स्थिते; मदिङ्गितानुसारेण श्यामसिंहस्तस्या एवोपकार्य्यायाः प्रान्ते बद्धानां फेनवर्षिणामश्वानां कौचिच्चण्डवेगौ श्यामकर्णावाजानेयौ उन्मुच्य, वल्गामायोज्य सर्वतः सज्जीकृत्य चैकमारुह्य रक्षकोपरि भुशुण्डिकां तथैव सज्जीकृतवान्। ततश्चाऽहमप्यपरं हयमारुह्य तस्य ग्रीवामास्फोट्य नर्तयन् रक्षकं साम्रेडं तर्ज्जनैर्हतोत्साहं मृतप्रायं च विधाय श्यामसिंहमिङ्गितवान्।

व्याख्या—अथ = रक्षकवारणोत्तरम्, आवाभ्याम् = गौरसिंहश्यामसिंहाभ्याम्, भुशुण्डिकाम् = नालिकास्त्रम् आग्नेयास्त्रं वा, सन्धाय = सन्धानं विधाय, उक्तम् = निगदितम्, अलमलम्, कदर्य! = नीच! किमप्यधिकम् = किञ्चिदप्यतिरिक्तम्, वक्ष्यसि = कथयिष्यसि, तत्स्थानात् = तस्मात् स्थानात्, पादमेका-

मपि = पदात्पदमपि, प्रचलिष्यसि = अग्रे गमिष्यसि, चेत् = यदि, क्षणेन = ईषत्कालेनैव, परेतपतिपालितपुरीपान्थम् = कीनाशनिकेतनातिथिम्, विधास्यावः = करिष्यावः, इत्याकलय्य = श्रुत्वेदम्, भयेन = भिया, काष्ठभूते = काष्ठवत् सञ्जाते, तस्मिन् = पूर्वकथिते, मूढरक्षके = मूर्खप्रहरिणि, मयि च = गौरसिंहे च, तथैव = यथावत्, बद्धलक्ष्ये = साधितलक्ष्ये, स्थिते = तिष्ठति सति, मदिङ्गितानुसारेणः = मत्सङ्केतानुसारेण, श्यामसिंहः = गौरसिंहानुजः, तस्या एव = पूर्वमावासभूताया एव, उपकार्यायाः = पटगेहस्य, प्रान्ते = समीपे, बद्धानाम् = नियमितानाम्, फेनवर्षिणाम् = फेनोद्गारिणाम्, सुखोपविष्टानां वा, अश्वानाम् = घोटकानाम्, कौचित् = द्वौ, चण्डवेगौ = प्रभूतवेगौ, श्यामकर्णौ = कृष्णश्रोत्रौ, आञ्जनेयौ = कुलीनौ, उन्मुच्य = बन्धनाद् विमुच्य, वल्गामायोज्य = सप्रग्रहौ विधाय, सर्वतः = परितः, सज्जीकृत्य = तल्लीनीकृत्य, चैकम् = अपरञ्च, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, रक्षकोपरि = रक्षितरि, भुशुण्डिकाम् = आग्नेयास्त्रम्, तथैव = तेनैव प्रकारेण, सज्जीकृतवान् = साधितवान्, ततश्च = एतदनन्तरञ्च, अहमप्यपरम् = गौरसिंहोऽपीतरम्, हयमारुह्य = घोटकमारुह्य, तस्य = हयस्य, ग्रीवाम् = कन्धराम्, आस्फोटच = करतलैः सन्ताड्य, नर्तयन् = चालयन्, रक्षकम् = पटगृहसुरक्षाकर्मिणम्, साम्रेडम् = वारं वारम्, तर्जनैः = भीतिसमुत्पादकशब्दैः, हतोत्साहम् = निरुत्साहम्, मृतप्रायम् = मृतसदृशञ्च, विधाय = सम्पाद्य, श्यामसिंहम् = निजभ्रातरम्, इङ्गितवान् = सङ्केतितवान् ।

समासः—परेतपतिना पालितायाः पुर्याः पान्थम् इति परेतपतिपालितपुरीपान्थम् । मूढश्चासौ रक्षक इति मूढरक्षकः, तस्मिन् मूढरक्षके । बद्धं लक्ष्यं येन सः, तस्मिन् बद्धलक्ष्ये । फेनानि वर्षितुं शीलं येषां तेषां फेनवर्षिणाम् । हतः उत्साहः यस्य तं हतोत्साहम् ।

व्याकरणम्—सन्धाय—सम् + धा + ल्यप् । वक्ष्यसि—वच् + लृट् (म० पु० ए० व०)। प्रचलिष्यसि—प्र + चल् + लृट् (म० पु० ए० व०)। विधास्यावः—वि + धा + लृट् (उ० पु० द्वि० व०)। आकलय्य—आ + कल + ल्यप् । बद्धानाम्—बन्ध + क्त (ष० ब० व०)। फेनवर्षिणाम्—फेन + वृष + णिनि (ष० ब० व०)। उन्मुच्य—उत् + मुच् + ल्यप् । वल्गाम्—वल्ग + अच् । आयोज्य—आ + युज् + ल्यप् । सर्वतः—सर्व + तस् । सज्जीकृत्य—सज्ज + च्वि + कृ + ल्यप् । आरुह्य—आ + रुह् + ल्यप् ।

सज्जीकृतवान्—सज्ज + च्वि + कृ + क्तवतु। आस्फोट्य—आ + स्फुट् + ल्यप्। विधाय—वि + धा + ल्यप्।

शब्दार्थ—अथ = तदनन्तर, आवाभ्याम् = हम दोनों (गौर-श्याम) ने, भुशुण्डिकाम् = बन्दूक को, सन्धाय = साधकर (तानकर), अलमलम् = बस, बस, कदर्य = कायर या नीच! किमपि = कुछ भी, वक्ष्यसि = बोलोगे, तत्स्थानात् = उस स्थान से, पादमेकमपि = एक कदम भी, प्रचलिष्यसि = चलोगे, चेत् = यदि, परेतपतिपालितपुरीपान्थम् = यमपुरी का पथिक, विधास्याव: = बना देंगे, आकलय्य = सुनकर, काष्ठभूते = जड़ हुए, मूढरक्षके = मूर्ख प्रहरी के, बद्धलक्ष्ये = निशाना लगाये हुए, स्थिते = खड़े रहने पर, मदिङ्गितानुसारेण = मेरे सङ्केत से, उपकार्य्याया: = खेमे के, प्रान्ते = किनारे पर, बद्धानाम् = बँधे हुए, फेनवर्षिणाम् = फेन उगलने वाले, कौचित् = कोई दो, श्यामकर्णौ = श्यामकर्ण घोड़ों को, चण्डवेगौ = अत्यन्त तेज चलने वाले, उन्मुच्य = खोलकर, वल्गामायोज्य = लगाम लगाकर, सर्वत: = सब प्रकार से, सज्जीकृत्य = सुसज्जित करके, आरुह्य = चढ़कर, अपरम् = दूसरे, हयम् = घोड़े पर, आस्फोट्य = थप-थपाकर, नर्तयन् = नचाता हुआ, साम्रेडम् = बार-बार, तर्जनै: = धमकियों के द्वारा, हतोत्साहम् = निरुत्साहित, मृतप्रायम् = मरे जैसे, विधाय = बनाकर, इङ्गितवान् = सङ्केत किया।

हिन्दी—तब हम दोनों ने बन्दूक तानकर कहा—बस, बस, नीच! यदि कुछ भी अधिक बोलोगे, या अपने स्थान से एक कदम भी चलोगे तो यमपुरी का पथिक बना देंगे। यह सुनकर भीति के कारण मूर्ख प्रहरी के काष्ठवत् जड़ीभूत हो जाने पर, मेरे उसी तरह लक्ष्य साधे रहने के अनन्तर, मेरे संकेतानुसार श्यामसिंह ने उसी खेमे के किनारे पर बँधे, फेन उगल रहे घोड़ों में से कोई दो नितान्त तेज चलने वाले, अच्छी जाति के श्यामकर्ण घोड़ों को खोलकर, लगाम लगाकर, उन्हें सर्वथा सुसज्जित कर एक पर चढ़कर पहरेदार पर उसी तरह बन्दूक साध ली। तदनन्तर मैं भी दूसरे घोड़े पर बैठकर उसकी गर्दन थपथपाकर, उसे नचाते हुए धमकियों से उस रक्षक को हतोत्साहित कर मृतप्राय जैसा बनाकर श्यामसिंह को चलने का संकेत किया॥ १५॥

अथाऽऽवां द्वावपि वायुवेगाभ्यामश्वाभ्यामज्ञातेनैवाऽपथा, उपत्यकात् उपत्यकाम्, वनाद् वनम्, प्रान्तराच्च प्रान्तरमुल्लङ्घमानौ तेनैव

दिनेन गव्यूति-पञ्चकं प्रयातौ। सायं समये च कामपि ग्रामटिकामासाद्य अन्यतमस्य गृहस्य द्वारं गतौ। तच्च हनुमन्मन्दिरमवगत्य तस्मिन् प्रविष्टौ तदध्यक्षेण केनचित् साधुना च सस्वागतमाग्रहेण वासितौ, तत्रैव निवासमकृष्वहि।

अथ तत्प्रदत्तमेव हनूमत्प्रसादीभूतं मोदकादि समास्वाद्य, तस्यैव भृत्येनाऽऽनीतं यवस-भारं वाजिनोरग्रे पातयित्वा, मन्दिरस्यैव बहिर्वेदिकायामितस्ततः पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमावामवास्थिष्वहि।

व्याख्या—अथ = एतदुत्तरम्, आवां द्वावपि = उभावपि भ्रातरौ, वायुवेगाभ्याम् = पवनगतिभ्याम्, अश्वाभ्याम् = घोटकाभ्याम्, अज्ञातेनैवाऽपथा = अदृष्टेनैवामार्गेण, उपत्यकात् उपत्यकाम्=शैलनिकटस्थानात् शैलनिकटस्थानम्, वनात् वनम् = विपिनात् विपिनम्, प्रान्तराच्च प्रान्तरम् = दूरशून्यमार्गात् दूरशून्यमार्गम्, उल्लङ्घमानौ = उद्गच्छन्तौ, तेनैव दिनेन = प्रस्थितेनैव दिवसेन, गव्यूतिपञ्चकम् = दशक्रोशम्, प्रयातौ = निर्गतौ, सायं समये = सन्ध्याकाले, कामपि, ग्रामटिकाम् = लघुग्रामम्, आसाद्य=अवाप्य, अन्यतमस्य=एकस्य, गृहस्य =गेहस्य, द्वारम् = द्वारदेशम्, गतौ = प्रयातौ, तच्च, हनुमन्मन्दिरम् = मारुतिदेवायतनम्, अवगत्य = ज्ञात्वा, तस्मिन् = मन्दिरे, प्रविष्टौ = अन्तःस्थितौ, तदध्यक्षेण = तत्स्वामिना, केनचित् = केनापि, साधुना = महात्मना, च, सस्वागतम् = स्वागतपूर्वकम्, आग्रहेण = आग्रहसहितम्, वासितौ = स्थापितौ, तत्रैव= मारुतिमन्दिरे, निवासमकृष्वहि = वसतिं विहितवन्तौ।

अथ = अनन्तरम्, तत्प्रदत्तमेव = साधुसमर्पितमेव, हनुमत्प्रसादीभूतम् = पवनात्मजप्रसादजातम्, मोदकादि = माधुर्यादि, समास्वाद्य = उपभुज्य, तस्यैव= महात्मन एव, भृत्येन = कर्मकरेण, आनीतम् = प्रापितम्, यवसभारम् = घासभारम्, वाजिनोः = घोटकयोः, अग्रे = पुरतः, पातयित्वा = निक्षिप्य, मन्दिरस्यैव = देवायतनस्यैव, बहिर्वेदिकायाम् = बाह्यचत्वरे, इतस्ततः = यत्र-तत्र, पर्यटन्तौ = भ्रमन्तौ, मुहूर्तम् = क्षणम्, आवाम् = गौरश्यामौ, अवास्थिष्वहि = संस्थितौ।

समासः—वायोरिव वेगः ययोस्तौ, ताभ्यां वायुवेगाभ्याम्। कुत्सितेन पथा इति अपथा। गव्यूतीनां पञ्चकम् इति गव्यूतिपञ्चकम्। तेन प्रदत्तम् इति तत्प्रदत्तम्। अप्रसादः प्रसादः सम्पद्यते इति प्रसादीभूतम्, हनुमतः प्रसादीभूतमिति हनुमत्प्रसादीभूतम्।

व्याकरणम्—उल्लङ्घमानौ—उद्+लङ्घि+शानच् (प्र० द्वि० व०)। आसाद्य—आ+सद्+ल्यप्। अवगत्य—अव+गम्+ल्यप्। प्रविष्टौ—प्र+विश्+क्त (प्र० द्वि० व०)। वासितौ—वस्+णिच्+क्त (प्र० द्वि० व०)। अकृष्वहि—कृ+लुङ्+वहि (आत्म०)। प्रदत्तम्—प्र+दा+क्त। समास्वाद्य—सम्+आ+स्वाद्+ल्यप्। आनीतम्—आ+नी+क्त। पातयित्वा—पत्+णिच्+क्त्वा। पर्यटन्तौ—परि+अट्+शतृ (प्र० द्वि० व०)। अवास्थिष्वहि—अव+स्था+लुङ्+वहि (आत्मनेपद)।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, आवाम्=हम दोनों, वायुवेगाभ्याम्=पवन के सदृश गति वाले, अज्ञातेनैव=अनजाने मार्ग से ही, अपथा=कुत्सित रास्ते से, उपत्यकात्=पहाड़ी तलहटी से, उपत्यकाम्=दूसरी तलहटी को, प्रान्तरात्=एक सुनसान मार्ग से, उल्लङ्घमानौ=लांघते हुए, गव्यूतिपञ्चकम्=दस कोश, ग्रामटिकाम्=छोटे गांव में, आसाद्य=पहुँचकर, अन्यतमस्य=किसी एक का, तत् च=और वह, हनुमन्मन्दिरम्=हनुमान्‌जी का मन्दिर, अवगत्य=जानकर, प्रविष्टौ=प्रवेश किये, तदध्यक्षेण=उस मन्दिर के अध्यक्ष के द्वारा, केनचित्=किसी, सस्वागतम्=स्वागतपूर्वक, वासितौ=रखे गये, अकृष्वहि=किया, तत्प्रदत्तम्=उसके द्वारा प्रदत्त, हनुमत्प्रसादीभूतम्=हनुमान्‌जी का प्रसाद, समास्वाद्य=खाकर, भृत्येन=नौकर के द्वारा, आनीतम् लाये हुए, यवसभारम्=घासभार को, वाजिनो:=घोड़ों के, अग्रे=आगे, पातयित्वा=डालकर, वेदिकायाम्=चबूतरे पर, पर्यटन्तौ=घूमते हुए, मुहूर्तम्=क्षण भर, अवास्थिष्वहि=रुके।

हिन्दी—इसके अनन्तर हम दोनों भी वायु सदृश गति वाले उन घोड़ों के द्वारा अज्ञात और कुपथ से ही एक तलहटी से दूसरी तलहटी, एक जङ्गल से दूसरे जङ्गल और एक उजाड़ पथ से दूसरे उजाड़ पथ को पार करते हुए उसी दिन दस कोश मार्ग निकल आये। सायंकाल किसी एक छोटे से गाँव में पहुँचकर एक घर के दरवाजे पर गये। उसे हनुमान्‌जी का मन्दिर जानकर उसमें प्रवेश किया। तदनन्तर उस मन्दिर के अध्यक्ष साधु ने आग्रहपूर्वक हम दोनों को रखा और हम वहीं रह गये।

इसके पश्चात् उस मन्दिराध्यक्ष के द्वारा प्रदत्त हनुमान्‌जी के प्रसाद के लड्डू आदि को खाकर और उन्हीं के भृत्य द्वारा लाई गई घास को घोड़ों के

आगे डालकर मन्दिर के ही बाहरी चबूतरे पर इधर-उधर भ्रमण करते हुए हम दोनों वहीं कुछ क्षण रुके ॥ १६ ॥

ततश्च दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राचीं सङ्क्षाल्य, भसितच्छुरितामिव विधाय, चन्दनैरिव सञ्चर्च्य, कुन्द-कुसुमैरिवाऽऽकीर्य, गगन-सागर-मीने इव, मनोज-मनोज्ञ-हंसे इव, विरहि-निकृन्तन-रौप्य-कुन्त-प्रान्ते इव, पुण्डरीकाक्ष-पत्नी-कर-पुण्डरीकपत्रे इव, शारदाभ्र-सारे इव, सप्तसप्ति-सप्ति-पाद-च्युते राजत-खुरत्रे इव, मनोहरता-महिला-ललाटे इव, कन्दर्प-कीर्तिलताङ्कुरे इव, प्रजा-जन-नयन-कर्पूरखण्डे इव, तमी-तिमिर-कर्त्तन-शाणोल्लीढ-निस्त्रिंशे इव च समुदिते चैत्रचन्द्र-खण्डे; तत्प्रकाशेन स्फुटं प्रतीयमानासु सर्वासु दिक्षु, अहं परितो दृक्पातमकार्षम्, अद्राक्षं च यदुत्तराभिमुखम्, तद् विशालं मन्दिरमस्ति, तद्द्वारस्योभयतः सुधालिप्त-भित्तिकायां विशालैः सिन्दूराक्षरैः 'जयति हनुमान्' 'रामदूतो विजयतेतराम्' 'विजयतामक्षक्षयकारी'—इति बहूनि वाक्यानि गदादि-चिह्नानि च लिखितानि सन्ति। तत उत्तरस्यामेकः स्वल्पः शैलखण्डः, पूर्वस्यां गहनं वनम्, पश्चिमायां च स्वल्पमेकं पल्वलमासीत्। यद्यप्यसौ पर्वत-खण्डो नात्यन्तं भयानक इव, तथाऽपि विविधगण्डशैलावृतः, झर-झर्झर-ध्वनि-पूरित-दिगन्तरालः, महीरुह-समूह-समावृतः, उच्चावच-सानु-प्रचय-सूचित-विविध-कन्दरश्चाऽऽसीत्। चन्द्र-चन्द्रिका-चाकचक्यात् स्फुटमवालोक्यन्ते तस्योपत्यकाः।

व्याख्या—ततश्च=मन्दिरवासोत्तरञ्च, दुग्धधाराभिरिव=पयःप्रवाहैरिव, प्रथमम्=पूर्वम्, प्राचीम्=पूर्वदिशाम्, सङ्क्षाल्य=प्रक्षाल्य, भसितच्छुरितामिव=भूतिरूषितामिव, विधाय=कृत्वा, चन्दनैरिव=मलयजैरिव, सञ्चर्च्य=विलिप्य, कुन्दकुसुमैरिव=माध्यपुष्पैरिव, आकीर्य=सम्पूज्य, गगनसागरमीने इव=नभःसमुद्रमत्स्ये इव, मनोजमनोज्ञहंसे इव=कामसुन्दरहंसे इव, विरहिनिकृन्तनरौप्यकुन्तप्रान्ते इव=वियोगिकर्तनरौप्यकुन्ताग्रे इव, पुण्डरीकाक्षपत्नी-करपुण्डरीकपत्रे इव=लक्ष्मीहस्तस्थकमलदले, इव, शारदाभ्रसारे इव=शरदुत्पन्नमेघतत्त्वांशे इव, सप्तसप्तिसप्तिपादच्युते = सूर्याश्वपादपतिते, राजतखुरत्रे=रौप्यखुरत्रे इव, मनोहरतामहिलाललाटे इव=सुन्दरतारमणी-ललाटपट्टे इव, कन्दर्पकीर्तिलताङ्कुरे इव=मनोजयशोलताङ्कुरे इव, प्रजाजन-

नयनखण्डे इव = जनतानेत्रहिमबालुकाखण्डे इव, तमीतिमिरकर्तनशाणोल्लीढ-निस्त्रिंशे इव = रात्र्यन्धकारनाशनकषतेजितखड्गे इव च, समुदितम् = उदयं प्राप्ते, चैत्रचन्द्रखण्डे = सुरभिमासेन्दुशकले, तत्प्रकाशेन = चन्द्रचन्द्रिकया, स्फुटम् = स्पष्टम्, प्रतीयमानासु = परिलक्ष्यमानासु, सर्वासु = सकलासु, दिक्षु = ककुभवलये, अहम् = गौरसिंहः, परितः = सर्वतः, दृक्पातम् = नयननिक्षेपम्, अकार्षम् = अकरवम्, अद्राक्षं च = अपश्यञ्च, यदुत्तराभिमुखम् = उदीचीसम्मुखम्, तत् विशालम् = दीर्घम्, मन्दिरमस्ति = देवायतनमस्ति, तद्द्वारस्योभयतः = देवायतनद्वारोभयतः, सुधालिप्तभित्तिकायाम् = चूर्णलिप्तकुडयाम्, विशालैः = आयतैः, सिन्दूराक्षरैः = द्रव्यविशेषाक्षरैः, जयति = विजयते, हनुमान् = मारुतिः, राघमदूतः = रावसन्देशहरः, विजयतेतराम् = जयति, विजयताम् = जयतु, अक्षक्षयकारी = अक्षहन्ता, इति, बहूनि = अधिकानि, वाक्यानि = सुप्तिङन्त-रूपाणि, गदादिचिह्नानि = गदाद्याकाराणि च, लिखितानि = विरचितानि सन्ति । तत उत्तरस्याम् = देवायतनोत्तरदिशि, एकः = अन्यतमः, स्वल्पः = लघु, शैलखण्डः = शिलाखण्डः, पूर्वस्याम् = पूर्वदिशि, गहनम् = भीषणम्, वनम् = विपिनम्, पश्चिमायाम् = प्रतीच्याम्, स्वल्पमेकम् = लघ्वाकारमेकम्, पल्वलम् = सरः आसीत् । यद्यप्यसौ, पर्वतखण्डः = शिलाशकलः, नात्यन्तम्, भयानकम् = भीतिजनकम् इव, तथापि, विविधगण्डशैलावृतः = अनेकलघुशैल-परिवृतः, झरझर्झरध्वनिपूरितदिगन्तरालः = वारिप्रवाहझर्झरशब्दनिनादित-दिक्प्रान्तः, महीरुहसमूहसमावृतः = वृक्षगणपरिवृतः, उच्चावचसानुप्रचयसूचित-विविधकन्दरः = निम्नोन्नताद्रिनितम्बसमूहप्रकटीकृतानेकगह्वरः, चासीत् । चन्द्रचन्द्रिकाचाकचक्यात् = शशिज्योत्स्नाचाकचक्यात्, स्फुटमवालोक्यन्ते = स्पष्टं प्रतिभान्ति, तस्योपत्यकाः = पर्वताधोभागाः ।

समासः—दुग्धस्य धाराभिः दुग्धधाराभिः । भसितेन च्छुरितां भसितच्छुरिताम् । कुन्दानां कुसुमैः कुन्दकुसुमैः । गगनसागरस्य मीने गगनसागरमीने । मनोजस्य मनोज्ञे हंसे मनोजमनोज्ञहंसे । विरहिणा निकृन्तनाय रौप्यस्य कुन्तस्य प्रान्ते विरहिनिकृन्तनरौप्यकुन्तप्रान्ते । पुण्डरीके इव अक्षिणी यस्यासौ पुण्डरीकाक्षः, तत्पत्न्याः करपुण्डरीकपत्रे पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे । शरदि भवं शारदम्, अभ्रं तत्सारे शारदाभ्रसारे । सप्तसप्तेः सप्तिः, तत्पादच्युते सप्तसप्तिसप्तिपादच्युते । मनोहरता एव महिला, तस्याः ललाटे मनोहरतामहिलाललाटे । कन्दर्पस्य कीर्तिलतायाः अङ्कुरे कन्दर्पकीर्तिलताङ्कुरे । प्रजाजननयनानां कर्पूर-

खण्डे प्रजाजननयनकर्पूरखण्डे । तमीतिमिरकर्तनाया शाणेन उल्लीढे निस्त्रिंशे तमीतिमिरकर्तनाशाणोल्लीढनिस्त्रिंशे । सुधया लिप्तायां भित्तिकायां सुधालिप्त-भित्तिकायाम् । झरस्य झर्झरध्वनिना पूरितानि दिगन्तरालानि यस्य सः झरझर्झर-ध्वनिपूरितदिगन्तरालः । महीरुहाणां समूहेन समावृतः महीरुहसमूहसमावृतः । उच्चावचानां सानूनां प्रचयेन सूचिता विविधाः कन्दराः यस्य सः उच्चावच-सानुप्रचयसूचितविविधकन्दरः । चन्द्रस्य चन्द्रिकायाः चाकचक्यात् चन्द्रचन्द्रिका-चाकचक्यात् ।

व्याकरणम्—सङ्क्षाल्य—सम् + क्षाल् + ल्यप् । विधाय—वि + धा + ल्यप् । सञ्चर्च्य—सम् + चर्च + ल्यप् । मनोजः—मनस् + जनि + उ । निकृन्तन—नि + कृत् + ल्युट् । उल्लीढ—उत् + लिह् + क्त । समुदिते—सम् + उत् + इ + क्त । आवृतः—आ + वृञ् + क्त । समावृतः—सम् + आ + वृञ् + क्त । अवालोकयन्तः—अव + लोकृ + लङ् ।

शब्दार्थ—दुग्धधाराभिः = दूध की धाराओं से, प्राचीम् = पूर्व दिशा को, सङ्क्षाल्य—प्रक्षालित करके, भसितच्छुरिताम् = भस्म से लिप्त, विधाय = करके, सञ्चर्च्य = चर्चित करके, आकीर्य = व्याप्त करके, गगनसागरमीने = आकाशरूपी समुद्र में मछली, मनोजमनोज्ञहंसे इव = कामदेव के सुन्दर हंस के समान, विरहिनिकृन्तनरौप्यकुन्तप्रान्ते = विरहियों को बेंधने वाले चाँदी के भाले के अग्रभाग, पुण्डरीकाक्षपत्नीकरपुण्डरीकपत्रे इव = लक्ष्मी के हाथ के कमल के पत्ते के समान, शारदाभ्रसारे इव = शरद् ऋतु के मेघों के सारभूत तत्त्व के समान, सप्तसप्तिसप्तिपादच्युते = सूर्य के घोड़ों के पैर से गिरी हुई, खुरत्रे = नाल, मनोहरतामहिलाललाटे इव = मनोहरता रूपी महिला के ललाट के समान, कन्दर्पकीर्तिलताङ्कुरे इव = कामदेव की कीर्तिरूपी लता के अंकुर की भाँति, प्रजाजननयनकर्पूरखण्डे इव = लोगों की आँखों में कपूर के समान, तमीतिमिरकर्तनशाणोल्लीढनिस्त्रिंशे इव = रात्रि के अन्धकार को काटने के लिए सान पर तेज किये खड्ग के समान, समुदिते = उदय होने पर, चैत्रचन्द्र-खण्डे = चैत्र के बालचन्द्रमा के, तत्प्रकाशेन = उस चन्द्रमा के प्रकाश से ही, स्फुटम् = स्पष्ट रूप से, प्रतीयमानासु = दिखलाई पड़ती, दिक्षु = दिशाओं पर, दृक्पातम् = दृष्टिपात, अकार्षम् = किया, अद्राक्षम् = देखा, उत्तराभिमुखम् = उत्तर की ओर, तद्द्वारम् = उस द्वार के, उभयतः = दोनों ओर, सुधालिप्त-भित्तिकायाम् = चूने से लिपी हुई दीवाल पर, उत्तरस्याम् = उत्तर दिशा में,

पल्वलम् = छोटा तालाब, विविधगण्डशैलावृत: = अनेक चट्टानों से घिरा हुआ, झरझर्झरध्वनिपूरितदिगन्तराल: = झरनों की झर-झर ध्वनि से व्याप्त दिशाओं के मध्यभाग वाला, महीरुहसमूहसमावृत: = वृक्षों से घिरा हुआ, उच्चावचसानुप्रचयसूचितविविधकन्दर: = नीची-ऊँची चोटियों के कारण विविध कन्दराओं की सूचना देने वाला, चन्द्रचन्द्रिकाचाकचक्यात् = चाँदनी की चमक से, अवालोक्यन्ते = देखी गईं, उपत्यका: = तलहटियाँ।

हिन्दी —तदनन्तर पहले पूर्व दिशा को मानों दूध की धाराओं से प्रक्षालित कर, भस्म से लेपन कर, चन्दन चर्चित करके, कुन्दपुष्पों से व्याप्त-सा कर, गगनरूपी सागर के मत्स्य के समान, कामदेव के सुन्दर हंस के समान, वियोगियों के बेंधने वाले चाँदी के भाले के अग्रभाग के समान, विष्णु की पत्नी लक्ष्मी के हाथ के कमल-पत्र के समान, शरत्कालीन मेघों के सारभूत तत्त्व के समान, सूर्य के अश्वों के पैर से गिरे हुए चाँदी के नाल के समान, सुन्दरता रूपी महिला के ललाट के सदृश, कामदेव की कीर्तिरूपी लता के अंकुर की तरह, प्रजाजनों के नेत्रों के लिए कर्पूरखण्ड की भाँति तथा रात्रि के अन्धकार को काटने के लिए सान पर तीक्ष्ण किये गये खड्ग के समान, चैत्रमास के बालचन्द्र के उदित हो जाने पर तथा उसके प्रकाश में सभी दिशाओं के सुस्पष्ट दृष्टिगोचर होने पर मैंने चारों ओर दृष्टिनिक्षेप किया और देखा कि जो उत्तराभिमुख है, वह विशाल मन्दिर है, उसके मुखद्वार के दोनों ओर चूने से पुती हुई दीवारों पर बड़े-बड़े अक्षरों में सिन्दूर से 'जयति हनुमान् (हनुमान् की जय हो), रामदूतो विजयतेतराम् (रामदूत विजयी हों), विजयतामक्षक्षयकारी (अक्षहन्ता की विजय हो)' इत्यादि बहुत से वाक्य और गदा आदि चिह्न अङ्कित किये गये हैं। उस मन्दिर के उत्तर एक छोटी-सी पहाड़ी, पूर्व में घना जंगल तथा पश्चिम में एक छोटा-सा तालाब था। यद्यपि वह पहाड़ी बहुत भयानक-सी नहीं थी, तथापि चट्टानों से घिरी, झरनों की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को पूरित करने वाली और विटपों (वृक्षों) के समूहों से व्याप्त थी तथा उसकी ऊँची-नीची चोटियाँ उसमें अनेक कन्दराओं के होने की सूचना देती थीं। चाँदनी की चमक में उसकी उपत्यकाएँ (तलहटियाँ) सुस्पष्ट दिखाई पड़ रही थीं।। १७ ।।

ततश्च झिल्ली-झङ्कारेणेव केनचित् विलक्षणेन अनाहतध्वनिनेव पर्य्यंपूर्यत वसुधा। विचित्र एष कश्चन परस्सहस्र-तानपूर-षड्जस्वर-

सोदरो वन-रात्रि-ध्वनिः, तमेव स्वरं गम्भीरं विशकलय्य आकर्णयता समश्रावि कीचकध्वनिरपि, तत्राऽप्यवदधता साक्षादकारि मधुकर-निकर-झङ्कारः, पुनरेकाग्रतामङ्गीकुर्वता समाकर्णि स्रोतस्संसरण-सर-त्कारः, तस्मिन्नपि च लयमिवाऽऽकलयता समन्वभावि समीरण-समी-रित-किशलय-परिप्लवता-प्रभूत-स्वनः, तत्रापि च स्थिरतां बिभ्रता प्रत्यक्षीकृतं सुधा-धारामप्यधरीकुर्वत्, वीणा-रणनमपि विगणयत्, मधु विधुरयत्, मरन्दं मन्दयत्, कल-काकली-कलन-पूजितं कोकिल-कुल-कूजितम्। ततश्च बहूनामेव मधुर-कण्ठानां वन्य-पतत्रिणां स्थगित-मन्थराऽऽरावाः समाकर्णिषत। अथाऽनुभवन् धीर-समीर-स्पर्श-सुखम्, साम्रेडमवलोकयंश्च तारकितं नभः, स्मारं स्मारं स्वगृहस्य, महा-चिन्ता-पारावारे इवाऽहं न्यमाङ्क्षम्। ततः पृष्ठतो भित्तिकामाश्रित्य, करौ कटि-प्रदेशे संस्थाप्य, साम्मुखीन-शिखरि-शिखरे चक्षुषी स्थिर-यित्वा, आत्मानमपि विस्मृत्य व्यचारयं यत्—

व्याख्या—ततः=उपत्यकादर्शनान्तरम्, च, झिल्लीझङ्कारेणेव=भृङ्गारी-ध्वनिनेव, केनचित्, विलक्षणेन=विचित्रेण, अनाहतध्वनिनेव=अव्यक्तशब्देनेव, पर्यपूर्यत=पूरिता, वसुधा=धरा, विचित्रः=विलक्षणः, एषः=अयम्, कश्चन=कोऽपि, परस्सहस्रतानपूरषड्जस्वरसोदरः=बहुसंख्यतानपूरषड्जस्वरसहोदरः, वनरात्रिध्वनिः=विपिननिशाशब्दः, तमेव=इममेव, स्वरम्=शब्दम्, गम्भीरम्=गभीरम्, विशकलय्य=विविच्य, आकर्णयता=शृण्वता, समश्रावि=श्रुता, कीचकध्वनिरपि=वेणुविशेषशब्दोऽपि, तत्रापि=तद्ध्वनावपि, अवदधता=ध्यानं ददता, साक्षादकारि=दृष्टः, मधुकरनिकरझङ्कारः=भ्रमर-समूहक्वणनः, पुनः=भूयः, एकाग्रतामङ्गीकुर्वता=एकचित्ततां स्वीकुर्वता, समाकर्णि=श्रुतः, स्रोतस्संसरणसत्कारः=स्रोतवहनध्वनिः, तस्मिन्नपि च=तत्रापि च, लयमिव=लीनमिव, आकलयता=सम्मेलयता, समन्वभावि=समनुभूतः, समीरणसमीरितकिसलयपरिप्लवताप्रभूतस्वनः=पवनचालित-पल्लवस्फुरमाणताप्रचुरस्वनः, तत्रापि, च, स्थिरताम्=स्थैर्यम्, बिभ्रता=धारयता, प्रत्यक्षीकृतम्=दृष्टम्, सुधाधारामप्यधरीकुर्वत्=अमृतप्रवाहमप्य-धरयत्, वीणारणनमपि=वीणाक्वणनमपि, विगणयत्=तिरस्कुर्वत्, मधु=क्षौद्रम्, विधुरयत्=तिरस्कुर्वत्, मरन्दम्=भ्रमरम्, मन्दयत्=गतिरहितं

विदधत्, कलकाकलीकलनपूजितम्=सूक्ष्माव्यक्तध्वनिसत्कृतम्, कोकिलकुल-कूजितम्=पिककुलशब्दम्। ततश्च=तदनन्तरञ्च, बहूनामेव=अनेकेषामेव, मधुरकण्ठानाम्=सुमधुरगलविलानाम्, वन्यपतत्रिणाम्=विपिनपक्षिणाम्, स्थगितमन्थरारावाः=शून्यधीरशब्दाः, समाकर्णिषत=श्रुताः। अथ=अनन्तरम्, अनुभवन्=अनुभूतिं कुर्वन्, धीरसमीरस्पर्शसुखम्=मन्थरवायुस्पर्शसुखम्, साम्रेडम्=भूयोभूयः, अवलोकयन्=विलोकयन्, च, तारकितम्=नक्षत्रोपेतम्, नभः=गगनम्, स्मारं स्मारम्=स्मृत्वा स्मृत्वा, स्वगृहस्य=निजगेहस्य, महा-चिन्तापारावारे=बृहच्चिन्तनसागरे, इव=यथा, अहम्=गौरसिंहः, न्यमाङ्क्षम् =निमग्नोऽभवम्। ततः=अनन्तरम्, पृष्ठतः=पृष्ठभागतः, भित्तिकाम्= कुड्यम्, आश्रित्य=अवलम्ब्य, करौ=हस्तौ, कटिप्रदेशे=देहमध्यभागे, संस्थाप्य=स्थापयित्वा, साम्मुखीनशिखरिशिखरे=सम्मुखस्थपर्वतशृङ्गे, चक्षुषी=नयने, स्थिरयित्वा=स्थिरीकृत्य, आत्मानम्=स्वम्, अपि, विस्मृत्य= स्मृत्यभावमानीय, व्यचारयम्=विचारितवान्, यत्=यद्धि।

समासः—झिल्लीनां झङ्कारेण इव झिल्लीझङ्कारेणेव। परस्सहस्राणां तानपूराणां यः षड्जस्वरः, तस्य सोदरः परस्सहस्रतानपूरषड्जस्वरसोदरः। मधुकराणां निकरस्य झङ्कारः मधुकरनिकरझङ्कारः। स्रोतसां संसरणस्य सरत्कारः स्रोतस्संसरणसरत्कारः। समीरणेन समीरितानां किसलयानां परिप्लव-तया प्रभूतः स्वनः इति समीरणसमीरितकिसलयपरिप्लवताप्रभूतस्वनः। कलाया काकली, तस्याः कलनेन पूजितम् इति कलकाकलीकलनपूजितम्। कोकिलानां कुलस्य कूजितम् इति कोकिलकुलकूजितम्। स्थगिता मन्थरा येषु ते च ते आरावाः स्थगितमन्थराऽऽरावाः। धीरश्चासौ समीरस्तस्य स्पर्शसुखम् इति धीरसमीरस्पर्शसुखम्। ताराणां समूहः तारकम्, तदस्य सञ्जातम् इति तार-कितम्। सम्मुखे जातः साम्मुखीनः, साम्मुखीनो यः शिखरी, तस्य शिखरे साम्मुखीनशिखरिशिखरे।

व्याकरणम्—पर्यपूर्यत—परि+पॄ+लङ् (त)। आकर्णयता—आ+ कर्ण+णिच्+शतृ (तृ० वि०)। समश्रावि—सम्+श्रु+लङ् (कर्मवाच्य)। अवदधता—अव+धा+शतृ (तृतीया वि०)। अङ्गीकुर्वता—अङ्ग+च्वि+ कृ+शतृ (तृ० वि०)। समाकर्णि—सम्+आ+कर्ण+लुङ् (कर्मवाच्य)। आकलयता—आ+कल्+शतृ (तृ० वि०)। समन्वभावि—सम्+अनु+ भू+लङ् (तिप्)। बिभ्रता—वि+भृ+शतृ (तृ० वि०)। प्रत्यक्षीकृतम्—

प्रत्यक्ष + च्वि + कृ + क्त। अधरीकुर्वन् —अधः + च्वि + कृ + शतृ। विगणयत्—वि + गण् + शतृ। पूजित—पूज् + क्त। समाकर्णिषत—सम् + आ + कर्ण + लुङ्। अवलोकयन् —अव + लोक् + शतृ। तारकितम्—तारक + इतच्। स्मारं स्मारम् —स्मृ + णमुल्। न्यमाङ्क्षम्—नि + मस्ज शुद्धौ + लङ् + मिप्। आश्रित्य—आ + श्रृ + ल्यप्। संस्थाप्य—सम् + स्था + णिच् + पुक् + ल्यप्। साम्मुखीनः—सम्मुख + खञ् + इन्। विस्मृत्य—वि + स्मृ + क्त्वा + ल्यप्। व्यचारयम् + वि + चर + णिच् + लङ् + मिप्।

शब्दार्थ—झिल्लीझङ्कारेणेव = झिल्लियों के झङ्कार की भाँति, विलक्षणेन = विचित्र प्रकार के, अनाहतध्वनिना = निरन्तर होने वाली ध्वनि से, पर्यपूर्यत = भर गई, परस्सहस्रतानपूरषड्जस्वरसोदरः = हजारों तानपूरों षड्जस्वर के समान, वनरात्रिध्वनिः = जङ्गल में रात्रि की ध्वनि, विशकलय्य = विवेचन करके, आकर्णयता = सुनते हुए, संमश्रावि = सुना गया। कीचकध्वनिः = एक प्रकार के बाँस की ध्वनि, अवदधता = ध्यान करने से, साक्षादकारि = सुनाई पड़ी, मधुकरनिकरझङ्काराः = भौंरों का गुञ्जार, एकाग्रताम् = एकाग्रता को, अङ्गीकुर्वता = स्वीकार करते हुए, समार्कणि = सुनाई पड़ा, स्रोतस्संसरणसरत्कारः = पानी के सोते के बहने की सर-सर ध्वनि, तस्मिन्नपि = उसमें भी, लयम् इव = विलय होता हुआ-सा, आकलयता = समाहित होते हुए, समन्वभावि = अनुभव किया, समीरणसमीरितकिसलयपरिप्लवताप्रभूतस्वनः = हवा से हिलने वाले कोमल पत्तों की मर्मरध्वनि, बिभ्रता = धारण करने से, प्रत्यक्षीकृतम् = प्रत्यक्ष किया, सुधाधाराम् = अमृत की धारा को, अधरीकुर्वन् = नीचे करता हुआ, वीणारणनम् = वीणा की ध्वनि को, विगणयत् = तिरस्कृत करने वाला, मधु = माधुर्य को, विधुरयत् = लज्जित करने वाला, मरन्दम् = पुष्परस को, मन्दयत् = मन्दायित करता हुआ, कलकाकलीकलनपूजितम् = मधुर एवं अव्यक्त ध्वनि से व्याप्त, कोकिलकुलकूजितम् = कोयलों का कूजन, मधुरकण्ठानाम् = मधुर कण्ठ वाले, वन्यपतत्रिणाम् = जङ्गली पक्षियों के, स्थगितमन्थराऽऽरावाः = तीव्र स्वर, समाकर्णिषत = सुनाई पड़े, धीरसमीरस्पर्शसुखम् = धीरे-धीरे बहने वाली हवा के स्पर्शसुख को, साम्रेडम् = बारम्बार, अवलोकयन् = देखता हुआ, तारकितम् = तारों से व्याप्त, स्मारं स्मारम् = स्मरण करके, महाचिन्तापारावारे = बड़ी चिन्ता के सागर में, न्यमाङ्क्षम् = डूब गया, पृष्ठतः = पीठ से, भित्तिकाम् = दीवार का, आश्रित्य = आश्रय लेकर, कटिप्रदेशे = कमर पर,

संस्थाप्य = रखकर, साम्मुखीनशिखरिशिखरे = सामने के पर्वत-शिखर पर, चक्षुषी = नेत्रों को, स्थिरयित्वा = स्थिर करके, आत्मानम् = अपने को, विस्मृत्य = भूलकर, व्यचारयम् = विचार किया।

हिन्दी—तदनन्तर झिल्लियों के झंकार के समान किसी अनाहृत ध्वनि-सी विलक्षण आवाज से पृथ्वी संपूरित हो गई। हजारों तानपूरों के षड्ज स्वर के समान वह वनरात्रि की ध्वनि विचित्र थी। उसी ध्वनि को गम्भीरतापूर्वक विवेचन करके श्रवण करने से कीचक (बाँस) की ध्वनि भी सुनाई पड़ी। पुनः एकाग्रचित्त होकर सुनने से स्रोतों के बहने का सर-सर शब्द सुनाई पड़ा। उसमें भी लीन होने पर पवन से सञ्चालित कोमल पत्तों के हिलने से निकलने वाली मर्मर ध्वनि का अनुभव हुआ। उसमें भी स्थिरता धारण करने पर सुधा-धारा को तिरस्कृत करने वाला, वीणा के अनुरणन ध्वनि को भी विडम्बित करने वाला, मधु को लज्जित करने वाला, पुष्परस को मन्द बनाने वाला, सुन्दर काकली (सूक्ष्म ध्वनि) के अनुरणन से व्याप्त कोकिलों को कूजन सुनाई पड़ा। उसके बाद मधुर कण्ठ वाले अनेक जङ्गली पक्षियों के जोर-जोर से और जल्दी-जल्दी होने वाले स्वर सुनाई दिये। तत्पश्चात् धीरे-धीरे बह रही हवा के स्पर्शसुख का अनुभव करता हुआ, तारों से भरे आकाश को बार-बार देखता हुआ और अपने घर की याद करता हुआ मैं बड़ी चिन्ता के सागर में डूब गया। पुनः दीवार से पीठ टिकाकर, हाथों को कमर पर रखकर, सामने वाले पर्वत की चोटी पर आँखें टिकाकर, अपने को भी भूलकर मैं विचार करने लगा कि—॥ १८ ॥

'अहह ! दुरदृष्टोऽस्मि !! धन्यावावयोः पितरौ यौ सुखिनावेवाऽऽवां परित्यज्य दिवं सनाथितवन्तौ, न तयोरदृष्टे पुत्र-विश्लेष-दुःखं व्यलेखि धात्रा। नितान्तं पापिनौ चाऽऽवाम्; यौ बाल्य एवेदृशीषु दुरवस्थासु पतितौ। का दशा भवेत् साम्प्रतमावयोरनुजायाः सौवर्ण्याः ? हन्त !! हतभाग्या सा बालिका; या अस्मिन्नेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयोरप्यदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं कदर्थयति। अहह ! सततमस्मत्क्रोडैक-क्रीडनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्र-चकोरीम्, सतत-मस्मत्कण्ठ-रत्नमालाम्, सततमस्मत्सहभोजिनीम्, बाल्य-लुलितैः, मधुर-मधुरैः, सुधा-स्यन्दनैः, दाद-दादेति भाषणैः आवयोः हृदयं

हरन्तीम्, क्षणमात्रमस्मदनवलोकनेनाऽपि बाष्प-प्रवाहैः कपोलौ मलिनयन्तीम्, कथमेनां वृद्धः पुरोहितः सान्त्वयिष्यति ? अस्मज्जनकाविशेषः पुरोहित एव वा कथं नौ विना जीविष्यति ? परमेश्वर! तथा विधेहि यथा जीवन्तं वृद्धं पुरोहितं सौवर्णीं साक्षात्कुर्वः'—

इति चिन्ता-चक्रमारूढ एव आत्मानं विस्मृत्य भित्तिकासंसक्त एव शनैरस्खलम्। प्राप्तसंज्ञश्च समपश्यं यत् श्यामसिंहो मन्दिर-पूजकाश्च मामुत्थापयन्ति—इति।

व्याख्या—अहह !=हा हा ! दुरदृष्टोऽस्मि=दुर्भाग्यान्वितोऽस्मि। धन्यौ=धन्यवादार्हौ, आवयोः=गौरश्यामयोः, पितरौ=प्रसूजनपितरौ, यौ, सुखिनौ=सुशर्माणौ, एव, आवाम्=गौरश्यामौ, परित्यज्य=त्यक्त्वा, दिवम्=स्वर्गम्, सनाथितवन्तौ=गतौ, न=नहि, तयोः=मातापित्रोः, अदृष्टे=भाग्ये, पुत्रविश्लेषदुःखम्=तनयवियोगक्लेशम्, व्यलेखि=लिखितम्, धात्रा=विधात्रा। नितान्तम्=बहु, पापिनौ=पापपूर्णौ, च, आवाम्=गौरश्यामौ, यौ=द्वौ, बाल्ये=बाल्यकाले, एव, ईदृशीषु=ईदृग्विधासु, दुरवस्थासु=दुर्दशासु, पतितौ=निमग्नौ जातौ। का दशा=कीदृशी अवस्था, भवेत्=स्यात्, साम्प्रतम्=अधुना, आवयोः, अनुजायाः=भगिन्याः, सौवर्ण्याः=एतन्नामिकायाः ? हन्त ! =कष्टम् ! हतभाग्या=दुर्भाग्या, सा बालिका=सौवर्णी, या, अस्मिन्नेव=बाल्यकाले एव, वयसि=अवस्थायाम्, पितृभ्यां परित्यक्ता=मात्रा पित्रा च विरहिता, आवयोः=गौरश्यामयोरपि, अदर्शनेन=अनवलोकनेन, क्रन्दनैः=विलापैः, कण्ठम्=गलविलम्, कदर्थयति=दूषयति। अहह !=हा ! सततम्=अनवरतम्, अस्मत्क्रोडैकक्रीडनिकाम्=अस्मदङ्कखेलाम्, सततम्=सदा, अस्मन्मुखचन्द्रचकोरीम्=अस्मद्वदनविधुदर्शनरताम्, सततम्=निरन्तरम्, अस्मत्कण्ठरत्नमालाम्=अस्मत्गलविलमणिमालिकाम्, सततम्=सर्वदा, अस्मत्सहभोजिनीम्=अस्मत्सहखादिनीम्, बाल्यलुलितैः=शैशवसुन्दरैः, मधुरमधुरैः=अतिमधुरैः, सुधास्यन्दनैः=पीयूषवर्षिणैः, दादा-दादेति भाषणैः=तात-तातेति वाक्यैः, आवयोः=गौरश्यामयोः, हृदयम्=मनः, हरन्तीम्=आकर्षन्तीम्, क्षणमात्रम्=पलमात्रम्, अस्मदनवलोकनेनापि=अस्मद्दर्शनाभावेनापि, बाष्पप्रवाहैः=अश्रुधाराभिः, कपोलौ=गण्डस्थलौ, मलिनयन्तीम्=दूषयन्तीम्, कथम्=केन प्रकारेण, एनाम्=मद्भगिनीम्, वृद्धः=वर्षीयान्, पुरोहितः=ऋत्विक्,

सान्त्वयिष्यति=सान्त्वनां दास्यति, अस्मज्जनकविशेषः=अस्मत्पितृनिर्भिन्नः, पुरोहित एव वा=ऋत्विगेव वा, कथम्=केन प्रकारेण, नौ विना=आवामन्तरेण, जीविष्यति=जीवनं धारयिष्यति, परमेश्वर !=भगवन् ! तथा=तेन प्रकारेण, विधेहि=कुरु, यथा=येन प्रकारेण, जीवन्तम्=प्राणन्तम्, वृद्धम्=जरतीं तनुं बिभ्राणं पुरोहितम्, सौवर्णीम्=निजभगिनीम्, साक्षात्कुर्वः=पश्यावः साक्षात्—

इति=एवम्, चिन्ताचक्रम्=शोकजालम्, आरूढः=आपन्नः, एव, आत्मानम्=स्वम्, विस्मृत्य=अजानन्, भित्तिकासंसक्तः=कुड्याश्रितः, एव, शनैः=मन्दम्, अस्खलम्=अपतम् । प्राप्तसंज्ञः=लब्धचेतनः, समपश्यम्=अवालोकयम्, यत्, श्यामसिंहः=मद्भ्राता, मन्दिरपूजकाश्च=देवायतनसेवकाश्च, माम्=गौरसिंहम्, उत्थापयन्ति=अवबोधयन्ति इति ।

समासः—दुष्टम् अदृष्टं यस्य सः दुरदृष्टः । माता च पिता च पितरौ । पुत्राणां विश्लेषस्य दुःखं पुत्रविश्लेषदुःखम् । हतभाग्यं यस्याः सा हतभाग्या । अस्माकं क्रोडस्य एकां क्रीडनिकाम् अस्मत्क्रोडैकक्रीडनिकाम् । आवयोः मुखम् एव चन्द्रः, तस्य चकोरी, ताम् अस्मत्मुखचन्द्रचकोरीम् । आवयोः कण्ठस्य रत्नमाला, ताम् अस्मत्कण्ठरत्नमालाम् । आवाभ्यां सह भुज्यते, तच्छीलमस्या इति अस्मत्सहभोजिनीम् । बालस्य भावः बाल्यम्, तेन लुलितैः बाल्यलुलितैः । सुधायाः स्यन्दनानि, तैः सुधास्यन्दनैः । बाष्पाणां प्रवाहास्तैः बाष्पप्रवाहैः । अस्माकं जनकादविशेषः अस्मज्जनकाविशेषः । चिन्ता एव चक्रम्, तत् चिन्ताचक्रम् । भित्तिकया संसक्त इति भित्तिकासंसक्तः । प्राप्ता संज्ञा येन सः प्राप्तसंज्ञः ।

व्याकरणम्—परित्यज्य—परि+त्यज्+क्त्वा+ल्यप् । व्यलेखि—वि+लिख्+लुङ्+तिप् (भावकर्म) । पतितौ—पत्+इट्+क्त (प्र० द्वि० व०) । परित्यक्ता—परि+त्यज्+क्त+टाप् । हरन्तीम्—हृ+शतृ+ङीप् (द्वि० वि०) । विधेहि—वि+धा+लोट्+सिप् । आरूढः—आ+रुह्+क्त । विस्मृत्य—वि+स्मृ+क्त्वा+ल्यप् । उत्थापयन्ति—उत्+स्था+णिच् (पुक्)+लट्+झि ।

शब्दार्थ—अहह !=हाय ! दुरदृष्टः=दुर्भाग्यशाली, धन्यौ=धन्य हैं, पितरौ=माता-पिता, सुखिनौ=सुखी, परित्यज्य=छोड़कर, दिवम्=स्वर्गलोक को, सनाथितवन्तौ=अलङ्कृत किया, तयोः=उन दोनों के, अदृष्टे=भाग्य में, पुत्रविश्लेषदुःखम्=पुत्रवियोग दुःख, न=नहीं, व्यलेखि=लिखा

गया, धात्रा=ब्रह्मा द्वारा, नितान्तम्=अत्यधिक, पापिनौ=पापी, बाल्ये एव=बचपन में ही, ईदृशीम्=इस प्रकार की, दुरवस्थासु=दुर्दशा में, पतितौ =पड़े रहे हैं, भवेत्=होगी, साम्प्रतम्=इस समय, अनुजाया=बहिन की, हतभाग्या=अभागी, अस्मिन् एव=इसी, वयसि=अवस्था में, पितृभ्याम्= माता-पिता के द्वारा, परित्यक्ता=त्यागी हुई, अदर्शनेन=न देखने से, क्रन्दनैः= रोने के कारण, कदर्थयति=खराब करती होगी, सततम्=अनवरत, अस्मत्क्रो-डैकक्रीडनिकाम्=हमारी गोद की एकमात्र खिलौना थी जिसकी, अस्मन्मुख-चन्द्रचकोरीम्=हमारे मुखचन्द्र की चकोरी, अस्मत्कण्ठरत्नमालाम्=हमारे गले की रत्नमाला रूप को, अस्मत्सहभोजिनीम्=हमारे साथ भोजन करने वाली, बाल्यलुलितैः=बचपन की तोतली वाणी से, सुधास्यन्दनैः=अमृत की वर्षा करने वाले, दादादादेति भाषणैः=दादा-दादा इस प्रकार के भाषणों से, हरन्तीम्=आकृष्ट करने वाली, क्षणमात्रम्=थोड़े समय, अस्मदनवलोकनेन= हमें न देखने से, बाष्पप्रवाहैः=आँसुओं की धार से, मलिनयन्तीम्=गीला करने वाली, एनाम्=सौवर्णी को, नौ विना=हम दोनों के विना, सान्त्व-यिष्यन्ति=शान्त करेंगे, अस्मज्जनकाविशेषः—हमारे पिता के समान, जीवि-ष्यति=जी सकेंगे। विधेहि=करो, सौवर्णीम्=सौवर्णी को, साक्षात्कुर्वः=मिल सकेंगे, इति=इस प्रकार से, चिन्ताचक्रम्=चिन्तारूपी चक्र पर, आरूढः= चढ़ा हुआ, आत्मानम्=अपने को, विस्मृत्य=भूलकर, भित्तिकासंसक्तः= दीवार से सटा, अस्खलम्=लुढ़क गया, प्राप्तसंज्ञः=सचेत हुआ। समपश्यम्= देखा, उत्थापयन्ति=उठा रहे हैं।

हिन्दी—हाय! मैं नितान्त दुर्भाग्यशाली हूँ। हमारे माता-पिता धन्य थे, जो हम दोनों को सुखी छोड़कर स्वर्गलोक को समलंकृत किये। उनके भाग्य में विधाता ने पुत्रवियोगजनित दुःख नहीं लिखा था। हम दोनों अत्यन्त पापी हैं, जो बाल्यपन से ही ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं। इस समय हमारी बहिन सौवर्णी की क्या दशा होगी? हाय! वह लड़की बड़ी अभागिन है। इसी अवस्था में उसे माता-पिता ने छोड़ दिया और हम दोनों को भी न पाकर रो-रोकर वह गला फाड़ रही होगी। हाय! हमारी गोद ही जिसका खिलौना थी, जो चकोरी की भाँति हमारे मुखचन्द्र की ओर ही सदा देखा करती थी, जो हमारे गले में माला के समान लटकी रहती थी, जो सर्वदा हमारे साथ ही भोजन करती थी, बचपन की सुधावर्षिणी तोतली और मधुर बोली में दादा! दादा!

(भाई-भाई) कहकर हमारा मन हरने वाली, क्षण भर भी हमें न देख पाने पर आँसुओं से गाल को गीला कर देने वाली उस सौवर्णी को वृद्ध पुरोहित कैसे सान्त्वना देंगे ? अथवा हमारे पिता के समान पुरोहितजी ही कैसे जी सकेंगे ? परमेश्वर ! ऐसा करो कि हम जीवित वृद्ध पुरोहित और सौवर्णी से मिल सकें—

इस प्रकार चिन्तायुक्त होकर मैं अपने को भी भूल गया और दीवार से टिका हुआ लुढ़क गया। होश में आने पर मैंने देखा कि श्यामसिंह और मन्दिर के पुजारी मुझे उठा रहे हैं ॥ १९ ॥

अथाऽऽवां तेन साधुना मन्दिरस्याऽन्तर्नीतौ महावीर-मूर्ति-समीपे चोपवेशितौ।

ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मिताम्, साकारामिव वीरताम्, गदामुद्यम्य दुष्ट-दल-दलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरि-किशोर-मूर्तिम्, न जाने कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार इव, वसन्ते हिम इव, बोधोदयेऽबोध इव ब्रह्मसाक्षात्कारे भ्रम इव च झटित्यपससार आवयोः शोकः। प्राकाशि च हृदये यद्—

'अलं बहुल-चिन्ताभिः! कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्रियताम्, न खलु बुद्ध्यतां यदावामेव दुरदृष्टवशात् त्यक्त-कुटुम्बौ वने पर्य्यटावः—इति, किन्तु कोशलेश्वरतनयौ राम-लक्ष्मणावपि चतुर्दश-वर्षाणि यावद् दण्ड-कारण्ये भ्रान्तवन्तौ।' इति।

ततः साधोश्चरणयोः प्रणम्य मयोक्तम्—'भगवन्! नास्त्यविदितं किमपि भवादृशानां सदाचार-दृढव्रतिनाम्। तत् कथ्यतां किमावां करवाव ? कुतो गच्छाव ? कथमावयोः श्रेयः-सम्पत्तिः स्याद् ?' इति।

व्याख्या—अथ=तदनन्तरम्, आवाम्=गौरसिंह-श्यामसिंहौ, तेन=पूर्व-निगदितेन, साधुना=पूजकेन, मन्दिरस्य=देवायतनस्य, अन्तर्नीतौ=अन्तः-प्रापितौ, महावीरमूर्तिसमीपे=हनुमत्प्रतिमापार्श्वे, च, उपवेशितौ=उप-स्थापितौ।

ततः=तदनन्तरम्, अवलोक्य=वीक्ष्य, ताम्=पूर्वकथिताम्, वज्रेणेव=कुलिशेनेव, निर्मिताम्=विरचिताम्, साकारामिव=सविग्रहामिव, वीरताम्=शूरताम्, गदाम्=शस्त्रविशेषम्, उद्यम्य=उत्थाप्य, दुष्टदलदलनार्थम्=दुरा-

चारिवर्गनाशार्थम्, उच्छलन्तीमिव=कूर्दंतीमिव, केशरिकिशोरमूर्तिम्=हनुमत्प्रतिमाम्, न=नहि, जाने=अवगच्छामि, कथम्=केन प्रकारेण, वा, कुतो वा=कुत्रत्यो वा, किमिति वा, प्रातरन्धकार इव=उषसि तम इव, वसन्ते=माधवे, हिम इव=तुषारमिव, बोधोदये=ज्ञानोदये, अबोध इव=अज्ञानमिव, ब्रह्मसाक्षात्कारे=ब्रह्मावाप्तौ, भ्रम इव=भ्रान्तिरिव, झटिति=क्षिप्रमेव, अपससार=अपागच्छत्, आवयोः=भ्रात्रोः, शोकः=चिन्ता। प्राकाशि च=स्फुरितश्च, हृदये=चेतसि, यद्—अलं बहुलचिन्ताभिः=अतिशयचिन्ता न करणीया। कश्चन=कोऽपि, पुरुषार्थः=कर्म, स्वीक्रियताम्=अङ्गीक्रियताम्, न=नहि, खलु=निश्चयेन, बुद्धचताम्=ज्ञायताम्, यत्, आवामेव=गौरसिंह-श्यामसिंहावेव, दुरदृष्टवशात्=दुर्भाग्याधीनात्, त्यक्तकुटुम्बौ=कुटुम्बविरहितौ, वने=विपिने, पर्य्यटावः=परिभ्रमावः, इति, किन्तु=अपितु, कोशलेश्वर-तनयौ=दशरथात्मजौ, रामलक्ष्मणौ=एतन्नामकौ, अपि, चतुर्दशवर्षाणि यावद्=चतुर्दशाब्दपर्यन्तम्, दण्डकारण्ये=दण्डकनामके कानने, भ्रान्तवन्तौ=बभ्रमतुः।

ततः=तदनन्तरम्, साधोः=पूजकस्य, चरणयोः=पादयोः, प्रणम्य=नमस्कृत्य, मया=गौरसिंहेन, उक्तम्=निगदितम्, भगवन्!=श्रीमन्! नास्ति=न विद्यते, अविदितम्=अज्ञातम्, किमपि=किञ्चिदपि, भवादृशानाम्=भवत्सदृशानाम्, सदाचारदृढव्रतिनाम्=सत्कर्मसततपरायणानाम्। तत्कथ्यतां=तद्भण्यताम्, किम्, आवाम्=गौरसिंहश्यामसिंहौ, करवाव=विदधाव? कुतो गच्छाव=कुत्र व्रजाव? कथम्=केन प्रकारेण, आवयोः=भ्रात्रोः, श्रेयःसम्पत्तिः=कल्याणावाप्तिः, स्याद्=भवेद्? इति।

समासः—साध्नोति परकार्यमिति साधुस्तेन साधुना। महावीरस्य मूर्तिः, तस्याः समीपे महावीरमूर्तिसमीपे। दुष्टानां दलम्, तस्य दलनमेव अर्थः यस्य तथाभूतम् इति दुष्टदलदलनार्थम्। केशरिणः किशोरः, तस्य मूर्तिः, तां केशरिकिशोरमूर्तिम्। बोधस्य उदयः, तस्मिन् बोधोदये। ब्रह्मणः साक्षात्कारः, तस्मिन् ब्रह्मसाक्षात्कारे। त्यक्तः कुटुम्बः याभ्यां तौ त्यक्तकुटुम्बौ। कोशलानाम् ईश्वरः, तस्य तनयौ, कोशलेश्वरतनयौ। दृढश्चासौ व्रतः दृढव्रतः, सदाचार एव दृढव्रतः अस्ति इति तेषां सदाचारदृढव्रतिनाम्। श्रेयसः सम्पत्तिः श्रेयः-संम्पत्तिः।

व्याकरणम्—अन्तर्नीतौ—अन्तस्+नी+क्त (प्रथमा द्वि० व०)। उपवे-

शितौ—उप + विश् + णिच् + क्त (प्र० द्वि० व०)। अवलोक्य—अव + लोक् + क्त्वा + ल्यप्। उद्यम्य—उद् + यम् + क्त्वा + ल्यप्। अपससार—अप + सृ + लिट् + तिप्। शोकः—शुच् + घञ्। प्राकाशि—प्र + काश् + लुङ्। पर्यटावः—परि + अट् + लट् + वस्। भ्रान्तवन्तौ—भ्रम् + क्तवतु (प्र० द्वि० व०)। प्रणम्य—प्र + नम् + क्त्वा + ल्यप्। अविदितम्—विद् + क्त = विदितम्; नञ् समास—अविदितम्। सम्पत्तिः—सम् + पत् + क्तिन्।

शब्दार्थ—अथ = अनन्तर, आवाम् = हम दोनों, तेन साधुना = उस साधु द्वारा, अन्तर्नीतौ = अन्दर लाये गये, महावीरमूर्तिसमीपे = महावीर की मूर्ति के पास, उपवेशितौ = बैठा दिये गये, ततः = उसके बाद, अवलोक्य = देखकर, वज्रेण = इन्द्र के वज्र से, निर्मिताम् = बनी हुई, साकारामिव = शरीरधारिणी के समान, वीरताम् = वीरतारूपी, उद्यम्य = उठकर, दुष्टदलदलनार्थम् = दुष्टों के संहार के लिए, केशरिकिशोरमूर्तिम् = हनुमान् की मूर्ति को, प्रातरन्धकार इव = प्रातःकाल के अन्धकार की भाँति, बोधोदये = ज्ञान के उदय होने पर, अबोधः = अज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कारे = ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने पर, भ्रम इव = भ्रम की तरह, झटिति = शीघ्र ही, अपससार = दूर हो गया, प्राकाशि = प्रस्फुटित हुआ, यत् = कि, हृदये = मन में, अलम् = बस, बहुलचिन्ताभिः = अधिक चिन्ता से, पुरुषार्थः = पुरुष-कर्म, स्वीक्रियताम् = स्वीकार करो, बुद्ध्यताम् = जानो, दुरदृष्टवशात् = दुर्भाग्याधीन, त्यक्तकुटुम्बौ = परिवार त्यागे हुए, पर्यटावः = घूम रहे हैं, कोशलेश्वरतनयौ = दशरथ के पुत्र, चतुर्दशवर्षाणि यावत् = चौदह वर्ष तक, भ्रान्तवन्तौ = भटकते रहे, प्रणम्य = प्रणाम करके, अविदितम् = अज्ञात, भवादृशानाम् = आप जैसे, सदाचारदृढव्रतिनाम् = सदाचार का दृढता से परिपालन करने वाले, तत् कथ्यताम् = तो कहिए, कथम् = किस प्रकार से, स्यात् = होवे, श्रेयःसम्पतिः = कल्याण की प्राप्ति।

हिन्दी—इसके अनन्तर हम दोनों उस साधु के द्वारा मन्दिर के भीतर ले जाये गये और हनुमान्‌जी की मूर्ति के समीप बैठा दिये गये।

तदनन्तर वज्र से बनी हुई-सी, साकार वीरता-सी, गदा उठाकर दुष्टों के संहार के लिए उछल-सी रही महावीर हनुमान् की उस मूर्ति को देखकर, न जाने कैसे, कहाँ से और किस प्रकार प्रातःकाल के समय अन्धकार की तरह, वसन्त ऋतु में हिम की भाँति, ज्ञान हो जाने पर अज्ञान के समान और ब्रह्म-

साक्षात्कार के होने पर भ्रम के सदृश शीघ्रता से हमारा शोक दूर हो गया और हमारे हृदय में इस प्रकार के भाव उठे कि—

'अतिशय चिन्ता नहीं करनी चाहिए। कोई पुरुषार्थ स्वीकार किया जाये। यह मत विचार करो कि हम दोनों भाई ही दुर्भाग्याधीन होकर परिवार को छोड़े हुए जङ्गलों में भटक रहे हैं। दशरथात्मज राम-लक्ष्मण भी चौदह वर्ष तक दण्डकारण्य में घूमते फिरे थे'।

उसके बाद उस साधु के चरणों में प्रणाम कर मैंने कहा—'भगवन्! आप जैसे दृढ़ता से सदाचार का परिपालन करने वालों से कुछ भी छिपा नहीं है। अतः बतलाइए कि हम दोनों अब क्या करें? कहाँ जाँय? हम दोनों का कल्याण कैसे होगा? ॥ २० ॥

ततो हनुमत्पूजकेन सर्वमस्मद्वृत्तान्तं पृष्ट्वा ज्ञात्वा च काष्ठ-पट्टिकायां घृतोन्मथित-सिन्दूरेण किमपि यन्त्रमिवोल्लिख्य, चन्दनैः सञ्चर्च्य, कुसुमैराकीर्य, धूपेन धूपयित्वा, किमपि क्षणं ध्यात्वेव च मम हस्ते पूगीफलमेकं दत्त्वा, 'वत्स! अस्मिन् यन्त्रे कस्मिन्नपि कोष्ठे यथारुचि क्रमुकफलमिदं स्थापय' इत्यवाचि। तत एकतमे कोष्ठे निहित-क्रमुके मयि मुहूर्तम् अङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव स मामवादीत्—

'वत्स! कदाऽपि मा स्म गमो गृहं प्रति, यतो मार्गे पर्वततटीषु अरण्यानीषु च बहवः काम्वोजीया यवन-दस्यवो भवतोर्ग्रहणाय विचरन्ति। दस्युभिः क्रियासमभिहारेण चङ्क्रम्यमाणं देशमवलोक्य भवद्ग्रामवासिनः सर्वेऽपि स्वं स्वमालयं परित्यज्य इतस्ततो गताः।'

व्याख्या—ततः='कथमावयोः कल्याणं स्यादि'ति विचारणोत्तरम्, हनुमत्पूजकेन=मारुतिमन्दिराध्यक्षेण, सर्वमस्मद्वृत्तान्तम्=सकलं गौरसिंहश्यामसिंहकथानकम्, पृष्ट्वा=आपृच्छ्य, ज्ञात्वा=परिज्ञाय, च, काष्ठपट्टिकायाम्=दारुफलके, घृतोन्मथितसिन्दूरेण=आज्यमिश्रितसिन्दूरेण, किमपि, यन्त्रमिव=तान्त्रिकपद्धत्या यन्त्रचक्रमिव, उल्लिख्य=विरच्य, चन्दनैः=मलयजैः, सञ्चर्च्य=चर्चयित्वा, कुसुमैः=प्रसूनैः, आकीर्य=पूजयित्वा, धूपेन=अगुरुणा, धूपयित्वा=सुगन्धितं विधाय, किमपि=किञ्चिद्, क्षणम्=पलम्, ध्यात्वेव=ध्यानं कृत्वेव, मम=गौरसिंहस्य, हस्ते=करे, पूगीफलमेकम्=क्रमुकमेकम्, दत्त्वा=समर्प्य, वत्स!=पुत्र! अस्मिन् यन्त्रे=एतस्मिन् यन्त्रचक्रे, कस्मिन्नपि, कोष्ठे=

कोष्ठके, यथारुचि = निजेच्छया, क्रमुकफलमिदम् = पूगीफलमिदम्, स्थापय = निवेशय, इत्यवाचि = इत्यभाणि। ततः = तदनन्तरम्, एकतमे = एकस्मिन्, कोष्ठे = कोष्ठके, निहितक्रमुके = स्थापितपूगीफले, मयि = गौरसिंहे, मुहूर्तम् = क्षणम्, अङ्गुलिपर्वसु = कररुहग्रन्थिभागेषु, किमपि = किञ्चिदपि, गणयित्वेव = संख्याय इव, सः = पूजकः, माम् = गौरसिंहम्, अवादीत् = अकथयत्—

वत्स ! = पुत्र ! कदापि, मा स्म गमः = मा गच्छ, गृहं प्रति = निवासभूमिं प्रति, यतः = यस्मात्, मार्गे = पथि, पर्वततटीषु = गिरितटेषु, अरण्यानीषु = कान्तारेषु, च, बहवः = अनेके, काम्बोजीयाः = कम्बोजदेशोद्भवाः, यवनदस्यवः = तुरुष्कतस्कराः, भवतोर्ग्रहणाय = युवयोः वशीकरणाय, विचरन्ति = मार्गयन्ति। दस्युभिः = तस्करैः, क्रियासमभिहारेण = पौनःपुन्येन, चङ्क्रम्यमाणम् = भ्रम्यमाणम्, देशम् = स्थानम्, अवलोक्य = वीक्ष्य, भवद्ग्रामवासिनः सर्वे = सकलास्त्वद्ग्रामवास्तव्याः, अपि, स्वं स्वम् = निजं निजम्, आलयम् = गेहम्, परित्यज्य = त्यक्त्वा, इतस्ततो गताः = यत्र तत्र पलायिताः।

समासः—हनुमतः पूजकस्तेन हनुमत्पूजकेन। घृतेन उन्मथितः सिन्दूरः, तेन घृतोन्मथितसिन्दूरेण। रुचिमनतिक्रम्य इति यथारुचि। निहितः क्रमुकः येन सः, तस्मिन् निहितक्रमुके। कम्बोजेषु भवाः काम्बोजीयाः। क्रियायाः समभिहारस्तेन क्रियासमभिहारेण। पौनःपुन्येन अतिशयेन वा अतिक्रम्यमाणम् इति चङ्क्रम्यमाणम्। ग्रामस्य वासिनः ग्रामवासिनः।

व्याकरणम्—पूजक—पूज् + ण्वुल् (अक्)। पृष्ट्वा—प्रच्छ् + क्त्वा। उल्लिख्य—उत् + लिख् + क्त्वा + ल्यप्। सञ्चर्च्य—सम् + चर्च + क्त्वा + ल्यप्। आकीर्य—आ + किर् + क्त्वा + ल्यप्। दत्त्वा—दा (दद्) + क्त्वा। स्थापय—स्था + णिच् + पुक् + लोट्। अवाचि—वच् + यक् + लुङ् + तिप्। गणयित्वा—गण् + णिच् + क्त्वा। काम्बोजीयाः—कम्बोज + छ (ईय)। ग्रहणाय—ग्रह + ल्युट् (अन्) (चतुर्थी ए० व०)। चङ्क्रम्यमाणम्—क्रमु + यक् + शानच् (क्रम को द्वित्व)। परित्यज्य—परि + त्यज् + क्त्वा + ल्यप्। गताः—गम् + क्त (प्रथमा वि० ब० व०)।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, हनुमत्पूजकेन = हनुमान् के पुजारी द्वारा, अस्मद्वृत्तान्तम् = हमारे वृत्तान्त को, पृष्ट्वा = पूछकर, काष्ठपट्टिकायाम् = लकड़ी की पट्टी पर, घृतोन्मथितसिन्दूरेण = घी से सने सिन्दूर से, उल्लिख्य = लिखकर, सञ्चर्च्य = चर्चित करके, कुसुमैराकीर्य = फूल बिखेर कर, धूपयित्वा =

सुगन्धित धुएँ से सुवासित करके, ध्यात्वेव = ध्यान जैसे करके, पूगीफलम् = सुपाड़ी, दत्त्वा = देकर, कोष्ठे = कोठे में, यथारुचि = स्वेच्छानुसार, क्रमुक-फलम् = सुपाड़ी का फल, स्थापय = रख दो, अवाचि = कहा, एकतमे = किसी एक में, निहितक्रमुके = सुपाड़ी रख देने पर, मुहूर्तम् = थोड़ी देर, अङ्गुलि-पर्वसु = अंगुलियों के पोरों पर, किमपि = कुछ, गणयित्वा इव = गणना-सी करके, कदापि = कभी भी, मा स्म गमः = मत जाओ, यतः = क्योंकि, पर्वत-तटीषु = पहाड़ी-घाटियों में, अरण्यानीषु = जङ्गलों में, काम्बोजीयाः = कम्बोज के लोग, यवनदस्यवः = मुसलमान लुटेरे, भवतोः = तुम दोनों के, ग्रहणाय = पकड़ने के लिए, विचरन्ति = घूम रहे हैं, क्रियासमभिहारेण = बार-बार, चङ्क्रम्यमाणम् = आक्रमण करते, अवलोक्य = देखकर, भवद्ग्रामवासिनः = आप के गाँव में रहने वाले, सर्वेऽपि = सभी, आलयम् = घर को, परित्यज्य = छोड़कर, इतस्ततः = इधर-उधर, गताः = चले गये।

हिन्दी—तब उस हनुमान् के पुजारी ने हमारे सम्पूर्ण वृत्तान्त को पूछकर और जानकर एक लकड़ी की पट्टी पर घी से सने हुए सिन्दूर से कुछ एक यन्त्र-सा लिखकर, चन्दन से चर्चित कर, पुष्प चढ़ाकर, धूप से धूपित कर और क्षणभर कुछ ध्यान-सा करके मेरे हाथ में एक सुपारी देकर कहा—'पुत्र ! इस यन्त्र के किसी भी कोठे में स्वेच्छानुसार इस सुपारी को रख दो।' तब मेरे एक प्रकोष्ठ में सुपारी के रख देने पर क्षणभर अंगुलियों के पोरों पर मानों कुछ गिनकर वे मुझसे बोले—

'पुत्र ! घर की ओर कदापि न जाना, क्योंकि मार्ग में पर्वतों की घाटियों और जङ्गलों में बहुत-से कम्बोज देश के मुसलमान लुटेरे तुम्हें पकड़ने के लिए घूम रहे हैं। लुटेरों द्वारा अपने देश पर अनवरत आक्रमण होता देख तुम्हारे ग्राम के सभी निवासी अपना-अपना घर छोड़कर इधर-उधर चले गये हैं' ॥२१॥

ततः 'सौवर्णि ! सौवर्णि ! पुरोहित ! पुरोहित !' इति सक्षोभं व्याहृतवतोरावयोः पुनः स साधुरवोचत् यत्—

'पुरोहितोऽपि युष्मद्रत्नादिनिधिं क्वचन सङ्केतित-भूमि-कुहरे स्थापयित्वा, एकां धात्रीं दास-चतुष्टयमेकं चाऽश्वं सह नीत्वा महाराष्ट्र-पञ्चानन-परिपूरितां कोङ्कणभूमिं प्रति प्रस्थितः।'

तदाकलय्य 'सत्यं सत्यमेवमेवम्' इति समस्तकान्दोलनं स्वीकृतवति

पुरोहिते; 'ततस्ततः' इति मुखरीभूतेषु च कुटीरस्थ-सकल-जनेषु, भूयस्त-दुक्तिं व्याजहार गौरसिंहो यद्—

'न शोचनीयं भवद्भ्यां किमपि तयोर्विषये, गन्तव्यं च तस्मिन्नेव शिववीराधिष्ठिते गिरि-गरिष्ठे कोङ्कणदेशे। कियत्समयानन्तरं तत्रैव भगिन्या पुरोहितेन च सह साक्षात्कारोऽपि भविष्यति—' इति प्रावोचत्।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, सौवर्णि ! सौवर्णि ! पुरोहित ! पुरोहित ! = इति सम्बोधनम्। इति = एवम्, सक्षोभम् = क्षोभयुतम्, व्याहृतवतोः = उक्तवतोः, आवयोः = भ्रात्रोः, पुनः = भूयः, सः = पूर्वनिगदितः, साधुः = पूजकः, अवोचत् = अवदत्, यत्—

पुरोहितोऽपि = पुरोधा अपि, युष्मद्रत्नादिनिधिम् = भवद्रत्नादि सम्पत्, क्वचन = कुत्रापि, सङ्केतितभूमिकुहरे = निर्धारितमहीविवरे, स्थापयित्वा = निक्षिप्य, एकाम् = केवलाम्, धात्रीम् = उपमातरम्, दासचतुष्टयम् = भृत्यचतुष्टयम्, एकम् = केवलम्, अश्वम् = घोटकम्, च, सह = साकम्, नीत्वा = सङ्गृह्य, महाराष्ट्रपञ्चाननपरिपूरिताम् = शिववीररक्षिताम्, कोङ्कणभूमिम् = कोङ्कण-स्थानम्, प्रति, प्रस्थितः = गतः।

तदाकलय्य = तन्निशम्य, 'सत्यम्, सत्यम्' इति स्वीकारे, एवमेवम् = यथोक्तमेव, इति = एवम्प्रकारेण, समस्तकान्दोलनम् = सशिरःकम्पनम्, स्वीकृत-वति = अङ्गीकुर्वति, पुरोहिते = पुरोधसि, ततस्ततः = तदनन्तरम्, तदनन्तरम्, इति = एवम्, मुखरीभूतेषु = पृष्टवत्सु, च, कुटीरस्थसकलजनेषु = उटजस्थ-निखिलजनेषु, भूयः = पुनः, तदुक्तिम् = साधुकथनम्, व्याजहार = उवाच, गौरसिंहः = एतन्नामकः, यद्—

'न = नहि, शोचनीयम् = चिन्तनीयम्, भवद्भ्याम् = भ्रातृभ्याम्, किमपि = किञ्चिदपि, तयोर्विषये = सौवर्णिपुरोहितविषये, गन्तव्यम् = यातव्यम्, च, तस्मिन्नेव = पूर्वनिगदिते एव, शिववीराधिष्ठिते = शिवप्रशासिते, गिरिगरिष्ठे = पर्वतबहुले, कोङ्कणदेशे = कोङ्कणनाम्नि प्रदेशे। कियत्समयानन्तरम् = किञ्चित्का-लानन्तरम्, तत्रैव = पूर्वोक्तदेशे एव, भगिन्या = सौवर्ण्या, पुरोहितेन = पुरोधसा, च, सह = साकम्, साक्षात्कारोऽपि = सम्मिलनमपि, भविष्यति = सम्पत्स्यते', इति = एवम्प्रकारेण, प्रावोचत् = जगाद।

समासः—क्षोभेन सहितं सक्षोभम् । युवयोः रत्नम् आदौ यस्याः निधेः सा ताम्, युष्मद्रत्नादिनिधिम् । सङ्केतितायाः भूमेः कुहरम्, तस्मिन् सङ्केतित-भूमिकुहरे । दासानां चतुष्टयम् इति दासचतुष्टयम् । महाराष्ट्राणां पञ्चाननः, तेन परिपूरितां महाराष्ट्रपञ्चाननपरिपूरिताम् । मस्तकस्य आन्दोलनम्, तेन सहितम् इति समस्तकान्दोलनम् । अमुखराः मुखराः जाता इति मुखरीभूतास्तेषु मुखरीभूतेषु । कुटीरे तिष्ठन्तीति कुटीरस्थाः, ते च ते सकला जनाः, तेषु कुटीर-स्थसकलजनेषु । शिववीरेण अधिष्ठितस्तस्मिन् शिववीराधिष्ठिते । अतिशयेन गुरुः गरिष्ठः, गिरीणां गरिष्ठः यस्मिंस्तस्मिन् गिरिगरिष्ठे ।

व्याकरणम्—व्याहृतवतोः—वि + आ + हृ + क्तवतु (सप्तमी द्वि० व०) । नीत्वा—णीञ् + क्त्वा । प्रस्थितः—प्र + स्था + क्त (प्र० ए० व०) । आकलय्य—आ + कल् + क्त्वा + ल्यप् । स्वीकृतवति—स्व + च्वि + कृ + क्तवतु (स० ए० व०) । मुखरीभूतेषु—मुखर् + च्वि + भू + क्त (स० ब० व०) । व्याजहार—वि + आङ् + हृ + लिट् + तिप् । शोचनीयम्—शुच् + अनीयर् (नपुं०) । गन्तव्यम्—गम् + तव्यत् (नपुं०) । अधिष्ठितः—अधि + स्था + इट् + क्त । गरिष्ठः—गुरु + इष्ठन् । प्रावोचत्—प्र + अव + वच् + लङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, सौवर्णि = गौरसिंह की बहन, पुरोहित = संबोधितरूप, इति = ऐसा, सक्षोभम् = क्षोभसहित, व्याहृतवतोः = बोलने पर, आवयोः = हम दोनों के, साधुः = पुजारी, अवोचत् = बोला, युष्मद्रत्नादिनिधिम् = तुम्हारी रत्न आदि निधि को, क्वचन = कहीं पर, सङ्केतितभूमिकुहरे = संकेतित जमीन के गड्ढे में, स्थापयित्वा = रखकर, धात्रीम् = धाय (उपमाता) को, दासचतुष्टयम् = चार दासों को, नीत्वा = लेकर, महाराष्ट्रपञ्चाननपरि-पूरिताम् = महाराष्ट्रकेसरी से रक्षित, कोङ्कणभूमिम् = कोङ्कणभूमि (महाराष्ट्र का एक भाग) को, प्रस्थितः = चले गये, तत् आकलय्य = यह सुनकर, समस्त-कान्दोलनम् = शिर हिलाते हुए, स्वीकृतवति = स्वीकार करने पर, पुरोहिते = पुरोहित के, ततस्ततः = इसके बाद, मुखरीभूतेषु = बोल उठने पर, कुटीरस्थ-सकलजनेषु = आश्रम में संस्थित सभी लोगों के, तदुक्तिम् = पुजारी के कथन को, व्याजहार = कहा, शोचनीयम् = सोचना चाहिए, तयोः = उन दोनों के, गन्तव्यम् = जाना चाहिए, शिववीराधिष्ठिते = शिवाजी से अधिष्ठित, कियत्स-मयानन्तरम् = कुछ समय बाद, भगिन्या = बहिन से, प्रावोचत् = बोले ।

हिन्दी—इसके अनन्तर हम दोनों (गौरसिंह और श्यामसिंह) के क्षोभ-सहित 'सौवर्णी ! सौवर्णी ! पुरोहित ! पुरोहित !' ऐसा कहने पर वह साधु फिर बोला कि—

'पुरोहित भी तुम्हारी रत्न आदि निधि को किसी संकेतित भूमि पर गड्ढे में गाड़कर एक धाय, चार दास तथा एक घोड़ा साथ में लेकर महाराष्ट्र-केसरी से संरक्षित कोङ्कण प्रदेश को चले गये'।

यह सुनकर 'सत्य है, सत्य है, ऐसा ही है' इस प्रकार शिर हिलाने के साथ ही पुरोहित के स्वीकार कर लेने पर तथा 'पुनः क्या हुआ' ऐसा आश्रम के समस्त लोगों के पूछने पर गौरसिंह पुजारी के कथन को फिर कहने लगा कि—

'आप दोनों को उन दोनों के विषय में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, अपितु आप लोगों को भी शिववीर से संपालित पर्वत-बहुल उसी कोङ्कण प्रदेश में चला जाना चाहिए। कुछ समय बाद वहीं पर भगिनी और पुरोहित से सम्मिलन भी होगा' ऐसा (उस साधु ने) कहा ॥ २२ ॥

ततस्तु भ्रमर-झङ्कारेणेव 'अहो ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्, धन्यो मन्त्राणां प्रभावः, धन्यमिष्टबलम्, चित्रा धर्मनिष्ठा, अवितर्क्यस्तपः-प्रतापः, विलक्षणा नैष्ठिकी वृत्तिः' इति मन्द्र-स्वर-मेदुरेण श्रोतृजन-वचन-कलापेन झङ्कृते तस्मिन् निकुञ्जे; 'ततः कथं प्रचलितौ ? कथमत्राऽऽयातौ ? का घटना घटिता ? क उपायः कृतः ? किमाचरितम् ?' इति कुतूहल-परवशे विस्फारितनयने उद्ग्रीवे समनुकूलितकर्णे विस्मृतान्यकथे कृतावधाने च परिकरवर्गे श्यामसिंहस्याऽङ्के दत्तदृष्टि सौवर्णीं तदङ्के संस्थाप्य, पातितोभयजानु समुपविश्य, राजत-राजिका इव कपोलयोरुत्तरोष्ठे च समुद्भूताः स्वेदकणिका उत्तरीय-प्रान्तेन परिमृज्य पुनरात्म-वृत्तान्तं वक्तुं प्रारभत गौरसिंहो यद्—

व्याख्या—ततस्तु = तदनन्तरन्तु, भ्रमरझङ्कारेणेव = मधुकरगीतेनेव, अहो ! अहो ! इति आश्चर्ये, आश्चर्यम् आश्चर्यम् = महत्कौतूहलमित्याशयः, धन्यः = साधुः, मन्त्राणाम् = दिव्यघोषाणाम्, प्रभावः = प्रतापः, धन्यम् = समीचीनम्, इष्टबलम् = अभीष्टदेवशक्तिः, चित्रा = आश्चर्यकारिणी, धर्मनिष्ठा = धर्मं प्रति

आस्था, अवितर्क्यः = अविचारणीयः, तपःप्रभावः = तपस्योत्कर्षः, विलक्षणा = विचित्रा, नैष्ठिकी = ब्रह्मचर्यसम्बन्धिनी, वृत्तिः = व्यवहारः, इति = इत्थम्, मन्द्रस्वरमेदुरेण = गम्भीरस्वरभरितेन, श्रोतृजनवचनकलापेन = श्रोतृजनवाक्यव्रातेन, झङ्कृते = मुखरिते, तस्मिन् = पूर्वकथिते, निकुञ्जे = आश्रमे, ततः = तदनन्तरम्, कथम् = केन प्रकारेण, प्रचलितौ = प्रयातौ, कथम् = कया रीत्या, अत्र = इह, आयातौ = आगतौ, का = इति प्रश्ने, घटना घटिता = स्थितिः समायाता, कः, उपायः = यत्नः, कृतः = विहितः, किम् = इति प्रश्ने, आचरितम् = आचरणमनुष्ठितम्, इति = एवम्, कुतूहलपरवशे = उत्सुकतापराधीने, विस्फारितनयने = प्रस्फुटितलोचने, उद्ग्रीवे = उन्नतकण्ठे, समनुकूलितकर्णे = दत्तकर्णे, विस्मृतान्यकथे = विगलितान्यवृत्तान्ते, कृतावधाने = दत्तावधाने, च, परिकरवर्गे = समुपस्थितसमुदाये, श्यामसिंहस्य = एतन्नामकस्य स्वभ्रातुः, अङ्के = क्रोडे, दत्तदृष्टिम् = पश्यन्तीम्, सौवर्णीम् = निजभगिनीम्, तदङ्के = श्यामसिंहस्य क्रोडे, संस्थाप्य = उपस्थाप्य, पतितोभयजानुः = पतितजानुद्वयम्, समुपविश्य = स्थित्वा, राजतराजिकाः = रजतकणिकाः, इव = यथा, कपोलयोः = गण्डयोः, उत्तरोष्ठे=ओष्ठोपरि, च, समुद्भूताः=उच्छलिताः, स्वेदकणिकाः= घर्मोदकबिन्दून्, उत्तरीयप्रान्तेन = उत्तरीयपटान्तेन, परिमृज्य = प्रोञ्छ्य, पुनः = भूयः, आत्मवृत्तान्तम् = निजवृत्तम्, वक्तुम् = कथयितुम्, प्रारभत = आरब्धवान्, गौरसिंहः = एतन्नामकः, यत् (अग्रे कथयिष्यते)।

समासः—भ्रमराणां झङ्कारस्तेन इव भ्रमरझङ्कारेणेव। तपसः प्रतापः इति तपःप्रतापः। मन्द्रश्चासौ स्वरः, तेन मेदुरः, तेन मन्द्रस्वरमेदुरेण। श्रोतारश्च ते जनास्तेषां वचनानां कलापस्तेन श्रोतृजनवचनकलापेन। विस्फारिता नयनानि यस्य सः, तस्मिन् विस्फारितनयने। सम्यक् अनुकूलितौ कर्णौ यस्य सः, तस्मिन् समनुकूलितकर्णे। विस्मृतम् अन्यकथनं येन सः, तस्मिन् विस्मृतान्यकथने। कृतम् अवधानं येन सः, तस्मिन् कृतावधाने। परिकराणां वर्गः, तस्मिन् परिकरवर्गे। दत्ता दृष्टिः यया सा, तां दत्तदृष्टिम्। पतिते उभयजानुनी यस्मिंस्तत् पतितोभयजानुः।

व्याकरणम्—अवितर्क्यः—अ + वि + तर्क + यत्। श्रोतृ—श्रु + तृच्। समुद्भूताः—सम् + उद् + भू + क्त। (प्र० ब० व०)। परिमृज्य—परि + मृज् + क्त्वा + ल्यप्। वक्तुम्—वच् + तुमुन्।

शब्दार्थ—भ्रमरझङ्कारेणेव = भ्रमरों की झंकार के समान, इष्टबलम् =

इष्टशक्ति, चित्रा = विलक्षण, धर्मनिष्ठा = धर्म के प्रति आस्था, अवितर्क्यः = अविचारणीय अर्थात् जो तर्क से परे हो, तपःप्रतापः = तपस्या का प्रभाव, नैष्ठिकी = ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित, वृत्तिः = आचरण, मन्द्रस्वरमेदुरेण = गम्भीर स्वर से युक्त, श्रोतृजनवचनकलापेन = श्रोताओं के वचनसमूह से, झङ्कृते = शब्दयुक्त, कुतूहलपरवशे = उत्सुकता के वशीभूत हुए, विस्फारितनयने = नेत्र फाड़कर देखने वाले, उद्ग्रीवे = गर्दने ऊपर किये, समनुकूलितकर्णे = अच्छी प्रकार कान लगाये हुए, विस्मृतान्यकथने = अन्य बातों को भूले हुए, कृतावधाने = ध्यान देने पर, परिकरवर्गे = समीप बैठे हुए जनसमूह के, अङ्के = गोद में, दत्तदृष्टिम् = देखने वाली, तदङ्के = उसकी (श्यामसिंह की) गोद में, संस्थाप्य = बैठाकर, पतितोभयजानुः = दोनों घुटनों को टेककर, राजतराजिकाः = चाँदी के कणों जैसी, समुद्भूताः = निकली हुई, स्वेदकणिकाः = पसीने की बूंदों को, उत्तरीयप्रान्तेन = दुपट्टे के किनारे से, परिमृज्य = पोंछकर, आत्म-वृत्तान्तम् = अपने वृत्तान्त को, वक्तुम् = कहने के लिए, प्रारभत = आरम्भ किया।

हिन्दी—इसके अनन्तर भ्रमरों की झङ्कार के समान—'अहो ! अहो ! आश्चर्य है, आश्चर्य है, मन्त्रों का प्रभाव धन्य है, अभीष्ट देवता की शक्ति धन्य है, धर्म के प्रति निष्ठा भी आश्चर्यजनक है, तपस्या का प्रभाव भी अवितर्क्य है, ब्रह्मचर्यवृत्ति कितनी विलक्षण है ?' इस प्रकार श्रोताओं के द्वारा कहे गये गम्भीर स्वर वाले विभिन्न वाक्यों से उस निकुञ्ज के झङ्कृत हो उठने पर, 'पुनः आप दोनों कैसे चले ? कैसे यहाँ आये ? क्या घटना घटी ? क्या उपाय किया गया ?' इत्यादि प्रश्नों से उत्सुकता के वशीभूत हुए, आँखें फाड़कर देखते हुए, गर्दन ऊँची किये हुए, कान लगाये हुए, अन्य समस्त बातों को भूले हुए, पास में बैठे हुए अशेष जनों के सावधान हो जाने पर श्यामसिंह की गोद की ओर देखने वाली सौवर्णी को उसकी गोद में बैठाकर और स्वयं दोनों घुटनों के बल बैठकर, गालों और ओठों पर चाँदी के कण के समान निकली हुई पसीने की बूंदों को उत्तरीय (दुपट्टा) के किनारे से पोंछकर पुनः अपने वृत्तान्त को गौरसिंह ने कहना प्रारम्भ किया कि—॥ २३ ॥

'अथ भगवन् ! श्रूयते सुदूरमस्मात् स्थानात् कोङ्कणदेशः, मध्ये च विकटा अटव्यः, शतशः शल-श्रेणयः, त्वरितधारा धुन्यः, पदे पदे च भयानक-भल्लूकानामम्बूकृत-सङ्कुलानाम्, मुस्ता-मूलोत्खननघुर्घुरायित-

घोर-घोणानां घोणिनाम्, पङ्क-परीवर्त्तोन्मथित-कासाराणां कासराणाम्, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षूणाम्, विकट-करटि-कट-विपाटन-पाटव-पूरित-संहननानां सिंहानाम्, नासाग्र-विषाण-शाणन-च्छल-विहित-गण्डशैल-खण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल-पेपीयमान-दानधारा-धुरन्धराणां सिन्धुराणाम्, कृपा-कृपण-कृपाण-च्छिन्न-दीनाऽध्वनीन-गल-तल-गलत्पीन-धार-शोणित-बिन्दु-वृन्द-रञ्जित-वारबाण-सारसनोष्णीष-धारणा-कलिताऽखर्व-गर्व बर्बराणां लुण्ठकनिकराणां च सर्वथा साक्षात्कार-सम्भवः। बालावावाम् अविज्ञातोऽद्ध्वा, भोग-समयो दुर्ग्रहाणाम्, अश्वावेव सहायौ, जन-पद-शून्यमेतत् प्रान्तरम्, तत् कथं गच्छेव ? कथं धैर्यं धारयेव ? कथं वा कोङ्कणदेशं प्राप्स्याव इति विश्वसेव ?' इति सचिन्तं विनिवेदितवति मयि, स साधुरावयोः पृष्ठे हस्तं विन्यस्य—

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, भगवन् ! = श्रीमन् ! श्रूयते = आकर्ण्यते, सुदूरम् = बहुदूरम्, अस्मात् स्थानात् = एतस्मात् प्रदेशात्, कोङ्कणदेशः = एतन्नामकदेशः, मध्ये = अन्तराले, च, विकटाः = भयावहाः, अटव्यः = महारण्यानि, शतशः = शतसंख्यकाः, शैलश्रेणयः = पर्वतमेखलाः, त्वरितधाराः = सवेगप्रवाहाः, धुन्यः = नद्यः, पदे पदे च = स्थाने स्थाने च, भयानकभल्लूकानाम् = भीतिकरऋक्षाणाम्, अम्बूकृतसङ्कुलानाम् = अस्पष्टरवव्याप्तानाम्, मुस्तामूलोत्खननघुर्घुरायितघोणानाम् = कुरुविन्दमूलोत्पाटनघुर-घुरशब्दयुतभयङ्करनासिकानाम्, घोणिनाम् = शूकराणाम्, पङ्कपरीवर्तोन्मथितकासाराणाम् = कीचोल्लोलविलोडितकासाराणाम्, कासराणाम्=महिषाणाम्, नरमांसबुभुक्षूणाम् मानवमांसखादनेच्छूनाम्, तरक्षूणाम् = मृगादनानाम्, विकटकरटिकटविपाटनपाटवपूरितसंहननानाम् = उद्दामहस्तिगण्डविदारणकौशलपूरिताङ्गानाम्, सिंहानाम् = व्याघ्राणाम्, नासाग्रविषाणशाणनच्छलविहितगण्डशैलखण्डानाम् = घोणाग्रशृङ्गतेजनव्याजकृतगण्डशैलखण्डानाम्, खड्गिनाम् = गण्डकानाम्, दोदुल्यमानद्विरेफदलपेपीयमानदानधाराधुरन्धराणाम् = पुनः पुनः समुत्पतदलिवर्गातिशयास्वाद्यमानमदजलप्रवाहाग्रेसराणाम्, सिन्धुराणाम् = गजानाम्, कृपाकृपणकृपाणच्छिन्नदीनाध्वनीनगलतलगलत्पीनधारशोणितबिन्दुवृन्दरञ्जितवारबाणसारसनोष्णीषधारणाकलिताखर्वगर्वबर्बराणाम्=दयादरिद्रासिकृत्तदीनपथिककण्ठस्थाननिपतत्स्थूलप्रवाहशोणितपृषद्वर्गरञ्जितकञ्चुकमेखलाशिरस्त्राणधार-

णाहितविपुलअहङ्कारकर्कशानाम्, लुण्ठकनिकराणाम् = तस्करसमूहानाम्, च, सर्वथा = सर्वप्रकारेण, साक्षात्कारसम्भवः = दर्शनसम्भवः। बालौ = बालकौ, आवाम् = गौरश्यामौ, अविज्ञातोऽध्वा = न दृष्टो मार्गः, भोगसमयो दुर्ग्रहाणाम् = भोगकालः दुष्टखेचराणाम्. अश्वावेव = घोटकावेव, सहायौ = सहयात्रिणौ, जनपदशून्यम् = जनवासविरहितम्, एतत् = इदम्, प्रान्तरम् = निर्मक्षिककानन-वर्त्म, तत्कथम् = तत्केन प्रकारेण, गच्छेव = व्रजेव, कथम् = केन प्रकारेण, धैर्यम् = धीरताम्, धारयेव = धारणं कुर्याव, कथं वा = केन प्रकारेण वा, कोङ्कणदेशम् = एतन्नामप्रदेशम्, प्राप्स्यावः = प्राप्तं करिष्यावः, इति = एवम्, विश्वसेव = विश्वासं कुर्याव, इति = एवम्प्रकारेण, सचिन्तम् = चिन्तया सहितम्, विनिवेदितवति = निवेदनं विहिते सति, मयि = गौरसिंहे, सः = पूर्वोक्तः, साधुः = मन्दिराध्यक्षः, आवयोः = गौरश्यामयोः, पृष्ठे = पृष्ठप्रदेशे, हस्तम् = करम्, विन्यस्य = स्थापयित्वा—

समासः—शैलानां श्रेणयः शैलश्रेणयः। त्वरिता धारा यासां ताः त्वरित-धाराः। अम्बूकृतेन सङ्कुलास्तेषाम् अम्बूकृतसङ्कुलानाम्। मुस्तायाः मूलस्य उत्खनने घुर्घुरायिता घोराः घोणाः येषां तेषां मुस्तामूलोत्खननघुर्घुरायित-घोरघोणानाम्। घोणा अस्ति अस्य इति घोणिन्, तेषां घोणिनाम्। पङ्कपरी-वर्तनेन उन्मथितः कासारः यैः, तेषां पङ्कपरीवर्तोन्मथितकासाराणाम्। नासायाः अग्रे स्थितो यः विषाणः, तस्य शाणनम्, तस्य छलेन विहितानि गण्डशैलानां खण्डानि यैः, तेषां नासाग्रविषाणशाणनच्छलविहितगण्डशैल-खण्डानाम्। दोदुल्यमानाः ये भ्रमराः, तेषां दलेन पेपीयमाना या दानधारा, तया धुरन्धराः, तेषां दोदुल्यमानद्विरेफदलपेपीयमानधाराधुरन्धराणाम्। कृपायां कृपणः यः कृपाणः, तेन छिन्नं दीनाध्वनीनस्य यत् गलतलम्, तस्मात् गलतः पीनधारशोणितस्य बिन्दूनां वृन्देन रञ्जितानां वारबाणसारसनोष्णीषाणां धारणेन आकलितः अखर्वः गर्वः यैस्ते च बर्बरास्तेषां कृपाकृपणकृपाणच्छिन्नदीना-ध्वनीनगलत्तलगलत्पीनधारशोणितबिन्दुवृन्दरञ्जितवारबाणसारसनोष्णीषधारणा-कलिताखर्वगर्वबर्बराणाम्। लुण्ठकानां निकरास्तेषां लुण्ठकनिकराणाम्। भोगस्य समयः भोगसमयः।

व्याकरणम्—श्रूयते—श्रु + लट् + तिप् (भावकर्म)। बुभुक्षूणाम्—भुज् + सन् (द्वित्व) + उ (षष्ठी ब० व०)। दोदुल्यमान—दुल् + यङ् (द्वित्व) + शानच्। अविज्ञातः—अ + वि + ज्ञा + क्त। विश्वसेव—वि +

श्वस् + लिङ् (उ० पु० द्वि० व०)। विनिवेदितवति—वि + नि + विद् + क्तवतु (स० ए० व०)।

कोषः—'अम्वूकृतं सनिष्ठीवम्' 'कुरुविन्दो मेघनामा मुस्तामुस्तकमस्त्रियाम्' 'कासारः सरसी सरः' 'लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासारसैरिभाः' 'तरक्षुस्तु मृगादनः' इति सर्वत्राप्यमरः।

शब्दार्थ—भगवन्! = सम्बोधनसूचक, श्रूयते = सुना जाता है, अस्मात् स्थानात् = इस स्थान से, विकटाः = भीषण, अटव्यः = घना जङ्गल, शतशः = सैकड़ों, श्रेणयः = पर्व्वतश्रेणियाँ, त्वरितधाराः = तेज गतिवाली, धुन्यः = नदियाँ, अम्वूकृतसङ्कुलानाम् = गुर्राहट की ध्वनि से युक्त, भयानकभल्लूकानाम् = भयानक भालुओं के, मुस्तामूलोत्खननघुर्घुरायितघोरघोणानाम् = मोथे की जड़ खोदने में घुर्घुर शब्द करते भयङ्कर नासिका वाले, घोणिनाम् = जङ्गली सूअरों के, पङ्कपरीवर्तोन्मथितकासाराणाम् = कीचड़ में लोटने से तालाब को गन्दा कर देने वाले, कासाराणाम् = जङ्गली भैंसों का, नरमांसम् = मनुष्यों के मांस को, वुभुक्षूणाम् = खाने के इच्छुक, तरक्षूणाम् = चीतों के, विकटकरटिकटविपाटनपाटवपूरितसंहनननानाम् = भयङ्कर हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने की कुशलता से परिपूर्ण शरीर वाले, सिंहानाम् = सिंहों का, नासाग्रविषाणशाणनच्छलविहितगण्डशैलखण्डानाम् = नासिका के आगे स्थित सींग को तेज करने के बहाने पहाड़ियों के टुकड़े-टुकड़े करने वाले, खड्गिनाम् = गैंडों का, दोदुल्यमानद्विरेफदलपेपीयमानदानधाराधुरन्धराणाम् = संदोलित होने वाले भ्रमरों के द्वारा पी जाती हुई मदधाराओं वाले, सिन्धुराणाम् = हाथियों का, कृपाकृपणकृपाणच्छिन्नदीनाध्वनीनगलतलगलत्पीनधारशोणितबिन्दुवृन्दरञ्जितवारबाणसारसनोष्णीषधारणाकलिताखर्वगर्वबर्बराणाम् = निर्दय कृपाण से कटे दीनहीन पथिकों के गले से बहने वाली मोटी धारा के रक्तबिन्दुओं से रंगे कञ्चुक, मेखला और शिरस्त्राण धारण कर नितान्त अभिमान करने वाले बर्बर, लुण्ठकनिकराणाम् = लुटेरों के समूहों का, सर्वथा=सब प्रकार से, साक्षात्कारः= सम्मिलन। अविज्ञातः = न जाना हुआ, अध्वा = मार्ग, भोगसमयः = भोग का समय, दुर्ग्रहाणाम् = दुष्ट ग्रहों का, सहायी = सहायक, जनपदशून्यम् = निवासस्थानरहित, प्रान्तरम् = जनरहित स्थान, धारयेव = धारण करें, प्राप्स्यावः = प्राप्त करेंगे, विश्वसेव = विश्वास करें, सचिन्तम् = चिन्तापूर्वक, विनिवेदितवति = निवेदन करने पर, पृष्ठे = पीठ पर, विन्यस्य = रखकर।

हिन्दी—भगवन् ! सुना जाता है कि इस स्थान से कोङ्कण देश बहुत दूर है, मध्य-मध्य में भयानक जङ्गल हैं, सैकड़ों पहाड़ियाँ हैं, तेज गति से बहने वाली नदियाँ हैं और पग-पग पर थूकने के साथ गुर्राहट का शब्द करने वाले भयानक भालुओं, मोथे की जड़ खोदने में अपनी भयङ्कर नाक से घुर्र-घुर्र शब्द करने वाले जङ्गली सूअरों, कीचड़ में लोट-पोट कर तालाब को गन्दा करने वाले वनैले भैंसों, नरमांस खाने के इच्छुक चीतों, भयङ्कर हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने की कुशलता से परिपूर्ण शरीरवाले सिंहों, अपनी नासिका पर संस्थित सींग को तेज करने के बहाने पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े कर डालने वाले गैंडों, बार-बार उड़ने वाले भ्रमरसमूह द्वारा पान की जाने वाली मदधारा वाले हाथियों और निर्दय तलवार से कटे दीन-हीन पथिकों के गले से बहने वाली मोटी धारा के शोणित बिन्दुओं से रंगे कञ्चुक, मेखला और शिरस्त्राण धारण कर नितान्त अभिमान करने वाले बर्बर लुटेरों के समूहों का मिल जाना बहुत सम्भव है। हम दोनों बालक हैं, मार्ग अज्ञात है, दुष्टग्रहों के भोग का समय है, हमारे सहायक केवल घोड़े ही हैं, मनुष्यों से शून्य जङ्गली रास्ता है, अतः हम दोनों कैसे जायें ? कैसे धैर्य धारण करें ? अथवा हम कोङ्कण देश को पहुँच जायेंगे, यह कैसे विश्वास करें ? इस प्रकार चिन्तायुक्त मेरे निवेदन करने पर वह साधु (पुजारी) हम दोनों की पीठ पर हाथ रखकर (बोला) —॥ २४ ॥

'हनूमान् सर्वं साधयिष्यति, मा स्म चिन्ता-सन्तान-वितानैरात्मानं दुःखाकुरुतम्। यथा सरलेनोपायेन कोङ्कणदेशं प्राप्स्यथस्तथा प्रभाते निर्देक्ष्यामि। साम्प्रतमित आगम्यताम्, पीयतामिदमेला-गोस्तनी-केसर-शर्करा-सम्पर्क-सुधा-विस्पर्द्धि महिषी-दुग्धम्, दासा इमे पाद-संवाहनैस्तैल-सम्मर्दैर्व्यजन-चालनैश्च भवन्तौ विगतक्लमौ विधास्यन्ति। न किमपि भयमधुना वां हनूमतश्चरणयोः शरणमायातयोः। सुखेन सुप्यताम्। असंशयमेव प्रातरेव हनूमत्पूजन-समये सर्वं कार्यं सेत्स्यति'—इति समाश्वासयत्।

व्याख्या—हनूमान् = पवनपुत्रः, सर्वम् = सकलम्, साधयिष्यति = सिद्धं विधास्यति, चिन्तासन्तानवितानैः = चिन्तनपरम्पराविस्तारैः, आत्मानम् = स्वम्, मा स्म दुःखाऽकुरुतम् = न पीडयतम्, यथा = येन, सरलोपायेन = तुच्छ-

प्रयासेन, कोङ्कणदेशम् = एतन्नामकं निजेच्छितप्रदेशम्, प्राप्स्यथ = गमिष्यथ, तथा = तेन प्रकारेण, प्रभातम् = प्रातः, निर्देक्ष्यामि = उपदेक्ष्यामि, साम्प्रतम् = अधुना, इतः = अत्र, आगम्यताम् = आगच्छतम्. पीयताम् = गृह्यताम्, इदम् = एतत्, एलागोस्तनीकेसरशर्करासम्पर्कसुधाविस्पर्द्धि = चन्द्रबालाद्राक्षाकास्त्रीरज-सितासम्मेलनामृततुल्यम्, महिषीदुग्धम् = सैरिभीपयः, दासाः = सेवकाः, इमे = समीपवर्तिनः, पादसंवाहनैः = चरणसेवनैः, तैलसम्मर्दैः = स्नेहलेपनैः, व्यजन-चालनैश्च = तालवृन्तसञ्चालनैश्च, भवन्तौ = श्रीमन्तौ, विगतक्लमौ = समाप्त-पीडौ, विधास्यन्ति = करिष्यन्ति, न = नहि, किमपि = किञ्चिदपि, भयम् = भीतिः, अधुना = सम्प्रति, वाम् = युवाम्, हनूमतश्चरणयोः = मारुतिपादयोः, शरणमायातयोः = शरणागतयोः, सुखेन = आनन्देन, सुप्यताम् = शय्यताम्, असंशयमेव = निश्चितमेव, प्रातरेव = प्रभाते एव, हनूमत्पूजनसमये = मारुति-समर्चाकाले, सर्वम् = निखिलम्, कार्यम् = विधेयम्, सेत्स्यति = सम्पन्नं भविष्यति, इति = एवम्, समाश्वासयत् = समाश्वासितवान् ।

समासः—चिन्तायाः सन्तानानां वितानैः चिन्तासन्तानवितानैः । एला च गोस्तनी च केसरश्च शर्करा च, एतेषां सम्पर्केण सुधां विस्पर्धितुं शीलमस्येति, तत् एलागोस्तनीकेसरशर्करासम्पर्कसुधाविस्पर्धि । पादयोः संवाहनैः पादसंवा-हनैः । तैलानां सम्मर्दैः तैलसम्मर्दैः । व्यजनस्य चालनैः व्यजनचालनैः । विगतः क्लमः ययोस्तौ विगतक्लमौ । हनूमतः पूजनस्य समये हनूमत्पूजनसमये ।

व्याकरणम्—साधयिष्यति—साध् + णिच् + लृट् । दुःखाकुरुतम्–दुःख + अच् + कृ + लोट् । प्राप्स्यथः–प्र + अप् + लृट् । निर्देक्ष्यामि–निर् + दिश् + लृट् । सम्मर्दैः—सम् + मृद् + घञ् । चालनैः—चल् + णिच् + ल्युट् । आयातयोः—आ + या + क्त । समाश्वासयत्—सम् + आ + श्वस् + णिच् + लङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—हनूमान् = पवनपुत्र, सर्वम् = सब, साधयिष्यति = सिद्ध करेंगे, चिन्तासन्तानवितानैः = चिन्ता की परम्पराओं से, आत्मानम् = अपने को, दुःखाकुरुतम् = दुःखी करो, प्राप्स्यथः = प्राप्त हो जाओगे, निर्देक्ष्यामि = निर्देश करूँगा, साम्प्रतम् = इस समय, इतः = इधर, आगम्यताम् = आइए, एलागो-स्तनीकेसरशर्करासम्पर्कसुधाविस्पर्द्धि = इलायची, किशमिश, केसर तथा चीनी के सम्पर्क से अमृत को भी तिरस्कृत करने वाला, महिषीदुग्धम् = भैंस का दूध, पादसंवाहनैः = पैर दबाने से, तैलसम्मर्दैः = तेल मालिश करने से, व्यजनचालनैः = पंखा चलाने से, विगतक्लमौ = थकानरहित, विधास्यन्ति =

करेंगे। शरणम् = शरण में, आयातयोः=आये हुए, सुप्यताम् = सोओ, असंशय-मेव = निश्चय ही, हनूमत्पूजनसमये = हनुमान्‌जी की पूजा के समय में; सेत्स्यति = सिद्ध होगा, इति = इस प्रकार से, समाश्वासयत् = आश्वस्त किया।

हिन्दी—'हनुमान्‌जी समस्त कार्य सिद्ध करेंगे। चिन्ता करके अपने को दुःखी न बनाओ। जिस सरल उपाय से तुम कोङ्कण देश पहुँच सकोगे, वह सवेरे बताऊँगा। इस समय इधर आओ। इलायची, किशमिश, केसर तथा चीनी के सम्मिश्रण से मिले हुए, अमृत को भी तिरस्कृत करने वाले भैंस के दूध को पीओ। ये सेवक पैर दबाकर, तेल मालिश कर और पंखा चलाकर तुम दोनों को थकानरहित कर देंगे। हनुमान्‌जी के चरणों की शरण में आये हुए तुम दोनों को अब कोई भय नहीं है। सुखपूर्वक सोओ। प्रातःकाल हनुमान्-जी की पूजा के समय निश्चित ही तुम्हारे अशेष कार्य सिद्ध हो जायेंगे'। इस प्रकार उस साधु (पुजारी) ने गौरसिंह को आश्वस्त किया॥ २५ ॥

आवां च तन्निर्दिष्टेनैव सोपानेन अट्टालिकामारुह्य एकस्मिन् गृहे प्रविष्टौ, तत्र च राजकुमार-योग्यां पर्यङ्कादि-सामग्रीमवलोक्य नितान्त चकितौ प्रसन्नौ च अभूव। अथ भूयस्तत्प्रदत्तं मोदकादि किञ्चिद् भुक्त्वा, पयः पीत्वा, ताम्बूलं चर्वयन्तौ, दासैः पादयोः पीड्यमानौ, व्यजनैर्वीज्यमानौ, स्वभाग्योदय-सोपानं साधोः साधुतां मनस्येव प्रशंसमानावेव चाऽशयिष्वहि। अयं चिरकालानन्तरमावा-भ्यां निःशङ्क-शयन-समयो लब्धः, इत्येकयैवाऽऽनन्दमय्या वितर्क-विचारादि-सम्पर्क-शून्यया असम्प्रज्ञात-समाधि-सोदरयेव निद्रया समस्तां रजनीमजीगमाव।

व्याख्या—आवाम् = गौरसिंहश्यामसिंहौ, च, तन्निर्दिष्टेन = तदुपदिष्टेन, एव, सोपानेन = सोपानवर्त्मना, अट्टालिकाम् = प्रासादम्, आरुह्य = आरोहणं विधाय, एकस्मिन्, गृहे=भवनस्य प्रकोष्ठे, प्रविष्टौ = प्राविशाव, तत्र = प्रासादे, च, राजकुमारयोग्याम्=नृपतनयार्हाम्, पर्यङ्कादिसामग्रीम् = शय्यादिवस्तुजातम्, अवलोक्य = वीक्ष्य, नितान्तचकितौ = भृशमाश्चर्यान्वितौ, प्रसन्नौ = आनन्दितौ, च, अभूव = जातौ, अथ = अनन्तरम्, भूयः = पुनः, तत्प्रदत्तम् = तदर्पितम्, मोदकादि = मिष्टान्नादिकम्, किञ्चिद् = किमपि, भुक्त्वा = खादित्वा, पयः = दुग्धम्, पीत्वा = आपीय, ताम्बूलम् = मुखशोधनद्रव्यम्, चर्वयन्तौ = भक्षयन्तौ,

दासैः = सेवकैः, पादयोः = चरणयोः, पीड्यमानौ = संवाह्यमानौ, व्यजनैः = तालपत्रैः, वीज्यमानौ = उपवीजितौ सन्तौ, स्वभाग्योदयसोपानम् = निजदिष्टोदयक्रमम्, साधोः = महात्मनः, साधुताम् = सज्जनताम्, मनसि = चित्ते, एव, प्रशंसमानौ = प्रशंसां कुर्वन्तौ, एव, आशयिष्वहि = अशेवहि, अयम् = एषः, चिरकालानन्तरम् = बहुसमयानन्तरम्, आवाभ्याम् = भ्रातृभ्याम्, निःशङ्कशयनसमयः = स्वच्छन्दशयनावसरः, लब्धः = प्राप्तः, इति = अस्मात्, एकया = केवलया, आनन्दमय्या = आनन्दपूर्णया, वितर्कविचारादिसम्पर्कशून्यया = निखिलतर्कवितर्कादिविरहितया, असम्प्रज्ञातसमाधिसोदरया = असम्प्रज्ञाताख्यसमाधिसदृशया, निद्रया = स्वापेन, समस्ताम् = सम्पूर्णाम्, रजनीम् = रात्रिम्, अजीगमाव = अयापयाव।

समासः—तेन निर्दिष्टः, तेन तन्निर्दिष्टेन। तेन प्रदत्तं तत्प्रदत्तम्। स्वस्य भाग्यं, तस्य उदयः, तस्य सोपानं स्वभाग्योदयसोपानम्। निर्गता शङ्का यस्मात् स निःशङ्कः, शयनस्य समयः शयनसमयः, निःशङ्कश्चासौ शयनसमयः निःशङ्कशयनसमयः। वितर्कविचारादीनां सम्पर्केण शून्या, तया वितर्कविचारादिसम्पर्कशून्यया। असम्प्रज्ञातस्य समाधेः सोदरा, तया असम्प्रज्ञातसमाधिसोदरया।

व्याकरणम्—निर्दिष्टः—निर् + दिश् + क्त। आरुह्य—आ + रुह् + क्त्वा + ल्यप्। प्रविष्टौ—प्र + विश् + क्त (द्वि० व०)। भुक्त्वा—भुज् + क्त्वा। पीत्वा—पा + क्त्वा। चर्वयन्तौ—चर्व + शतृ (द्वि० व०)। पीड्यमानौ—पीड् + यक् (भावकर्म) + शानच् (द्वि० व०) साधुताम्—साधु + तल् + टाप्। प्रशंसमानौ—प्र + शंस् + शानच् (द्वि० व०)। अशयिष्वहि—शीङ् + लुङ् (उ० पु० द्वि० व०)। लब्धः—लभ् + क्त।

शब्दार्थ—आवाम् = हम दोनों (गौरसिंह और श्यामसिंह), तन्निर्दिष्टेन = उसके द्वारा बताये हुए, सोपानेन = सीढ़ी से, अट्टालिकाम् = अटारी पर, आरुह्य = चढ़कर, प्रविष्टौ = प्रवेश कर गये, राजकुमारयोग्याम् = राजकुमारों के योग्य, पर्यङ्कादिसामग्रीम् = पलङ्ग आदि सामग्री को, नितान्तचकितौ = अत्यन्त आश्चर्ययुक्त, अभूव = हुए, तत्प्रदत्तम् = उनके द्वारा दिये हुए, मोदकादि = लड्डू आदि, भुक्त्वा = खाकर, पीत्वा = पीकर, चर्वयन्तौ = चबाते हुए, पीड्यमानौ = दबाये जाते हुए, स्वभाग्योदयसोपानम् = अपने भाग्योदय की सीढ़ी को, साधोः = साधु की, साधुताम् = सज्जनता को, मनसि एव = मन में

ही, प्रशंसमानौ = प्रशंसा करते हुए, अशयिष्वहि = सो गये, चिरकालानन्तरम् = बहुत दिन बाद, निःशङ्कशयनसमयः = निश्चिन्त होकर सोने का अवसर, लब्धः = प्राप्त हुआ, इति = इसलिए, एकया एव = एक ही, आनन्दमय्या = आनन्दमयी, वितर्कविचारादिसम्पर्कशून्यया = किसी प्रकार के सोच-विचारादि से रहित, असम्प्रज्ञातसमाधिसोदरया = असम्प्रज्ञात समाधि के समान, निद्रया = निद्रा द्वारा, समस्ताम् = सम्पूर्ण, रजनीम् = रात्रि को, अजीगमाव = व्यतीत कर दिये।

हिन्दी—हम दोनों उस साधु द्वारा निर्दिष्ट सीढ़ियों से अट्टालिका पर चढ़कर एक घर में प्रविष्ट हुए और वहाँ राजकुमारों के योग्य पलङ्ग आदि सामग्री को देखकर नितान्त चकित और प्रसन्न हुए। इसके अनन्तर पुजारी द्वारा दिये गये लड्डू आदि खाकर, जल पीकर, पान चबाते हुए, सेवकों के द्वारा पाँव दबाये जाते हुए, पंखों से हवा किये जाते हुए, अपने भाग्योदय की सीढ़ी तथा साधु की सज्जनता को मन में ही प्रशंसा करते हुए हम दोनों सो गये। बहुत दिनों के बाद हमें निश्चिन्त होकर सोने का अवसर मिला था, अतः हमदोनों ने तर्क-वितर्क रहित आनन्दमयी, असम्प्रज्ञात समाधि के समान निद्रा में सम्पूर्ण रात्रि व्यतीत कर दिया ॥ २६ ॥

ततः केनापि धमद्धमद्ध्वनिनेव बोधितौ, दक्षतो वामतश्च परिवृत्य, चक्षुषी परिमृज्य, साङ्गुलि-ग्रथन-हस्त-प्रसारणं सस्नायु-पीडनं च विजृम्भ्य, भूमिं प्रणम्य, पर्यङ्कादुत्तीर्य, कोष्ठाद् बहिरागत्य, साञ्जलि मारुति-ध्वजमवलोक्य, करतले निरीक्ष्य, भित्तिकावलम्बित-मुकुरेष्वात्मानं साक्षात्कृत्य, भगवन्नामानि जपन्तौ, कांश्चित् प्रातःस्मरण-श्लोकांश्च रटन्तौ, परस्परं "सुखमावामस्वाप्स्व, प्रसन्नं नौ चेतः" इति शनैरालपन्तौ च, तस्मिन्नेव मन्दिरस्योर्ध्वे खण्डे शतपदीमकरवाव। तावदश्रूयत स एव बहुलीभूतो ध्वनिः।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, केनापि = अज्ञातेनापि, धमद्धमद्ध्वनिनेव = धमधमेतिशब्देनेव, बोधितौ = जागरितौ, दक्षतः = दक्षिणतः, वामतः = दक्षिणेतरतः, परिवृत्य = परिवर्तनं विधाय, चक्षुषी = नयने, परिमृज्य = उपस्पृश्य, साङ्गुलिग्रथनहस्तप्रसारणम्—उभयोः हस्तयोः अङ्गुलीनां परस्परमेलनपूर्वकं हस्तप्रसारणं सम्पाद्य, सस्नायुपीडनम् = सस्नायुस्फालनं, च, विजृम्भ्य =

जृम्भणं कृत्वा, भूमिम्=पृथ्वीम्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, पर्यङ्कात्=शयनात्, उत्तीर्य=भूमौ स्थित्वा, कोष्ठात्=भवनकक्षात्, बहिः, आगत्य=आगमनं विधाय, साञ्जलिः=बद्धकराञ्जलिः, मारुतिध्वजम्=हनुमद्ध्वजम्, अवलोक्य=वीक्ष्य,करतले=हस्ताग्रो, निरीक्ष्य=सम्यग् दृष्ट्वा, भित्तिकावलम्बितमुकुरेषु=कुड्यावलम्बितदर्पणेषु, आत्मानम्=स्वम्, साक्षात्कृत्य=अवलोक्य, भगवन्नामानि=ईश्वराभिधानानि, जपन्तौ=स्मरन्तौ, कांश्चित्प्रातःस्मरणश्लोकान्=प्रभातकाले पठनीयस्तोत्राणि, च, रटन्तौ=संस्मरन्तौ, परस्परम्=मिथः, सुखम्=सुखपूर्वकम्, आवाम्=गौरसिंहश्यामसिंहौ, अस्वाप्स्व=अशयिष्वहि, प्रसन्नम्=सोत्साहम्, नौ=आवयोः, चेतः=मनः, इति=एवम्, शनैः=मन्दम्, आलपन्तौ=वार्तां कुर्वन्तौ, च, तस्मिन् एव=पूर्वनिगदिते एव, मन्दिरस्य=देवालयस्य, ऊर्ध्वे खण्डे=ऊर्ध्वभागे, शतपदीम्=इतस्ततः भ्रमणम्, अकरवाव=अकुर्व, तावद्=तत्क्षणमेव, अश्रूयत=श्रुतः, स एव=पूर्वोक्त एव, बहुलीभूतः=घनीभूतः, ध्वनिः=शब्दः ।

समासः—अङ्गुलीनां ग्रथनम् अङ्गुलिग्रथनम्, तेन सहितम्, हस्तयोः प्रसारणमिति साङ्गुलिग्रथनहस्तप्रसारणम् । अञ्जलिना सहितः साञ्जलिः । भित्तिकायाम् अवलम्बिताः मुकुरास्तेषु भित्तिकावलम्बितमुकुरेषु ।

व्याकरणम्—बोधितौ—बुध्+णि+क्त (द्वि० व०)। परिवृत्य—परि+वृत्+क्त्वा+ल्यप् । परिमृज्य–परि+मृज्+क्त्वा+ल्यप् । प्रसारणम्—प्र+सृ+णिच्+ल्युट् । विजृम्भ्य—वि+जृम्भ+क्त्वा+ल्यप् । प्रणम्य—प्र+नम्+क्त्वा+ल्यप् । उत्तीर्य—उत्+तॄ+क्त्वा+ल्यप् । निरीक्ष्य—निर्+ईक्ष्+क्त्वा+ल्यप् । जपन्तौ—जप्+शतृ (द्वि० व०)। रटन्तौ—रट्+शतृ (द्वि० व०)। आलपन्तौ—आ+लप्+शतृ (द्वि० व०) अश्रूयत—श्रु+यक् (भावकर्म)+लङ् । बहुलीभूतः—बहुल+च्वि+भू+क्त ।

शब्दार्थ—धमद्धमद्ध्वनिनेव=धम-धम ध्वनि से, बोधितौ=जगा दिये गये, दक्षतः=दायें ओर, वामतः=बायें ओर, परिवृत्य=करवटें लेकर, चक्षुषी नेत्रों को, परिमृज्य=मलकर (पोंछकर), साङ्गुलिग्रथनहस्तप्रसारणम्=परस्पर गुंथी हुई अँगुलियों वाले हाथों को फैलाते हुए, सस्नायुपीडनम्=नसों को तोड़ते हुए, विजृम्भ्य=जँभाई लेकर, प्रणम्य=प्रणाम करके, पर्यङ्कात्=पलंग से, उत्तीर्य=उतर कर, कोष्ठात्=कमरे से, आगत्य=आकर, साञ्जलि=हाथ जोड़े हुए, मारुतिध्वजम्=हनुमान्जी की ध्वजा को, अवलोक्य=देखकर,

करतले=हथेलियों को, निरीक्ष्य=देखकर, भित्तिकावलम्बितमुकुरेषु=दीवार में लटकते हुए शीशों में, आत्मानम्=अपने को, साक्षात्कृत्य=देखकर, भगवन्नामानि=भगवान् के नामों को, जपन्तौ=जपते हुए, कांश्चित्=कुछ, प्रातःस्मरणश्लोकान्=प्रातःकाल स्मरण करने योग्य श्लोकों को, रटन्तौ=रटते (याद करते) हुए, सुखम्=सुखपूर्वक, अस्वाप्स्व=सोए, शनैः=धीरे-धीरे, आलपन्तौ=बात-चीत करते हुए, ऊर्ध्वे खण्डे=ऊपरी भाग पर, शतपदीम्=भ्रमण, अकरवाव=करने लगे, अश्रूयत=सुनाई पड़ी, बहुलीभूतः=वृद्धि को प्राप्त हुई, ध्वनिः=आवाज या शब्द।

हिन्दी—तदनन्तर किसी के धम-धम ध्वनि से हम दोनों जाग गये। पुनः दायें-बायें करवट लेकर, आँखें मलकर, अँगुलियों को परस्पर मिलाते हुए हाथों को फैलाकर और नसों को तानकर, जँभाई लेकर, पृथ्वी को प्रणाम करके, पलंग से उतरकर, कमरे से बाहर आकर, हाथ जोड़े हुए हनुमान्जी के झण्डे को देखकर, हथेलियों का दर्शन कर, दीवारों में लगे शीशों में अपना प्रतिबिम्ब अवलोकित कर, भगवान् के नाम का जप करते हुए, कुछ प्रातःस्मरणीय श्लोकों को रटते हुए तथा परस्पर—'हम दोनों सुखपूर्वक सोये, हम दोनों प्रसन्नचित्त हैं'। इस प्रकार धीरे-धीरे वार्तालाप करते हुए उसी मन्दिर के ऊपरी भाग पर भ्रमण करने लगे। तब तक वहीं जोरों से आवाज सुनाई पड़ी ॥ २७ ॥

ततो गवाक्षतो निकुब्जीभूय दृष्टं यत् पञ्चषाः साधवो वस्त्र-वेष्टित-मस्तकाः समीप-स्थापित-जलपूर्ण-पात्राः पाषाण-खण्डैर्दन्तधावन-मुखं मृदूकरणाय कुट्टन्ति। अवलोकितं च यदस्मिन्नपि समये शर्वरी-तमांसि नाऽम्बरं साकल्येन जहति। स्वच्छाऽपि प्राची नाऽधुनाऽप्यरुणि-मानमङ्गीकरोति। विराव-बहुलान्यपि वयांसि न सम्प्रत्यपि विहाय नीडाधिष्ठान-कुटानुड्डीयन्ते। गिरि-ग्रामटिका-गृहेभ्यो व्यावर्तमाना अपि विटपिनो न स्वफल-पुष्प-पत्राऽऽकार-परिचय-प्रदानैर्जातीः प्रकटयन्ति। उत्तरोत्तरतस्तार-तार-तरै रुतै रतार्त्तिमीरयन्त्यपि तरुण-तित्तिरी न तरोरवतरति। आलोकाऽऽलोक-कृत-किञ्चिच्छोकमोकोऽपि च कोको न वराकीं कोकीमुपसर्पति।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, गवाक्षतः=वायुप्रवेशमार्गतः, निकुब्जीभूय=न्युब्जीभूय, दृष्टम्=वीक्षितम्, यत्, पञ्चषा=पञ्च षड् वा, साधवः=महात्मानः,

वस्त्रवेष्टितमस्तकाः = परावृतशिरस्काः, समीपस्थापितजलपूर्णपात्राः = निकट-निक्षिप्तसलिलसमन्वितभाण्डाः, पाषाणखण्डैः = अश्मभिः, दन्तधावनमुखम् = दन्तमार्जनिकाग्रम्, मृदूकरणाय = कोमलीकरणाय, कुट्टन्ति = पुनः-पुनः प्रहरन्ति । अवलोकितं = दृष्टं, च यत्, अस्मिन्नपि समये = एतत्कालेऽपि, शर्वरीतमांसि = निशान्धकाराः, अम्बरम् = आकाशम्, साकल्येन = सम्यक्तया, न = नहि, जहति = त्यजन्ति, स्वच्छाऽपि = शुचिरपि, प्राची = पूर्वादिक्, न = नहि, अधुनापि = साम्प्रतमपि, अरुणिमानम् = रक्ताम्, अङ्गीकरोति = स्वीकरोति, विरावबहुलानि = बहुकलरववन्ति, अपि, वयांसि = पक्षिणः, न = नहि, साम्प्रतम् = इदानीम्, अपि, विहाय = परित्यज्य, नीडाधिष्ठानकुटान् = कुलायाश्रयवृक्षान्, उड्डीयन्ते = उत्पतन्ति । गिरिग्रामटिकागृहेभ्यः = पर्वतीयलघुग्रामगृहेभ्यः, व्यावर्तमानाः = भिन्नत्वेन प्रतीयमानाः, अपि, विटपिनः = वृक्षाः, न = नहि, स्वफलपुष्पपत्राकारपरिचयप्रदानैः = निजप्रसवप्रसूनरूपज्ञानप्रदानैः, जातीः = स्पष्टस्वरूपान्, प्रकटयन्ति=प्रकटीकुर्वन्ति । उत्तरोत्तरतः = अधिकादधिकम्, तारतारतरैः = अत्युच्चैः, रुतैः = शब्दैः, रतार्तिम् = कामपीडाम्, ईरयन्ती = व्यञ्जयती, अपि, अरुणतित्तिरी = युवती तित्तिरपत्नी, न = नहि, तरोः = वृक्षात्, अवतरति = नीचैरागच्छति । आलोकालोककृतकिञ्चिच्छोकमोकः = प्रकाशदर्शनविहितकिञ्चिद्दुःखभोक्षणः, अपि च, कोकः = चक्रवाकः, न = नहि, वराकीम् = दीनाम्, कोकीम् = चक्रवाकीम्, उपसर्पति = उपयाति ।

समासः—गोः अक्षि इव गवाक्षः, तस्मात् गवाक्षतः । निःशेषेण अकुब्जः कुब्जः इव भूत्वा इति निकुब्जीभूय । वस्त्रेण वेष्टितानि मस्तकानि येषां ते वस्त्रवेष्टितमस्तकाः । समीपे स्थापितानि जलेन पूर्णानि पात्राणि येषां ते समीपस्थापितजलपूर्णपात्राः । अमृदुः मृदुः क्रियते अस्मिन् तत् मृदूकरणम्, तस्मै मृदूकरणाय । शर्वर्याः तमांसि शर्वरीतमांसि । सकलस्य भावः साकल्यम्, तेन साकल्येन । विरावाणां बहुलाः येषु तानि विरावबहुलानि । नीडानाम् अधिष्ठानानि ये कुटाः, तान् नीडाधिष्ठानकुटान् । गिरिषु याः ग्रामटिकाः, तासां गृहेभ्यः गिरिग्रामटिकागृहेभ्यः । स्वस्य फलानि च पुष्पाणि पत्राणि च, तेषाम् आकारस्य परिचयः, तस्य प्रदानैः इति स्वफलपुष्पपत्राकारपरिचयप्रदानैः । उत्तरादुत्तरम्, तस्मात् उत्तरोत्तरतः । ताराश्च तारतराश्च, तैः तारतारतरैः । आलोकस्य आलोकेन कृतः किञ्चिच्छोकस्य मोकः येन सः आलोकालोककृतकिञ्चिच्छोकमोकः ।

व्याकरणम्—गवाक्षतः—गवाक्ष + तस्। निकुब्जीभूय—नि + कुब्ज + च्वि + भू + ल्यप्। दृष्टम्—दृश् + क्त। मृदूकरणाय—मृदु + ऊङ् + कृ + ल्युट् (अन्) + चतुर्थी। अवलोकितम्—अव + लोक् + क्त। साकल्येन—सकल + ष्यञ्। अङ्गीकरोति—अङ्ग + च्वि + कृ + लट्। विहाय—वि + ओहाक् त्यागे + ल्यप्। व्यावर्तमानाः—वि + आ + वृत् + शानच्। विटपिनः—विटप (शाखा) + इनि। ईरयन्ती—ई + शतृ (ङीप्)।

शब्दार्थ—गवाक्षतः = खिड़की से, निकुब्जीभूय = झुककर, पञ्चषाः = पाँच-छः, वस्त्रवेष्टितमस्तकाः = मस्तक पर कपड़ा लपेटे हुए, समीपस्थापितजलपूर्णपात्राः = समीप में रखा है जल से पूर्ण पात्र जिनके, पाषाणखण्डैः = पत्थर के टुकड़ों से, दन्तधावनमुखम् = दातून के अग्रभाग को, मृदूकरणाय = कोमल बनाने के लिए, कुट्टन्ति = कूट रहे हैं, अवलोकितम् = देखा, शर्वरीतमांसि = रात्रि के अन्धेरे ने, अम्बरम् = आकाश को, साकल्येन = पूर्णरूप से, न जहाति = नहीं छोड़ते हैं, प्राची = पूर्व दिशा, अरुणिमानम् = लालिमा को, अङ्गीकरोति = धारण कर रही है, विरावबहुलानि = बहुत अधिक शब्द करने वाले, वयांसि = पक्षी, विहाय = छोड़कर, नीडाधिष्ठानकुटान् = घोसलों से युक्त वृक्षों को, उड्डीयन्ते = उड़ रहे हैं, गिरिग्रामटिकागृहेभ्यः = पर्वतों, छोटे गाँवों और घरों से, व्यावर्तमानाः = अलग दिखाई पड़ने वाले, विटपिनः = वृक्ष, स्वफलपुष्पपत्राकारपरिचयप्रदानैः = अपने फल, फूल और पत्तों के आकार का परिचय देने के कारण, जातीः = जाति को, प्रकटयन्ति = प्रकट कर रहे हैं, उत्तरोत्तरतः = क्रमशः, तारतारतरैः = अधिक तेज, रुतैः = शब्दों से, रतार्तिम् = कामपीड़ा को, ईरयन्ती = व्यक्त करती हुई, तरुणतित्तिरी = तित्तिर युवती, तरोः = वृक्ष से, न = नहीं, अवतरति = उतर रही है, आलोकालोककृतकिञ्चिच्छोकमोकः = प्रकाश को देखने से शोक को कुछ कम कर देने वाला, कोकः = चकवा, वराकीम् = बेचारी, कोकीम् = चकवी के पास, न उपसर्पति = नहीं जा रहा है।

हिन्दी—तदनन्तर मैंने झुककर खिड़की से देखा कि वस्त्र से शिर को लपेटे हुए तथा सन्निकट में जल से भरे हुए पात्रों को रखे हुए पाँच-छः साधु दन्तधावन के अग्रभाग को कोमल बनाने के लिए पत्थर के टुकड़ों से कूट रहे हैं। हमने देखा कि अभी रात्रि के अन्धेरे ने आकाश को पूरी तरह नहीं छोड़ा है। स्वच्छ होती हुई भी प्राची (पूर्व) दिशा ने अरुणिमा (लालिमा) को अङ्गीकार नहीं किया है। बहुत शब्द करने वाले भी पक्षी अभी अपने घोसले

वाले वृक्षों को छोड़कर उड़ नहीं रहे हैं। पहाड़ियों, गाँवों और घरों से भिन्न दिखाई देने वाले भी वृक्ष अपने फल, पुष्प और पत्तों के आकार से अपने जाति का परिचय नहीं दे रहे हैं। उत्तरोत्तर जोर-जोर शब्द करने से अपनी कामवेदना को प्रकट करती हुई भी तरुण तित्तिरी पेड़ से उतर नहीं रही है। प्रकाश को देखकर चकोर ने अपना शोक कुछ कम तो कर दिया, किन्तु बेचारी चकोरी के पास नहीं जा रहा है ॥ २८ ॥

अथेदृशीमेव मनोहारिणीं शोभामवलोकयन्तौ कम्पित-कुन्द-कलापस्य, उन्मीलन्मालती-मुकुल-मकरन्द-चौरस्य पाटलि-पटल-पराग-पुञ्ज-पिञ्जरितस्य शनैः शनैः फरफरायमाण-शुक-पिकादि-पतगोन्मथ्यमानस्य पलाशि-पलाशाग्र-विलुलत्तुषार-कणिकापहरण-शीतलस्य समीरस्य स्पर्शसुखमनुभवन्तौ, तत्रैव पूर्वस्या अट्टालिकाया दक्षिणस्याम्, दक्षिणस्याश्च पश्चिमायाम्, पश्चिमाया अप्युत्तरस्याम्, ततश्च पुनः पूर्वस्यामिति पौनःपुन्येन पर्य्यटन्तौ मुहूर्त्तमयापयाव।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, ईदृशीम् = ईदृग्भूताम्, एव, मनोहारिणीम् = रमणीयाम्, शोभाम् = सुन्दरताम्, अवलोकयन्तौ = पश्यन्तौ, कम्पितकुन्दकलापस्य = आन्दोलितकुन्दव्रातस्य, उन्मीलन्मालतीमुकुलमकरन्दचौरस्य = विकासमभ्यागच्छन्जातीकलिकापुष्परसचौरस्य, पाटलपटलपरागपुञ्जपिञ्जरितस्य = पुष्पविशेषसमूहकेसरव्रातपीतीभूतस्य, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, फरफरायमाणशुकपिकादिपतङ्गोन्मथ्यमानस्य = पक्षास्फोटनकुर्वत्शुकपरभृतादिपक्षविलोड्यमानस्य, पलाशिपलाशाग्रविलुलतुषारकणिकापहरणशीतलस्य = महीरुहपत्रमुखराजतावश्यायसङ्ग्रहजडीभूतस्य, समीरस्य = वायोः, स्पर्शसुखम् = स्पर्शजनितानन्दम्, अनुभवन्तौ = अनुभवं कुर्वन्तौ, तत्रैव = पूर्वस्थाने एव, पूर्वस्याः = प्राच्याः, अट्टालिकायाः = प्रासादस्य, दक्षिणस्यां = दक्षिणदिशायाम्, दक्षिणस्याः = एतद्दिशः, च, पश्चिमायाम् = वारुण्याम्, पश्चिमायाः = वारुण्याः, अपि, उत्तरस्याम् = कौवेर्याम्, ततश्च, पुनः = भूयः, पूर्वस्याम् = ऐन्द्र्याम्, इति = एवम्प्रकारेण, पौनःपुन्येन = वारं-वारम्, पर्यटन्तौ = भ्रमन्तौ, मुहूर्तम् = किञ्चित् कालम्, अयापयाव = अजीगमाव।

समासः—कम्पितः कुन्दानां कलापः येन, तस्य कम्पितकुन्दकलापस्य। उन्मीलन्तीनां मालतीनां मुकुलानि, तेषां मकरन्दस्य चौरस्तस्य उन्मीलन्मालतीमुकुलमकरन्दचौरस्य। पाटलानां पटलं, तस्य परागाः, तेषां पुञ्जेन

पिञ्जरितः, तस्य पाटलपटलपरागपुञ्जपिञ्जरितस्य। फरफरायमाणानां शुकपिकादीनां पतत्रैः उन्मथ्यमानस्तस्य फरफरायमाणशुकपिकादिपतगोन्मथ्यमानस्य। पलाशिनां ये पलाशाः, तेषाम् अग्रेषु विलुलन्त्यः याः तुषारकणिकाः, तासाम् अपहरणेन शीतलः, तस्य पलाशिपलाशाग्रविलुलतुषारकणिकापहरणशीतलस्य।

व्याकरणम्—उन्मीलत्—उत्+मील्+शतृ। उन्मथ्यमान—उद्+मथ्+यक्+शानच्। पलाशी—पलाशाः सन्ति अस्य इति पलाशिन्; पलाश+इनि। विलुलत्—वि+लोल+शतृ। अपहरण—अप्+हृ+ल्युट्। अनुभवन्तौ—अनु+भू+शतृ (द्वि० व०)।

शब्दार्थ—अथ=अनन्तर, ईदृशीमेव=इसी प्रकार की, मनोहारिणीम्=मन को हरने वाली, कम्पितकुन्दकलापस्य=कुन्द-समूह को प्रकम्पित करने वाले, उन्मीलन्मालतीमुकुलमकरन्दचोरस्य=खिलती हुई मालती की कली के पराग को चुराने वाले, पाटलपटलपरागपुञ्जपिञ्जरितस्य=गुलाबों के पराग की ढेर से पीले पड़े हुए, फरफरायमाणशुकपिकादिपतगोन्मथ्यमानस्य=फड़फड़ाते हुए तोता-कोयल आदि पक्षियों के पंखों से उन्मथित, पलाशिपलाशाग्रविलुल-तुषारकणिकापहरणशीतलस्य=वृक्षों के पत्तों के आगे हिलती हुई तुषार की बूंदों का अपहरण करने के कारण शीतल, स्पर्शसुखम्=स्पर्शजनित सुख को, अनुभवन्तौ=अनुभव करते हुए, पूर्वस्याः=पूर्व की, अट्टालिकायाः=अटारी के, दक्षिणस्याम्=दक्षिण दिशा में, दक्षिणस्याः पश्चिमायाम्=दक्षिण अटारी से पश्चिम दिशा में, पश्चिमाया अप्युत्तरस्याम्=पश्चिम अटारी से भी उत्तर की ओर, ततश्च पुनः पूर्वस्याम्=फिर पूर्व की ओर, इति पौनःपुन्येन=इस प्रकार बार-बार, पर्य्यटन्तौ=घूमते हुए, मुहूर्त्तम्=कुछ समय, अयापयाव=व्यतीत किये।

हिन्दी—इसके अनन्तर हम दोनों इस प्रकार की मनोहारिणी शोभा को देखते हुए तथा कुन्द कुसुमों को कँपाने वाली, खिलती हुई मालती की कली के पराग को चुराने वाली, गुलाबों के पराग से पीली पड़ी हुई, धीरे-धीरे पंख फड़फड़ाने वाले शुक-पिकादि पक्षियों से मथी जाने वाली (विलोडित) तथा पेड़ों के पत्तों के अग्रभाग पर (स्थित, अतएव) हिलाती हुई ओस की बूंदों का अपहरण करने से शीतल वायु के स्पर्श से अमित सुख का अनुभव करते हुए वहीं पर अट्टालिका के पूरब से दक्षिण में, दक्षिण से पश्चिम में, पश्चिम

से भी उत्तर में और पुनः उत्तर से पूर्व में—इस प्रकार पुनः-पुनः टहलते हुए हम दोनों ने कुछ समय व्यतीत किया ॥ २९ ॥

तस्मिन्नेव समये एकेन ब्रह्मचारिबटुनाऽऽगत्य निवेदितं यत्—"सपदि प्रभात-क्रिया निर्वहणीयेत्याऽऽदिशति तत्रभवान् साधु-शिरोमणिः" तदाकर्ण्य, बाढमित्यङ्गीकृत्य, षष्टिसहस्र-वालखिल्य-कषाय-वसन-विधूतायामिव, मन्देह-देश-शोणित-शोणितायामिव, अरुणाऽरुणिम-रञ्जितायामिव, मोमुद्यमान-नरीनृत्यमान-परस्कोटि-ताम्रचूड-चूडा-प्रतिबिम्ब-संवलितायामिव, पोस्फुटयमान-स्वर्गङ्गा-कोकनद-पटल-व्याप्तायामिव, भक्तजन-भक्ति-प्रभाव-भाविताऽऽविर्भाव-च्छिन्न-मस्ता-कन्धरोच्छल-च्छोणित-स्नातायामिव, वसन्तोत्सवोच्छालित-सिन्दूरान्धकारान्धीकृतायामिव, तातप्यमान-ताम्रद्युति-चौरायां प्राच्याम्, तत्प्रभया शोण-शोणैः सोपानैरवतीर्य, मारुतिमन्दिरद्वारि मस्तक-मवनमय्य, झटित्येव स्नान-पूर्वाः क्रियाः समाप्य, तेनैव ब्रह्मचारिवटुना निर्दिश्यमान-मार्गौ, पूर्वाऽवलोकित-वेशन्तादारादेव पश्चिमतः किञ्चिदमृतोदं नाम महासरः समासादितवन्तौ ।

व्याख्या—तस्मिन्नेव समये=तत्काले एव, एकेन, ब्रह्मचारिबटुना=ब्रह्मचारिशिष्येण, आगत्य=सम्प्राप्य, निवेदितम्=निगदितम्, यत्, सपदि=सद्य एव, प्रभातक्रिया=प्रातःकालिकी क्रिया, निर्वहणीया=सम्पादनीया, इति=एवम्, आदिशति=आज्ञां ददाति, तत्रभवान्=पूज्यः, साधुशिरोमणिः=साधुश्रेष्ठः, तदाकर्ण्य=तच्छ्रुत्वा, वाढम्=आम् (शोभनम्), इत्यङ्गीकृत्य=एवम्प्रकारेण स्वीकृत्य, षष्टिसहस्रवालखिल्यकषायवसनविधूतायामिव=षष्टि-सहस्रवालखिल्यगैरिकवसनोत्कम्पितायामिव, मन्देहदेहशोणितायाम्=मन्देहाख्य-राक्षसदेहरक्तरञ्जितायाम्, इव, अरुणाऽरुणिमरञ्जितायामिव=सूर्यसारथि-रागव्याप्तायामिव, रक्तरागव्याप्तायामिव वा, मोमुद्यमाननरीनृत्यमानपरस्कोटि-ताम्रचूडचूडाप्रतिबिम्बसंवलितायामिव=परमहर्षमधिगच्छद्भृशंनृत्यत्कोट्यधिक-कुक्कुटशिखाछटाप्रावृतायामिव, पोस्फुटयमानस्वर्गङ्गाकोकनदपटलव्याप्ताया-मिव=विकासमानमन्दाकिनीरक्तोत्पलव्रातच्छन्नायामिव, भक्तजनभक्तिप्रभाव-भाविताऽऽविर्भावच्छिन्नमस्ताकन्धरोच्छलच्छोणितस्नातायामिव=आराधकाऽऽरा-धनप्रतापजनितप्रादुर्भावतान्त्रिकीदेवताग्रीवोद्गच्छद्रक्तव्याप्तायामिव, वसन्तो-

त्सवोच्छालितसिन्दूरान्धकारान्धीकृतायामिव = होलिकोत्सवोत्फालितसिन्दूरतम-सान्द्रीकृतायामिव, तातप्यमानताम्रद्युतिचौरायाम् = सुतप्तताम्रकान्तिरपहर्त्र्याम्, प्राच्याम् = पूर्वस्याम्, तत्प्रभया = तच्छायया, शोणशोणैः = रक्तरञ्जितैः, सोपानैः, अवतीर्य = अधो गत्वा, मारुतिमन्दिरद्वारि = हनूमन्मन्दिरद्वारि, मस्तकम् = शिरः, अवनमय्य=नमयित्वा, झटिति एव = सद्य एव, स्नानपूर्वाः = मज्जनपूर्वाः, क्रियाः = कार्याणि, समाप्य = सम्पाद्य, तेनैव = पूर्वोक्तेनैव, ब्रह्म-चारिबटुना = शिष्येण, निर्दिश्यमानमार्गौ = उपदिश्यमानमार्गौ, पूर्वाऽवलोकित-वेशन्ताद् = पूर्वदृष्टलघुसरसः, आरादेव = निकटे एव, पश्चिमतः = वारुणीतः, किञ्चिद् = किमपि, अमृतोदं नाम = एतन्नामकम्, महासरः = बृहज्जलाशयम्, समासादितवन्तौ = प्राप्तवन्तौ ।

समासः—शिरसः मणिः शिरोमणिः, साधुषु शिरोमणिः साधुशिरोमणिः । षष्टिसहस्राणां वालखिल्यानां कषायवसनैः विधूतायाम् इति षष्टिसहस्रवाल-खिल्यकषायवसनविधूतायाम् । मन्देहानां देहस्य शोणितेन शोणितायां मन्देह-देहशोणितशोणितायाम् । अरुणस्य अरुणिमया रञ्जितायाम् अरुणारुणिमरञ्जि-तायाम् । मोमुद्यमानानां नरीनृत्यमानानाञ्च परस्कोटीनां ताम्रचूडानां याः चूडाः, तासां प्रतिबिम्बैः संवलितायाम् इति मोमुद्यमाननरीनृत्यमान-परःकोटि-ताम्रचूडचूडाप्रतिबिम्बसंवलितायाम्, पोस्फुटयमानाः स्वर्गङ्गायां ये कोकनदाः, तेषां पटलेन व्याप्तायां पोस्फुटयमानस्वर्गङ्गाकोकनदपटलव्याप्तायाम् । भक्त-जनानां भक्तेः प्रभावेण भावितः आविर्भावः यया सा चासौ छिन्नमस्ता, तस्याः कन्धरायाः उच्छलता शोणितेन स्नातायां भक्तजनभक्तिप्रभावभाविताविर्भा-वच्छिन्नमस्ताकन्धरोच्छलच्छोणितस्नातायाम् । वसन्तोत्सवे उच्छालिताः सिन्दूराः, तेषाम् अन्धकारैः अन्धीकृतायां वसन्तोत्सवोच्छालितसिन्दूरान्ध-कारान्धीकृतायाम् । तातप्यमानः ताम्रस्तस्य द्युतेः चौरायां तातप्यमानताम्र-द्युतिचौरायाम् । शोणमिव शोणाः, तैः शोणशोणैः । मारुतेः मन्दिरस्य द्वारि मारुतिमन्दिरद्वारि । निर्दिश्यमानः मार्गः ययोः तौ निर्दिश्यमानमार्गौ । पूर्वम् अवलोकितः यः वेशन्तः, तस्मात् पूर्वावलोकितवेशन्तात् ।

व्याकरणम्—निर्वहणीया—निर् + वह् + अनीयर् (टाप्) । आकर्ण्य—आ + कर्ण + क्त्वा + ल्यप् । अङ्गीकृत्य—अङ्ग + च्वि + कृ + तुक् + ल्यप् । विधूतायाम्—वि + धूञ् + क्त (टाप्) (स० ए० व०) । मोमुद्यमान—मुद् (यङ्) + शानच् । नरीनृत्यमान—नृत् (यङ्) + शानच् । पोस्फुट्य-

मान—स्फुट विकसने+यङ्+शानच्। उच्छालित—उत्+चल्+णिच्+क्त। तातप्यमान—तप्+यङ्+शानच्। अवतीर्य—अव+तॄ+क्त्वा+ल्यप्। अवनम्य—अव+नम्+क्त्वा+ल्यप्। निर्दिश्यमान—निर्+दिश्+शानच्। समासादितवन्तौ—सम्+आ+सद्+क्तवतु (द्वि० व०)।

शब्दार्थ—तस्मिन्नेव समये=उसी समय, ब्रह्मचारिबटुना=ब्रह्मचारी बालक ने, निगदितम्=कहा, सपदि=तुरन्त ही, प्रभातक्रिया=प्रातःकालीन नित्यकर्मादि, निर्वहणीया=सम्पादित करना है, आदिशति=आदेश दे रहे हैं, तत्रभवान्=पूज्य, साधुशिरोमणिः=साधुओं में श्रेष्ठ, तत् आकर्ण्य=यह सुनकर, बाढम्=अच्छा, अङ्गीकृत्य=स्वीकार करके, षष्टिसहस्रवालखिल्य-कषायवसनविधूतायाम्=साठ हजार वालखिल्यों के कषाय वस्त्रों से उड़ाई हुई, इव=जैसी, मन्देहदेहशोणितशोणितायाम्=मन्देह नामक राक्षसों के शरीर के रक्त से रञ्जित जैसी, अरुणारुणिमरञ्जितायाम् इव=अरुण की लालिमा से लाल हुई जैसी, मोमुद्यमाननरीनृत्यमानपरःकोटिताम्रचूडचूडा-प्रतिबिम्बसंवलितायामिव=प्रसन्न होकर नाचने वाले करोड़ों मुर्गों की कलंगियों के प्रतिबिम्ब से प्रतिबिम्बित हुई-सी, पोस्फुट्यमानस्वर्गङ्गाकोकनदपटलव्याप्ता-यामिव=खिलते हुए आकाशगङ्गा के लाल कमलों के समूहों से व्याप्त हुई जैसी, भक्तजनभक्तिप्रभावभाविताविर्भावच्छिन्नमस्ताकन्धरोच्छलच्छोणितस्ना-तायामिव=भक्तों की भक्ति के प्रभाव से प्रकट हुई छिन्नमस्ता की ग्रीवा से निकलते हुए रक्त से नहाई हुई जैसी, वसन्तोत्सवोच्छालितसिन्दूरान्धकारान्धी-कृतायामिव=होलिकोत्सव में उड़ाये गये गुलाल के अन्धकार से अन्धी हुई जैसी, तातप्यमानताम्रद्युतिचौरायाम्=तपे हुए ताँबे की कान्ति का हरण करने वाली, तत्प्रभया=उसकी प्रभा से, शोणशोणैः=रक्त-सदृश लाल, अवतीर्य=उतर कर, मारुतिमन्दिरद्वारि=हनुमान्‌जी के मन्दिर के द्वार पर, मस्तकमवन-मय्य=शिर झुकाकर, झटिति=शीघ्र, स्नानपूर्वाः क्रियाः=स्नानपूर्वक क्रियाओं को, समाप्य=समाप्त करके, निर्दिश्यमानमार्गौ=मार्ग बताये जाते हुए, पूर्वावलोकितवेशन्ताद्=पहले देखे हुए छोटे जलाशय से, आरात् एव=निकट में ही, पश्चिमतः=पश्चिम की ओर, अमृतोदं नाम=अमृतोद नामक, महासरः=बड़ी झील को, समासादितवन्तौ=प्राप्त हुए।

हिन्दी—उसी समय एक ब्रह्मचारी बालक ने आकर कहा कि—'पूज्य महात्माजी आदेश दे रहे हैं, शीघ्र ही नित्य क्रिया से निवृत्त हो जायें'। यह

सुनकर 'ठीक है' ऐसा स्वीकार कर, साठ हजार वालखिल्यों के कषाय-त्रसनों से उत्कम्पित-सी, मन्देह नामक राक्षसों के शरीर के रक्त से रक्त जैसी, अरुण की अरुणिमा से रञ्जित हुई-सी, प्रसन्न होकर नाचते हुए करोड़ों मुर्गों कीं कलंगी के प्रतिविम्बों से प्रतिबिम्बित होती हुई-सी, आकाशगङ्गा में खिलते हुए लाल कमलों से आच्छादित हुई जैसी, भक्तों की भक्ति के प्रभाव से प्रकट हुई छिन्नमस्ता की ग्रीवा से निकल रहे खून से नहाई हुई जैसी, वसन्तोत्सव में उड़ाये गये सिन्दूर के अन्धकार से अन्धी हुई-सी, तपे हुए ताँबे की कान्ति का हरण करने वाली पूर्व दिशा में, उसकी प्रभा से ही लाल-लाल सीढ़ियों से उतर कर; हनुमान्जी के मन्दिर के द्वार पर शिर झुकाकर, शीघ्र ही स्नान के पूर्व की क्रियाएँ सम्पादित करके उसी ब्रह्मचारी बालक के द्वारा बताये हुए मार्ग से पहले देखे हुए तालाब के निकट ही पश्चिम की ओर एक किसी अमृतोद नामक महासरोवर के पास हम दोनों पहुँच गये।

टिप्पणी—इस अनुच्छेद में कवि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगायी है और उसमें अनुप्रास एवं यमक का पुट देकर उत्कृष्ट कल्पना, छायात्मक चित्रण को स्वाभाविकता तथा प्राञ्जलता से अपने रचना-कौशल एवं विद्वत्ता का सुन्दर प्रदर्शन किया है।

वालखिल्य—ब्रह्मा के रोमकूपों से समुत्पन्न अङ्गुष्ठ प्रमाण आकृति वाले साठ हजार ऋषि, जो उदय होते भगवान् भास्कर को प्रतिदिन एक साथ अर्घ्य देते हैं।

मन्देह—ये राक्षस हैं, जो प्रतिदिन सूर्य को उदय होने से रोकना चाहते हैं, किन्तु वालखिल्यों के अर्घोदक से इनका प्रभाव क्षीण हो जाता है और ये नष्ट होते रहते हैं।

छिन्नमस्ता—दश महाविद्याओं में एक देवी है, जिसका स्वरूप ऐसा है कि वह अपनी गर्दन काटकर शिर को एक हाथ में उठाई रहती है और गर्दन से निकलती हुई रक्त की धार उस कटे हुए मुँह पर गिरती रहती है॥ ३०॥

तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानाम्, पक्षति-कण्डूति-कषण-चञ्चल-चञ्चुपुटानां मल्लिकाक्षाणाम्, लक्ष्मणा-कण्ठ-स्पर्श-हर्ष-वर्ष-प्रफुल्लाऽङ्गरुहाणां सारसानाम्, भ्रमद्भ्रमर-झङ्कार-भार-विद्रावित-निद्राणां कारण्डवानां च तास्ताः शोभाः पश्यन्तो, तडागतट एव

पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एव मसृण-पाषाण-पट्टिकासु कुशासनानि मृगचर्मासनानि ऊर्णासनानि च विस्तीर्योपविष्टानाम्, गायत्री-जप-पराधीन-दशनवसनानाम्, कलित-ललित-तिलकालकानाम्, दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनां मूर्तिमतामिव ब्रह्मतेजसाम्, साकाराणामिव तपसाम्, धृतावताराणामिव च ब्रह्मचर्य्याणां मुनीनां दर्शनं कुर्वन्तौ, कृतनित्यक्रियं परिपुष्ट-तुलसी-मालिकाऽङ्कित-कण्ठं सिन्दूरोद्ध्र्वपुण्ड्रमण्डित-ललाटं रामचरण-चिह्नमुद्रा-मुद्रित-बाहुदण्ड-वक्षःस्थलं हनूमन्मन्दिराध्यक्षं प्रणतवन्तौ।

व्याख्या—तत्र=सरस्तीरे, वरटाभिः=राजहंसिनीभिः, अनुगम्यमानानाम्=अनुसृतानाम् (राजहंसानाम्=हंसविशेषाणाम्, पक्षतिकण्डूतिकषणचञ्चलचञ्चुपुटानाम्=पक्षकण्डूतिविक्षेपणचञ्चलमुखानाम्, मल्लिकाक्षाणाम्=हंसविशेषाणाम्, लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लाङ्गरुहाणाम्=सारसीकण्ठाश्लेषानन्दवर्षाञ्चिताङ्गरुहाणाम्, सारसानाम्=पक्षिविशेषाणाम्, भ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारविद्रावितनिद्राणाम्=उत्पतन्मधुकरगुञ्जिताधिक्यदूरीकृतस्वापाः, कारण्डवानाम्=पक्षिविशेषाणाम्, च, तास्ताः=एताः समस्ताः, शोभाः=छटाः, पश्यन्तौ=अवलोकयन्तौ, तडागतटे=सरस्तीरे, एव, पम्फुल्यमानानाम्=प्रस्फुटितानाम्, मकरन्दतुन्दिलानाम्=परागसम्पूरितानाम्, इन्दीवराणाम्=नीलकमलानाम्, समीपत एव=पार्श्वत एव, मसृणपाषाणपट्टिकासु=स्निग्धपर्वतशिलासु, कुशासनानि=दर्भासनानि, मृगचर्मासनानि=हरिणत्वगासनानि, ऊर्णासनानि=ऊर्णनिर्मितासनानि, च, विस्तीर्य=आस्तीर्य, उपविष्टानाम्=आसीनानाम्, गायत्रीजपपराधीनदशनवसनानाम्=गायत्रीमन्त्रोच्चारणव्यस्तोष्ठानाम्, कलितललिततिलकालकानाम्=रचितललिततिलकमस्तकानाम्, दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनाम्=कुशविनिर्मितपवित्रीसुशोभितकरजानाम्, मूर्तिमतामिव=शरीरधारिणाम् इव, ब्रह्मतेजसाम्=ब्रह्महसाम्, साकाराणामिव=आकृतिधारिणाम् इव, तपसाम्=तपस्यानाम्, धृतावताराणामिव=अवधृतमनुष्यरूपाणामिव, ब्रह्मचर्याणाम्=सच्चरित्राणाम्, मुनीनाम्=महात्मनाम्, दर्शनम्=अवलोकनम्, कुर्वन्तौ, कृतनित्यक्रियम्=सम्पादितसन्ध्यादिकृत्यम्, परिपुष्टतुलसीमालिकाऽङ्कितकण्ठम्=पीनतुलसीमालया सुशोभितकण्ठम्, सिन्दूरोर्ध्वपुण्ड्रमण्डितललाटम्=ललाटविरचितसिन्दूरोर्ध्वपुण्ड्रीम्,

रामचरणचिह्नमुद्रामुद्रितबाहुदण्डवक्षःस्थलम् = रामपादाङ्काङ्कनचिह्नितम्, हनुमन्मन्दिराध्यक्षम् = मारुतिमन्दिरस्वामिनम्, प्रणतवन्तौ = नमस्कृतवन्तौ।

समासः—पक्षतीनां कण्डूतिः, तस्याः कषणं, तेन चञ्चलाः चञ्चुपुटाः येषां, तेषां पक्षतिकण्डूतिकषणचञ्चलचञ्चुपुटानाम्। लक्ष्मणायाः कण्ठस्य स्पर्शः, तज्जनितः हर्षाणां वर्षः, तेन प्रफुल्लानि अङ्गरुहाणि येषां, तेषां लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लाङ्गरुहाणाम्। भ्रमन्तः ये भ्रमराः, तेषां झङ्काराणां भारः, तेन विद्राविता निद्रा येषां, तेषां भ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारविद्रावितनिद्राणाम्। मकरन्दैः तुन्दिलाः, तेषां मकरन्दतुन्दिलानाम्। मसृणाश्च ताः पाषाणपट्टिकास्तासु मसृणपाषाणपट्टिकासु। गायत्र्याः जपे पराधीनानि दशनवसनानि येषां, तेषां गायत्रीजपपराधीनदशनवसनानाम्। कलितं ललिततिलकम् अलकश्च यैः, तेषां कलितललिततिलकालकानाम्। दर्भाणाम् अङ्गुलीयकं, तैः अलङ्कृता अङ्गुल्यः येषां, तेषां दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनाम्। धृतः अवतारः यैः, तेषां धृतावताराणाम्। कृता नित्यक्रिया येन सः, तं कृतनित्यक्रियम्। परिपुष्टया तुलसीमालिकया अङ्कितः कण्ठः यस्य, तं परिपुष्टतुलसीमालिकाऽङ्कितकण्ठम्। सिन्दूरस्य ऊर्ध्वपुण्ड्रेण मण्डितः ललाटः यस्य, तं सिन्दूरोर्ध्वपुण्ड्रमण्डितललाटम्। रामचरणयोः चिह्नस्य मुद्रया मुद्रितं बाहुदण्डं वक्षःस्थलं च यस्य, तं रामचरणचिह्नमुद्रामुद्रितबाहुदण्डवक्षःस्थलम्।

व्याकरणम्—अनुगम्यमानानाम्—अनु + गम् + यक् + शानच् (ष० ब० व०)। कषण—कष् + ल्युट्। विद्रावित—वि + द्रु + णिच् + क्त। पश्यन्तौ—दृश् (पश्य) + शतृ (प्र० द्वि०)। तुन्दिल—तुन्द + इलच्। विस्तीर्य—वि + स्तॄञ् + क्त्वा + ल्यप्। उपविष्टानाम्—उप + विश् + क्त (ष० ब० व०)। प्रणतवन्तौ—प्र + नम् + क्तवतु (द्विव०)।

शब्दार्थ—तत्र = वहाँ (जलाशय तट पर), वरटाभिः = हंसिनियों के द्वारा, अनुगम्यमानानाम् = पीछा किये जाने वाले, पक्षतिकण्डूतिकषणचञ्चलचञ्चुपुटानाम् = पंखों की खुजली को खुजलाने के कारण चञ्चल चोंचोंवाले, मल्लिकाक्षाणाम् = मल्लिकाक्ष नामक हंसों की, लक्ष्मणाकण्ठस्पर्शहर्षवर्षप्रफुल्लाङ्गरुहाणाम् = हंसिनी के कण्ठ के स्पर्श से उत्पन्न हर्ष से रोमाञ्चित, भ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारविद्रावितनिद्राणाम् = उड़ते हुए भौंरों की झंकार के भार से दूर कर दी गई है निद्रा जिनकी ऐसे, कारण्डवानाम् = कारण्डवों (बत्तखों) की, पश्यन्तौ = देखते हुए, तडागतटे = तालाब के किनारे, पम्फुल्य-

मानानाम् = खिलती हुई, मकरन्दतुन्दिलानाम्=पराग से पूर्ण, इन्दीवराणाम् = नीलकमलों के, समीपत एव = समीप में ही, मसृणपाषाणपट्टिकासु = चिकनी पत्थर की शिलाओं पर, कुशासनानि = कुश से बने आसनों को, मृगचर्मासनानि = मृगचर्म के बने हुए आसनों को, विस्तीर्य = बिछाकर, उपविष्टानाम् = बैठे हुए, गायत्रीजपपराधीनदशनवसनानाम् = गायत्री के जप में लगे हुए हैं ओठ जिनके, कलितललिततिलकालकानाम् = सुन्दर तिलक तथा घुंघराले बालों को धारण किये हुए, दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनाम् = कुशों की पवित्री (अँगूठी) से सुशोभित हैं अंगुलियाँ जिनकी, मूर्तिमताम् इव ब्रह्मतेजसाम् = मूर्तिधारी जैसे ब्रह्मतेजों के, साकाराणामिव तपसाम् = आकारधारी तपस्याओं जैसे, धृतावताराणामिव = अवतार धारण किये हुए के समान, ब्रह्मचर्याणाम् = ब्रह्मचर्यों के, कृतनित्यक्रियम् = नित्य क्रिया को किये हुए, परिपुष्टतुलसीमालिकाङ्कितकण्ठम् = मोटे-मोटे तुलसी की माला से शोभित कण्ठवाले, सिन्दूरोर्ध्वपुण्ड्रमण्डितललाटम् = सिन्दूर के ऊर्ध्वपुण्ड्र से शोभित ललाटवाले, रामचरणचिह्नमुद्रामुद्रितबाहुदण्डवक्षःस्थलम् = राम के चरण-चिह्न की मुद्रा से मुद्रित हैं भुजाएँ एवं वक्षःस्थल जिसके, हनुमन्मन्दिराध्यक्षम् = हनुमान् मन्दिर के अध्यक्ष को, प्रणतवन्तौ = प्रणाम किया।

हिन्दी—वहाँ जलाशय तट पर राजहंसियों के द्वारा अनुगमन किये जाते हुए राजहंसों, पंखों के मूल की खुजली शान्त करने के लिए चञ्चल चोंचों से कुरेदने वाले मल्लिकाक्ष हंसों, सारसियों के कण्ठस्पर्श के आनन्द से रोमाञ्चित सारसों और उड़ते हुए भौंरों की झङ्कार की अधिकता से निद्रा-विरहित हुए कारण्डवों (बत्तखों) की उन-उन शोभाओं को देखते हुए, उस तालाब के किनारे ही प्रफुल्लित एवं पराग से भरे हुए, नीलकमलों के पास ही चिकनी पत्थर की शिलाओं पर कुशासनों, मृगचर्मासनों तथा ऊर्णासनों को बिछाकर समुपविष्ट, गायत्री-जप में लगे हुए ओठों वाले, सुन्दर तिलक लगाये हुए, अँगुलियों में कुश की पवित्री पहने हुए, मूर्तिमान् ब्रह्मतेज, साकार तपस्या और अवतार धारण करके आये ब्रह्मचर्य के समान मुनियों के दर्शन करते हुए हम दोनों ने नित्यक्रिया से निवृत्त हो गये, गले में बड़े मनकों की तुलसी-माला धारण किये, ललाट पर सिन्दूर का ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा श्रीरामचन्द्र के चरणों के चिह्नों से अङ्कित बाहुदण्ड और वक्षःस्थल वाले हनुमान्‌जी के मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम किया ॥ ३१ ॥

तेन चाऽऽज्ञप्तम्—'यद्यायुष्मन्तौ सपदि महाराष्ट्रदेशं जिगमिषथश्चेदचिरेणैव मस्तके सम्मर्द्य एतद् राम-रजः तडागे निमज्जतम्' इत्यवधार्य्य आवां तथैव व्यधिष्वहि ।

तदाज्ञया वस्त्राणि परिधाय च तत्समीपे समुपविश्य, तेन च समन्त्रजपं कुश-जलेनाऽभ्युक्षितौ हनुमदङ्ग-रञ्जित-सिन्दूरेण विहित-तिलकौ स्वकीयौ सैन्धवौ समारुक्ष्व । ततः पञ्चषान् व्यूढ-वयस्कान् जटिलान् सुपरिणाहान् वाहानारूढान् आवाभ्यां सह गन्तुमाज्ञाप्य मन्दिराध्यक्षोऽभाषिष्ट —

व्याख्या - तेन = मन्दिराध्यक्षेण, च = पुनः, आज्ञप्तम् = आदिष्टम्, यदि = चेत्, आयुष्मन्तौ = भवन्तौ, सपदि = शीघ्रमेव, महाराष्ट्रदेशम् = महाराष्ट्राख्यस्थानम्, जिगमिषथः = गन्तुमिच्छथः, चेत् = यदि, अचिरेणैव = क्षिप्रमेव, मस्तके = शिरसि, सम्मर्द्य = संलिप्य, एतद् = इदम्, रामरजः = पीतमृदम्, तडागे = सरसि, निमज्जताम् = स्नानं कुरुताम्, इति = एतद्, अवधार्य्य = अवगम्य, आवाम् = द्वौ भ्रात्रौ, तथैव=तदुपदेशानुसारेणैव, व्यधिष्वहि=अकुर्वं ।

तदाज्ञया = मुनेराज्ञया, वस्त्राणि = वसनानि, परिधाय = धारयित्वा, च = पुनः, तत्समीपे = तस्य पार्श्वे, समुपविश्य = आसनं विधाय, तेन च = मन्दिराध्यक्षेण च, समन्त्रजपम् = मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्, कुशजलेन = दर्भसलिलेन, अभ्युक्षितौ = अभिषिञ्चितौ, हनुमदङ्गरञ्जितसिन्दूरेण = हनूमच्छरीरोपलिप्तसिन्दूरेण, विहिततिलकौ = कृततिलकौ, स्वकीयौ = आत्मीयौ, सैन्धवौ = अश्वौ, समारुक्ष्व = आरूढौ । ततः = तदनन्तरम्, पञ्चषान् = पञ्च षड् वा, व्यूढवयस्कान् = प्रौढान्, जटिलान् = जटाधारिणः, सुपरिणाहान् = परिपुष्टाङ्गान्, वाहान् = हयान्, आरूढान् = समुपविष्टान्, आवाभ्याम् = भ्रातृभ्याम्, सह = साकम्, गन्तुम् = व्रजितुम्, आज्ञाप्य = आदिश्य, मन्दिराध्यक्षः = देवायतनाधीक्षकः, अभाषिष्ट = निगदितवान् ।

समासः—हनुमतः अङ्गे रञ्जितो यः सिन्दूरस्तेन हनुमदङ्गरञ्जितसिन्दूरेण । विहितः तिलकः याभ्याम्, तौ विहिततिलकौ । सिन्धुदेशे भवौ सैन्धवौ ।

व्याकरणम्—आयुष्मन्तौ—आयुष् + मतुप् (द्वि० व०) । जिगमिषथः—गम् + सन् + लट् + थस् । सम्मर्द्य—सम् + मृद् + क्त्वा + ल्यप् । निमज्जताम्—नि + मज्ज + लोट् + थस् । अवधार्य—अव + धृ + णिच् + क्त्वा + ल्यप् । समुपविश्य—सम् + उप + विश् + क्त्वा + ल्यप् । अभ्युक्षितौ—अभि +

उक्ष्+क्त (द्वि० व०)। समारुक्षव—सम्+आ+रुह्+लङ्+वस्। जटिलान्—जटा+इलच् (द्वि० ब० व०)। सुपरिणाहान्—सु+परि+नह्+घञ् (द्वि० ब० व०)। आरूढान्—आ+रुह्+क्त (द्वि० ब० व०)। अभाषिष्ट—भाष्+लुङ्+त।

शब्दार्थ—तेन=उन्होंने, आज्ञप्तम्=आज्ञा दी है, आयुष्मन्तौ=चिरंजीवी तुम दोनों, सपदि=तत्काल, जिगमिषथः=जाना चाहते हो, अचिरेणैव=अतिशीघ्र ही, सम्मर्द्य=लगाकर, रामरजः=पवित्र धूलि को, निमज्जताम्=स्नान करो, अवधार्य=सुनकर, व्यधिष्वहि=किया, तदाज्ञया=उनकी आज्ञा से, परिधाय=पहनकर, समुपविश्य=बैठकर, समन्त्रजपम्=मन्त्रजप के सहित, कुशजलेन=कुश के जल से, अभ्युक्षितौ=अभिषिक्त होकर, हनुमदङ्ग-रञ्जितसिन्दूरेण=हनुमान् के अङ्ग में लगे हुए सिन्दूर से, विहिततिलकौ=तिलक लगाये हुए, स्वकीयौ=अपने, सैन्धवौ=घोड़ों पर, समारुक्षव=सवार हो गये, व्यूढवयस्काम्=प्रौढ़ अवस्था वाले, जटिलान्=जटाधारियों, सुपरि-णाहान्=लम्बे-चौड़े, वाहान्=घोड़ों पर, आरूढान्=चढ़े हुए, आज्ञाप्य=आदेश देकर, अभाषिष्ट=बोले।

हिन्दी—और उन्होंने (मन्दिर के अध्यक्ष ने) आज्ञा दी है कि 'यदि तुम दोनों अभी महाराष्ट्र जाना चाहते हो तो शीघ्र ही इस रामरज को माथे पर लगाकर तालाब में स्नान करो।' यह सुनकर हम दोनों ने वैसा ही किया।

उनकी आज्ञा से वस्त्रों को पहनकर और उन्हीं के पास बैठ गये। उनके द्वारा मन्त्रजाप सहित कुश के जल से अभिषिञ्चित हुए, हनुमान् की मूर्ति के अङ्ग में लगे हुए सिन्दूर से तिलक लगाये और अपने घोड़ों पर सवार हो गये। इसके बाद पाँच-छः वयस्क, जटाधारी, लम्बे-चौड़े घुड़सवारों को हम दोनों के साथ जाने का आदेश देकर मन्दिराध्यक्ष ने कहा—॥ ३२ ॥

'कुमारौ! इतः पुण्यनगर-पर्य्यन्तं प्रतिगव्यूत्यन्तरालं महाव्रता-ऽऽश्रम-परम्पराः सन्ति। सर्वत्र कुटीरेषु संन्यासिनो भक्ता विरक्ताश्च निवसन्ति। कियद्दूरपर्यन्तं पञ्चषाः सहाया युवयोः सहचरा भविष्यन्ति, परस्ताच्छिथिलिते लुण्ठक-भये एकेनैव केनचिदश्वारोहेण प्रदर्शित-मार्गौ सुखेन यथाभिलषितं देशं यास्यथः। सहायक-परिवर्त्तनं स्थाने स्थाने स्वयमेव भविष्यति, न तत्र युवयोः कयाऽपि विचिकित्सया भाव्यम्।

श्रान्तैः श्रान्तैराश्रमेषु विश्रमणीयम्, निदिद्रासद्भिः कुटीरेष्वेव निद्रा द्राघणीया, विलेपनाऽभ्यङ्गस्नान-पानाऽशन-संवाहनादि-सौकर्यं सर्वत्र सहायकाः साधयिष्यन्ति'—इति ।

व्याख्या—'कुमारौ !=बालकौ ! इतः=अस्मात् स्थानात्, पुण्यनगर-पर्यन्तम्=आपुण्यनगरम्, प्रतिगव्यूत्यन्तरालम्=प्रतिक्रोशद्वयानन्तरम्, महाव्रता-श्रमपरम्पराः=महाव्रताधिष्ठानानि, सन्ति=वर्तन्ते, सर्वत्र=सर्वस्मिन् स्थाने, कुटीरेषु=आश्रमेषु, संन्यासिनः=मुनयः, भक्ताः=देवपूजकाः, विरक्ताः=त्यागिनः, निवसन्ति=निवासं कुर्वन्ति, कियद्दूरपर्यन्तम्=किञ्चिद्दूरानन्तरम्; पञ्चषाः=पञ्च षड् वा, सहायाः=सहयोगिनः, युवयोः=भवतोः, सहचराः=सहयात्रिणः, भविष्यन्ति=सम्पत्स्यन्ते, परस्तात्=तदग्रे, शिथिलिते=न्यूनतां गते, लुण्ठकभये=वञ्चकभये, एकेनैव=एकमात्रेणैव, केनचित्=केनापि, अश्वारोहेण=आश्विकेन, प्रदर्शितमार्गौ=निर्दिष्टमार्गौ, सुखेन=सुखपूर्वकम्, यथाभिलषितम्=यथेप्सितम्, देशम्=स्थानम्, यास्यथः=गमिष्यथः, सहायक-परिवर्तनम्=सहयोगिविनिमयम्, स्थाने स्थाने=देशे देशे, स्वयमेव=स्वतः एव, भविष्यति=सम्पत्स्यते, न=नहि, तत्र=तस्मिन् विषये, युवयोः=भवतोः, कयापि=केनापि, विचिकित्सया=चिन्तया, भाव्यम्=भवितव्यम्, श्रान्तैः श्रान्तैः=क्लान्तैः क्लान्तैः, आश्रमेषु=मठेषु, विश्रमणीयम्=विश्रामः करणीयः, निदिद्रासद्भिः=निद्रितुमिच्छद्भिः, कुटीरेषु=उटजेषु, एव, निद्रा=स्वापः, द्राघणीया=प्रापणीया । विलेपनाऽभ्यङ्गस्नानपानाशनसंवाहनादि-सौकर्यम्=कस्तूर्यादिसुगन्धितद्रव्यलेपनाभ्यङ्गमज्जनभोजनपानचरणादिमर्दन-सौलभ्यम्, सर्वत्र=प्रतिस्थानम्, सहायकाः=सेवकाः, साधयिष्यन्ति=सम्पाद-यिष्यन्ति' इति, अकथयदिति शेषः ।

समासः—महाव्रतस्य आश्रमाणां परम्पराः महाव्रताश्रमपरम्पराः । सह चरन्तीति सहचराः । लुण्ठकानां भयम्, तस्मिन् लुण्ठकभये । प्रदर्शितः मार्गः ययोः, तौ प्रदर्शितमार्गौ । सहायकस्य परिवर्तनं सहायकपरिवर्तनम् । विलेपनम् अभ्यङ्गः स्नानं पानम् अशनम् संवाहनञ्चेत्यादीनां सौकर्यम् इति विलेपनाभ्यङ्गस्नानपानाशनसंवाहनादिसौकर्यम् ।

व्याकरणम्—परिवर्तनम्— परि+वृत्+ल्युट् । विश्रमणीयम्—वि+श्रम्+अनीयर् । निदिद्रासद्भिः—नि+द्रा+सन्+शतृ (तृ० बहुवचन) । द्राघणीया—द्राघ्+अनीयर्+टाप् ।

शब्दार्थ—कुमारौ !=बालको ! इतः=यहाँ से, पुण्यनगरपर्यन्तम्= पूना नगर तक, प्रतिगव्यूत्यन्तरालम्=प्रत्येक दो कोस की दूरी पर, महाव्रता-श्रमपरम्पराः=महाव्रत के आश्रमों की परम्पराएँ, कियद्दूरपर्यन्तम्=कुछ दूर तक, पञ्चषाः=पाँच-छः, सहचराः=साथ जाने वाले, परस्तात्=उसके आगे, शिथिलिते=कम हो जाने पर, लुण्ठकभये=लुटेरों के भय के, केनचित्= किसी, अश्वारोहेण=घुड़सवार के द्वारा, प्रदर्शितमार्गौ=बतलाये गये रास्तों पर, यथाभिलषितम्=जैसी इच्छा हो, यास्यथः=चले जाओगे, सहायक-परिवर्तनम्=सहायकों की बदली, स्वयमेव=अपने-आप ही, तत्र=उसमें, कयाऽपि=किसी प्रकार, विचिकित्सया=सन्देह, न भाव्यम्=नहीं होना चाहिए, श्रान्तैः=थकने पर, आश्रमेषु=आश्रमों में, विश्रमणीयम्=विश्राम करना चाहिए, निदिद्रासद्भिः=निद्रालु होने पर, कुटीरे एव=कुटीरों (आश्रमों) में ही, द्राघ्रणीया=ग्रहण कर लेना, विलेपनाभ्यङ्गस्नानपानाशन-संवाहनादिसौकर्यम्=विलेपन, उबटन, स्नान, पान (जलादि), भोजन तथा संवाहन आदि की सुविधाएँ, सर्वत्र=सभी स्थानों पर, सहायकाः=सहायक लोग, साधयिष्यन्ति=कर देंगे।

हिन्दी—'बालको ! यहाँ से पूना नगर तक प्रत्येक दो कोस की दूरी पर महाव्रत के आश्रम हैं। सभी स्थानों पर कुटियों में संन्यासी, भक्त और विरक्त निवास करते हैं। कुछ दूर तक पाँच-छः सहायक तुम्हारे साथ रहेंगे। उसके आगे लुटेरों का भय कम हो जाने पर तुम दोनों किसी एक ही अश्वारोही के बताये गये मार्ग से सुखपूर्वक अपने अभिलषित स्थान को चले जाओगे। स्थान-स्थान पर सहायकों का परिवर्तन स्वयं हो जायेगा। इस विषय में तुम दोनों को किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए। थक जाने पर आश्रमों में विश्राम कर लेना और सोने की इच्छा होने पर कुटीरों में ही निद्रा प्राप्त कर लेना। तुम्हारे स्नान, उबटन, भोजन-पान आदि की सुविधा सर्वत्र सहायक लोग करेंगे'। (ऐसा मन्दिराध्यक्ष ने उन दोनों बालकों से कहा) ॥ ३३ ॥

ततस्तं प्रणम्य तथैव ससहायौ आवां प्रचलितौ। सहचरनिर्दिष्टेनैव सर्वैरविज्ञेयेन वन्य-द्रुम-जाल-रुद्धेन गण्डशैल-परिक्रमणाऽधित्यकाऽधि-रोहणोपत्यका-परिलङ्घन-तटिनी-तरणाद्यायास-दीक्षा-दक्षेण पथा प्रचलन्तौ मध्ये मध्ये कुटीरेषु विरमन्तौ तत्र-तत्र सुस्वादुभोजनैः सकल-समुचित-सामग्री साहाय्यैः सुखेन विश्रान्ति-सुखमनुभवन्तौ तत्र तत्र

परिवर्तितसहायकौ दिनकतिपयैरेकस्या नद्यास्तटमयासिष्व। तत्रैकस्य चिञ्चा-वृक्षस्य स्कन्धे प्रलम्ब-रज्ज्वा निजाऽऽजानेयावाबध्य निकटस्थ-यूप-तरु-शाखायां च वस्त्रादीनि संलम्बय्य स्नातुं जलमवागाहिष्वहि। अस्मत्सहचरश्च निजाश्वस्य पृष्ठमार्द्रयन्निव तं वल्गायां गृहीत्वा पर्य्यट-यितुमारब्ध।

व्याख्या—ततः = तदनन्तरम्, तम् = मन्दिराध्यक्षम्, प्रणम्य = नमस्कृत्य, तथैव = तत्कथनानुसारेणैव, ससहायौ = सहायकसहितौ, आवाम् = गौरसिंह-श्यामसिंहौ, प्रचलितौ = प्रस्थितौ, सहचरनिर्दिष्टेनैव = सहचरोपदिष्टेनैव, सर्वैः = समस्तैः, अविज्ञेयेन = अज्ञातेन, वन्यद्रुमजालरुद्धेन = वन्यविटपसमूहाव-रुद्धेन, गण्डशैलपरिक्रमणाऽधित्यकाऽधिरोहणोपत्यकापरिलङ्घनतटिनीतरणाद्या-यासदीक्षादक्षेण = पर्वतश्रेणिपरिभ्रमणाधित्यकाधिरोहणोपत्यकोत्क्रमणनदीसन्तर-णाद्यायासकष्टप्रशिक्षणचतुरेण, पथा = मार्गेण, प्रचलन्तौ = गच्छन्तौ, मध्ये-मध्ये = अन्तरा-अन्तरा, कुटीरेषु = उटजेषु, विरमन्तौ = विश्रमन्तौ, तत्र तत्र = प्रत्येकमाश्रमेषु, सुस्वादुभोजनैः = रुचिकराशनैः, सकलसमुचितसामग्रीसाहाय्यैः = निखिलोचितवस्तुसाहाय्यैः, सुखेन = आनन्देन, विश्रान्तिसुखम् = विरामजनिता-नन्दम्, अनुभवन्तौ = अनुभूयमानौ, तत्र तत्र = मध्ये मध्ये, परिवर्तितसहायकौ = एकं विमुच्य गृहीतापरसहायौ, दिनकतिपयैः = कतिचिद्दिवसैः, एकस्याः, नद्याः = तटिन्याः, तटम् = तीरम्, अयासिष्व = प्राप्तवन्तौ। तत्र = नद्यास्तटे, एकस्य, चिञ्चावृक्षस्य = तिन्तिडीतरोः, स्कन्धे = शाखायाम्, प्रलम्बमानेन = लम्बायमानेन, रज्ज्वा, निजाऽऽजानेयौ = निजाश्वौ, आबध्य = बद्ध्वा, निकट-स्थयूपतरुशाखायाम् = समीपस्थयूपविटपस्कन्धे, च, वस्त्रादीनि = पटादीनि, संलम्बय्य = अवलम्ब्य, स्नातुं = मज्जितुम्, जलम् = सलिलम्, अवागाहिष्वहि = प्रविष्टौ। अस्मत्सहचरश्च = अस्मत्सहायकस्तु, निजाश्वस्य = स्वहयस्य, पृष्ठम् = शरीरस्य पृष्ठभागम्, आर्द्रयन्निव = शीतलीकुर्वन्निव, तं = वाजिनम्, वल्गायाम् = प्रग्रहे, गृहीत्वा = आदाय, पर्यटयितुम् = चालयितुम्, आरब्ध = आरभत।

समासः—सह चरन्तीति सहचरास्तैः निर्दिष्टेन सहचरनिर्दिष्टेन। वने भवाः वन्याः, ते च द्रुमास्तेषां जालेन रुद्धम्, तेन वन्यद्रुमजालरुद्धेन। गण्ड-शैलानां परिक्रमणम्, अधित्यकानाम् अधिरोहणम्, उपत्यकानां परिलङ्घनम्, तटिनीनां तरणम् इत्यादयः आयासास्तेषां दीक्षायां दक्षेण गण्डशैलपरिक्रमणा-

ऽधित्यकाऽधिरोहणोपत्यकापरिलङ्घनतटिनीतरणाद्यायासदीक्षादक्षेण। सकलाः समुचिताः सामग्र्यः, तासां साहाय्यैः, सकलसमुचितसामग्रीसाहाय्यैः। परिवर्तिताः सहायकाः ययोस्तौ परिवर्तितसहायकौ। निकटे स्थितः यूपः, तस्य तरुः, तस्य शाखायाम्, निकटस्थयूपतरुशाखायाम्।

व्याकरणम्—प्रणम्य—प्र+नम्+क्त्वा+ल्यप्। निर्दिष्टेन—निर्+दिश्+क्त (तृ० वि०)। वन्याः—वन+यत्। रुद्धम्—रुध्+क्त। परिक्रमण—परि+क्रम्+ल्युट्। विरमन्तौ—वि+रम्+शतृ (द्वि० व०)। अयासिष्व—या प्रापणे+लुङ्+वस्। आबध्य—आ+बध्+क्त्वा+ल्यप्। संलम्बय्य—सम्+लम्ब+क्त्वा+ल्यप्। स्नातुम्—ष्णा शौचे+तुमुन्। अवागाहिष्वहि—अव+गाह्+लुङ्+वहि। आर्द्रयन्—आर्द्र+णिच्+शतृ। पर्यटयितुम्—परि+अट्+णिच्+तुमुन्। आरब्धः—आ+रभ्+क्त।

शब्दार्थ—ततः=इसके बाद, प्रणम्य=प्रणाम करके, तथैव=उनके आदेशानुसार ही, ससहायौ=सहायकों के साथ, प्रचलितौ=चल पड़े, सहचरनिर्दिष्टेनैव=सहचरों के द्वारा बताये गये, सर्वैरविज्ञेयेन=सभी से न जाना जाने वाला, वन्यद्रुमजालरुद्धेन=जंगली वृक्षों के जाल से घिरे, गण्डशैलपरिक्रमणाऽधित्यकाऽधिरोहणोपत्यकापरिलङ्घनतटिनीतरणाद्यायासदीक्षादक्षेण=पहाड़ियों की परिक्रमा करने, अधित्यकाओं पर चढ़ने, उपत्यकाओं को लाँघने तथा नदियों को तैरने आदि से होने वाले कष्ट की दीक्षा में दक्ष, पथा=रास्ते से, प्रचलन्तौ=चलते हुए, विरमन्तौ=विश्राम करते हुए, सुस्वादुभोजनैः=स्वादयुक्त भोजनों से, सकलसमुचितसामग्रीसाहाय्यैः=सभी समुचित सामग्रियों की सहायता से, अनुभवन्तौ=अनुभव करते हुए, परिवर्तितसहायकौ=बदलते हुए सहायकों वाले, दिनकतिपयैः=कुछ ही दिनों में, अयासिष्व=पहुँच गये, चिञ्चावृक्षस्य=इमली के पेड़ की, स्कन्धे=शाखा में, प्रलम्बरज्ज्वा=लम्बी रस्सी से, निजाजानेयौ=अपने घोड़ों को, (आजानेय=अच्छी किस्म का घोड़ा), निकटस्थयूपतरुशाखायाम्=समीपस्थ शहतूत के वृक्ष की शाखा में, संलम्बय्य=टाँगकर, स्नातुम्=स्नान के लिए, अवागाहिष्वहि=प्रवेश कर गये, अस्मत्सहचरः=हमारे साथी ने, निजाश्वस्य=अपने घोड़े की, पृष्ठम्=पीठ को, आर्द्रयन् इव=सहलाते हुए जैसे, वल्गायाम्=लगाम को, गृहीत्वा=पकड़कर, पर्यटयितुम् आरब्ध=घुमाना आरम्भ किया।

हिन्दी—उसके पश्चात् उन्हें (मन्दिराध्यक्ष को) प्रणाम करके उसी

प्रकार सहायकों के साथ हम दोनों चल दिये। सहचर के द्वारा बतलाये गये, अनजाने जंगली पेड़ों से अवरुद्ध तथा गण्डशैलों की परिक्रमा करने, अधित्य-काओं पर चढ़ने, उपत्यकाओं के परिलंघन करने तथा नदियों के तैरने के कारण कष्ट की शिक्षा देने में दक्ष, उस मार्ग से चलते हुए, बीच-बीच में कुटियों में विराम करते हुए, वहाँ पर सुस्वादु भोजनों एवं समस्त समुचित सामग्रियों की सहायता से सुखपूर्वक विश्राम एवं सुख का अनुभव करते हुए, मध्य-मध्य में सहायकों को बदलते हुए कुछ दिनों में एक नदी के तट पर पहुँच गये। वहाँ एक इमली के पेड़ के तने में लम्बी रस्सी से अपने अच्छी किस्म के घोड़ों को बाँधकर, समीप के शहतूत वृक्ष की डाल पर वस्त्रादि को लटका कर हम दोनों ने स्नान करने के लिए जल में प्रवेश किया। हमारे साथी ने अपने घोड़े की पीठ ठण्डी करने के लिए उसकी लगाम पकड़कर उसे घुमाना प्रारम्भ कर दिया ॥ ३४ ॥

ततो जलाद् बहिरागत्य, तिन्तिडी-शाखात उत्तार्य शुष्क-वस्त्रे परिधाय, इतस्ततः पर्यटचाऽपि च कां भूमिमायातौ—इति निश्चेतुं ताऽपारयाव। तावदकस्माद् दृष्टं यद् उत्तरतः खुर-धूलिभिः पार्श्व-परिवर्त्ति-लता-कुसुम-परागान् द्विगुणयन्तं लाङ्गूल-चामरेण वीजयन्तं मुखफेनैः पुष्पाणीव वर्षन्तं कञ्चित् श्यामकर्ण-शारदाभ्रश्वेतं वाजिनमा-रुह्य लोलत्खड्ग-वर्म्मच्छिन्न-पृष्ठदेशः कवच-शिञ्जित-विजित-कोकिल-शावक-निकर-कूजितो वीर-वेशः कश्चिच्छयामो युवा समायातीति।

स च क्षणेनैवाऽऽगत्य, नौ सकलं वृत्तान्तं पृष्ट्वा, विज्ञाय च प्रावोचत्—'अवगतम्, भवतोरेव विषये दृष्टस्वप्नः शिववीरो भवन्तौ स्मरति, तत्सपद्यश्वावारुह्य आगम्यताम्, न वां भयं किमपि, व्यतीतो भवतोर्दुःखमयः'—इति!

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, जलाद्=सलिलात्, बहिः, आगत्य=निःसृत्य, तिन्तिडीशाखातः=चिञ्चाविटपात्, उत्तार्य=सङ्गृह्य, शुष्कवस्त्रे=निरार्द्रवसने, परिधाय=धारयित्वा, इतस्ततः=यत्र-तत्र, पर्य्यटचापि=परि-भ्रम्यापि, च, कां भूमिम्=कतमद्देशम्, आयातौ=समागतौ, इति=एतत्, निश्चेतुम्=निश्चयं कर्तुम्, न=नहि, अपारयाव=समर्थौ बभूविव, तावत्=तदैव, अकस्मात्=सहसा, दृष्टम्=वीक्षितम्, यत्, उत्तरतः=कौबेरीदिशातः,

खुरधूलिभिः = खुरनिक्षिप्तरजोभिः, पार्श्वपरिवर्तिलताकुसुमपरागान् = निकटस्थ-लतापुष्पमकरन्दान्, द्विगुणयन्तम् = वर्द्धयन्तम्, लाङ्गूलचामरेण = पुच्छप्रकीर्णकेन, वीजयन्तम् = सञ्चालयन्तम्, मुखफेनैः = वदननिःसृतडिण्डीरैः, पुष्पाणीव = कुसुमानीव, वर्षन्तम् = आकिरन्तम्, कञ्चित्, श्यामकर्णशारदाभ्रश्वेतम् = कृष्णश्रोत्रशरन्मेघसितम्, वाजिनम् = घोटकम्, आरुह्य = आरूढो भूत्वा, लोलत्खड्गचर्माच्छन्नपृष्ठदेशः = सञ्चलदसितत्प्रहाररक्षकालङ्कृतपृष्ठः, कवच-शिञ्जितविजितकोकिलशावकनिकरकूजितः = वारबाणशब्दजितभृतशिशुसमूहरणितः, वीरवेशः = वीरवेषधारी, कश्चित् = कोऽपि, श्यामः = श्यामवर्णः, युवा = युवकः, समायाति = आगच्छति, इति।

सः = पूर्वनिगदितो युवा, च, क्षणेनैव = मुहूर्त्तानन्तरमेव, आगत्य = सम्प्राप्य, नौ = आवयोः (भ्रात्रोः), सकलम् = निखिलम्, वृत्तान्तम् = समाचारम्, पृष्ट्वा = आपृच्छ्य, विज्ञाय = ज्ञात्वा, च, प्रावोचत् = जगाद, 'अवगतम् = ज्ञातम्, भवतोः = युवयोः, एव, विषये = सम्बन्धे, दृष्टस्वप्नः = वीक्षितस्वप्नः, शिववीरः = एतन्नामकः, भवन्तौ = युवाम्, स्मरति = मिलितुमभिलषति, तत् = तस्मात्, सपदि एव = सत्वरमेव, अश्वौ = वाजिनौ, आरुह्य = आरूढो भूत्वा, आगम्यताम् = चल्यताम्, न = नहि, वां = युवयोः, भयम् = भीतिः, किमपि = किञ्चित्, व्यतीतः = समाप्तिं गतः, भवतोः = युवयोः, दुःखमयः = दुःखपूर्णः, समयः = कालः, इति = एवम्, इति शेषः।

समासः—पार्श्वे परिवर्तिन्यः याः लतास्तासां कुसुमानां परागाः, तान् पार्श्वपरिवर्त्तिलताकुसुमपरागान्। श्यामौ कर्णौ यस्य सः श्यामकर्णः। शरदि भवं शारदं, तच्च तदभ्रं तद्वत् श्वेतम्, शारदाभ्रश्वेतम्। लोलद्भ्यां खड्ग-चर्मभ्यां छन्नः पृष्ठदेशः यस्य सः, लोलत्खड्गचर्म्माच्छन्नपृष्ठदेशः। कवचस्य शिञ्जितेन विजितानि कोकिलानां शावकनिकरस्य कूजितानि येनः सः कवच-शिञ्जितविजितकोकिलशावकनिकरकूजितः। दृष्टः स्वप्नो येन सः दृष्टस्वप्नः।

व्याकरणम्—उत्तार्य—उत् + तृ + णिच् + ल्यप्। पर्य्यट्य—परि + अट् + क्त्वा + ल्यप्। निश्चेतुम्—निस् + चि + तुमुन्। परिवर्ति—परि + वृत् + णिनि। वीजयन्तम्—वीज् + णिच् + शतृ। आरुह्य—आ + रुह् + क्त्वा + ल्यप्।

शब्दार्थ—बहिः आगत्य = बाहर आकर, तिन्तिडीशाखातः = इमली के वृक्ष की शाखा से, उत्तार्य = उतार कर, शुष्कवस्त्रे = सूखे कपड़ों को, परिधाय

=पहनकर, पर्य्यट्य=घूमकर, आयातौ=आ गये, निश्चेतुम्=निश्चय करने के लिए, न अपारयाव=नहीं समर्थ हुए, खुरधूलिभिः=खुरों से खुदी धूलि से, पार्श्वपरिवर्त्तिलताकुसुमपरागान्=पास में संस्थित लताकुसुमों के परागों को, द्विगुणयन्तम्=दूना करते हुए, लाङ्गूलचामरेण=पूँछ रूप चँवर से, वीजयन्तम्=हवा करते हुए, श्यामकर्णशारदाभ्रश्वेतम्=काले कानों वाले तथा शरत्कालीन मेघ जैसे सफेद, लोलत्खड्गचर्म्माच्छन्नपृष्ठदेशः=हिलती हुई तलवार, खड्ग तथा ढाल से ढँकी पीठ वाला, कवचशिञ्जितविजितकोकिलशावकनिकरकूजितः=कवच के शब्द से कोयल के बच्चों की कूक को जीतता हुआ, वीरवेशः=वीर वेषधारी, विज्ञाय=जानकर, प्रावोचत्=कहा, अवगतम्=जान लिया, दृष्टस्वप्नः=स्वप्न देखे हुए, सपदि=शीघ्र, आरुह्य=चढ़कर, आगम्यताम्=आइए, व्यतीतः=बीत गया, दुःखमयः=दुःख से परिपूर्ण।

हिन्दी—तदनन्तर जल से बाहर आकर इमली के वृक्ष की शाखा से सूखे कपड़ों को उतारकर, पहनकर, इधर-उधर घूमकर भी हम दोनों यह निश्चय नहीं कर सके कि हम कहाँ आ गये हैं। तभी अकस्मात् देखा कि उत्तर दिशा की ओर से खुर से खुदी धूल से पास की लताओं के पुष्पों के पराग को दूना करते हुए, पूँछ का चँवर डुलाते हुए और मुख से निकलने वाले फेन के रूप में फूल जैसी वर्षा करते हुए किसी काले कानों वाले शरत्कालीन बादलों की भाँति सफेद घोड़े पर चढ़ा पीठ पर हिलती हुई तलवार और ढाल डाले, कवच के शब्द से कोयलों के बच्चों की कूक को जीतने वाला वीर-वेषधारी कोई श्यामवर्ण का युवक आ रहा है।

वह क्षण भर में ही आकर, हम दोनों का सम्पूर्ण वृत्तान्त पूछकर और जानकर बोला—'समझ लिया, आप दोनों के ही विषय में स्वप्न देखकर शिववीर ने (आप दोनों को) स्मरण किया है, अतः शीघ्र ही घोड़ों पर चढ़कर आइए, अब आपको कोई भय नहीं है। आप दोनों का दुःखमय समय व्यतीत हो गया'॥ ३५ ॥

ततः साश्चर्यं सपदि वस्त्राणि परिधाय सहचरमाकार्य तेन सहाश्वावारुह्य तमनुसृत्य तत्प्रदिष्टं वासादि-सौकर्यमङ्गीकृत्य सपद्येव निविवृत्सन्तं जटिल-सहचरं साश्लेषमनुज्ञाप्य यथासमयं शिववीरं साक्षात्कृत्याऽवगतं यदेष एव महात्मा भटवेषेणाऽस्मन्निकटे भीमानद्यास्तटं गत आसीदिति।

तत्कालमारभ्याऽद्यावधि तस्यैव करकमलच्छायायां वसावः, भगिनी-वियोग-तापश्चिरादासीत्, सोऽप्यद्य निवृत्तः, पुरोहितचरणावपि दृष्टौ, इति सर्वं शुभमेव परस्तात् सम्भाव्यते—इत्येष आवयोर्वृत्तान्तः।'

ततो मुहूर्तं सर्वेऽप्येतद्वृत्तान्तस्यैव पौर्वापर्य-स्मरण-पराधीना इवाऽऽसिषत परिशेषे च पुटपाकवदन्तरेव दन्दह्यमानेन वाष्पव्रातेन आविलस्याऽपि अप्रकटित-बहिश्चेष्टस्य ब्रह्मचारिगुरोः प्रार्थनया देवशर्म्मणा तोरण-दुर्ग-समीपे हनूमन्मन्दिरे एव निवासः स्वीकृतः। तदेव च प्रबन्धुं सर्वेऽपि कुटीरादुत्थिताः।

इति तृतीयो निश्वासः।

व्याख्या—ततः=तदनन्तरम्, साश्चर्यम्=आश्चर्यपूर्वकम्, सपदि=शीघ्रम्, वस्त्राणि=वसनानि, परिधाय=सम्यग्रूपेण धारयित्वा, सहचरम्=सार्थकम्, आकार्य=आहूय, तेन=सहचरेण, सह=साकम्, अश्वौ=हयौ, आरुह्य=समुपविश्य, तम्=आगतयुवकम्, अनुसृत्य=अनुगमनं विधाय, तत्प्रदिष्टम्=तन्निर्दिष्टम्, वासादिसौकर्यम्=निवासादिसौविध्यम्, अङ्गीकृत्य =स्वीकृत्य, सपद्येव=सत्वरमेव, निविवृत्सन्तम्=निवर्तितुमभिलषन्तम्, जटिलसहचरम्=जटाधारिसार्थिनम्, साश्लेषम्=आलिङ्गनपूर्वकम्, अनुज्ञाप्य=अनुमतिं प्रदाय, यथासमयम्=समुचितकाले, शिववीरम्=एतन्नामकं महाराष्ट्रकेसरिणम, साक्षात्कृत्य=सम्मिल्य, अवगतम्=ज्ञातम्, यदेषः=यदयम्, एन, महात्मा=साधुः, भटवेषेण=वीरवेषेण, अस्मन्निकटे=अस्मत्पार्श्वे, भीमानद्याः=भीमानाम्न्याः तटिन्याः, तटम्=तीरम्, गतः आसीद्=अगच्छत्, इति शेषः।

तत्कालम् आरभ्य=तत्समयादेव, अद्यावधि=अद्य यावत्, तस्यैव=शिववीरस्यैव, करकमलच्छायायाम्=हस्तारविन्दस्याधोभागे, वसावः=वासं कुर्वः, भगिनीवियोगतापः=स्वसाविरहजनितसन्तापः, चिरात्=चिरकालात्, आसीत्, सोऽपि=तद्वियोगोऽपि, अद्य=अस्मिन् दिवसे, साम्प्रतं वा, निवृत्तः=समाप्तो जातः, पुरोहितचरणावपि=पुरोधसपादावपि, दृष्टौ=वीक्षितौ, इति=

एतत्, सर्वम् = निखिलम्, शुभमेव = कल्याणमेव, परस्तात् = अग्रे, सम्भाव्यते = आशास्यते, इत्येषः = इत्ययम्, आवयोः = गौरसिंहश्यामसिंहयोः, वृत्तान्तः = जीवनवृत्तम् ।

ततः = तदनन्तरम्, मुहूर्तम् = क्षणम्, सर्वे = समुपस्थिताः जनाः, अपि, एतद्वृत्तान्तस्य = एतद्घटनाचक्रस्य, एव, पौर्वापर्यस्मरणपराधीनाः = पूर्वोत्तर-स्मरणव्यस्ताः, इव, आसिषत = स्थिताः, परिशेषे = पर्यन्ते, च, पुटपाकवत् = उभयतः पाकवत्, अन्तरेव, दन्दह्यमानेन = तातप्यमानेन, वाष्पव्रातेन = अश्रु-समूहेन, आविलस्यापि = क्षुभितस्यापि, अप्रकटितबहिश्चेष्टस्य = अदर्शितबहिः-प्रभावस्य, ब्रह्मचारिगुरोः = मुनेः, प्रार्थनया = अभ्यर्थनया, देवशर्म्मणा = एतन्नामकेन, तोरणदुर्गसमीपे = तोरणनामकस्य दुर्गस्य पार्श्वे, हनुमन्मन्दिरे = मारुतिमन्दिरे, एव, निवासः = वासः, स्वीकृतः = अङ्गीकृतः । तदेव, च, प्रबन्धुम् = प्रबन्धं विधातुम्, सर्वेऽपि = समस्ता अपि, कुटीरात् = उटजात्, उत्थिताः = प्रचलितुं सज्जिताः ।

समासः—तेन प्रदिष्टं तत्प्रदिष्टं । आश्लेषेण सहितं साश्लेषम् । समयमनतिक्रम्य इति यथासमयम् । करौ एव कमले, तयोः छायायाम्, करकमलच्छायायाम् । पूर्वश्च अपरश्चेति पूर्वापरौ, तयोः इदम्, पौर्वापर्यम्, तस्य स्मरणे पराधीनाः पौर्वापर्यस्मरणपराधीनाः । अतिशयेन दह्यति, तेन दन्दह्यमानेन । वाष्पाणां व्रातस्तेन वाष्पव्रातेन । अविलति दृष्टिस्तृणानि वा, तस्य आविलस्यापि । न प्रकटिता बहिः चेष्टा यस्य, तस्य अप्रकटितबहिश्चेष्टस्य ।

व्याकरणम्—परिधाय—परि + धा + क्त्वा + ल्यप् । अनुसृत्य—अनु + सृ + क्त्वा + ल्यप् । प्रदिष्टम्—प्र + दिश् + क्त । निविवृत्सन्तम्—नि + वृत् + सन् (द्वित्व) + शतृ (द्वि० व०) । अनुज्ञाप्य—अनु + ज्ञा + णिच् + पुक् + ल्यप् । आसिषत—आस् + लुङ् (झ) । दन्दह्यमानेन—दह् + यङ् + शानच् (तृ० वि०) । उत्थिताः—उत् + स्था + क्त (प्र० ब० व०) ।

शब्दार्थ—ततः = तदनन्तर, साश्चर्यम् = आश्चर्यपूर्वक, सपदि = शीघ्र, परिधाय = पहनकर, आकार्य = बुलाकर, आरुह्य = चढ़कर, अनुसृत्य = अनुसरण करके, तत्प्रदिष्टम् = उनके द्वारा बताये गये, वासादिसौकर्यम् = निवास आदि की सुविधाएँ, अङ्गीकृत्य = स्वीकार करके, निविवृत्सन्तम् = लौटने के इच्छुक, जटिलसहचरम् = जटाधारी साथी को, साश्लेषम् = आलिङ्गनपूर्वक, अनुज्ञाप्य = अनुमति देकर, यथासमयम् = समयानुसार, साक्षात्कृत्य = मिलकर, अवगतम् =

जाना, भटवेषेण = वीरवेष में, अस्मन्निकटे = हमारे पास, तत्कालमारभ्य = उस समय से लेकर, अद्यावधि = आज तक, करकमलच्छायायाम् = कर-कमलों की छाया में, वसाव: = रह रहे हैं, भगिनीवियोगताप: = बहिन के वियोग का संताप, चिरात् = चिरकाले, निवृत्त: = समाप्त हो गया। परस्तात् = इसके आगे, सम्भाव्यते = संभावना है, वृत्तान्त: = समाचार, मुहूर्त्तम् = क्षणभर, एतद्वृत्तान्तस्य = इस समाचार के, पौर्वापर्यस्मरणपराधीना: = पौर्वापर्य के स्मरण में लगे हुए, आसिषत = बैठे थे, परिशेषे = इसके बाद, पुटपाकवत् = पुटपाकसदृश, अन्त: एव = मन-ही-मन, दन्दह्यमानेन = जलते हुए, वाष्पव्रातेन = वाष्पसमूह से, आविलस्यापि = कलुषित हुए भी, अप्रकटितबहिश्चेष्टस्य = अपने भाव को प्रकट न करने वाले, तोरणदुर्गसमीपे = तोरण नामक किले के पास, हनुमन्मदिरे = हनुमान् के मन्दिर में, प्रबन्धुम् = प्रबन्ध करने के लिए, कुटीरात् = कुटी से, उत्थिता: = उठ गये।

हिन्दी—उसके बाद आश्चर्य के साथ शीघ्र ही वस्त्र पहनकर, साथी को बुलाकर, उसके साथ घोड़ों पर बैठकर, उसी का अनुसरण करके, उसके द्वारा बताई गई निवास आदि सुविधाओं को स्वीकार कर, तत्क्षण लौटने के इच्छुक उस जटाधारी साथी को आलिङ्गन कर, उसे लौटने की अनुमति देकर, यथासमय शिवाजी से मिल कर ज्ञात हुआ कि यही महात्मा वीर वेष में हमलोगों के निकट भीमा नदी के किनारे गये थे।

तब से लेकर आज तक हम दोनों उन्हीं के कर-कमलों की छाया में रह रहे हैं। बहिन के वियोग का संताप बहुत दिनों से था, वह भी आज समाप्त हो गया। पुरोहितजी को भी देखा और अब आगे भी मंगल की ही सम्भावना है। यही हम दोनों का वृत्तान्त है।

इसके अनन्तर क्षणभर सभी लोग इसी वृत्तान्त के पौर्वापर्य का स्मरण करते हुए बैठे रहे। उसके पश्चात् पुटपाक के समान अन्दर-ही-अन्दर जल रहे तथा अश्रुओं से क्षुभित होते हुए भी बाहर से शान्त ब्रह्मचारि-गुरु की प्रार्थना से देवशर्मा ने तोरण दुर्ग के समीप हनुमान् जी के मन्दिर में रहना स्वीकार कर लिया और उसी का प्रबन्ध करने के लिए सभी लोग कुटी से उठ गये॥ ३६॥

॥ तृतीय निश्वास समाप्त॥

अथ चतुर्थो निश्वासः

"कार्यं वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्" ।

—स्फुटकम्

व्याख्या—आहोस्विद् कर्मसिद्धिः सम्यत्स्यते, उद् वा गात्रं नङ्क्ष्यामि ।

व्यारणम्—साधयेयम्—साधि + णिच् + लिङ् + मिप् । देहम्—दिह उपचये + घञ् (द्वितीया वि०) । पातयेयम्—पत् + णिच् + लिङ् + मिप् ।

शब्दार्थ—कार्यम् = कार्य (उद्देश्य) को, वा = अथवा, साधयेयम् = सिद्ध करूँ, देहम् = शरीर को, वा = अथवा, पातयेयम् = नष्ट (समाप्त) कर दूँ ।

हिन्दी—'या तो कार्य सिद्ध करूँगा, या शरीर ही नष्ट कर दूंगा' ।

टिप्पणी—उपर्युक्त स्फुटक को व्यासजी ने यहां इसलिए समुद्धृत किया है कि शिवाजी का पत्र ले जाने में रघुवीर सिंह ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी है । इसी संकल्प एवं कर्म की दृढ़ता का वर्णन इस चतुर्थ निश्वास में किया गया है ।। १ ।।

मासोऽयमाषाढः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जिगमिषुर्भगवान् भास्करः सिन्दूर-द्रव-स्नातानामिव वरुण-दिगवलम्बिनामरुण वारि-वाहानामभ्यन्तरं प्रविष्टः । कलविङ्काश्चाटकैररुतैः परिपूर्णेषु नीडेषु प्रतिनिवर्तन्ते । वनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां श्यामतां कलयन्ति । अथाऽकस्मात् परितो मेघ-माला पर्वतश्रेणीव प्रादुरभूत् । क्षणं सूक्ष्म-विस्तारा, परतः प्रकटित-शिखरि-शिखर-विडम्बना, अथ दर्शित-दीर्घ-शुण्ड-मण्डित-दिगन्त-दन्तावल-भयानकाकारा, ततः पारस्परिक-संश्लेष-विहित-महान्धकारा च समस्तं गगनतलं पर्यच्छदीत् ।

व्याख्या—अयम् = एषः, आषाढो मासः = शुचिर्मासः, अस्ति = विद्यते, च = पुनः, सायंसमयः = सायंकालः, अस्तम् = अस्ताचलम्, जिगमिषुः = गन्तुमिच्छुः, भगवान् = ऐश्वर्यशाली, भास्करः = दिवाकरः, सिन्दूरद्रवस्नातानामिव = नागोद्भवरसविहितस्नानामिव, वरुणदिगवलम्बिनाम् = पश्चिमाशाऽऽ-

श्रितानाम्, अरुणवारिवाहानाम्=रक्तजलदानाम्, अभ्यन्तरम्=अन्तः, प्रविष्टः = प्राविशत् । कलविङ्काः = चटकाः, चाटकैररुतैः=निजापत्यरोदनैः, परिपूर्णेषु = युक्तेषु, नीडेषु = कुलायेषु, प्रतिनिवर्तन्ते = परावर्तन्ते, वनानि = विपिनानि, प्रतिक्षणम् = प्रतिपलम्, अधिकाधिकाम् = अतितराम्, श्यामताम् = कृष्णताम्, कलयन्ति = धारयन्ति । अथ = अनन्तरम्, अकस्मात् = सहसैव, परितः = सर्वतः, मेघमाला = घनावलीः, पर्वतश्रेणीव = गिरिपङ्क्तिरिव, प्रादुरभूत् = समजायत । क्षणम् = पलम्, सूक्ष्मविस्तारा: = अल्पकायिका, परतः = अनन्तरम्, प्रकटित-शिखरिशिखरविडम्बना = प्रदर्शितपर्वतशिखरविडम्बना, अथ, दर्शितदीर्घ-शुण्डमण्डितदिगन्तदन्तावलभयानकाकारा = प्रकटितलम्बायमानकरभूषितदिग्गज-भयावहाकारा, ततः=तत्पश्चात्, पारस्परिकसंश्लेषविहितमहान्धकारा = इतरेतर-मिलनोत्पादितान्धकारा, च, समस्तम्=निखिलम्, गगनतलम् = आकाशमण्डलम्, पर्यच्छदीत् = व्याप्नोत् ।

समासः—सिन्दूरस्य द्रवेण स्नातामिव सिन्दूरद्रवस्नातामिव । वरुणस्य दिग् अवलम्बितुं शीलमस्य, तेषां वरुणदिगवलम्बिनाम् । वारि वहन्तीति वारिवाहाः, अरुणाः वारिवाहास्तेषाम् अरुणवारिवाहानाम् । सूक्ष्मः विस्तारः यस्याः सा सूक्ष्मविस्तारा । प्रकटितं शिखरिणां शिखराणां विडम्बनं यया सा प्रकटितशिखरिशिखरविडम्बना । दर्शितः दीर्घेण शुण्डेन मण्डितस्य दिगन्त-दन्तावलस्य भयानकः आकारः यया सा दर्शितदीर्घशुण्डमण्डितदिगन्तदन्तावल-भयानकाकारा । पारस्परिकेण संश्लेषेन विहितः महान्धकारः यया सा पारस्परिकसंश्लेषविहितमहान्धकारा ।

व्याकरणम्—जिगमिषुः—गम् + सन् + (द्वित्व) उ (प्र० ए० व०) । भास्करः—भाः करोतीति भास्करः, भास् + कृ + अप् । प्रादुरभूत्—प्र + आ + दुर् + भू + लङ् + तिप् । दर्शितः—दृश् + णिच् + क्त । पर्यच्छदीत्—परि + छद् + लुङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—आषाढः मासः = आषाढ़ का महीना, जिगमिषुः = जाने का इच्छुक, भास्करः = सूर्य, सिन्दूरद्रवस्नाताम् = सिन्दूर के घोल से स्नान किये हुए, इव = भाँति, वरुणदिगवलम्बिनाम् = पश्चिम दिशा का अवलम्बन करने वाले, अरुणवारिवाहानाम् = लाल बादलों के, आभ्यन्तरम् = अन्दर, प्रविष्टः = प्रविष्ट हो गये, कलविङ्काः = गोरैया पक्षी, चाटकैररुतैः = गोरैया के बच्चों के कलरव से, परिपूर्णेषु = व्याप्त, नीडेषु = घोसलों में, प्रतिनिवर्तन्ते = लौट

रहे हैं, प्रतिक्षणम् = प्रतिक्षण (क्रमशः), अधिकाधिकाम् = अधिकतर, श्यामताम् = कालेपन को, कलयन्ति = धारण कर रहे हैं, परितः = चारों ओर से, मेघमाला = बादलों की घटा, पर्वतश्रेणीव = पर्वतों की माला के समान, प्रादुरभूत् = प्रकट हो गई, क्षणम् = कुछ देर तक, सूक्ष्मविस्तारा = सूक्ष्म विस्तार वाली, परतः = बाद में, प्रकटितशिखरिशिखरविडम्बना = पर्वत-शिखरों का अनुकरण करती हुई, दर्शितदीर्घशुण्डमण्डितदिगन्तदन्तावल-भयानकाकारा = लम्बी-लम्बी सूँडों से सुशोभित दिग्गजों के समान भयानक आकार वाली, पारस्परिकसंश्लेषविहितमहान्धकारा = परस्पर मिलने से महान् अन्धकार पैदा करने वाली, पर्यच्छदीत् = आच्छादित कर लिया।

हिन्दी—आषाढ़ का महीना और सन्ध्या का समय है। अस्ताचल जाने के इच्छुक भगवान् भास्कर (सूर्य) सिन्दूर के घोल से नहाये हुए से पश्चिम दिशा में संस्थित लाल रङ्ग के बादलों में प्रविष्ट हो गये हैं। गौरैया पक्षी अपने बच्चों के द्वारा किये जाने वाले कलरव से पूर्ण घोसलों में लौट रहे हैं। जङ्गल क्षण-प्रतिक्षण अधिकाधिक श्यामलता (अन्धकारता) को प्राप्त हो रहे हैं। अकस्मात् चारों ओर से पर्वत-श्रेणी के समान मेघमाला प्रकट हो गई हैं। यह मेघमाला थोड़ी देर तक सूक्ष्म विस्तार वाली रही, पुनः पर्वत-शिखरों के समान हो गई। तदनन्तर लम्बी-लम्बी सूँडों से सुशोभित दिग्गजों के समान भयानक आकार वाली हो गईं। फिर मेघों (बादलों) के पारस्परिक संश्लेष (मिलने) से भीषण अन्धकार करने वाली मेघमाला ने समस्त गगन-मण्डल को आच्छादित कर लिया।

टिप्पणी—इस गद्यखण्ड में वर्षा ऋतु के आदिम आषाढ़ मास की सन्ध्या-काल का वर्णन है। यहाँ स्वभावोक्ति, उत्प्रेक्षा, उपमा और अनुप्रास का सुन्दर समन्वय संदर्शित है ॥ २ ॥

अस्मिन् समये एकः षोडशवर्षदेशीयो गौरो युवा हयेन पर्वतश्रेणी-रुपर्युपरि गच्छति स्म। एष सुघटित-दृढ-शरीरः, श्यामश्यामैर्गुच्छ-गुच्छैः कुञ्चित-कुञ्चितैः कच-कलापैः कमनीय-कपोलपालिः, दूरागमनायास-वशेन सूक्ष्म-मौक्तिक-पटलेनेव स्वेद-बिन्दु-व्रजेन समाच्छादित-ललाट-कपोल-नासाग्रोत्तरोष्ठः, प्रसन्न-वदनाम्भोज-प्रदर्शित-दृढ-सिद्धान्त-महोत्साहः, राजत-सूत्र-शिल्पकृत-बहुल-चाकचक्यवक्र-

हरितोष्णीष-शोभितः, हरितेनैव च कञ्चुकेन प्रकटीकृत-व्यूढगूढ-चरता-कार्यः, कोऽपि शिववीरस्य विश्वासपात्रं सिंहदुर्गात् तस्यैव पत्रमादाय तोरणदुर्गं प्रयाति ।

व्याख्या—अस्मिन् समये=वार्षुकमेघाच्छन्नसायङ्कालिककाले, एकः=अन्यतमः, षोडशवर्षदेशीयः=षोडशवर्षकल्पः, गौरः=शुभ्राङ्गः, युवा=युवकः, हयेन=वाजिना, पर्वतश्रेणीरुपर्युपरि=गिरिशिखरमुपर्युपरि, गच्छति स्म=व्रजति स्म । एषः=अयम्, सुघटितदृढशरीरः=सुन्दरशक्तदेहः, श्यामश्यामैः=नितान्तकृष्णैः, गुच्छगुच्छैः=गुच्छबहुलैः, कुञ्चितकुञ्चितैः=आभ्रमितैः, कचकलापैः=केशसमूहैः, कमनीयकपोलपालिः=मनोहरगण्डस्थलः दूरागमनायासवशेन=अधिकमार्गचलनपरिश्रमेण, सूक्ष्ममौक्तिकपटलेनेव=लघुमुक्तासमूहेनेव, स्वेदविन्दुव्रजेन=घर्मजलकणसमूहेन, समाच्छादितललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठः=व्याप्तालिकगण्डस्थलनासाग्रोत्तरोष्ठः, प्रसन्नवदनाम्भोजप्रदर्शितदृढसिद्धान्तमहोत्साहः=विकसितमुखकमलप्रदर्शितदृढकर्तव्यपरायणतामहाहर्षः, राजतसूत्रशिल्पकृतबहुलचाकचक्यवक्रहरितोष्णीषशोभितः=रौप्यतन्तुशिल्पकृतप्रचुरचाकचक्यवक्रहरिद्वर्णशिरोवेष्टनविभूषितः, हरितेनैव=हरिद्वर्णेनैव, च, कञ्चुकेन=अङ्गरक्षकेन, प्रकटीकृतव्यूढगूढचरताकार्यः=स्पष्टीकृतस्वीकृतगुप्तचरकृत्यः, कोऽपि, शिववीरस्य='शिवाजी' इत्याख्यस्य नृपतेः, विश्वासपात्रम्=हृदयाभिन्नम्, सिंहदुर्गात्=एतन्नामकदुर्गात्, तस्यैव=शिववीरस्यैव, पत्रमादाय लेखं गृहीत्वा, तोरणदुर्गम्=एतन्नामकदुर्गम्, प्रयाति=गच्छति ।

समासः—सुघटितं दृढं शरीरं यस्यासौ सुघटितदृढशरीरः । कचानां कलापैः कचकलापैः । कमनीया कपोलानां पालिः यस्यासौ कमनीयकपोलपालिः । दूरात् आगमनेन यः आयासः, तस्य वशम्, तेन दूरागमनायासवशेन । सूक्ष्ममौक्तिकानां पटलस्तेन सूक्ष्ममौक्तिकपटलेन । स्वेदस्य बिन्दूनां व्रजस्तेन स्वेदबिन्दुव्रजेन । समाच्छादितं ललाटश्च कपोलश्च नासाग्रश्च उत्तरोष्ठश्चेति तत् यस्य सः समाच्छादितललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठः । प्रसन्नेन वदनाम्भोजेन प्रदर्शितः दृढः सिद्धान्तस्य महोत्साहः येन सः प्रसन्नवदनाम्भोजप्रदर्शितदृढसिद्धान्तमहोत्साहः । राजतसूत्रस्य शिल्पेन कृतं बहुलं चाकचक्यं यस्य तथाभूतं वक्रं हरितश्च यत् उष्णीषम्, तेन शोभितः राजतसूत्रशिल्पकृतबहुलचाकचक्यवक्रहरितोष्णीषशोभितः । प्रकटीकृतं व्यूढं गूढचरतायाः कार्यं येन सः प्रकटीकृतव्यूढगूढचरताकार्यः ।

शब्दार्थ—अस्मिन् समये=इस समय में, एकः=एक, षोडशवर्षदेशीयः=लगभग सोलह वर्ष का, गौरः=गौरवर्णवाला, युवा=युवक, हयेन=घोड़े से, पर्वतश्रेणीः=पर्वतमाला को, गच्छति स्म=जा रहा था, सुघटितदृढ-शरीरः=सुन्दर पुष्ट देहधारी, श्यामश्यामैः=अत्यन्त काले, गुच्छगुच्छैः=गुच्छेदार, कुञ्चितकुञ्चितैः=घुंघराले, कचकलापैः=केशसमूहों द्वारा, कमनीय-कपोलपालिः=कोमल गालों वाला, दूरागमनायासवशेन=दूर से आने के कारण श्रान्त, सूक्ष्ममौक्तिकपटलेनेव=छोटे-छोटे मोतियों के समान, स्वेद-विन्दुव्रजेन=पसीने की बूंदों से, समाच्छादितललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठः=व्याप्त है मस्तक, कपोल, नासिका का अग्रभाग तथा ऊपरी ओठ जिसका, प्रसन्नवदनाम्भोजप्रदर्शितदृढसिद्धान्तमहोत्साहः=प्रसन्न मुखकमल से दृढ सिद्धान्त के महोत्साह को प्रकट करने वाला, राजतसूत्रशिल्पकृतबहुलचाकचक्य-वक्रहरितोष्णीषशोभितः=चाँदी के तार के कारण अत्यधिक चमकने वाले तथा टेढ़े हरे साफे से शोभायमान, हरितेन एव=हरे रंग के ही, कञ्चुकेन=कञ्चुक (कुर्ता) से, प्रकटीकृतव्यूढगूढचरताकार्यः=गुप्तचर के कार्य को स्वीकार करने की सूचना देने वाला, तस्यैव=उस शिवाजी का ही, आदाय=लेकर, तोरणदुर्गम्=तोरण नामक किले को, प्रयाति=जा रहा है।

हिन्दी—इसी समय लगभग सोलह वर्ष का एक गौराङ्ग युवक घोड़े पर चढ़ा हुआ पर्वतमाला के ऊपर-ऊपर चला जा रहा था। यह सुघटित दृढ़ शरीर वाला, काले-काले गुच्छेदार तथा घुंघराले केशों से सुशोभित कपोलों वाला, दूर से आगमन के कारण थकान से समुत्पन्न छोटे-छोटे मोतियों के समान पसीने की बूंदों से व्याप्त मस्तक, कपोल, नासिका के अग्रभाग तथा ऊपरी ओठों वाला, प्रसन्न मुख-कमल से दृढ़ सिद्धान्त सम्बन्धी महोत्साह को प्रकट करने वाला, चाँदी के सूत्र (तार) से काम किये हुए होने के कारण अत्यधिक चमकने वाले तथा टेढ़े बँधे हुए हरे साफे से सुशोभित, हरे रंग के ही कञ्चुक से गुप्तचर के कार्य की सूचना देने वाला कोई वीर शिवाजी का विश्वासभाजन सिंहदुर्ग से उन्हीं शिववीर का पत्र लेकर तोरण दुर्ग को जा रहा है।

टिप्पणी—प्रस्तुत गद्यखण्ड में श्याम युवक रघुनाथ सिंह का सुन्दर एवं यथार्थ रेखाचित्र प्रदर्शित किया गया है। 'सूक्ष्ममौक्तिकपटलेनेव' इस स्थल पर उत्प्रेक्षालंकार और 'प्रसन्नवदनाम्भोजप्रदर्शितदृढसिद्धान्तमहोत्साहः' इस स्थान

पर महोत्साह दिखाने के प्रति प्रसन्नवदन कारण है, अतः काव्यलिङ्गालंकार की सुषमा संदर्शनीय है ॥ ३ ॥

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायंसमय-प्रयुक्तः स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः। झञ्झा-वातोद्धूतै रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुम-परागैः शुष्कपुष्पैश्च पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वत-श्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिख-राणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात उपत्यकाः, न कोऽपि सरलो मार्गः, नानुद्भेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नाऽव-लोक्यते। क्षणे क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाण-खण्डेषु प्रस्खलन्ति। पदे पदे दोधूयमाना वृक्ष-शाखाः सम्मुखमाघ्नन्ति, परं दृढसङ्कल्पोऽयं सादी न स्वकार्याद् विरमति। परितः स-हडहडा-शब्दं दोधूयमानानां परस्सहस्र-वृक्षाणाम्, वाताघात-सञ्जात-पाषाण-पातानां प्रपातानाम्, महान्धतमसेन ग्रस्यमानानामिव सत्त्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन स्वनेन कवलीकृतमिव गगन-तलम्। परं नैष वीरः स्वकार्याद् विरमति।

व्याख्या—तावत् = तदानीमेव, अकस्मात् = सहसा, उत्थितः = उत्पन्नः, महान् = दीर्घः, झञ्झावातः = सवृष्टिको महावातः, एकः = अन्यतमः, सायं-समयप्रवृत्तः = सायंकालकृतः, स्वभाववृत्तोऽन्धकारः = प्रकृत्यावृत्तो महातमः, स च, द्विगुणितः = द्विगुणतामधिगतः, मेघमालाभिः=घनपङ्क्तिभिः, झञ्झावातोद्-धूतैः = सवृष्टिवातोत्थापितैः, रेणुभिः = धूलिभिः, शीर्णपत्रैः = पतितपलाशैः, कुसुमपरागैः = पुष्पमकरन्दैः, शुष्कपुष्पैः = विशुष्ककुसुमैः, च = पुनः, एषः = झञ्झावातः, द्वैगुण्यं प्राप्तः = द्विगुणितोऽभवत्। इह = अत्र, पर्वतश्रेणीतः = गिरिशृङ्खलातः, पर्वतश्रेणीः = शैलमालाः, वनाद् = विपिनात्, वनानि = विपिनानि, शिखरात् = शृङ्गात्, शिखराणि = शृङ्गानि, प्रपातात्=जलोत्पतन-स्थानात्, प्रपाताः = जलोत्पतनस्थानाः, अधित्यकातः = गिरिशिखरभूमेः, अधित्यकाः=गिरिशिखरभूमीः, उपत्यकात् =पर्वतनिम्नभूमेः, उपत्यकाः = पर्वत-निम्नभूमीः, न = नहि, कोऽपि, सरलः = ऋजुः, मार्गः=पन्थाः, न, अनुद्भेदिनी दुःखदायिनी, भूमिः = पृथ्वी, पन्थाः = मार्गः, अपि च, नावलोक्यते = न दृश्यते। क्षणे क्षणे = पले पले, हयस्य = घोटकस्य, खुराः = शफाः, चिक्कण-पाषाणखण्डेषु = स्निग्धशिलाशकलेषु, प्रस्खलन्ति = स्खलिताः भवन्ति। पदे

पदे=स्थाने स्थाने, दोधूयमानाः=कम्पमानाः, वृक्षशाखाः=शाखिशाखाः, सम्मुखम्=अभिमुखम्, आघ्नन्ति=ताडयन्ति, परम्=किन्तु, दृढसङ्कल्पः=दृढप्रतिज्ञः, अयम्=एषः, सादी=अश्वारोही, न=नहि, स्वकार्यात्=निजोद्योगात्, विरमति=विमुखो भवति। परितः=सर्वतः, सहडहडाशब्दम्=हडहड-ध्वनिसंयुतम्, दोधूयमानानाम्=वेपमानानाम्, परस्सहस्रवृक्षाणाम्=सहस्राधिकतरूणाम्, वाताघातसञ्जातपाषाणपातानाम्=पवनताडनसम्भूतशिलापतनानाम्, प्रपातानम्=स्रोतसाम्, महान्धतमसेन=घोरान्धकारेण, ग्रस्यमानानामिव=निगीर्यमाणानामिव, सत्त्वानाम्=प्राणिनाम्, क्रन्दनस्य=रोदनस्य, च, भयानकेन=भीतिजनकेन, स्वनेन=शब्देन, कवलीकृतमिव=ग्रस्तमिव, गगनतलम्=नभोमण्डलम्, परम्=किन्तु, नैषः=नायम्, वीरः=शूरः, स्वकार्याद्=विशिष्टनियोगरूपात्, विरमति=विरतो भवति।

समासः—सायंसमये प्रयुक्तः सायंसमयप्रयुक्तः। स्वभावेन वृत्तः स्वभाववृत्तः। झञ्झावातेन उद्धूतास्तैः झञ्झावातोद्धूतैः। शीर्णैः पत्रैः शीर्णपत्रैः। कुसुमानां परागैः कुसुमपरागैः। शुष्कैः पुष्पैः शुष्कपुष्पैः। चिक्कणपाषाणानां खण्डेषु चिक्कणपाषाणखण्डेषु। वातस्य आघातेन सञ्जातः पाषाणानां पातः येषां, तेषां वाताघातसञ्जातपाषाणपातानाम्।

व्याकरणम्—उत्थितः—उद्+स्था+क्त। द्विगुणितः—द्विगुण+इतच्। उद्धूतः—उद्+धूञ्+क्त। शीर्णः—शृ+क्त। द्वैगुण्यम्—द्विगुण+ष्यञ्। अनुद्भेदिनी—अन्+उद्+भिद्+घञ्+इनि+ङीप्। दोधूयमानाः—धूञ्+यङ् (द्वित्व)+शानच्। विरमति—वि+रम्+लट्+तिप्। ग्रस्यमानानाम्—ग्रस्+यक्+शानच् (ष० ब० व०)।

शब्दार्थ—तावत्=तब तक, अकस्मात्=अचानक, झञ्झावातः=वर्षा के साथ आँधी; 'ससृष्टिको महावातो झञ्झावातः प्रकीर्तितः' इत्यमरः। सायंसमयप्रयुक्तः=सायंकाल में होनेवाला, स्वभाववृत्तः=स्वाभाविक, द्विगुणितः=दूना हुआ, मेघमालाभिः=मेघमालाओं से, रेणुभिः=धूलियों से, शीर्णपत्रैः=गिरे हुए पत्तों से, कुसुमपरागैः=फूलों के परागों से, शुष्कपुष्पैः=सूखे हुए फूलों से, च=और, द्वैगुण्यम्=द्विगुणता को, प्रपातात्=झरने से, अधित्यकातः=पर्वत की ऊपरी भूमि से, उपत्यकातः=पर्वत की निम्न भूमि से, सरलः=सीधा, अनुद्भेदिनी=समतल, चिक्कणपाषाणखण्डेषु=चिकने पत्थरों पर, प्रस्खलन्ति=फिसल रहे हैं, पदे-पदे=थोड़ी-थोड़ी दूर पर, दोधूयमानाः=

हिलती हुई, सम्मुखम् = सामने, आघ्नन्ति = टकराती हैं, दृढसङ्कल्पः = दृढ संकल्प वाला, सादी = घुड़सवार, स्वकार्यात् = अपने कार्य से, विरमति = रुक रहा है, सहडहडाशब्दम् = हड़-हड़ शब्द के साथ, परस्सहस्रवृक्षाणाम् = हजारों वक्षों के, महान्धतमसेन = घोर अन्धकार से, सत्त्वानाम् = जीवों के, स्वनेन = शब्द के द्वारा, कवलीकृतमिव = कवलित होता हुआ-सा, गगनतलम् = आकाश-मण्डल, स्वकार्यात् = अपने कार्य से, विरमति = विरत होता है।

हिन्दी—तब तक अचानक जोर से वर्षाभरी आँधी आ गई। सायंकाल में स्वाभाविक रूप से होने वाला अन्धकार मेघमालाओं से द्विगुणित हो गया। आँधी से उठी धूल, गिरे हुए पत्तों, पुष्पों के परागों और सूखे सुमनों से अन्धकार और भी दूना हो गया। यहाँ पर्वतमालाओं के बाद पर्वतमालाएँ, वन के बाद वन, शिखर के पश्चात् शिखर, झरने के बाद झरनें, अधित्यका के अनन्तर अधित्यकाएँ और उपत्यका के अनन्तर उपत्यकाएँ हैं। कोई भी सीधा रास्ता नहीं है, कहीं भी समतल भूमि नहीं है और न कहीं रास्ता दिखाई देता है। क्षण-क्षण पर घोड़े के खुर चिकने पत्थरखण्डों पर फिसल जाते हैं। पग-पग पर हिलती हुई वृक्ष की शाखाएँ सामने टकराती हैं। किन्तु दृढ़ संकल्प वाला यह घुड़सवार अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है। तभी और हड़-हड़ शब्द के साथ हिलने वाले हजारों वृक्षों, वायु के आघात से गिरते हुए पत्थरों वाले झरनों तथा घोर अन्धकार से ग्रसे जाते हुए से वन्य जीवों के क्रन्दन के भयानक शब्द से समस्त गगनमण्डल कवलीकृत-सा व्याप्त हो गया। किन्तु यह वीर अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है।

टिप्पणी—इस गद्यभाग में भीषण बवंडर के समय का नैसर्गिक चित्रण, उत्प्रेक्षालंकार के साथ मनोहर रीति से किया गया है। शिवाजी के अनुशासित और दृढ़प्रतिज्ञ कर्मचारियों की छवि को संदर्शित किया गया है ॥४॥

कदाचित् किञ्चिद् भीत इव घोटकः पादाभ्यामुत्तिष्ठति, कदाचिच्चलन्नकस्मात् परिवर्त्तते, कदाचिदुत्प्लुत्य च गच्छति। परमेष वीरो वल्गां संयच्छन्, मध्ये मध्ये सैन्धवस्य स्कन्धौ कन्धरां च करतलेनाऽऽस्फोटयन्, चुचुत्कारेण सान्त्वयंश्च न स्वकार्याद् विरमति। तावदारब्धश्चञ्चच्चञ्चल-चामीकर-रेखाकाराभिश्चञ्चलाभिरपि स्वचमत्कारः। यावदेकस्या दिशि नयने विक्षिपन्ती, कर्णौ स्फोटयन्ती, अवलोचकान्

कम्पयन्ती, वन्यांस्त्रासयन्ती, गगनं कर्त्तयन्ती, मेघान् सौवर्ण-कषेणेव घ्नती, अन्धकारमग्निनेव दहन्ती, चपला चमत्करोति; तावदन्यस्यामपि अपरा ज्वालाजालेनेव बलाहकानावृणोति, स्फुरणोत्तरं स्फुरणं गर्ज्जनोत्तरं गर्ज्जनमिति परश्शतशतघ्नीप्रचार-जन्येनेव कन्दरि-कन्दर-प्रतिध्वनिभिश्चतुर्गुणितेन महाशब्देन पर्यपूर्यत साऽरण्यानी। परमधुनाऽपि—'देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम्' इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीर-चरो न निजकार्यान्निवर्त्तते ।

व्याख्या—कदाचित् = कस्मिंश्चित् समये, किञ्चित् = ईषद्, भीत इव = त्रस्त इव, घोटकः = हयः, पादाभ्याम् = चरणाभ्याम्, उत्तिष्ठति = उत्प्लवते, कदाचित्, चलन् = गच्छन्, अकस्मात् = सहसा, परिवर्तते = परावर्तते, कदाचित्, उत्प्लुत्य = कूर्दयित्वा, च = पुनः, गच्छति = व्रजति। परम् = किन्तु, एषः = अयम्, वीरः = शूरः, वल्गाम् = प्रग्रहम्, संयच्छन् = नियमयन्, मध्ये-मध्ये = अन्तरा-अन्तरा, सैन्धवस्य = घोटकस्य, स्कन्धौ = अंसौ, कन्धराम् = ग्रीवाम्, च = पुनः, करतलेन = हस्ततलेन, आस्फोटयन् = परामृशन्, चुचुत्कारेण = चुचुदिति शब्दकरणेन, सान्त्वयंश्च = आश्वासयंश्च, न = नहि, स्वकार्यात् = निजोद्योगात्, विरमति = विरतो भवति। तावद्, आरब्धः = समारब्धः, चञ्चच्चञ्चलचामीकररेखाकाराभिश्च = विशिष्टचाकचक्ययुक्तस्वर्णरेखाकाराभिः, चञ्चलाभिरपि = तडिद्भिरपि, स्वचमत्कारः: = निजचाकचक्यविशेषः, यावद्, एकस्याम् = अन्यस्याम्, दिशि = आशायाम्, नयने = नेत्रे, विक्षिपन्ती = प्रक्षिपन्ती, कर्णौ = श्रोत्रौ, स्फोटयन्ती = बधिरीकुर्वन्ती, अवलोचकान् = दर्शकान्, कम्पयन्ती = वेपयन्ती, वन्यान् = जङ्गलस्थान्, त्रासयन्ती = भीषयन्ती, गगनम् = नभः, कर्तयन्ती = खण्डयन्ती, मेघान् = घनान्, सौवर्णकषेणेव = हैमशाणेनेव, घ्नती = ताडयन्ती, अन्धकारम् = तमः, अग्निनेव = वह्निनेव, दहन्ती = प्रज्वालयन्ती, चपला = तडित्, चमत्करोति = प्रस्फुरति, तावद्, अन्यस्यामपि = अपरस्यामपि, अपरा = अन्या, ज्वालाजालेनेव = ज्योतिसमूहेनेव, बलाहकान् = मेघान्, आवृणोति = आच्छादयति, स्फुरणोत्तरम् = चमत्कारोत्तरम्, स्फुरणम् = चमत्कारम्, गर्जनोत्तरम् = ध्वननानन्तरम्, गर्जनम् = ध्वननम्, इति = एवम्, परश्शतघ्नीप्रचारजन्येनेव = शताधिकशतमारिकाप्रचारोत्पन्नेनेव, कन्दरिकन्दर-प्रतिध्वनिभिः = पर्वतगह्वरप्रतिस्वनैः, चतुर्गुणितेन = चतुर्गुणीभूतेन, महाशब्देन =

महास्वनेन, पर्यपूर्यंत = पूरिताऽभवत्, सा = वनपथि वर्तमाना, अरण्यानी = महावनावलिः, परम् = किन्तु, अधुनाऽपि = साम्प्रतमपि, देहम् = शरीरम्, वा = अथवा, पातयेयम् = नाशयेयम्, कार्यम् = निजोद्योगम्, वा = अथवा, साधयेयम् = सम्पन्नं कुर्याम्, इति = एवम्, कृतप्रतिज्ञः = विहितनिश्चयः, असौ = सः, शिववीरचरः = शिववीरस्पशः, न = नहि, निजकार्यात् = स्वोद्योगात्, निवर्तते = निवृत्तो भवति ।

समासः—चञ्चच्चञ्चलस्य चामीकरस्य रेखाकाराणामिव आकारः यासां, ताभिः चञ्चच्चञ्चलचामीकररेखाकाराभिः । ज्वालानां जालेन ज्वालाजालेन । परश्शतानां शतघ्नीनां प्रचाराज्जन्यस्तेन परश्शतशतघ्नीप्रचारजन्येन । कन्दरिणः कन्दराभ्यः जाताः प्रतिध्वन्यस्ताभिः कन्दरिकन्दरप्रतिध्वनिभिः । कृता प्रतिज्ञा येनासौ कृतप्रतिज्ञः ।

व्याकरणम्—भीतः—भी + क्त । चलन्—चल् + शतृ । उत्प्लुत्य—उद् + प्लु + क्त्वा + ल्यप् । संयच्छन्—सम् + यच्छ + शतृ । सैन्धवः—सिन्धु + अण् । आस्फोटयन्—आ + स्फुट् + णिच् + शतृ । आरब्धः—आ + रभ् + क्त । विक्षिपन्ती—वि + क्षिप् + शतृ + ङीप् (स्त्री०) । स्फोटयन्ती—स्फुट् + णिच् + शतृ । कम्पयन्ती—कम्प् + शतृ + ङीप् (स्त्री०) । वन्यान्—वने भवाः वन्याः, तान्; वन + यत् (द्वि० ब० व०) । त्रासयन्ती—त्रस् + णिच् + शतृ + ङीप् (स्त्री०) । कर्त्तयन्ती—कर्तृ + णिच् + शतृ (स्त्री०) । घ्नती—हन् + शतृ (स्त्री०) । दहन्ती—दह् + शतृ (स्त्री०) । स्फुरण—स्फुर् + ल्यट् ।

शब्दार्थ—कदाचित् = कभी-कभी, किञ्चित् = थोड़ा-सा, भीत इव = डरा जैसा, घोटकः = घोड़ा, पादाभ्याम् = पैरों से, उत्तिष्ठति = खड़ा हो जाता है, चलन् = चलता हुआ, अकस्मात् = अचानक, परिवर्तते = लौट पड़ता है, उत्प्लुत्य = उछलकर, वल्गाम् = लगाम को, संयच्छन् = खींचता हुआ, सैन्धवस्य = घोड़े के, स्कन्धौ = कन्धों को, कन्धराम् = गरदन को, करतलेन = हाथ से, आस्फोटयन् = थपथपाता हुआ, चुचुत्कारेण = चू-चू शब्द के द्वारा, सान्त्वयन् = सान्त्वना देते हुए, स्वकार्यात् = अपने कार्य से, न विरमति = विरत नहीं हो रहा है, तावद् = तब तक, आरब्धः = आरम्भ कर दिया, चञ्चच्चञ्चलचामीकररेखाकाराभिः = सोने की रेखा की आकार वाली चंचल बिजलियों के द्वारा, स्वचमत्कारः = अपना चमत्कार, यावद् = जब तक, एकस्याम् = एक,

दिशि = दिशा में, विक्षिपन्ती = चकाचौंध करती हुई, स्फोटयन्ती = फाड़ती हुई, अवलोचकान् = दर्शकों को, कम्पयन्ती = कँपाती हुई, वन्यान् = जङ्गलियों को, त्रासयन्ती = भयभीत करती हुई, कर्त्तयन्ती = काटती हुई, सौवर्णकषेणेव = सुवर्ण के कोड़े के समान, घ्नती = मारती हुई, दहन्ती = जलाती हुई, चपला = बिजली, चमत्करोति = चमकती है, अन्यस्याम् = दूसरी दिशा में, ज्वालाजालेन = ज्वाला-समूहों से, बलाहकान् = मेघों को, आवृणोति = ढक लेती है, स्फुरणोत्तरम् = चमकने के बाद, गर्जनोत्तरम् = गर्जन के बाद, परश्शतघ्नीप्रचारजन्येन = सैकड़ों तोपों के चलाने से उत्पन्न, कन्दरिकन्दरप्रतिध्वनिभिः = पर्वत की कन्दराओं की प्रतिध्वनियों से, चतुर्गुणितेन = चौगुने हुए, पर्यपूरत = भर दिया, अरण्यानी = जंगल, कृतप्रतिज्ञः = प्रतिज्ञा किये हुए, शिववीरचरः = वीर शिवाजी का सेवक, न निवर्तते = नहीं विरत होता है।

हिन्दी—कभी-कभी कुछ डरा हुआ-सा घोड़ा दोनों पैरों से खड़ा हो जाता है, कभी चलते-चलते अचानक लौट पड़ता है और कभी कूदकर चलता है। किन्तु यह वीर लगाम को साधे हुए, बीच-बीच में घोड़े के कन्धों और गर्दन को थपथपाता हुआ, चुचकारियों से सान्त्वना देता हुआ अपने कार्य से नहीं रुकता है। तब तक चमचमाती हुई सुवर्णरेखाओं के आकार वाली चञ्चल बिजलियों ने भी अपना चमत्कार आरम्भ कर दिया। जब तक एक ओर नेत्रों को विक्षिप्त करती हुई, कानों को फाड़ती हुई, दर्शकों को कँपाती हुई, जंगली जीवों को डराती हुई, आकाश को काटती हुई, मेघों को सोने के कोड़ों से मारती हुई-सी, अन्धकार को अग्नि से जलाती हुई-सी बिजली चमकती है, तब तक दूसरी ओर भी मानो ज्वाला-समूहों से बादलों को ढक लेती है। चमकने के बाद चमकना, गर्जन के बाद गर्जन—इस प्रकार सैकड़ों तोपों के छूटने से उत्पन्न हुए के समान पर्वत की गुफाओं की प्रतिध्वनि से चौगुने हुए महाशब्द से वह वनस्थली भर गई अर्थात् व्याप्त हो गई। फिर भी 'कार्य सिद्ध करूँगा या शरीर नष्ट करूँगा' इस प्रतिज्ञा वाला शिवाजी का दूत अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है॥ ५॥

यस्याऽध्यक्षः स्वयं परिश्रमी; कथं स न स्यात् स्वयं परिश्रमी? यस्य प्रभुः स्वयं साहसी; कथं स न भवेत् स्वयं साहसी? यस्य स्वामी स्वयमापदो न गणयति; कथं स गणयेदापदः? यस्य च महाराजः

स्वयं सङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति; कथं स न साधयेत् स्व-सङ्कल्पितम् ? अस्त्येष महाराज-शिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत् कथमेष झञ्झा विभीषिकाभिर्बिभीषितः प्रभु-कार्यं विगणयेत् ? तदितोऽप्येष तथैव त्वरितमश्वं चालयंश्चलति ।

व्याख्या—यस्य=सेवकस्य, अध्यक्षः=स्वामी, परिश्रमी=श्रमशीलः, सः=सेवकः, कथम्=किम्, न=नहि, स्यात्=भवेत्, परिश्रमी=श्रमशीलः, यस्य=जनस्य, प्रभुः=नृपः, स्वयम्, साहसी=साहससम्पन्नः, कथम्=केन प्रकारेण, सः=युवकः, न=नहि, भवेत्=स्यात्, स्वयम्, साहसी=साहसिकः, यस्य स्वामी=प्रभुः, स्वयम्=निजः, आपदः=विपदः, न=नहि, गणयति=मनुते, कथम्, सः=वीरः, गणयेदापदः=विपदश्चिन्तयेत्, यस्य च=सेवकस्य, महाराजः=सम्राड्, स्वयम्=निजः, सङ्कल्पितम्=नियमेन निश्चितम्, निश्चयेन=सन्देहविरहेण, साधयति=सम्पन्नं करोति, कथम्, सः=जनः, न=नहि, साधयेत्=सिद्धिं कुर्यात्, स्वसङ्कल्पितम्=निजनिश्चयम्, अस्ति=वर्तते, एषः=अयम्, महाराजशिववीरस्य=नृपशिववीरस्य, दयापात्रम्=कृपापात्रम्, चरः=स्पशः, तत्कथम्, एषः=अयम्, झञ्झाविभीषिकाभिः=सवृष्टिमहावातमयैः, बिभीषितः=भयभीतः, प्रभुकार्यम्=स्वामिनियोगम्, विगणयेत्=विध्वंसयेत्, तत्, इतः=अस्मात् स्थानात्, अपि, एषः=अयम्, तथैव=तेनैव प्रकारेण, त्वरितम्=शीघ्रम्, अश्वम्=घोटकम्, चालयन्=वाहयन्, चलति=गच्छति ।

व्याकरणम्—साधयति—साधि+लट्+तिप् । चालयन्—चल्+णिच्+शतृ । चलति—चल्+लट्+तिप् ।

शब्दार्थ—यस्य=जिस युवक का, अध्यक्षः=नेता, परिश्रमी=कर्मठ, आपदः=आपत्तियों को, न गणयति=नहीं गिनता है, गणयेत्=गिन सकता है, सङ्कल्पितम्=प्रतिज्ञा को, साधयति=सिद्ध करता है, दयापात्रम्=कृपापात्र, झञ्झाविभीषिकाभिः=तूफान की विभीषिकाओं से, विभीषितः=डरा हुआ, विगणयेत्=अवहेलना कर सकता है, इतोऽपि=इतने पर भी, चालयन्=चलाता हुआ, चलति=चलता है ।

हिन्दी—जिसका अध्यक्ष स्वयं परिश्रमी हो, वह परिश्रमी कैसे न हो ? जिसका प्रभु स्वयं साहसी हो, वह साहसी कैसे न हो ? जिसका स्वामी स्वयं विपत्तियों को नहीं गिनता, वह आपत्तियों को कैसे गिने ? जिसका महाराज

स्वयं संकल्पित कार्य को निश्चयपूर्वक सिद्ध करता है, वह स्वसंकल्पित कार्य को कैसे न सिद्ध करे ? यह महाराज शिवाजी का दयापात्र दूत है, तो कैसे वह झञ्झावात के डर से डरकर प्रभु के कार्य की उपेक्षा कर दे। अब भी वह घोड़ा बढ़ाता हुआ उसी प्रकार तीव्र गति से चलता है ॥ ६ ॥

अथ किञ्चित् स्रोतस्समुल्लङ्घमानोऽस्य तुरङ्गः कस्यापि दोधूयमानतरोः शाखया तथाऽभिहतो यथोच्छलन् भूमौ पपात, सादिनं चैकतः समपीपतत्। किन्तु तत्क्षणादेव सादी समुत्थितो वाजिनो वल्गां गृहीत्वा, सचुचुत्कारं ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य, अज्ञासीद् यदश्वः स्वेदैः स्नातोऽस्तीति। तच्चक्षुषी विस्फार्य, पार्श्वस्थ-पलाशिनं निपुणं निरीक्ष्य, तच्छाखायामेव कानिचिन्निजवस्तून्यासज्य, दक्षिण-कर-धृत-रश्मिरश्वं शनैः शनैः परिभ्रमयितुमारेभे। अश्वश्च फेनान् पातयन् कन्धरामुद्धूनयन् ह्रेषा-रवैश्चिर-परिश्रमं प्रकटयन् प्रस्यन्द-जल-सिक्त-भूभागः, समुत्सृष्ट-पुरीषः, शुष्क-स्वेदः, मुहूर्तार्द्धेनैव विस्मृत-परिश्रमः, सगति-स्तम्भं खुराग्रैर्भूमिमुत्खनन्, कर्णावुत्तम्भयन्, लाङ्गूलं लोलयन्, सादिनो दक्षिणदेशे पृष्ठं निकटयन्, पुनरेनं वोढुं परतो धावितुं च समीहां समसूसुचत्।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, किञ्चित्, स्रोतसम्=जलनिर्गमनम्, समुल्लङ्घमानः=उत्क्रम्यमाणः, अस्य=पथिकस्य, तुरङ्गः=घोटकः, कस्यापि, दोधूयमानतरोः=कम्पमानवृक्षस्य, शाखया=स्कन्धेन, तथा, अभिहतः=ताडितः, यथा, उच्छलन्=उद्गच्छन्, भूमौ=धरायाम्, पपात=पतितः, सादिनम्=घोटकारोहम्, च, एकतः=एकस्यां दिशि, समपीपतत्=पातयामास, किन्तु=परन्तु, तत्क्षणादेव=तत्कालादेव, सादी=अश्वारोही, समुत्थितः=विहितोत्थानः, वाजिनः=घोटकस्य, वल्गाम्=रज्जुम्, गृहीत्वा=समादाय, सचुचुत्कारम्=चु-चु इत्याकारकशब्दयुतम्, ग्रीवाम्=कन्धराम्, पृष्ठम्=पृष्ठभागञ्च, आस्फोट्य=आस्फाल्य, अज्ञासीद्=अजानात्, यद्, अश्वः=घोटकः, स्वेदैः=घर्मबिन्दुभिः, स्नातोऽस्ति=कृतस्नानो विद्यते, इति। तद् चक्षुषी=नेत्रे, विस्फार्य=उन्मील्य, पार्श्वस्थम्=निकटस्थम्, पलाशिनम्=वृक्षम्, निपुणम्=सुष्ठु, निरीक्ष्य=दृष्ट्वा, तच्छायायामेव=वृक्षस्कन्धे एव, कानिचित्, निजवस्तूनि=स्ववस्तुजातानि, आसज्य=लम्बयित्वा, दक्षिणकरधृतरश्मिः=वामे-

तरहस्तगृहीतवल्गः, अश्वम् = घोटकम्, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, परिभ्रमयितुम् = परिचालयितुम्, आरेभे = समारब्धवान्, अश्वश्च = घोटकश्च, फेनान् = डिण्डीरान्, पातयन् = निःसारयन्, कन्धराम् = ग्रीवाम्, उद्धूनयन् = कम्पयन्, ह्रेषारवैः = घोटकध्वनिभिः, चिरपरिश्रमम् = विपुलश्रमम्, प्रकटयन् = प्रकाशयन्, प्रस्यन्दजलसिक्तभूभागः = च्युतवारिक्लिन्नधराभागः, समुत्सृष्टपुरीषः = त्यक्तपुरीषः, शुष्कस्वेदः = समाप्तघर्मबिन्दुः, मुहूर्तार्द्धेनैव = क्षणार्द्धेनैव, विस्मृतपरिश्रमः = व्यपगतक्लमः, सगतिस्तम्भम् = सञ्चालनावरोधम्, खुराग्रैः = पादाक्रान्तैः, भूमिम् = पृथिवीम्, उत्खनन् = उच्छालयन्, कर्णौ = श्रोत्रे, उत्तम्भयन् = उत्तोलयन्, लाङ्गूलम् = पुच्छम्, लोलयन् = चालयन्, सादिनः = अश्वारोहस्य, दक्षिणदेशे = सव्यभागे, पृष्ठम् = पृष्ठभागम्, निकटयन् = समीपयन्, पुनरेनम् = भूयस्तम्, वोढुम् = नेतुम्, परतः = पुनः, धावितुम् = प्रचलितुम्, च, समीहाम् = इच्छाम्, समसूसुचत् = सूचयामास ।

समासः—दोधूयमानस्य तरोः दोधूयमानतरोः । निजानि वस्तूनि निजवस्तूनि । दक्षिणे करे धृतः रश्मिः येन सः दक्षिणकरधृतरश्मिः । प्रस्यन्दस्य जलेन सिक्तः भूभागः येन सः प्रस्यन्दजलसिक्तभूभागः ।

व्याकरणम्—समुल्लङ्घमानः—सम् + उद् + लङ्घि + शानच् (प्र० ए० व०) । उच्छलन्—उत् + चल् + शतृ । पपात—पत् + लिट् + तिप् । सादिनम्—सद् + णिच् + णिनि (द्वि० ए० व०) । समपीपतत्—सम् + पत् + णिच् + लुङ् + तिप् । समुत्थितः—सम् + उत् + स्था + क्त । आस्फोटच—आङ् + स्फुट् + ल्यप् । विस्फार्य—वि + स्फुर् + णिच् + क्त्वा + ल्यप् । पलाशिनम् + पलाश + इनि । निरीक्ष्य—निर् + ईक्ष + क्त्वा + ल्यप् । आसज्य—आ + सञ्ज् + क्त्वा + ल्यप् । परिभ्रमयितुम्—परि + भ्रम् + णिच् + तुमुन् । पातयन्—पत् + णिच् + शतृ । उद्धूनयन्—उत् + धू (नुक्) + णिच् + शतृ । समुत्सृष्टः—सम् + उद् + मृज् + क्त । उत्तम्भयन्—उद् + स्तम्भ + णिच् + शतृ । समसूसुचत्—सम् + सुच् + लुङ् + तिप् ।

शब्दार्थ—स्रोतसम् = सोते को, समुल्लङ्घमानः = पार करता हुआ, तुरङ्गः = घोड़ा, दोधूयमानतरोः = हिलते हुए वृक्ष से, अभिहतः = ठोकर खाकर, सादिनम् = घुड़सवार को, एकतः = एक ओर, समपीपतत् = फेंक दिया, तत्क्षणादेव = उसी समय, सादी = घुड़सवार, समुत्थितः = उठा हुआ, वाजिनः = घोड़े की, वल्गाम् = लगाम को, गृहीत्वा = पकड़कर, सचुचुत्कारम् =

चुचुकारता हुआ, ग्रीवाम् = गर्दन को, आस्फोटच = थपथपाकर, अज्ञासीद् = समझ गया, स्वेदैः = पसीनों से, स्नातः = स्नान किये हुए, चक्षुषी = नेत्रों को, विस्फार्य = विस्फारित करके, पलाशिनम् = वृक्ष को, निपुणम् = सावधानी-पूर्वक, निरीक्ष्य = देखकर, तच्छाखायाम् = उसकी शाखा में, कानिचित् = कुछ, आसज्य = लटकाकर, दक्षिणकरधृतरश्मिः = दाहिने हाथ में लगाम पकड़े हुए, परिभ्रमयितुम् = घुमाने के लिए, आरेभे = आरम्भ कर दिया, पातयन् = गिराता हुआ, कन्धराम् = गर्दन को, उद्धूनयन् = हिलाता हुआ, ह्रेषारवैः = हिनहिनाहट के द्वारा, चिरपरिश्रमम् = अधिक परिश्रम को, प्रकटयन् = प्रकट करता हुआ, प्रस्यन्दजलसिक्तभूभागः = पसीने से भूमि को सींचता हुआ, समुत्सृष्टपुरीषः = पुरीष (लीद) त्यागता हुआ, शुष्कस्वेदः = सूखे हुए पसीनों वाला, मुहूर्त्तार्द्धेनैव = थोड़े ही समय में, विस्मृतपरिश्रमः = थकावट भूलकर, उत्तम्भयन् = ऊपर उठाता हुआ, लाङ्गूलम् = पूंछ को, दक्षिणदेशे = दाहिनी ओर, पृष्ठम् = पीठ को, निकटयन् = निकट करता हुआ, वोढुम् = (सवार को) धारण करने के लिए, धावितुम् = चलने के लिए, समीहाम् = इच्छा को, समसूसुचत् = सूचित किया।

हिन्दी—इसके अनन्तर एक सोते को पार करता हुआ इस युवक का घोड़ा किसी हिलते हुए वृक्ष की शाखा से ऐसा टकराया कि वह उछलता हुआ जमीन पर गिर गया और सवार को एक ओर फेंक दिया। किन्तु उसी समय घुड़सवार उठकर घोड़े की लगाम को पकड़कर चुचुत्कार के साथ गर्दन और पीठ को थपथपाकर जान लिया कि घोड़ा पसीने में नहाया हुआ है। तब निकटस्थ वृक्ष को विस्फारित आँखों से सावधानीपूर्वक देखकर उसकी शाखा में ही अपनी कुछ वस्तुओं को लटकाकर और दाहिने हाथ से लगाम पकड़कर उसने घोड़े को धीरे-धीरे टहलाना प्रारम्भ किया। घोड़ा फेन गिराता हुआ, कन्धा कँपाता हुआ, हिनहिनाहट से अधिक परिश्रम को प्रकट करता हुआ, पसीने के जल से उस भूमिभाग को सींचता हुआ, पुरीष (लीद) गिराता हुआ, पसीने के सूख जाने पर क्षणभर में ही अपने परिश्रम को भूलकर चलने का अनुरोध करता हुआ, टापों के अग्रभाग से भूमि को खोदता हुआ, कान उठाये हुए, पूंछ प्रकम्पित करता हुआ, सवार के दाहिनी ओर अपनी पीठ बढ़ाता हुआ पुनः उसे सवार करने तथा दौड़ने की अपनी इच्छा को सूचित करने लगा॥ ७॥

तावदकस्मात् पूर्वस्यामतिरक्ताऽतिप्रलम्बाऽतिभयानका सकडकडा-शब्दं सौदामिनी समदेदीप्यत, तच्चमत्कार-चकितं चाश्वमेष यावत् स्थिरयति; तावत् स-तडतडा-शब्दं पूग-स्थूलैर्बिन्दुभिर्वर्षितुमारब्ध मघवा, परं राम-कार्यार्थं प्रतिष्ठमानेव मारुतिनेव न सह्यते कार्यहानिः शिववीर-चरेण। तत्क्षणमेवाऽसौ पुनः सज्जीभूय समुत्प्लुत्य घोटक-पृष्ठमारुरोह। घोटकश्च पुनस्त्वरितगत्या प्रचलितः। यदा यदा विद्युद् विद्योतते; तदा तदा पन्था अवलोक्यते, तदनुसन्धानेनैव वाहोऽयं शिला-तलानि परिक्राम्यन् लताप्रतानानि त्यजन् स्रोतांस्युल्लङ्घमानः गर्तांश्च परिजहदुच्चचाल। तावद् दूरत एवाऽऽलोक्यत तोरण-दुर्ग-दीपः, इतश्च चरस्यैतस्य दृढप्रतिज्ञतां निर्भीकतां सोत्साहतां स्वामिकार्य-साधन-सत्य-सङ्कल्पतां च परीक्ष्येव प्रशशाम वृष्टिः। अम्ल-बलेन दुग्धमिव च खण्डशोऽभून्मेघमाला, ददृशे च पूर्वस्यां कलानाथः।

व्याख्या—तावत्=एतस्मिन्नन्तरे, अकस्मात्=सहसा, पूर्वस्याम्=प्राच्याम्, अतिरक्ता=रुधिरवर्णबहुला, अतिप्रलम्बा=बहुलम्बमाना, अति-भयानका=बहुभीतिकरा, सकडकडाशब्दम्=कडकडेति शब्दयुक्ता, सौदामिनी=चपला, समदेदीप्यत=भृशं चमत्कारमजीजनत्। तच्चमत्कारचकितम्=तडिच्चाकचक्यविस्मितम्, च, अश्वम्=वाजिनम्, एषः=दूतः, यावत्=यथा, स्थिरयति=अवरुणद्धि, तावत्=तस्मिन् काले, सतडतडाशब्दम्=तडतडेति शब्दसहितम्, पूगस्थलैः=क्रमुकफलमहत्तरैः, बिन्दुभिः=पृषद्भिः, वर्षितुम्=वर्षणं विधातुम्, आरब्धः=समारब्धः, मघवा=पुरन्दरः, परम्=किन्तु, रामकार्यार्थम्=राघवोद्योगार्थम्, प्रतिष्ठमानेन=व्रजता, मारुतिनेव=हनूमता इव, न=नहि, सह्यते=सहनं विधीयते, कार्यहानिः=उद्योगविनाशः, शिव-वीरचरेण=शिववीरस्पशेन। तत्क्षणमेवासौ=तत्कालमेवाऽयम्, पुनः=भूयः, सज्जीभूय=सज्जितो भूत्वा, समुत्प्लुत्य=कूर्दयित्वा, घोटकपृष्ठम्=हयपृष्ठम्, आरुरोह=आरूढः। घोटकश्च=अश्वश्च, पुनः=भूयः, त्वरितगत्या=तीव्र-गत्या, प्रचलितः=प्रस्थितः। यदा यदा, विद्युत्=चपला, विद्योतते=चमत्क-करोति, तदा तदा, पन्थाः=मार्गः, अवलोक्यते=दृश्यते, तदनुसन्धानेनैव=तदन्वेषणेनैव, वाहोऽयम्=एषः सादी, शिलातलानि=पाषाणखण्डानि, परिक्राम्यन्=उत्क्रम्यमाणः, लताप्रतानानि=व्रततिततीः, त्यजन्=मुञ्चन्,

स्रोतांसि = जलप्रवाहाणि, उल्लङ्घमानः = उद्गच्छन्, गर्तांश्च = परिखांश्च, परिजहत् = परित्यजन्, उच्चचाल = उज्जगाम । तावत् = तस्मिन् काले, दूरत एव = दूरदेशत एव, आलोक्यत = दृष्टः, तोरणदुर्गदीपः = एतन्नामकदुर्गदीपकः, इतश्च = अत्र च, चरस्यैतस्य = स्पशस्यास्य, दृढप्रतिज्ञताम् = स्थिरनिश्चयताम्, निर्भीकताम् = भयराहित्यम्, सोत्साहताम् = उत्साहसम्पन्नताम्, स्वामिकार्य-साधनसत्यसङ्कल्पताम् = शिववीरनिदेशपालनसत्यदृढताञ्च, परीक्ष्य = परीक्षणं विधाय, इव, प्रशशाम = शान्तोऽभूत्, वृष्टिः = वर्षणम् । अम्लबलेन = अम्ल-शक्त्या, दुग्धमिव च = पय इव च, खण्डशः = खण्डं खण्डम्, अभूत् = अभवत्, मेघमालाः = घनसमूहः, ददृशे = दृष्टः, च, पूर्वस्याम् = प्राच्याम्, कलानाथः = चन्द्रः ।

समासः—कडकडाशब्देन सह सकडकडाशब्दम् । तस्य चमत्कारेण चकितं तच्चमत्कारचकितम् । तडतडाशब्देन सहितं सतडतडाशब्दम् । रामस्य कार्यार्थं रामकार्यार्थम् । घोटकस्य पृष्ठं घोटकपृष्ठम् । लतानां प्रतानानि लताप्रतानानि । तोरणदुर्गस्य दीपः तोरणदुर्गदीपः । स्वामिनः कार्यस्य साधनम्, तस्य सत्य-सङ्कल्पस्तस्य भावस्तं स्वामिकार्यसाधनसत्यसङ्कल्पताम् । कलानां नाथः कलानाथः ।

व्याकरणम्—समदेदीप्यत—सम् + दीप् (द्वित्व) + लुङ् + त । प्रतिष्ठ-मानेन—प्रति + स्था + शानच् । सज्जीभूय—सज्ज + च्वि + भू + ल्यप् । समुत्प्लुत्य—सम् + उत् + प्लु + ल्यप् । आरुरोह—आङ् + रुह् + लिट् + तिप् । प्रचलितः—प्र + चल + क्त । विद्योतते—वि + द्युत् + लट् + त । अवलोक्यते—अव + लोक् (यक्) + लट् + त । वाहः—वह् + घञ् । त्यजन्—त्यज् + शतृ । उल्लङ्घमानः—उत् + लंघि + शानच् । परिजहत्—परि + ओहाक् + शतृ । उच्चचाल—उत् + चल् + लिट् + तिप् । आलोक्यत—आ + लोक् + लुङ् (भावकर्म) । परीक्ष्य—परि + ईक्ष् + ल्यप् । प्रशशाम—प्र + शम् + लिट् । वृष्टिः—वृष् + क्तिन् । ददृशे—दृश् + लिट् (भावकर्म) ।

शब्दार्थ—अकस्मात् = अचानक, पूर्वस्याम् = पूर्व दिशा में, अतिरक्ता = अत्यन्त लाल, अतिप्रलम्बा = अधिक लम्बी, अतिभयानका = अत्यधिक भीषण, सकडकडाशब्दम् = कड़कड़ाहट शब्द के साथ, सौदामिनी = बिजली, समदे-दीप्यत = चमक उठी, तच्चमत्कारचकितम् = बिजली की चकाचौंध से चकित; एषः = अश्वारोही, यावद् = जब तक, स्थिरयति = स्थिर करता है (घोड़े

को), तावत्=तब तक, सतडतडाशब्दम्=तड़-तड़ शब्द के साथ, पूगस्थलैः= सुपारी के समान बड़े-बड़े, वर्षितुम्=वरसने के लिए, आरब्धः=आरम्भ हो गया, मघवा=इन्द्र, रामकार्यार्थम्=राम के कार्य के लिए, प्रतिष्ठमानेन= प्रस्थान किये हुए, मारुतिना इव=हनुमान् की तरह, सह्यते=सहा जाता है, शिववीरचरेण=शिवाजी के दूत द्वारा, सज्जीभूय=तैयार होकर, समुत्प्लुत्य= उछलकर, घोटकपृष्ठम्=घोड़े की पीठ पर, आरुरोह=चढ़ गया, त्वरितगत्या =तीव्र गति से, प्रचलितः=चल दिया, विद्योतते=चमकती है, पन्थाः= मार्ग। अवलोक्यते=दिखाई पड़ता है, तदनुसन्धानेन=उसी के अनुसन्धान (ज्ञान) से, वाहः=घोड़ा, परिक्राम्यन्=पार करता हुआ, लताप्रतानानि= लतासमूहों को, त्यजन्=छोड़ता (बचाता) हुआ, स्रोतांसि=स्रोतों को, उल्लङ्घमानः=लाँघता हुआ, गर्ताः=गड्ढों को, परिजहत्=छोड़ता (बचाता) हुआ, उच्चचाल=चल दिया, दूरतः=दूर से, आलोक्यत=दिखाई दिया, तोरणदुर्गदीपः=तोरण किले का दीपक, इतश्च=इधर, चरस्य=दूत की, दृढप्रतिज्ञताम्=दृढ़ प्रतिज्ञा को, सोत्साहताम्=उत्साहपूर्णता को, स्वामिकार्य- साधनसत्यसङ्कल्पताम्=स्वामी के कार्य को सिद्ध करने की सत्यसङ्कल्पता को, परीक्ष्य=परीक्षा करके, प्रशशाम=शान्त हो गई, वृष्टिः=वर्षा, अम्लबलेन= खट्टेपन से, खण्डशः=खण्ड-खण्ड, मेघमाला=बादलों की घटा, ददृशे= दिखाई पड़ा, कलानाथः=चन्द्रमा।

हिन्दी—तब तक अकस्मात् पूर्व दिशा में अत्यन्त रक्तवर्ण की बहुत लम्बी तथा अतीव भयानक बिजली कड़कड़ाहट के साथ चमक उठी। उसकी चमक से चकित हुए घोड़े को जब तक सवार रोके तव तक तड़तड़ाहट के साथ सुपारी के बराबर बूंदें बादलों ने बरसाना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु रामचन्द्र के कार्य के लिए चले हनुमान् की भाँति शिवाजी के दूत को भी कार्यहानि सह्य नहीं। वह उसी क्षण पुनः सुसज्जित हो उछलकर घोड़े की पीठ पर चढ़ गया और तीव्र गति से घोड़ा फिर चल पड़ा। जब-जब बिजली चमकती थी, तब-तब मार्ग दिखाई पड़ता था। उसी ज्ञान से वह घोड़ा शिलातलों को पार करता हुआ, लताप्रतानों को त्यागता हुआ, सोतों को लाँघता हुआ और गड्ढों को बचाता हुआ चल दिया। तब तक दूर से ही तोरण किले का दीप दिखाई पड़ने लगा। इधर दूसरी ओर उस दूत की दृढ़-प्रतिज्ञता, निर्भीकता, उत्साहपूर्णता तथा स्वामीकार्य को सिद्ध करने की सत्य-संकल्पता की मानो

परीक्षा करके वृष्टि भी शान्त हो गई। खट्टेपन से दूध की भाँति मेघमाला भी छिन्न-भिन्न हो गई और पूर्व दिशा में चन्द्रमा दिखाई दिया ॥ ८ ॥

अथ क्षणेनैव पार्वत-नदी-वेग इव निर्जगाम झञ्झावातोत्पातोऽपि। ततो नूतन-वारिधारा-क्षालन-प्रकटित-परम-हारित्यानां परस्कोटि-कीर-पटल-परीतानामिव समवालोक्यत लोचन-रोचिका शोभा पलाशिनाम्। सादी च चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण द्विगुणितोत्साहः 'मा भूद् द्वार-रोधो मद्गमनात् पूर्वमेव' इति सत्वर-सत्वरः, झिल्लीरव-मिश्रित-कवच-शिञ्जितः, वार्ष-वारि-व्रज-विधूत-स्वेद-बिन्दु-सन्दोहः, साधुवाद-संवर्द्धित-हेषमाण-हयोत्साहः सपद्येव तोरण-दुर्ग-यामिक-पादचार-परिमर्द्दितायां भुवि समाजगाम।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, क्षणेनैव=पलेनैव, पार्वतनदीवेग इव=गिरिज-पुष्करिणीप्रवाह इव, निर्जगाम=शशाम, झञ्झावातोत्पातोऽपि=सवृष्टि-वातोत्पातोऽपि, ततः=तत्पश्चात्, नूतनवारिधाराक्षालनप्रकटितपरमहारित्यानां =नवजलप्रवाहधौतस्पष्टपरमहरिद्वर्णतानाम्, परस्कोटिकीरपटलपरीतानाम्= परस्कोटिशुकसमूहव्याप्तानामिव, समवालोक्यत=समदृश्यत, लोचनरोचिका= नयनानन्दिका, शोभा=श्रीः, पलाशिनाम्=वृक्षाणाम्। सादी च=वाहश्च, चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण=शोभायमानशशिसौन्दर्येण, द्विगुणितोत्साहः=द्विगुण-कृतोत्साहशक्तिः, मा भूद्=न भवेत्, द्वाररोधः=कपाटपिधानम्, मद्गमनात् मत्प्रापणात्, पूर्वमेव=प्रागेव, इति=अतः, सत्वरसत्वरः=अतिशीघ्रतरः, झिल्लीरवमिश्रितकवचशिञ्जितः=भृङ्गारीशब्दयुक्ततनुत्राणध्वनिः, वार्षवारि-व्रजविधूतस्वेदबिन्दुसन्दोहः=वृष्टिजजलजालधौतघर्मपृषत्समुदायः, साधुवाद-संवर्द्धितहेषमाणहयोत्साहः=धन्यवादवृद्धाश्वध्वनिघोटकोत्साहः, सपद्येव= झटित्येव, तोरणदुर्गयामिकपादचारपरिमर्द्दितायाम्=तोरणदुर्गद्वारपालचरण-चारमर्दितायाम्, भुवि=धरायाम्, समाजगाम=समाययौ।

समासः—पर्वताद् जाता पार्वताः, या नद्यस्तासां वेगः पार्वतनदीवेगः। झञ्झावातस्य उत्पातः झञ्झावातोत्पातः। नूतनया वारिधारया क्षालनेन प्रकटितं परमं हारित्यं यैस्तेषां नूतनवारिधाराक्षालनप्रकटितपरमहारित्या-नाम्। परस्कोटीनां कीराणां पटलैः परीतानां परस्कोटिकीरपटलपरीतानाम्। चञ्चतः चन्द्रस्य चमत्कारेण चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण। द्विगुणितः उत्साहः यस्य

सः द्विगुणितोत्साहः। झिल्लीरवेण मिश्रितं कवचस्य शिञ्जितम् इति झिल्लीरवमिश्रितकवचशिञ्जितः। साधुवादेन संवर्द्धितः हेषमाणस्य हयस्य उत्साहः येन सः साधुवादसंवर्द्धितहेषमाणहयोत्साहः। तोरणदुर्गयामिकस्य पादचारेण परिमर्द्दितायाम् इति तोरणदुर्गयामिकपादचारपरिमर्द्दितायाम्। वार्षेण वारिव्रजेन विधूतः स्वेदबिन्दूनां सन्दोहः यस्य सः वार्षवारिव्रजविधूत-स्वेदबिन्दुसन्दोहः।

व्याकरणम्—निर्जगाम—निर्+गम्+लिट्+तिप्। समवालोक्यत—सम+अव+लोक्+लुङ् (भावकर्म)। संवर्द्धितः—सम्+वृध्+क्त। यामिकः—याम+ठक्।

शब्दार्थ—क्षणेनैव=क्षणभर में ही, पार्वतनदीवेगः=पहाड़ी नदियों का बहाव, निर्जगाम=चला गया, झञ्झावातोत्पातः=आँधी-तूफान से सम्बन्धित उपद्रव, नूतनवारिधाराक्षालनप्रकटितपरमहारित्यानाम्=नवीन जलधारा से प्रक्षालित होने के कारण अत्यधिक हरियाली को प्रकट करने वाले, परस्कोटि-कीरपटलपरीतानामिव=करोड़ों शुकसमूहों से व्याप्त हुए जैसा, समवालोक्यत=दिखाई पड़ा, लोचनरोचिका=नेत्रों को सुन्दर लगने वाली, पलाशिनाम्=वृक्षों की, सादी=अश्वारोही, चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण=चमकती चन्द्रमा की छटा से, द्विगुणितोत्साहः=दूने उत्साह वाला, मा भूद्=न हो जाय, द्वाररोधः=द्वार बन्द, सत्वर-सत्वरः=जल्दी-जल्दी, झिल्लीरवमिश्रितकवचशिञ्जितः=झींगुर की झंकार के साथ कवच की झंकार को मिलाने वाला, वार्षवारिव्रज-विधूतस्वेदबिन्दुसन्दोहः=वर्षा के जल से धूली हुई पसीने की बूंदों वाला, साधुवादसंवर्द्धितहेषमाणहयोत्साहः=शाबाशी दे-देकर हिनहिनाते हुए घोड़े का उत्साह बढ़ाता हुआ, तोरणदुर्गयामिकपादचारपरिमर्द्दितायाम्=तोरण नामक किले के पहरेदार के चरणों से मर्दित, समाजगाम=पहुँच गया।

हिन्दी—इसके बाद क्षणभर में ही पहाड़ी नदी के वेग की भाँति आँधी-पानी का उपद्रव भी समाप्त हो गया। तदनन्तर नवीन जलधारा से धुले होने के कारण नितान्त हरीतिमा को प्रकट करने वाले तथा करोड़ों शुकसमूहों से व्याप्त हुए के समान वृक्षों की नयनाभिराम शोभा दिखाई पड़ी। अश्वारोही चञ्चल चन्द्रमा की चाँदनी से द्विगुणित उत्साहवाला होकर—'कहीं मेरे पहुँचने से पूर्व ही द्वार बन्द न हो जाय?' इसलिए अतिशीघ्रता के साथ झींगुर की झंकार से अपने कवच की झंकार को मिलाता हुआ, वर्षा के जलसमूह से धुली

हुई पसीने की बूँदों वाला, साधुवाद से हिनहिनाते हुए घोड़े के उत्साह को बढ़ाता हुआ, शीघ्र ही तोरण दुर्ग के पहरेदार के पैर से परिमर्दित भूमि में पहुँच गया ॥ ९ ॥

अथ 'को भवान् ? कुतो भवान् ?' इति यामिकेन पृष्टः, दत्त-निज-परिचयः, द्वारपालेनाऽपि—'साधु ! साधु ! महता परिश्रमेण समायातोऽसि, उच्चैर्निःश्वसिति तेऽश्वः, स्विन्नानि तव गात्राणि, आर्द्राणि तव वस्त्राणि, धन्योऽसि, तथाऽपि खेदं नाऽऽवहसि, समये समागतोऽसि, अवेक्षते तवैव पन्थानं दुर्गाधीशः। प्रविश्यताम्, अश्व उन्मुच्यताम्, सत्वरमेव च तेनाऽपि साक्षात्कारो विधीयताम्' इति सादरमालप्यमानो दुर्गं प्रविवेश।

अश्वमुन्मुच्य परस्सहस्र-पतग-पटल-कलकलोन्निद्रस्य सुदूरं वितत-काण्ड-प्रकाण्डस्य चैकस्य पनस-वृक्षस्य शाखायामाबध्य अविश्रान्त एव दुर्गाध्यक्ष-समीपमगमत्।

तत्र तयोरेवमभूदालापः—

दुर्गाध्यक्षः—[दूरत एव] एहि, एहि, समये समायातोऽसि; मुहूर्तं नाऽऽयास्यश्चेद् द्वारेषु रुद्धेषु बहिरेव समस्तां रजनीमवत्स्यः।

सादी— विघ्नास्त्वभूवन्, परं माहात्म्यमेतत् प्रभु-प्रतापस्य, यत् तदीया विघ्नैर्न व्याहन्यते।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, को भवान् ! = किन्नामा श्रीमान् ! कुतः = कस्मात् स्थानात्, इति = एवम्प्रकारेण, यामिकेन = प्रहरिणा, पृष्टः = जिज्ञासितः, दत्तनिजपरिचयः = कथितस्वसंस्तवः, द्वारपालेनापि = द्वाःस्थेनापि, साधु साधु = शोभनम्, शोभनम्, महता परिश्रमेण = प्रभूतेन क्लेशेन, समायातोऽसि = सम्प्राप्तोऽसि, उच्चैः = उन्नतैः, निःश्वसिति = प्रश्वसिति, ते = श्रीमतः, अश्वः = घोटकः, स्विन्नानि = स्वेदक्लिन्नानि, तव = भवतः, गात्राणि = शरीराणि, आर्द्राणि = क्लिन्नानि, तव = भवतः, वस्त्राणि = वासांसि, धन्योऽसि = साधुवादार्होऽसि, तथाऽपि = पुनरपि, खेदम् = क्लेशम्, नावहसि = न अवधारयसि, समये = काले, समागतोऽसि = सम्प्राप्तोऽसि, अवेक्षते = पश्यति, तवैव = भवत एव, पन्थानम् = मार्गम्, दुर्गाधीशः = दुर्गपतिः। प्रविश्यताम् = आभ्यन्तरं गम्यताम्, अश्वः = घोटकः, उन्मुच्यताम् = परित्यज्यताम्, सत्वरमेव = शीघ्र-

मेव च, तेनाऽपि=दुर्गाध्यक्षेणापि, साक्षात्कारः=सम्पर्कः, विधीयताम्=क्रियताम्, इति=एवम्, सादरम्=आदरपूर्वकम्, आलप्यमानः=वार्ता क्रियमाणः, दुर्गम्=तोरणनामकदुर्गम्, प्रविवेश=प्रविष्टो बभूव।

अश्वम्=घोटकम्, उन्मुच्य=मोचयित्वा, परस्सहस्रपतगपटलकलकलोन्निद्रस्य=सहस्राधिकपक्षिवर्गकलकलोन्निद्रस्य, सुदूरम्=बहुदूरम्, विततकाण्डप्रकाण्डस्य=विस्तृतशाखाप्रशाखस्य, च, एकस्य=केवलस्य, पनसवृक्षस्य=कण्टकितरोः, शाखायाम्=काण्डे, आबध्य=बन्धनं विधाय, अविश्रान्त एव=अनपनीतश्रम एव, दुर्गाध्यक्षसमीपम्=दुर्गाधीशपार्श्वम्, अगमत्=जगाम।

तत्र=तस्मिन् स्थाने, तयोः=दुर्गाध्यक्षदूतयोः, एवम्=निम्नप्रकारेण, अभूत=सञ्जातः, आलापः=वार्तालापः।

दुर्गाध्यक्षः—(दूरत एव) एहि, एहि=आगच्छ, आगच्छ, समये=अवसरे, समायातोऽसि=आगतोऽसि, मुहूर्तम्=क्षणम्, न=नहि, आयास्यः=आगमिष्यः, चेत्=यदि, द्वारेषु=कपाटेषु, रुद्धेषु=निगडितेषु, बहिरेव=दुर्गाद् बहिरेव, समस्ताम्=निखिलाम्, रजनीम्=यामिनीम्, अवत्स्यः=वासमकरिष्यः।

सादी—विघ्नाः=आपत्तयः, तु, अभूवन्=अभवन्, परम्=किन्तु, माहात्म्यम् = प्रभावः, एतत्=अयम्, प्रभुप्रतापस्य=स्वामिप्रतापस्य, यत्, तदीयाः=शिवसम्बन्धिनो जनाः, विघ्नैः=आपद्भिः, न=नहि, व्याहन्यन्ते=बाधिताः भवन्ति।

समासः—दत्तः निजस्य परिचयो येन सः दत्तनिजपरिचयः। परस्सहस्राणां पतगानां पटलस्य कलकलेन उन्निद्रस्य परस्सहस्रपतगपटलकलकलोन्निद्रस्य। वितताः काण्डाः प्रकाण्डाश्च यस्य, तस्य विततकाण्डप्रकाण्डस्य। दुर्गाध्यक्षस्य समीपं दुर्गाध्यक्षसमीपम्।

व्याकरणम्—यामिकेन—याम+ठक् (इक्)। समायातः—सम्+आ+या+क्त। स्विन्नानि—स्विद्+क्त। आवहसि—आ+वह्+लट्+सिप्। अवेक्षते—अव+ईक्ष्+लट्+त। आलप्यमानः—आ+लप्+यक्+शानच्। आबध्य—आ+बध्+क्त्वा+ल्यप्। अविश्रान्तः—अ+वि+श्रम+क्त। आलापः—आ+लप्+घञ्। आयास्यः—आ+या+लृङ्+सिप्। रुद्धेषु—रुध्+क्त (स० ब० व०)। अवत्स्यः—वस्+लृङ्+सिप्। तदीयाः—तद्+छ+ईय।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, को भवान्=आप कौन हैं, कुतो भवान्=आप कहाँ से आये हैं, इति=इस प्रकार से, यामिकेन=प्रहरी के द्वारा, पृष्टः=पूछा गया, दत्तनिजपरिचयः=अपना परिचय देने पर, द्वारपालेनाऽपि=द्वारपाल ने भी, महता श्रमेण समायातः=बहुत परिश्रम करके आये हो, निःश्वसिति=श्वासें ले रहा है, स्विन्नानि=भीगे हुए हैं, आर्द्राणि=गीले हैं, आवहसि=अनुभव कर रहे हैं, प्रविश्यताम्=प्रवेश करिए, उन्मुच्यताम्=खोल दीजिए, सत्वरमेव=शीघ्र ही, साक्षात्कारः=भेंट, विधीयताम्=कीजिए, आलप्यमानः=वार्तालाप करता हुआ, प्रविवेश=प्रवेश किया, उन्मुच्य=खोलकर, परस्सहस्रपतगपटलकलकलोन्निद्रस्य=हजारों पक्षियों के कल-कल से उनींदें, सुदूरं विततकाण्डप्रकाण्डस्य=दूर तक फैली हुई शाखाओं-प्रशाखाओं वाले, आबध्य=बाँधकर, अविश्रान्तः=बिना विश्राम किये हुए, दुर्गाध्यक्षसमीपम्=दुर्गाध्यक्ष के निकट, अगमत्=गया, आलापः=वार्तालाप, आयास्यः=आते, रुद्धेषु=बन्द हो जाने पर, रजनीम्=रात्रि, अवत्स्यः=व्यतीत करते, सादी=अश्वारोही, माहात्म्यम्=प्रभाव, प्रभुप्रतापस्य=स्वामी के प्रताप का, तदीयाः=शिवाजी के लोग, न=नहीं, व्याहन्यन्ते=बाधित होते हैं।

हिन्दी—इसके बाद—'आप कौन हैं ? आप कहाँ से आये हैं ?' इस प्रकार पहरेदार के पूछने पर अपना परिचय देकर, द्वारपाल के द्वारा भी "साधु ! साधु ! बहुत परिश्रम से आये हो, तुम्हारा घोड़ा लम्बी साँसें ले रहा है, तुम्हारे अङ्ग पसीसे से क्लिन्न हैं, तुम्हारे वस्त्र आर्द्र (गीले) हो गये हैं, धन्य हो, तब पर भी तुम खिन्न नहीं हो, समय से आये हो; दुर्गाध्यक्ष तुम्हारा ही मार्ग देख रहे हैं। दुर्ग के अन्दर प्रवेश करो, घोड़े को खोल दो, शीघ्र ही दुर्गाधिपति से भेंट करो" इस प्रकार आदरपूर्वक कहे जाने पर उस अश्वारोही ने दुर्ग (किले) में प्रवेश किया।

वह घोड़े को खोलकर हजारों पक्षियों के कल-कल से उन्निद्रित, दूर तक फैली शाखाओं और तने वाले एक कटहल के वृक्ष की शाखा में बाँधकर बिना विश्राम किये हुए ही दुर्गाधीश के समीप चला गया।

वहाँ उन दोनों में इस प्रकार वार्तालाप हुआ—

दुर्गाध्यक्ष—(दूर से ही) 'आओ, आओ, समय से आये हो; थोड़ी देर यदि और न आते तो फाटकों के बन्द हो जाने पर समस्त रात्रि बाहर ही व्यतीत करनी पड़ती।

अश्वारोही—विघ्न तो बहुत आये, किन्तु यह प्रभु-प्रताप की ही महिमा है कि उनके (शिवाजी) लोग विघ्नों से बाधित नहीं होते ।। १० ।।

दुर्गाध्यक्षः—(तं शिरो नमयन्तं जीवेत्युक्त्वा) उपविश, उपविश ।

ततो दुर्गाध्यक्षस्तु चुम्बित-यौवनामप्यत्यक्त-बालभावां तस्य मधुरामाकृतिं पश्यन्, सचकितं विचारयितुमारेभे यत्—"कथं बाल एव प्रेषितः श्रीमता महाराष्ट्र-राजेन गुप्त-विषय-सन्धानेषु" क्षणमवस्थाय च "द्रक्ष्यामि प्रथमं किमेतेनाऽऽनीतं पत्रादिकम्"—इति निश्चित्य "भगवन् ! प्रभुणैकान्ते मामाहूय प्रदत्तमिदं पत्रमस्ति, तत् स्वीक्रियताम्" इति कटिबन्धनान्निःसार्य ददतो हस्तादादाय, उत्थाय च स्तम्भावलम्बित-दीप-प्रकाशेन तूष्णीं मनस्येव पठित्वा, आकुञ्च्य, पूर्वोपविष्ट-मञ्चे उपविश्य, पुनः पौनःपुन्येन अलि-पटल-विनिन्दकांस्तस्य कुञ्चित-कच-गुच्छान्, उत्पत्स्यमानकेशाङ्कुर-स्विन्नमुत्तरोष्ठम्, अतिमसृण-कमलोदर-किशलय-सोदरौ कपोलौ, उन्नतमंसम्, दीर्घौ बाहू, माधुर्य-वर्षिणी अक्षिणी, विनयभरणेव विनतां कन्धराम्, तेजसेव गौरमङ्गम्, दाक्षिण्येनेवाऽङ्कितं ललाटम्, भद्रतयेव च स्नातं शरीरं विलोकयन्, वारं वारं विचिन्तयंश्च मशकैरप्यशङ्कनीयम्, मक्षिकाभिरप्यनीक्षणीयम्, समीरणेनाऽप्यनीरणीयम्, प्रकाशेनाऽप्यप्रकाशनीयम्, लेखन्याऽप्यलेखनीयम्, पत्रेणाऽपि चाऽप्रकटनीयम्, गुप्ततमं वृत्तान्तम्, उपवर्हलग्न-पृष्ठः, भ्रूमध्य-स्थापिताऽचल-दृष्टिः, क्षणं समाधिस्थित इव विचारपरवशोऽभूत् ।

व्याख्या – दुर्गाध्यक्षः=दुर्गाधीशः, (तं शिरो नमयन्तं जीवेत्युक्त्वा= तं मस्तकमवनमयन्तं जीवेति निगद्य) उपविश, उपविश=तिष्ठ, तिष्ठ । ततः= तदनन्तरम्, दुर्गाध्यक्षस्तु=दुर्गाधीशस्तु, चुम्बितयौवनम्=श्लिष्टयुवावस्थाम्, अपि, अत्यक्तबालभावाम् = अमुक्तबाल्यस्वभावाम्, तस्य = आगन्तुकस्य, मधुराम्=स्निग्धाम्, आकृतिम्=आकारम्, पश्यन्=विलोकयन्, सचकितम्= साश्चर्यम्, विचारयितुम्=परिशीलयितुम्, आरेभे=प्रारब्धवान्, यत्, कथम्= किम्, बालः=अर्भकः, एषः=अयम्, प्रेषितः=प्रहितः, श्रीमता=सौभाग्यशालिना, महाराष्ट्रराजेन=शिववीरेण, गुप्तविषयसन्धानेषु=गोपनीयवस्तुसन्धानेषु, क्षणम्=पलम्, अवस्थाय=स्थित्वा, च, द्रक्ष्यामि=अवलोकयिष्यामि,

प्रथमम् = पूर्वम्, किमेतेनानीतम् = किमनेन समानीतम्, पत्रादिकम् = सन्देश-पत्रादिकम्, इति = एवम्, निश्चित्य = निश्चयं विधाय, भगवन् ! = श्रीमन् ! प्रभुणा = शिववीरेण, माम् = दूतम्, एकान्ते = निभृते, आहूय = आकार्य, प्रदत्तम् = समर्पितम्, इदम् = दीयमानम्, पत्रम् = लेखम्, अस्ति = वर्तते, तत् = पत्रम्, स्वीक्रियताम् = स्वीकरणेनानुग्राह्यताम्, इति = एतदुक्त्वा, कटिबन्धनात् = कटिप्रदेशात्, निःसार्य = निष्काश्य, ददतः = अर्पयतः, हस्ताद् = करात्, आदाय = गृहीत्वा, उत्थाय = उत्थानं विधाय, च, स्तम्भावलम्बित-दीपप्रकाशेन = यूपलम्बितदीपकप्रकाशेन, तूष्णीम् = मौनम्, मनस्येव = हृदये एव, पठित्वा = अवगम्य, आकुञ्च्य = आकुञ्चनं विधाय, पूर्वोपविष्टमञ्चे = प्रथमसेवितासने, उपविश्य = स्थित्वा, पुनः = भूयः, पौनःपुन्येन = वारं-वारेण, अलिपटलविनिन्दकान् = भ्रमरसमूहतिरस्कारकारकान्, तस्य = पत्रवाहकस्य, कुञ्चितकचगुच्छान् = आकुञ्चितकेशस्तबकान्, उत्पत्स्यमानकेशाङ्कुरस्विन्नम् = उदेष्यमाणश्मश्रुप्ररोहार्द्रम्, उत्तरोष्ठम् = ऊर्ध्वोष्ठम्, अतिमसृणकमलोदरकिसलय-सोदरौ = सुचिक्कणपद्मोदरपलाशतुल्यौ, कपोलौ = गण्डस्थलौ, उन्नतम् = प्रोन्नतम्, अंसम् = स्कन्धम्, दीर्घौ = विपुलौ, बाहू = भुजौ, माधुर्यवर्षिणी = स्नेहनिःस्यन्दिनी, अक्षिणी = नयने, विनयभरेण = नम्रताभारेण, विनताम् = नम्राम्, कन्धराम् = ग्रीवाम्, तेजसेव = कान्त्येव, गौरमङ्गम् = गौरशरीरम्, दाक्षिण्येनेव = उदारतयेव, अङ्कितम् = चिह्नितम्, ललाटम् = अलिकम्, भद्रतया = कल्याणतया, इव, च, स्नातम् = प्रसिक्तम्, शरीरम् = देहम्, विलोकयन् = पश्यन्, वारं-वारम् = पुनः-पुनः, विचिन्तयंश्च = विचारयंश्च, मशकैः = कीटविशेषैः, अपि, अशङ्कनीयम् = शङ्कितुमनर्हम्, मक्षिकाभिः, अपि, अनीक्षणीयम् = अनवलोक-नीयम्, समीरणेनापि = वायुनापि, अनीरणीयम् = न प्रवहणीयम्, प्रकाशेनापि = तेजसापि, अप्रकाशनीयम् = प्रकाशयितुमनर्हम्, लेखन्यापि = कलमेनापि, अलेखनीयम् = लिखितुमनर्हम्, पत्रेणापि = लेखवृत्तेनापि, च, अप्रकटनीयम् = अनुद्घाटनीयम्, गुप्ततमवृत्तान्तम् = नितान्तरहस्यात्मकं वृत्तान्तम्, उपबर्हलग्नपृष्ठः = उपधानसम्पृक्तपृष्ठांशः, भ्रूमध्यस्थापिताऽचलदृष्टिः = भ्रूमध्यस्थिरीकृता-ऽचञ्चलदृष्टिः, क्षणम् = मुहूर्तं यावत्, समाधिस्थित इव = ध्यानावस्थित इव, विचारपरवशोऽभूत् = विचारमग्नोऽभवत् ।

समासः—चुम्बितं यौवनं यया, तां चुम्बितयौवनाम् । अत्यक्तः बालभावः यया सा, ताम् अत्यक्तबालभावाम् । गुप्तविषयाणां सन्धानानि, तेषु गुप्त-

विषयसन्धानेषु। स्तम्भे अवलम्बितो दीपः, तस्य प्रकाशस्तेन स्तम्भावलम्बित-दीपप्रकाशेन। पूर्वमुपविष्टः यस्मिन् मञ्चे सः, तस्मिन् पूर्वोपविष्टमञ्चे। अलिपटलस्य विनिन्दकान् अलिपटलविनिन्दकान्। कुञ्चितानां कचानां गुच्छान् कुञ्चितकचगुच्छान्। उत्पत्स्यमानेषु केशाङ्कुरेषु स्विन्नं यत् उत्तरोष्ठम्, तत् उत्पत्स्यमानकेशाङ्कुरस्विन्नमुत्तरोष्ठम्। अतिमसृणस्य कमलस्य उदरे यत् किसलयम्, तस्य सोदरौ अतिमसृणकमलोदरकिसलयसोदरौ। उपबर्हे लग्नः पृष्ठः यस्य सः उपबर्हलग्नपृष्ठः। भ्रुवोः मध्ये स्थापिता अचला दृष्टिः येन सः भ्रूमध्यस्थापिताऽचलदृष्टिः।

व्याकरणम्—नमयन्तम्—नम्+णिच्+शतृ (द्वि०)। विचारयितुम्—वि+चर्+णिच्+तुमुन्। प्रेषितः—प्र+इष्+क्त। श्रीमता—श्री+मतुप् (तृ० ए० व०)। अवस्थाय—अव+स्था+क्त्वा+ल्यप्। आनीतम्—आ+नी+क्त। निश्चित्य—निस्+चि+क्त्वा+ल्यप्। आहूय—आङ्+ह्वे+क्त्वा+ल्यप्। निःसार्य—निर्+सृ+णिच्+क्त्वा+ल्यप्। आकुञ्च्य—आ+कुञ्च+ल्यप्। उपविश्य—उप+विश्+क्त्वा+ल्यप्। विलोकयन्—वि+लोक्+शतृ। विचिन्तयन्—वि+चिन्त्+शतृ। अशङ्कनीयम्—अ+शङ्क+अनीयर्। अनीक्षणीयम्—अन्+ईक्ष्+अनीयर्। अनीरणीयम्—अन्+ईर्+अनीयर्।

शब्दार्थ—दुर्गाध्यक्षः=दुर्गाधीश, नमयन्तम्=झुकाने वाले को, जीव=जियो, उपविश, उपविश=बैठो, बैठो, ततः=तदनन्तर, चुम्बितयौवनम्=तरुणाई को छूती हुई, अत्यक्तबालभावाम्=बालस्वभाव को न त्यागने वाली, पश्यन्=देखता हुआ, सचकितम्=चकित होता हुआ, विचारयितुम्=विचार करने के लिए, आरेभे=आरम्भ किया, प्रेषितः=भेजा गया, श्रीमता=श्रीमान्, गुप्तविषयसन्धानेषु=गोपनीय विषयों की जानकारी के लिए, अवस्थाय=रुककर, द्रक्ष्यामि=देखता हूँ, आनीतम्=लाया गया है, निश्चित्य=निश्चय करके, प्रभुणा=स्वामी के द्वारा, एकान्ते=एकान्त में, आहूय=बुलाकर, प्रदत्तम्=दिया हुआ, स्वीक्रियताम्=स्वीकार करें, कटिबन्धनात्=कमरबन्द से, निःसार्य=निकालकर, ददतः=देते हुए, आदाय=लेकर, उत्थाय=उठकर, स्तम्भावलम्बितदीपप्रकाशेन=खम्भे में लटकते हुए दीपक के प्रकाश से, तूष्णीम्=चुपचाप, आकुञ्च्य=मोड़कर, पूर्वोपविष्टमञ्चे=पूर्व स्थित मञ्च पर, उपविश्य=बैठकर, पौनःपुन्येन=बार-बार, अलिपटल-

विनिन्दकान्=भ्रमरसमूहों को निन्दित करने वाले, कुञ्चितकचगुच्छान्=घुंघराले बालों के गुच्छों को, उत्पत्स्यमानकेशाङ्कुरस्विन्नम्=उगती मूंछों के पसीनों से गीले, उत्तरोष्ठम्=ऊपर के ओठों को, अतिमसृणकमलोदरकिसलय-सोदरौ=अत्यन्त कोमल कमल के भीतरी पत्ते की समानता करने वाले, कपोलौ=गाल, उन्नतम्=उभरा हुआ, अंसम्=कन्धा, माधुर्यवर्षिणी=मधुरिमा बरसाने वली, अक्षिणी=आंख, विनयभरेणेव=विनयभार से युक्त हुए से, विनताम्=विशेष झुकी हुई, कन्धराम्=गर्दन को, तेजसेव=मानो तेज के द्वारा, गौरम्=गौरवर्ण, दाक्षिण्येनाङ्कितम्=उदारता से अंकित हुए के समान, भद्रया=भद्रतता से, स्नातम्=स्नान किया हुआ, विलोकयन्=देखता हुआ, विचिन्तयन्=सोचता हुआ, मशकैः=मच्छरों के द्वारा, अशङ्क-नीयम्=शङ्का न करने लायक, मक्षिकाभिः=मक्खियों के द्वारा, अनीक्ष-णीयम्=देखा न जा सकने वाला, समीरणेन=वायु के द्वारा, अनीरणीयम्=हिलाया न जा सकने वाला, अप्रकाशनीयम्=प्रकट न किया जाने वाला, अलेखनीयम्=न लिखने लायक, अप्रकटनीयम्=उद्घाटित न किया जा सकने वाला, गुप्तम्=नितान्त गोपनीय, वृत्तान्तम्=समाचार, उपबर्हलग्न-पृष्ठः=मसनद (तकिया) के सहारे पीठ लगाये हुए, भ्रूमध्यस्थापिताऽचल-दृष्टिः=भौंहों के मध्य में अडिग दृष्टि लगाये हुए, समाधिस्थित इव=समाधि-स्थित हुए के समान, विचारपरवशः=विचारमग्न, अभूत्=हो गया।

हिन्दी—दुर्गाध्यक्ष—(शिर झुकाते हुए उस अश्वारोही को 'जियो' ऐसा कहकर) बैठो, बैठो। तब दुर्गाध्यक्ष ने यौवनावस्था को चूमती हुई भी बाल-भाव का त्याग न करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए आश्चर्य-चकित होकर विचार करना आरम्भ किया कि—'श्रीमान् महराष्ट्रराज ने ऐसे गुप्त विषयों के ज्ञान के लिए इस बालक को कैसे भेज दिया?' एक क्षण रुककर—'मैं पहले देखता हूँ कि क्या यह 'कोई पत्रादि भी लाया है?' ऐसा निश्चय करके 'श्रीमन्! स्वामी ने एकान्त में बुलाकर मुझे यह पत्र दिया है, आप इसे स्वीकार कीजिए' यह कहकर कटिबन्ध से पत्र निकाल कर देनेवाले उस अश्वारोही के हाथ से पत्र लेकर, उठकर खम्भे पर लटकने वाले दीपक के प्रकाश में चुपचाप मन में पढ़कर तथा उसे मोड़कर, पहले बैठे हुए मञ्च पर ही बैठकर, पुनः दुर्गाध्यक्ष भ्रमरसमूह के विनिन्दक उस अश्वारोही के घुंघराले बालों के गुच्छों, रेखा निकलने वाले पसीने से आर्द्र ओठ, नितान्त कोमल कमल

के भीतरी पत्तों के सहोदर कपोलों, उन्नत कन्धों, लम्वी भुजाओं, मधुरिमा की वृष्टि करने वाली आँखों, विनयभार से अवनत ग्रीवा, मानो तेज से गौर-वर्ण वाले अङ्ग, उदारता से अङ्कित से मस्तक और शान्तभाव से स्नात जैसे शरीर को वारम्बार देखते हुए तथा मच्छरों से भी अशङ्कनीय, मक्षिकाओं से भी न देखे जा सकने वाले, वायु से भी न हिलाये जा सकने वाले, प्रकाश से भी प्रकाशित न किये जा सकने वाले, लेखनी से भी न लिखे जाने वाले और पत्र से भी प्रकट न किये जा सकने वाले अत्यन्त गुप्त विचारों के सम्बन्ध में बार-बार सोचते हुए, मसनद से पीठ लगाये हुए, भौंहों के मध्य अचल दृष्टि को स्थापित किये हुए क्षणभर समाधिस्थ हुए के समान विचारमग्न हो गये ॥ ११ ॥

ततश्च पुनः सादिन आननं समवलोक्य समप्राक्षीत्—वत्स ! तत्र-भवतः समीपात् कदा प्रचलितोऽसि ?

स ऊचे—भगवन् ! मार्त्तण्ड-मण्डले निम्लोचति ।

तेनोक्तम्—कथं तर्हि प्रलम्बमुत्कटं चाऽद्धानमुल्लङ्घ्य, वात्या विधूय, अल्पेनैव समयेन समायातोऽसि ?

स चाऽऽह—श्रीमन् ! ईदृश एवाऽऽसीदादेशोऽत्रभवतः ।

व्याख्या—ततश्च = तदनन्तरञ्च, पुनः = भूयः, सादिनः = अश्वारोहस्य, आननम् = मुखम्, समवलोक्य = वीक्ष्य, समप्राक्षीत् = अपृच्छत्, वत्स != पुत्र ! तत्रभवतः = पूज्यस्य शिववीरस्य, समीपात् = पार्श्वात्, कदा = कस्मिन् काले, प्रचलितोऽसि = प्रस्थितोऽसि ?

सः = सादी, ऊचे = उवाच, भगवन् ! = श्रीमन् ! मार्तण्डमण्डले = प्रभाकरमण्डले, निम्लोचति = अस्ताचलं व्रजति ।

तेन = दुर्गाध्यक्षेण, उक्तम् = कथितम्, कथं तर्हि = केन प्रकारेण तर्हि, प्रलम्बम् = दूरतरम्, उत्कटम् = दुर्गमम्, च, अध्वानम् = मार्गम्, उल्लङ्घ्य = लङ्घयित्वा, वात्या = वायुचक्राणि, विधूय = तिरस्कृत्य, अल्पेनैव = न्यूनेनैव, समयेन = कालेन, समायातोऽसि = आगतोऽसि ।

स चाह = सादी जगाद, श्रीमन् ! = भगवन् ! ईदृश एव = इत्थमेव, आसीत्, आदेशः = आज्ञा, अत्रभवतः = पूज्यशिववीरस्य ।

व्याकरणम्—उल्लंघ्य—उत् + लंघि + क्त्वा + ल्यप् । विधूय—वि +

धूञ् + क्त्वा + ल्यप् । समायातः—सम् + आ + या + क्त । आदेशः—आ + दिश् + घञ् ।

शब्दार्थ—ततश्च = तदनन्तर, सादिनः = घुड़सवार को, समवलोक्य = देखकर, समप्राक्षीत् = पूछा, तत्रभवतः = पूज्य शिवाजी के, कदा = कब, प्रचलितोऽसि = चले हो, प्रलम्बम् = लम्बा, उत्कटम् = दुर्गम्, अध्वानम् = रास्ते को, उल्लंघ्य = पार करके, वात्या = आँधी, विधूय = भेदन करके, समायातोऽसि = आये हो, मार्तण्डमण्डले = सूर्यमण्डल के, निम्लोचति = अस्त होने के समय, ईदृशः = इस प्रकार, आदेशः = आदेश ।

हिन्दी—तदनन्तर पुनः दुर्गाध्यक्ष ने अश्वारोही के मुख को भलीभाँति देखकर पूछा—पुत्र ! आदरणीय शिवाजी के पास से कब चले थे ?

वह बोला—भगवन् ! सूर्यास्त होने के समय ।

दुर्गाध्यक्ष ने कहा—तब कैसे इतने लम्बे और दुर्गम मार्ग को पार करके आँधियों को तिरस्कृत करके स्वल्प समय में ही आ गये हो ?

उसने कहा—श्रीमन् ! ऐसा ही पूज्य स्वामी का आदेश था ॥ १२ ॥

ततः परं च—'अस्मै गुप्तसन्देशाः कथनीया न वा ? एष स्वस्मादप्याच्छाद्य मदुक्तं प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति न वा ? यतो लिपिः कस्याऽपि कर्णेजपस्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्भिरेवोदीरणीयो मम सन्देशः, इति परीक्षेयैनं वाग्जालैः' इति विविच्य दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत् । अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देशयोग्यमाकलय्य, मनस्येव हर्षमनुभवंश्चिरं प्रशशंस शिवराजं यत्—'नैतेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम्, पत्रं च केषुचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि ।' एवमालपच्च—

व्याख्या—ततःपरम् = तदनन्तरम्, च, अस्मै = सादिने, गुप्तसन्देशाः = गोपनीयवृत्तान्ताः, कथनीयाः = कथनार्हाः, न वा ? एषः = अयम्, स्वस्मात् = आत्मनः, अपि, आच्छाद्य = गोपयित्वा, मदुक्तम् = मन्निगदितम्, प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति = स्वामिनं वक्ष्यति, न वा ? यतः = यद्धि, लिपिः = लेखः, कस्यापि, कर्णेजपस्य = पिशुनस्य, हस्तेऽपि = करेऽपि, पतेत् = प्राप्नुयात्, इति = अतः, वाग्भिरेव = वचसैव, उदीरणीयः = कथनीयः, मम सन्देशः = मत्कथनम्,

इति=एवम्, परीक्षेय=परीक्षां कुर्याम्, एनम्, वाग्जालैः=वाक्प्रपञ्चैः, इति=एवम्, विविच्य=बहुशः विचारं विधाय, दुर्गाधीशः=दुर्गाधिपतिः, तेन=सादिना (साकम्), बहुशः=अनेकशः, समालपत्=वार्तामकरोत् । अन्ततश्च=एतदनन्तरम्, तम्=सादिनम्, सर्वथा=सर्वप्रकारेण, गुप्तसन्देश-योग्यम्=गुह्यवृत्तान्तकथनानुकूलम्, आकलय्य=अनुभूय, मनस्येव=आत्मनि एव, हर्षम्=मोदम्, अनुभवन्, चिरम्=बहुकालपर्यन्तम्, प्रशशंस=प्रशंसित-वान्, शिवराजम्=महाराष्ट्रकेसरिणम्, यत्, नैतेषु, विषयेषु=कार्येषु, कदापि=कस्मिंश्चित् कालेऽपि, सतन्द्रः=तन्द्रान्वितः, अवतिष्ठते=सन्तिष्ठते, महाराजः =शिववीरः, सः=शिवः, यदा=यस्मिन् काले, योग्यमेव=अर्हमेव, जनम्= पुरुषम्, नियुनक्ति=नियुङ्क्ते, नूनम्=निश्चयम्, बालोऽप्येषः=अल्पवयस्को-ऽप्ययम्, अबालहृदयः=प्रौढहृदयः, अस्ति=वर्तते, तत्=तस्मात्, कथयिष्यामि= निगदिष्यामि, अस्मै=सादिने, अखिलम्=समस्तम्, वृत्तान्तम्=वार्ताम्, पत्रं च=लेखञ्च, केषुचिद्, विषयेषु=सम्बन्धेषु, समर्पयिष्यामि=प्रदास्यामि । एवम्=ईदृक्, आलपत् च=वार्तालापं चाकरोत् ।

समासः—प्रभोः कर्णयोः अतिथिः करिष्यति इति प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति । कर्णे जपतीति कर्णेजपः । तन्द्रेण सहितः सतन्द्रः ।

व्याकरणम्—कथनीयाः—कथ् + अनीयर् । आच्छाद्य—आ + छादि + क्त्वा + ल्यप् । उदीरणीयः—उद् + ईर् + अनीयर् । परीक्षेय—परि + ईक्ष् + विधिलिङ् । बहुशः—बहु + शस् । समालपत्—सम् + आ + लप् + लङ् + तिप् । सर्वथा—सर्व + थाल्, (प्रकारार्थे थाल्) । आकलय्य—आ + कल् + क्त्वा + ल्यप् । अनुभवन्—अनु + भू + शतृ । समर्पयिष्यामि—सम् + अर्प + लृट् + मिप् ।

शब्दार्थ—ततः परम्=तदनन्तर, कथनीयाः=कहना चाहिए, स्वस्मादपि =अपने से भी, आच्छाद्य=छिपाकर, मदुक्तम्=मेरे कथन को, प्रभुकर्णातिथी-करिष्यति न वा=प्रभु के कानों तक पहुँचायेगा अथवा नहीं, लिपिः=लेख (पत्र), कर्णेजपस्य=चुगलखोर के, हस्तेऽपि=हाथ में भी, पतेद्=पड़ सकता है, वाग्भिरेव=वाणी से ही, उदीरणीयः=कहना चाहिए, परीक्षेय= परीक्षा कर लूं, वाग्जालैः=वार्तालाप से, बहुशः=अनेक प्रकार से, समालपत् =वार्तालाप किया, अन्ततः=अन्त में, सर्वथा=सब प्रकार से, गुप्तसन्देश-योग्यम्=गुप्त सन्देश कहने योग्य, आकलय्य=समझकर, मनस्येव=मन में ही,

अनुभवन् = अनुभव करता हुआ, चिरम् = देर तक, प्रशशंस = प्रशंसा करता रहा । सतन्द्रः = आलसी, अवतिष्ठते = रहते हैं, नियुनक्ति = नियुक्त करते हैं, अबालहृदयः = प्रौढ हृदय वाला, अस्मै = इसको, कथयिष्यामि = कहूँगा, अखिलम् = सारा, वृत्तान्तम् = समाचार, केषुचिद् = कुछ (विषयों में), समर्पयिष्यामि = दे दूंगा, आलपत् = वार्तालाप किया ।

हिन्दी—इसके अनन्तर 'इससे गुप्त सन्देश कहना चाहिए अथवा नहीं ? यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु (स्वामी) के कानों तक पहुँचायेगा अथवा नहीं ? क्योंकि लेख (पत्र) किसी भी चुगलखोर के हाथ में पड़ सकता है, अतः अपना सन्देश मौखिक ही कहना चाहिए, इसलिए वार्तालाप से इसकी परीक्षा लेता हूँ' ऐसा विचार करके दुर्गाध्यक्ष ने उससे बहुत देर तक बात-चीत की । अन्त में उसको गुप्त सन्देश के योग्य समझकर, मन में ही हर्ष का अनुभव करते हुए शिवराज की बहुत देर तक प्रशंसा करते रहे कि 'ऐसे विषयों में कभी भी महाराज शिवाजी असावधान नहीं रहते हैं, सर्वदा ही योग्य व्यक्ति को ऐसे पदों पर नियुक्त करते हैं, निश्चय ही यह बालक होते हुए भी अबालहृदय है, अतः इससे निखिल वृत्तान्त कहूँगा और कुछ विषयों में इसे पत्र भी दे दूंगा' । पुनः इस प्रकार वार्तालाप किया—॥ १३ ॥

दुर्गाधीशः—मन्ये क्षत्रियोऽसि ।

सादी—आम् श्रीमन् !

दुर्गा० [स्मित्वा] नाऽन्येषामपत्यान्येवं तेजस्वीनि दृढ-हृदयानि प्रभुभक्तानि च भवन्ति । [पुनः सम्मुखमवलोक्य] किं ते नाम ?

सादी—[अञ्जलिं बद्ध्वा] आर्य ! मां रघुवीरसिंह इति वदन्ति जनाः ।

दुर्गा० ... चिरञ्जीव, [क्षणं विरम्य] अस्तु, सम्प्रति दुर्गात् बहिरेव साम्मुखीने हनूमन्मन्दिरे रात्रिमतिवाह्य, श्वस्तु किञ्चिदुदञ्चति मरीचिमालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे यातासि ।

रघुवीरः—'बाढम् !'

इति शिरो नमयित्वा, प्रतिनिवृत्य, पनस-शाखातोऽश्वमुन्मुच्य

दुर्गाध्यक्ष-प्रेषितस्य भृत्यस्यैकस्य हस्ते वल्गादान-पुरःसरं समर्प्य, अपर-दासेरकेण व्यादिष्ट-मार्गो नव-वारिद-वारि-बिन्दु-वृन्द-सम्पर्क-प्रकटित-सिन्धुर-सन्दोह-सन्तर्पण-मधुरगन्धि रजनीकर-कर-निकर-विरोचितां भूमिमालोकयन्, मन्दं मन्दमाससाद मारुति-मन्दिरम् ।

व्याख्या—दुर्गाधीशः—दुर्गाध्यक्षः, मन्ये = अनुमिनोमि, क्षत्रियोऽसि = क्षात्रवंशजोऽसि ।

सादी—अश्वारोही, आम् श्रीमन् ! = यथोक्तं श्रीमता । दुर्गाधीशः—(स्मित्वा = ईषद् विहस्य) नान्येषाम् = नेतरेषाम्, अपत्यानि = सन्ततयः, एवम् = ईदृक्, तेजस्वीनि = तेजोमयानि, दृढहृदयानि = प्रौढचित्तानि, प्रभु-भक्तानि = स्वामिसेवकाः, च, भवन्ति = सम्पद्यन्ते, (पुनः = भूयः, सम्मुखम् = पुरतः, अवलोक्य = वीक्ष्य), किं ते नाम = किं तवाभिधेयम् ?

सादी—(अञ्जलिं बद्ध्वा = रचिताञ्जलिः सन्) आर्य ! = श्रीमन् ! माम् = सादिनम्, रघुवीरसिंह इति, वदन्ति = निगदन्ति, जनाः = लोकाः ।

दुर्गाधीशः—चिरञ्जीव = आयुष्मान् भव, (क्षणम् = मुहूर्तम्, विरम्य = स्थित्वा) अस्तु = युक्तम्, सम्प्रति = अधुना, दुर्गात्, बहिरेव = पृथगेव, साम्मु-खीने = पुरःस्थिते, हनूमन्मन्दिरे = मारुतिदेवायतने, रात्रिम् = रजनीम्, अतिवाहय = यापय, श्वस्तु = अन्येद्युस्तु, किञ्चिद् = ईषद्, उदञ्चति = उदयं व्रजति, मरीचिमालिनि = सूर्ये, अत्र = इह, आगत्य = प्राप्य, पत्रादिकम् = लेखादिकम्. गृहीत्वा = आदाय, महाराजनिकटे = शिववीरस्य पार्श्वे, यातासि = गन्तासि ।

रघुवीरः—बाढम् = समीचीनम्, इति = एवम्, शिरो नयमित्वा = मस्तक-मवनमय्य, प्रतिनिवृत्य = परावृत्य, पनसशाखातः = कण्टकिततरुकाण्डतः, अश्वम् = वाजिनम्, उन्मुच्य = मोचयित्वा, दुर्गाध्यक्षप्रेषितस्य = दुर्गाधिपति-प्रेषितस्य, भृत्यस्य = सेवकस्य, एकस्य, हस्ते = करे, वल्गादानपुरःसरम् = प्रग्रहादीन्, समर्प्य = अर्पयित्वा, अपरदासेरकेण = इतरभृत्येन, व्यादिष्टमार्गः = निर्दिष्टपन्थाः, नववारिदवारिबिन्दुवृन्दसम्पर्कप्रकटितसिन्धुरसन्दोहसन्तर्पण-मधुरगन्धिम् = नूतनमेघजलकणनिकरसंसर्गप्रादुर्भावितगजव्राततृप्तिजनकचित्ता-कर्षकसुवासम्, रजनीकरनिकरविरोचिताम् = चन्द्रकिरणवृन्दशोभिताम्, भूमिम् = पृथिवीम्, आलोकयन् = पश्यन्, मन्दं मन्दम् = शनैः शनैः, आससाद = सम्प्राप्तवान्, मारुतिमन्दिरम् = हनूमन्मन्दिरम् ।

समासः—मरीचीणां मालाऽस्ति अस्येति, तस्मिन् मरीचिमालिनि। नववारिदस्य वारिबिन्दूनां वृन्दस्य सम्पर्केण प्रकटितः सिन्धुरसन्दोहस्य सन्तर्पणः मधुरः गन्धः यस्यास्तां नववारिदबिन्दुवृन्दसम्पर्कप्रकटितसिन्धुरसन्दोहसन्तर्पणमधुरगन्धिम्। रजनीकरस्य कराणां निकरेण विरोचिताम् इति रजनीकरनिकरविरोचिताम्।

व्याकरणम्—साम्मुखीने—सम्मुख + अण् + ख + ईन्। अतिवाहय—अति + वह् + णिच् + लोट् + सिप्। उदञ्चति—उद् + अञ्च + शतृ (सप्तमी एकवचन)। मरीचिमालिनि—मरीचि + माला + इनि (स० ए० व०)। यातासि—या + लुट्। नमयित्वा—नम् + णिच् + क्त्वा। उन्मुच्य—उद् + मुच् + क्त्वा + ल्यप्। व्यादिष्टः—वि + आ + दिश् + क्त। आससाद—आ + सद् + लिट् + तिप्।

शब्दार्थ—मन्ये = मानता हूँ, अन्येषाम् = दूसरों की, अपत्यानि = सन्तानें, तेजस्वीनि = तेजस्वी, दृढहृदयानि = दृढ हृदयवाले, प्रभुभक्तानि = स्वामिभक्त, अञ्जलिं बद्ध्वा = हाथ जोड़कर, विरम्य = रुककर, सम्प्रति = इस समय, साम्मुखीने = सामने स्थित, अतिवाहय = व्यतीत करो, श्वः = कल, किञ्चिद् = कुछ, उदञ्चति = उदय होने पर, मरीचिमालिनि = सूर्य के, आगत्य = आकर, पत्रादिकम् = पत्र आदि, गृहीत्वा = लेकर, महाराजनिकटे = महाराज (शिवाजी) के समीप, यातासि = जाओगे, बाढम् = बहुत अच्छा, नमयित्वा = झुककर, प्रतिनिवृत्य = लौटकर, पनसशाखातः = कटहल की डाल से, उन्मुच्य = खोलकर, दुर्गाध्यक्षप्रेषितस्य = दुर्गाधिपति के द्वारा भेजे हुए, भृत्यस्य = सेवक के, हस्ते = हाथ में, वल्गादानपुरःसरम् = लगाम आदि को, समर्प्य = देकर, अपरदासेरकेण = दूसरे सेवक के द्वारा, व्यादिष्टमार्गः = मार्ग दिखाया जाता हुआ, नववारिदवारिबिन्दुवृन्दसम्पर्कप्रकटितसिन्धुरसन्दोहसन्तर्पणमधुरगन्धिम् = नूतन मेघों के जलकणों के सम्पर्क से प्रकट हुई है हाथियों को संतृप्त करनेवाली मधुर गन्ध जिससे, रजनीकरनिकरविरोचिताम् = चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित, आलोकयन् = देखता हुआ, आससाद = पहुँचा, मारुतिमन्दिरम् = हनुमान्‌जी के मन्दिर को।

हिन्दी—दुर्गाध्यक्ष—मैं समझता हूँ, तुम क्षत्रिय हो ?

अश्ववारोही—हाँ, श्रीमन्।

दुर्गाध्यक्ष—(मुस्कराकर) अन्यों की सन्तानें इस प्रकार तेजस्वी, दृढ

हृदय वाली तथा स्वामिभक्त नहीं होती हैं। (पुनः सामने देखकर) तुम्हारा क्या नाम है ?

अश्वारोही—(हाथ जोड़कर) आर्य ! लोग मुझे रघुवीर सिंह कहते हैं।

दुर्गाध्यक्ष—दीर्घायु होओ। (क्षणभर रुककर) अच्छा, इस समय दुर्ग के बाहर ही सामने वाले हनुमान्-मन्दिर में रात्रि बिताओ। कल सबेरे सूर्य के उदय होते ही यहाँ आकर पत्रादि लेकर महाराज शिवाजी के समीप चले जाना।

रघुवीर सिंह—'बहुत अच्छा' ऐसा कहते हुए शिर झुकाकर, लौटकर, कटहल की शाखा से घोड़े को खोलकर, दुर्गाधीश द्वारा प्रेषित एक सेवक के हाथ में उसकी लगाम देकर, दूसरे सेवक के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से नूतन मेघों के जल की बूंदों के सम्पर्क से हाथियों के यूथों को तृप्ति देने वाली मधुर गन्ध को प्रकट करने वाली तथा चन्द्रमा की किरणों से सुशोभित भूमि को देखता हुआ रघुवीर सिंह धीरे-धीरे हनुमान्‌जी के मन्दिर में पहुँच गया ॥ १४ ॥

तत्र चाऽऽगन्तुकानामेव निवासाय कलित-यथोचित-साधनानां प्रकोष्ठानामन्यतमे प्रविश्य, गवाक्षानुन्मुद्रय, वाताभिमुखं नागदन्तिकासु वर्म वस्त्राणि चाऽवलम्बय्य आसन्न-कूपाज्जलमुत्तोल्य हस्तपादं प्रक्षाल्य, हनूमन्मूर्त्ति दृष्ट्वा कमपि नित्य-नियममिव निर्वाह्य, दुर्गाध्यक्षप्रेषितं किञ्चिदाहारादिकमुपगृह्य, ग्रीष्मसुखावहानां वातानां सुखमनुभवन्, कदाचिच्चन्द्रम्, कदाचित्तारकाः, कदाचिद् गिरिशिखराणि, कदाचिद् दुर्ग-प्राचीरम्, कदाचित् सुदूर-पर्य्यंटद्यामिकयातायातम्, कदाचिन्नत-भूभागान्, कदाचिच्चाऽभ्रङ्कषान् हनूमन्मन्दिर-कलशान् अवलोकयन्, मन्दिरात् पश्चिमतः पराक्रमापर-पादाहति-पिच्छिल-पाषाण-पट्टिका-परिष्कृत-वेदिकायां पर्यटन् कश्चित् समयमतिवाहयाम्बभूव।

समासः—तत्र=मारुतिमन्दिरे, च=पुनः, आगन्तुकानाम्=अभ्यागतानाम्, एव, निवासाय=वसितुम्, कलितयथोचितसाधनानाम्=सम्पादितापेक्षितसामग्रीणाम्, प्रकोष्ठानाम्=कक्षाणाम्, अन्यतमे=कस्मिंश्चिदेके, प्रविश्य=प्रवेशं विधाय, गवाक्षान्=वातायनानि, उन्मुद्रय=उद्घाटय, वाताभिमुखम्=वायुसमक्षम्, नागदन्तिकासु=कीलिकासु, वर्म=कवचम्, वस्त्राणि=वसनानि, च, अवलम्ब्य=लम्बयित्वा, आसन्नकूपात्=समीपस्थकूपात्, जलम्=उदकम्, उत्तोल्य=उद्धृत्य, हस्तपादम्=करचरणम्, प्रक्षाल्य=विधूय, हनूमन्मूर्तिम्=

महावीरस्य प्रतिमाम्, दृष्ट्वा=वीक्ष्य, कमपि, नित्यनियमम्=दैनिककृत्यम्, इव, निर्वाह्य=सम्पाद्य, दुर्गाध्यक्षप्रेषितम्=दुर्गाधिपतिप्रदत्तम्, किञ्चिद्=ईषद्, आहारादिकम्=अशनादिकम्, उपगृह्य=उपभुज्य, ग्रीष्मसुखावहानाम्=निदाघसुखप्रदायकानाम्, वातानाम्=पवनानाम्, सुखम्=आनन्दम्, अनुभवन् आस्वादयन्, कदाचित्=कस्मिंश्चित् काले, चन्द्रम्=निशाकरम्, कदाचित्, तारकाः=नक्षत्राणि, कदाचित्, गिरिशिखराणि=पर्वतशृङ्गाणि, कदाचित्, दुर्गप्राचीरम्=दुर्गप्रान्ततोवृत्तिम्, कदाचित्, सुदूरपर्यटद्यामिकयातायातम्=सुदूरपरिभ्रमत्प्रहरिगतागतम्, कदाचित्, नतोन्नतभूभागान्=उच्चावचभूप्रान्तान्, कदाचित् च, अभ्रङ्कषान्=वारिस्पर्शकान्, हनुमन्मन्दिरकलशान्=मारुतिमन्दिरकलशान्, अवलोकयन्=पश्यन्, मन्दिरात्=देवालयात्, पश्चिमतः=वारुणीतः, परिक्रमापरपादाहतिपिच्छिलपाषाणपट्टिकापरिष्कृतवेदिकायाम्=प्रदक्षिणानिरतचरणताडनपङ्किलप्रस्तरखण्डभूषितप्रतर्दिकायाम्, पर्यटन्=परिभ्रमन्, कश्चित् ईषत्, समयम्=कालम्, अतिवाहयाम्बभूव=यापयामास।

समासः—कलितानि यथोचितं साधनानि येषु, तेषां कलितयथोचितसाधनानाम्। हस्तौ च पादौ च इति हस्तपादम्। ग्रीष्मे सुखम् आवहन्तीति, तेषां ग्रीष्मसुखावहानाम्। सुदूरं पर्यटतां यामिकानां यातायातम् इति सुदूरपर्यटद्यामिकयातायातम्। नताश्च उन्नताश्च ये भुवः भागास्तान् नतोन्नतभूभागान्। हनूमतः मन्दिरस्य कलशान् हनूमन्मन्दिरकलशान्। परिक्रमापराणां पादाहतिभिः पिच्छिलाभिः पाषाणपट्टिकाभिः परिष्कृतायां वेदिकायां परिक्रमापरपादाहतिपिच्छिलपाषाणपट्टिकापरिष्कृतवेदिकायाम्।

व्याकरणम्—निवासाय—नि+वस्+घञ् (चतुर्थी)। प्रविश्य—प्र+विश्+क्त्वा+ल्यप्। उन्मुद्रय—उद्+मुदि+क्त्वा+ल्यप्। अवलम्ब्य—अव्+लम्ब+क्त्वा+ल्यप्। उत्तोल्य—उत्+तुल+क्त्वा+ल्यप्। निर्वाह्य—निर्+वह्+क्त्वा+ल्यप्। अतिवाहयाम्बभूव—अति+वह्+णिच्+आम्+भू+लिट्+तिप्।

व्याकरणम्—आगन्तुकानाम्=अतिथियों के, निवासाय=निवास करने के लिए, कलितयथोचितसाधनानाम्=आवश्यक सामग्रियों से सम्पन्न, प्रकोष्ठानाम्=कमरों में से; अन्यतमे=किसी एक में, गवाक्षान्=खिड़कियों को, उन्मुद्रय=खोलकर, वाताभिमुखम्=वायु की ओर, नागदन्तिकासु=खूँटियों पर, अवलम्ब्य=लटकाकर, आसन्नकूपात्=निकट के कुयें से, उत्तोल्य=

भरकर, हस्तपादम्=हाथ-पाँव को, प्रक्षाल्य=धोकर, नित्यनियमम्=नित्य क्रिया को, निर्वाह्य=सम्पादित करके, दुर्गाध्यक्षप्रेषितम्=दुर्गाधीश द्वारा भेजे हुए, आहारादिकम्=भोजन आदि, उपगृह्य=ग्रहण करके, ग्रीष्मसुखावहानाम्=ग्रीष्म में सुख देने वाले, वातानाम्=वायु के, कदाचित्=कभी, गिरिशिखराणि=पर्वत-शिखरों को, दुर्गप्राचीरम्=दुर्ग की दीवार को, सुदूरपर्यटद्यामिकयातायातम्=दूर तक घूमते हुए प्रहरी के गमनागमन को, नतोन्नतभूभागान्=ऊँची-नीची जमीन को, अभ्रङ्कषान्=गगनचुम्बी, हनूमन्मन्दिरकलशान्=हनुमान्जी के मन्दिर के कलशों को, अवलोकयन्=देखता हुआ, परिक्रमापरपादाहतिपिच्छिलपाषाणपट्टिकापरिष्कृतवेदिकायाम् = परिक्रमा करने वालों के पैरों के आघात से चिकने हुए पिच्छिल प्रस्तरखण्डों से परिष्कृत चबूतरे पर, पर्यटन्=घूमता हुआ, समयमतिवाहयाम्बभूव=समय बिताया।

हिन्दी—वहाँ अतिथियों के ही निवास के लिए यथोचित साधनों से सम्पन्न कमरों में से एक कमरे में प्रवेश करके, खिड़कियों को खोलकर, खूँटियों पर कवच और वस्त्रों को हवा की ओर लटकाकर, समीप में संस्थित कुयें से जल भरकर, हाथ-पाँव धोकर, हनुमान्जी की मूर्ति का दर्शन करके, कुछ नित्य नियम का निर्वाह-सा करके, दुर्गाध्यक्ष द्वारा संप्रेषित कुछ आहार लेकर, ग्रीष्मकाल में अच्छी लगने वाली वायु के सुख का अनुभव करता हुआ, कभी चन्द्रमा को, कभी तारों को, कभी पर्वतशिखरों को, कभी दुर्ग के प्राचीर को, कभी दूर तक पर्यटन करते हुए प्रहरी के गमनागमन को, कभी ऊँचे-नीचे भूमिभागों को और कभी गगनचुम्बी हनूमन्मन्दिर के कलशों को देखता हुआ, मन्दिर के पश्चिमी ओर परिक्रमा करनेवालों के पैरों के आघात से चिकने हुए प्रस्तरखण्डों से परिष्कृत चबूतरे पर घूमता हुआ कुछ समय बिताया ॥१५॥

तावत् तेन पयः-फेनाऽऽसार-च्छवि-विजित्वरया ज्योत्स्नया द्विगुणितोत्साहेन, धीर समीर-स्पर्श-शान्त-श्रमेण, प्रस्फुरच्चन्द्रकला-कलिका-भ्रमद्-भ्रमर-झङ्कार-भर-मन्द्र-स्वर–पीयूष-शीकर-परिमार्जित–श्रवणेन समश्रूयन्त केचित् शुकीर्मूकयन्तः, हंसीर्ध्वंसयन्तः, सारिकाः सारयन्तः, कोकिलान् विकलयन्तः, वीणां च विगणयन्तः, काकलीकलमयाः स्वरालापाः। श्रवणेनैव तेनाऽवगतं यत् आलापा एते कस्या अपि बालिकायाः, सा च लज्जा-परवशा; यतो नोच्चैर्गायति, उच्च-कुल-

प्रसूता; यतो नान्यासामेवमुदारा वाक्, समीपवर्तिनी; यतः स्फुटः स्वरः, पूर्वस्यामुपविष्टा च; यतस्तत एव मूर्च्छन्ति मूर्च्छनाः ।

व्याख्या—तावत् = तदा, तेन = सादिना, पयःफेनाऽऽसारच्छविविजित्वरया = क्षीरडिण्डीरधारासम्पातशोभाजयनशीलया, ज्योत्स्नया = चन्द्रिकया, द्विगुणितोत्साहेन = प्रवर्द्धितहर्षेण, धीरसमीरस्पर्शशान्तश्रमेण = मन्दवातापगतखेदेन, प्रस्फुरच्चन्द्रकलाकलिकाभ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारमन्द्रस्वरपीयूषशीकरपरिमार्जितश्रवणेन = चाञ्चल्यमुपगच्छज्ज्योत्स्नाकुड्मलचरन्मधुकरगुञ्जनातिरेकसान्द्रनादामृतकणशोधितकर्णेन, समश्रूयन्त = श्रुताः, केचित् = कियन्तश्चित्, शुकीः = शुकस्त्रीः, मूकयन्तः = मौनमाकलयन्तः, हंसीः = हंसस्त्रीः, ध्वंसयन्तः = पराजयन्तः, सारिकाः = पक्षिविशेषाः, सारयन्तः = दूरीकुर्वन्तः, कोकिलान् = पिकान्, विकलयन्तः = व्याकुलीकुर्वन्तः, वीणां च = वाद्यविशेषञ्च, विगणयन्तः = निन्दयन्तः, काकलीकलमयाः = काकलीध्वनियुक्ताः, स्वरालापाः = स्वरसञ्चाराः । श्रवणेनैव = आकर्णनेनैव, तेन = सादिना, अवगतम् = ज्ञातम्, यत्, आलापाः = गानस्वराः, एते = इमे, कस्या अपि, बालिकायाः = बाल्ययौवनसन्धौ वर्तमानायाः, सा च, लज्जापरवशा = त्रपाधीना, यतः = यस्माद्धेतोः, न = नहि, उच्चैः = उन्नतस्वरेण, गायति = गानं विदधाति, उच्चकुलप्रसूता = महावंशप्रभवा, यतः, न, अन्यासाम् = इतरासाम्, एवम् = ईदृशी, उदारा = उदात्ता, वाक् = वाणी, समीपवर्तिनी = निकटवर्तिनी, यतः, स्फुटः स्वरः = स्पष्टो ध्वनिः, पूर्वस्याम् = ऐन्द्रयाम्, उपविष्टा = विराजिता, च, यतस्तत एव = तस्या दिश एव, मूर्च्छन्ति = प्रस्फुटन्ति, मूर्च्छनाः = स्वरगतयः ।

समासः—पयःफेनानाम् आसारस्य छवेः विजित्वरा, तया पयःफेनासारच्छविविजित्वरया । द्विगुणितः उत्साहः यस्य, तेन द्विगुणितोत्साहेन । धीरश्चासौ समीरस्तस्य स्पर्शस्तेन शान्तः श्रमो यस्य, तेन धीरसमीरस्पर्शशान्तश्रमेण । प्रस्फुरन्त्या चन्द्रकलया विकसितासु कलिकासु भ्रमतां भ्रमराणां झङ्कारभरस्तेन सञ्जातः मन्द्रस्वर एव पीयूषम्, तस्य शीकरैः परिमार्जिते श्रवणे यस्य, तेन प्रस्फुरच्चन्द्रकलाकलिकाभ्रमद्भ्रमरझङ्कारभरमन्द्रस्वरपीयूषशीकरपरिमार्जितश्रवणेन । उच्चे कुले प्रसूता उच्चकुलप्रसूता । समीपे वर्तते इति समीपवर्तिनी ।

व्याकरणम्—समश्रूयन्त—सम् + श्रू + यक् + लङ् । मूकयन्तः—मूक (नामधातु) + यङ् + शतृ । सारयन्तः—सृ + णिच् + शतृ । विगणयन्तः—

वि + गण् + णिच् + शतृ । अवगतम्—अव + गम् + क्त । आलापाः—आ + लप् + घञ् । उपविष्टा—उप + विश् + क्त (टाप्) ।

शब्दार्थ – तावत् = तब तक, तेन=उससे, पयःफेनासारच्छविविजित्वरया= दूध के फेन की मूसलाधार वर्षा की शोभा को जीतनेवाली, ज्योत्स्नया = चाँदनी के द्वारा, द्विगुणितोत्साहेन = दुगुने उत्साह वाले, धीरसमीरस्पर्शशान्त-श्रमेण = मन्द पवन के संस्पर्श से शान्त परिश्रम वाले, प्रस्फुरच्चन्द्रकलाकलिका-भ्रमद्भ्रमरझङ्कारभारमन्द्रस्वरपीयूषशीकरपरिमार्जितश्रवणेन = चञ्चल चन्द्रमा की कला से विकसित कलिकाओं पर भ्रमण करने वाले भ्रमरों के झंकार की भार से मन्द्रस्वररूपी अमृत के कणों से परिमार्जित कर्ण वाले, समश्रूयन्त = सुना गया, शुकीः = शुकस्त्री पक्षियों के, मूकयन्तः = मूक बनाने वाले, हंसीः= हँसियों के, ध्वंसयन्तः = पराजित करने वाले, सारयन्तः = दूर करने वाले, विकलयन्तः = विकल करता हुआ, विगणयन्तः = अवमानित करता हुआ, काकलीकलमयाः = काकली के निनाद से समन्वित, स्वरालापाः = स्वरों का आलाप । श्रवणेन = सुनने से, अवगतम् = जान लिया, आलापाः = स्वरों का उच्चारण, लज्जापरवशाः = लज्जा के अधीन, उच्चैः = उच्च स्वर से, गायति= गाती है, उच्चकुलप्रसूता = ऊँचे कुल में उत्पन्न है, अन्यासाम् = दूसरों का, उदारा = उदात्त, समीपवर्तिनी = समीप में रहने वाली, स्फुटः = स्पष्ट, उपविष्टा = बैठी हुई, यतः = क्योंकि, ततः = उधर से, मूर्च्छन्ति = सञ्चरित हो रही हैं, मूर्च्छनाः = स्वरों का आरोहावरोह ।

हिन्दी—तब तक दूध के फेन के धारासम्पात (मूसलाधार वर्षा) की शोभा को जीतने वाली चाँदनी से द्विगुणित उत्साह वाले, मन्द पवन के संस्पर्श से शान्त हुए परिश्रम वाले तथा छिटकती हुई चाँदनी से विकसित कलियों पर मँडराने वाले भ्रमरों के गुञ्जार के भार से मन्द्र स्वररूपी अमृत के कणों से परिमार्जित कर्णों वाले उस रघुवीर सिंह ने शुकों को मूक बनाने वाले; हँसियों को जीतने वाले, सारिकाओं को पलायित करने वाले कोयलों को विकल करने वाले तथा वीणा को भी निन्दित करने वाले कुछ काकली के निनाद से युक्त स्वरालाप को सुना । उसे सुनने से ही उसने जान लिया कि यह आलाप किसी बालिका का है, वह विशेष लज्जाशील है; क्योंकि उच्च स्वर में नहीं गा रही है । उच्चकुल में उत्पन्न है, क्योंकि किसी अन्य की ऐसी उदार वाणी नहीं हो सकती है । समीप में ही संस्थित है, क्योंकि स्वर अत्यन्त

स्पष्ट है। पूर्व दिशा में बैठी है, क्योंकि उसी ओर से मूर्च्छनाएँ (स्वरलहरियाँ) आ रही हैं ॥ १६ ॥

अथ कर्णाविव गृहीत्वा आकृष्टो रघुवीरसिंहो मन्दिरं दक्षिणा प्रदक्षिणीकृत्य तथैव प्रदक्षिणा-वेदिकया तत्क्षणमेव मन्दिरस्याऽग्निकोणे कपोत-पोतक-गूङ्कार-मधुर-कपोतपालिकाऽधस्तम्भाऽऽरम्भ-निकटे समुपतस्थे अवालोकयच्च यत् पूर्वस्यामस्ति विशाला पुष्पवाटिका, यस्यामतिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति, यूथिकाः सुगन्ध-तरङ्गैर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि अलि-पटल-रसनाश्चटुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैर्वसुमतीं वासयन्ति। तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार-सम्मुखे एवाऽस्त्येका परम-रमणीया ज्योत्स्ना-स्पर्श-प्रकटित-द्विगुणतर-चाकचक्या सोपानत्रयालङ्कृत-चतुरवरोहा हंसपक्ष-वलक्ष-च्छवि-विजित्वर-धवल-ग्राव-वेदिका। अस्यामागन्तुकानामुपवेशाय रचिताः पाषाणमया एव कतिचन मञ्चाः, तेषामन्यतमे उपविष्टा बालिकैका।

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, कर्णौ = श्रोत्रे, इव, गृहीत्वा = उपगृह्य, आकृष्टः = हठादाहूतः, रघुवीरसिंहः = सादी, मन्दिरम् = देवालयम्, दक्षिणः = दक्षिणतः, प्रदक्षिणीकृत्य = परिक्रम्य, तथैव = पूर्वोक्तयैव, प्रदक्षिणावेदिकया = परिक्रमाचत्वरेण, तत्क्षणमेव = त्वरितमेव, मन्दिरस्य = देवायतनस्य, अग्निकोणे = दक्षिणपूर्वयोरन्तरे, कपोतपोतकगूङ्कारमधुरकपोतपालिकाऽधस्तम्भाऽऽरम्भनिकटे = पारावतशावकतज्जातीयशब्दमनोहरविटङ्कनिम्नभागस्थितस्तम्भसमीपे, समुपतस्थे = स्थितवान्, अवालोकयच्च = अपश्यच्च, यत्, पूर्वस्याम् = ऐन्द्रयाम्, अस्ति = वर्तते, विशाला = विस्तृता, पुष्पवाटिका = प्रसूनोद्यानम्, यस्याम् = वाटिकायाम्, अतिमुक्तलताः = माधवीलताः, सौरभेण = सुगन्धेन, विष्णुपदमपि = गगनमपि, मदयन्ति = मदान्वितं कुर्वन्ति, यूथिकाः = मागध्यः, सुगन्धतरङ्गैः = सुगन्धधाराभिः, हरितामपि = दिशामपि, हृदयम् = चित्तम्, हरन्ति = आकर्षयन्ति, पाटलिपटलानि = मोघासमूहाः, अलिपटलरसनाः = भ्रमरसन्दोहजिह्वाः, चटुलयन्ति = चञ्चलयन्ति, मालतिकाश्च = जातयश्च, मरन्दबिन्दुसन्दोहैः = मकरन्दपृषद्गणैः, वसुमतीम् = पृथिवीम्, वासयन्ति = सुगन्धयन्ति। तस्याम् = वाटिकायाम्, मन्दिरपूर्वद्वारसम्मुखे = देवालयपूर्वद्वाराभिमुखम्, एव, अस्ति =

विद्यते, एका, परमरमणीया = नितान्तमनोहरा, ज्योत्स्नास्पर्शंप्रकटितद्विगुणतरचाकचक्या = चन्द्रिकासंसर्गसमुद्भूतनितान्तकान्तिविशेषा, सोपानत्रयालङ्कृतचतुरवरोहा = आरोहत्रयविभूषितचतुःस्थितस्थाना, हंसपक्षवलक्षच्छविविजित्वरधवलग्राववेदिका = कादम्बपत्रसितशोभाजयनशीलस्वच्छप्रस्तरचत्वरा। अस्याम् = वाटिकायाम्, आगन्तुकानाम् = अभ्यागतानाम्, उपवेशाय = उपवेष्टुम्, रचिता = निर्मिता, पाषाणमय्या = प्रस्तररचिता, एव, कतिचन = कियन्तश्चित्, मञ्चाः = आसनानि, तेषाम् = आसनानाम्, अन्यतमे = कस्मिंश्चिदेके, उपविष्टा = विराजिता, एका = केवला, बालिका = कन्या (आसीदिति शेषः)।

समासः—प्रदक्षिणायाः वेदिका, तया प्रदक्षिणावेदिकया। कपोतपोतकानां गूङ्कारेण मधुरायाः कपोतपालिकायाः अधःस्तम्भस्य निकटे कपोतपोतकगूङ्कारमधुरकपोतपालिकाऽधस्तम्भाऽऽरम्भनिकटे। मरन्दानां बिन्दवः, तेषां सन्दोहास्तैः मरन्दबिन्दुसन्दोहैः। मन्दिरस्य पूर्वश्चासौ द्वारः, तस्य सम्मुखे मन्दिरपूर्वद्वारसम्मुखे। ज्योत्स्नायाः स्पर्शेन प्रकटितं द्विगुणतरं चाकचक्यं यया सा ज्योत्स्नास्पर्शंप्रकटितद्विगुणतरचाकचक्या। सोपानानां त्रयम्, तेन अलङ्कृता चत्वारः अवरोहाः यस्यां सा सोपानत्रयालङ्कृतचतुरवरोहा। हंसपक्षाणां वलक्षा या छविस्तस्या विजित्वराः धवलाश्च ये ग्रावाणः, तेषां वेदिका हंसपक्षवलक्षच्छविविजित्वरधवलग्राववेदिका।

व्याकरणम्—आकृष्टः—आ + कृष् + क्त। समुपतस्थे—सम् + उप + स्था + लिट् (त)। वसुमतीम्—वसु + मतुप् + ङीप्। उपवेशाय—उप + विश् + घञ् (चतु०)। उपविष्टा—उप + विश् + क्त (टाप्)।

शब्दार्थ—कर्णौ = कानों को, गृहीत्वा = पकड़कर, आकृष्टः = खींचा गया, दक्षिणा = दक्षिण की ओर से, प्रदक्षिणीकृत्य = घूमकर, प्रदक्षिणावेदिकया = प्रदक्षिणा की वेदी से, अग्निकोणे = पूर्व और दक्षिण के कोने में, कपोतपोतकगूङ्कारमधुरकपोतपालिकाऽधस्तम्भाऽऽरम्भनिकटे = कबूतरों के बच्चों के गुटरगूं की मधुर ध्वनि से कपोतपालिका के नीचे स्थित खम्भे के निकट, समुपतस्थे = स्थित हो गया, अवालोकयत् = देखा, विशाल = बड़ी, पुष्पवाटिका = फूलों की वाटिका, अतिमुक्तलताः = माधवीलता, सौरभेण = सुगन्ध से, विष्णुपदम् = आकाश को, मदयन्ति = मतवाला बना रही है, यूथिकाः = जूही, सुगन्धतरङ्गैः = सुगन्धित तरङ्गों से, हरिताम् = दिशाओं के, पाटलिपटलानि = गुलाबों के गुच्छे, अलिपटलरसनाः = भ्रमरसमूहों के जीभों को, चटुलयन्ति = चञ्चल बना

रहे हैं, मालतिकामरन्दबिन्दुसन्दोहैः=मालती के पुष्प-परागसमूहों से, वासयन्ति=सुगन्धित बना रहे हैं, मन्दिरपूर्वद्वारसम्मुखे=मन्दिर के पूर्वी द्वार के समक्ष, परमरमणीया=अत्यन्त मनोहर, ज्योत्स्नास्पर्शप्रकटितद्विगुणतरचाकचक्या=चाँदनी के स्पर्श से दूनी चमचमाहट प्रकट करने वाली, सोपानत्रयालङ्कृतचतुरवरोहा=तीन सीढ़ियों से अलंकृत चार अवरोहों वाली, हंसपक्षवलक्षच्छविविजित्वरधवलग्राववेदिका=हंस के पंख की स्वच्छता को जीतने वाले पत्थरों से बना हुआ चबूतरा, आगन्तुकानाम्=आने वालों के, उपवेशाय=बैठने के लिए, रचिताः=बनाये गये, पाषाणमयाः=पत्थरों से युक्त, कतिचन=कितने ही, मञ्चाः=बैठने के आसन, तेषाम्=उनमें से, अन्यतमे=किसी एक पर, उपविष्टा=बैठी हुई थी।

हिन्दी—इसके अनन्तर कान पकड़कर खींचा जाता हुआ-सा रघुवीर सिंह मन्दिर के दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करके उसी प्रदक्षिणा की वेदी से उसी क्षण मन्दिर के अग्निकोण में कबूतरों के बच्चों की गुटर-गूँ के मधुर शब्द से कपोतपालिका के निचले खम्बे के पास ही स्थित हो गया और देखा कि पूर्व दिशा में एक विशाल वाटिका है, जिसमें माधवीलताएँ अपने सौरभ से आकाश को भी मदमस्त बना रही है, जूही सुगन्धित तरङ्गों से दिशाओं के भी हृदय को समाकर्षित कर रही है, पाटलों के समूह भ्रमर-कुलों की रसनाओं (जीभों) को चञ्चल बना रहे हैं और मालतीलताएं मकरन्दबिन्दु के समूहों से पृथ्वी को सुगन्धित कर रही हैं। उस वाटिका में मन्दिर के पूर्वी द्वार के समक्ष ही एक परम सुन्दर, चाँदनी के संस्पर्श से द्विगुणित चमचमाहट को प्रकट करने वाली, तीन सीढ़ियों से सुशोभित, चार अवरोह वाली, हंस के पंख की उज्ज्वलता की छवि को भी जीतनेवाले, धवल पत्थरों से निर्मित वेदिका (चबूतरा) है। उस पर आगन्तुकों के बैठने के लिए पत्थरों के ही कुछ मञ्च (कुर्सियाँ) बने हुए हैं। उनमें से एक मञ्च पर एक बालिका बैठी हुई थी ॥ १७ ॥

सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशै रोलम्ब-कदम्बानि, ललाटेन कलाधर-कलाम्, लोचनाभ्यां खञ्जनान्, अधरेण बन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वती, वयसा एकादशमिव वर्षं स्पृशन्ती, श्यामकौशेय-वस्त्र-परिधाना, श्वेत-बिन्दु-सन्दोह-सङ्कुल-रक्ताऽम्बर-कञ्चुकिका, कण्ठे एकयष्टिकां नक्षत्रमालां बिभ्रती, सिन्दूर-चर्चा-रहित-

धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती, हस्ते पाटलि-कुसुम-स्तवकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेवाऽवलोकयन्ती च अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध-मुग्धं मधुर-मधुरं किञ्चिद् गायतीति ।

व्याख्या—सेयम् = सा बालिका, वर्णेन = रागेण, सुवर्णम् = हिरण्यम्, कलरवेण = मधुरध्वनिना, पुंस्कोकिलान् = पुरुषपरभृतान्, केशैः = कचैः, रोलम्बकदम्बानि = द्विरेफव्रातान्, ललाटेन = मस्तकेन, कलाधरकलाम् = चन्द्र-कलाम्, लोचनाभ्याम् = नयनाभ्याम्, खञ्जनान् = पक्षिविशेषान्, अधरेण = अधरोष्ठेन, बन्धुजीवम् = रक्तकम्, हासेन = स्मितेन, ज्योत्स्नाम् = चन्द्रिकाम्, तिरस्कुर्वती = परिभावयन्ती, वयसा = अवस्थया, एकादशमिव = रुद्रसंख्यामिव, वर्षम् = अब्दम्, स्पृशन्ती = प्राप्नुवन्ती, श्यामकौशेयवस्त्रपरिधाना = कृष्णांशुक-पटपरिधाना, श्वेतबिन्दुसन्दोहसङ्कुलरक्ताम्बरकञ्चुकिका = सितपृषद्व्रातव्याप्त-रक्तवसनचोलिका, कण्ठे = ग्रीवायाम्, एकयष्टिकाम् = एकावलीम्, नक्षत्र-मालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम्, बिभ्रती = धारयन्ती, सिन्दूरचर्चारहितधम्मि-ल्लेन = कुङ्कुमसंसर्गशून्यसंयतकचव्रातेन, परिशिष्टम् = अवशिष्टम्, पाणिपीड-नम् = विवाहः, इति = एतत्, प्रकटयन्ती = अभिव्यञ्जयन्ती, हस्ते = करे, पाटलिकुसुमस्तबकम् = पाटलिप्रसूनगुच्छम्, एकम् = केवलम्, आदाय = गृहीत्वा, शनैः शनैः = मन्दं मन्दम्, भ्रामयन्ती = इतस्ततः सञ्चालयन्ती, तमेव = प्रसूनस्तबकमेव, च, अवलोकयन्ती = पश्यन्ती, अविदितबहुलतानतारतम्यम् = अज्ञातोत्कृष्टतानोत्कर्षापकर्षम्, मन्द-मन्दम् = शनैः शनैः, मुग्ध-मुग्धम् = नितान्तमनोहरम्, मधुर-मधुरम् = अतिशयमधुरम्, किञ्चिद्, गायतीति = गानं करोतीति ।

समासः—पुमांश्चासौ कोकिलः पुंस्कोकिलः, तान् पुंस्कोकिलान् । रोलम्बानां कदम्बानि रोलम्बकदम्बानि । श्यामं कौशेयवस्त्रं परिधानं यस्याः सा श्यामकौशेयवस्त्रपरिधाना । श्वेतबिन्दूनां सन्दोहैः सङ्कुलस्य रक्ताम्बरस्य कञ्चुकी यस्याः सा श्वेतबिन्दुसन्दोहसङ्कुलरक्ताम्बरकञ्चुकिका । सिन्दूरस्य चर्चया रहितश्चासौ धम्मिल्लः, तेन सिन्दूरचर्चारहितधम्मिल्लेन । पाटलि-कुसुमानां स्तबकं पाटलिकुसुमस्तबकम् । अविदितं बहुलं तानानां तारतम्यं यस्मिंस्तत् अविदितबहुलताननतारतम्यम् ।

व्याकरणम्—स्पृशन्ती—स्पृश् + शतृ + ङीप्। बिभ्रता—वि + भृञ् + शतृ। भ्रामयन्ती—भ्रम + णिच् + शतृ + ङीप्।

शब्दार्थ—सेयम् = वह बालिका, कलरवेण = गुनगुनाहट से, पुंस्कोकिलान् = नर-कोकिलों को, केशैः = केशों से, रोलम्बकदम्बानि = भ्रमरों के झुण्डों को, ललाटेन = मस्तक से, कलाधरकलाम् = चन्द्रमा की कला को, खञ्जनान् = खञ्जनों को, अधरेण = निम्नोष्ठ से, बन्धुजीवम् = दुपहरिया के फूल को, हासेन = हँसी से, ज्योत्स्नाम् = चाँदनी को, तिरस्कुर्वती = तिरस्कृत करती हुई, वयसा = अवस्था से, एकादशम् = ग्यारह वर्षों को, स्पृशन्ती = स्पर्श करती हुई, श्यामकौशेयवस्त्रपरिधाना = काला रेशमी कपड़ा पहने, श्वेतबिन्दुसन्दोह-सङ्कुलरक्ताम्बरकञ्चुकिका = सफेद-सफेद बुंदकियों से युक्त लाल कपड़े की चोली धारण किये, एकयष्टिकाम् = एक लड़वाली, नक्षत्रमालाम् = सत्ताईस मुक्ताओं से निर्मित माला, बिभ्रती = धारण किये, सिन्दूरचर्चारहितधम्मिलेन = सिन्दूर रहित माँग होने के कारण, परिशिष्टम् = अवशिष्ट, पाणिपीडनम् = विवाह को, प्रकटयन्ती = प्रकट करती हुई, पाटलिकुसुमस्तबकम् = गुलाबों के फूलों का गुच्छा, आदाय = लेकर, भ्रामयन्ती = घुमाती हुई, अवलोकयन्ती = देखती हुई, अविदितबहुलतानतारतम्यम् = जिसमें अत्यधिक तानों का तारतम्य नहीं था, मन्द-मन्दम् = धीरे-धीरे, मुग्ध-मुग्धम् = मनोहर-मनोहर, मधुर-मधुरम् = मीठे-मीठे, किञ्चिद् = कुछ, गायति = गान करती है।

हिन्दी—वह बालिका अपने गौरवर्ण से सुवर्ण को, मधुर शब्दों से नर-कोकिल को, केशों से भ्रमर-समूहों को, ललाट से चन्द्रमा की कला को, नेत्रों से खञ्जनों को, अधरों से बन्धुजीव (दुपहरिया) पुष्पों को, हास से चाँदनी को तिरस्कृत करती हुई, वय से ग्यारह वर्ष का स्पर्श करती हुई, श्यामवर्ण के रेशमी वस्त्र पहने हुए, धवल वर्ण के बिन्दियों के समूह से व्याप्त रक्तवर्ण की कञ्चुकी धारण किये हुए, कण्ठ में सत्ताईस मुक्ताओं से निर्मित एकलड़ी आभूषण पहने हुए, सिन्दूर रहित माँग से 'अभी पाणिग्रहण संस्कार अवशिष्ट है' यह प्रकट करती हुई, हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर धीरे-धीरे उसको घुमाती हुई और उसी को देखती हुई, बहुत अधिक तानों के तारतम्य को न जानती हुई मन्द-मन्द, मनोहर-मनोहर तथा मधुर-मधुर कुछ गा रही है ॥ १८ ॥

यद्यपि नैतया सरस्वती-सरूपया अज्ञात-तातोत्सङ्ग-शयनाऽतिरिक्त-

सांसारिक-सुखया कदाऽपि गातुं शिक्षितम्, न वा गायकानां तास्ताः कर्ण-रसायन-मूर्छना: कर्णातिथीकृताः, तथाऽपि भज्यमानमपि, त्रुटय-मानमपि, आम्रेडयमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि, आरोहावरोह-ध्रुवाऽऽभोगाऽलङ्काराऽऽदि-कथा-शून्यमपि, निजकल्पनामात्रम्, तद्देशीय-ग्राम्यस्त्री-गानानुकल्पम्, सुदीर्घ-स्वर-रणनं गानमिदं परमसरसं परम-मधुरं परमहारि चाऽऽसीत् ।

व्याख्या—यद्यपि, एतया = बालिकया, सरस्वतीसरूपया = वाग्रूपिण्या, अज्ञाततातोत्सङ्गशयनातिरिक्तसांसारिकसुखया = अविदितपिताक्रोडविश्रमान्य-लौकिकानन्दानुभूत्या, कदापि = कस्मिंश्चित् कालेऽपि, न = नहि, शिक्षितम् = पठितम्, न वा, गायकानाम् = गायनकुशलानाम्, तास्ताः, कर्णरसायनमूर्च्छनाः = श्रोत्ररसायनौषधवत् स्वरारोहावरोहक्रमभेदाः, कर्णातिथीकृताः = श्रोत्रगोचरी-कृताः, तथापि, भज्यमानमपि = स्खलदपि, त्रुटयमानमपि = विच्छिन्नमपि, आम्रेडयमानमपि = पौनःपुन्येनोच्चार्यमाणमपि, अदर्शितरागविशेषमपि = भैरवादिषड्रागभेदमप्रयुक्तमपि, आरोहावरोहध्रुवाभोगालङ्कारादिकथाशून्यमपि = स्वराणामुच्चैस्त्वं स्वराणां नीचैस्त्वं स्थिरता-रागविस्तार-रसादिकथातत्त्व-रहितमपि, निजकल्पनामात्रम् = स्वमानसिकविचाररूपम्, तद्देशीयग्राम्यस्त्री-गानानुकल्पम् = तत्प्रान्तनिवासिकृषकवनितागीतसदृशम्, सुदीर्घस्वररणनम् = तीव्रस्वरध्वनियुतम्, गानमिदम् = गीतमेतत्, परमसरसम् = नितान्तमनोहरम्, परममधुरम् = अत्याकर्षकम्, परमहारि = मनोमुग्धकारि, च आसीत् ।

समासः—सरस्वत्याः समानं रूपं यस्याः सा, तया सरस्वतीसरूपया । न ज्ञातम् अज्ञातम्, तातस्य उत्सङ्गे शयनम्, तस्मात् अतिरिक्तं तातोत्सङ्ग-शयनातिरिक्तम्, संसारे भवः सांसारिकं सुखम् इति सांसारिकसुखम्, अज्ञातं तातोत्सङ्गशयनातिरिक्तं सांसारिकसुखं यया, तया अज्ञाततातोत्सङ्गशयनाति-रिक्तसांसारिकसुखया । कर्णयोः रसायनानि एव मूर्च्छनाः कर्णरसायनमूर्च्छनाः । कर्णयोः अतिथीकृताः, कर्णातिथीकृताः । न दर्शितः रागविशेषः यस्मिंस्तत् अदर्शितरागविशेषम् । आरोहश्च अवरोहश्च ध्रुवश्च आभोगश्च अलङ्कारादयश्च, तेषां कथया शून्यम् आरोहावरोहध्रुवाभोगालङ्कारादिकथाशून्यम् । निजस्य कल्पनामात्रं निजकल्पनामात्रम् । तस्मिन् देशे भवाः तद्देशीयाः, ग्रामे भवाः ग्राम्याः, तद्देशीयाश्च ग्राम्याश्च याः स्त्रियः, तासां गानम्, तेन अनुकल्पं तद्देशीयग्राम्यस्त्रीगानानुकल्पम् ।

व्याकरणम्—गातुम्—गै+तुमुन्। शिक्षितम्—शिक्ष्+क्त, इडागम। भज्यमानम् -भज्+शानच्। त्रुटयमानम्—त्रुट्+शानच्। आम्रेडयमानम्—आङ्+म्रेड्+शानच्। तद्देशीयः—तद्+देश+छ। ग्राम्यः—गाम+यक्।

शब्दार्थ—एतया=सौवर्णी नाम की बालिका द्वारा, सरस्वतीसरूपया=सरस्वती के समान रूपवाली, अज्ञाततातोत्सङ्गशयनातिरिक्तसांसारिकसुखया=पिता की गोद में सोने के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक सुख को न जानने वाली, कदापि=कभी भी, गातुम्=गाने के लिए, शिक्षितम्=सीखा, न वा=और न, गायकानाम्=गायकों की, तास्ताः=उन-उन, कर्णरसायन-मूर्च्छनाः=कानों की रसायनरूप आरोहावरोहणों को, कर्णातिथीकृताः=श्रवण किया। भज्यमानमपि=स्खलिताक्षर होने पर भी, त्रुटयमानमपि=पूर्वापर सम्बन्ध से रहित भी, आम्रेडयमानमपि=पुनः-पुनः उच्चारण किये जाने पर भी, अदर्शितरागविशेषम्=किसी विशेष राग से रहित, आरोहा-वरोहध्रुवाभोगालङ्कारादिकथाशून्यमपि=आरोह, अवरोह, ध्रुव, विस्तार और रसादि के तत्त्व से रहित, निजकल्पनामात्रम्=अपनी कल्पनामात्र, तद्देशीय-ग्राम्यस्त्रीगानानुकल्पम्=उसी प्रान्त की कृषक-वधुओं के गीत जैसे, सुदीर्घ-स्वररणनम्=तीव्र स्वरों की ध्वनि वाला, इदं गानम्=यह गीत, परमसरसम्=अत्यन्त सरस, परममधुरम्=अतिमधुर, परमहारि=मनोमुग्धकारी, च=और, आसीत्=था।

हिन्दी—यद्यपि सरस्वती के सदृश रूपवाली तथा पिता की गोद में सोने के अतिरिक्त अन्य सांसारिक सुख को न जानने वाली इस बालिका के द्वारा न तो कभी गाना सीखा गया और न गायकों के कर्णों की रसायनरूप मूर्च्छनाओं को श्रवण किया गया; तथापि स्खलित अक्षर होने पर भी, पूर्वापर सम्बन्ध-शून्य होने पर भी, पुनः-पुनः समुच्चरित होने पर भी, किसी विशेष राग का प्रयोग न होने पर भी, आरोह, अवरोह, ध्रुव, विस्तार आदि के तत्त्व से शून्य होने पर भी, अपनी कल्पनामात्र, उस प्रान्त की कृषक-वधुओं के गीत के समान तीव्र स्वरों वाला वह गीत अत्यन्त सरस, अत्यन्त मधुर और अत्यन्त मनोहर था ॥ १९ ॥

रघुवीरसिंहस्तु स्वराऽऽलाप-श्रवणेनैव परवशो विलोक्यैनां 'कोऽहम्? क्वाऽहम्? केयम्? किमिदम्?' इत्यखिलं यौगपद्येनैव विसस्मार।

व्याख्या—रघुवीरसिंहस्तु=एतन्नामकस्तु, स्वरालापश्रवणेनैव=स-रे-ग-मादिस्वरालापश्रोत्रग्रहणेनैव, परवशः=पराधीनः, विलोक्य=वीक्ष्य, एनाम्=बालिकाम्, कोऽहम्=अहं कः अस्मि, क्वाहम्=अहं कुत्राऽस्मि, केयम्=इयं बालिका का अस्ति, किमिदम्=किमेतत्, इति=एवम्, अखिलम्=निखिलम्, यौगपद्येनैव=सहसैव, विसस्मार=विस्मृतवान् ।

समासः—स्वराणाम् आलापः, तस्य श्रवणम्, तेन एव स्वरालापश्रवणेनैव ।

व्याकरणम्—आलापः—आङ्+लप्+घञ् । श्रवणम्—श्रु+ल्युट् । विलोक्य—वि+लुक्+क्त्वा+ल्यप् । यौगपद्यम्—युगपत्+ष्यञ् (भावे)। विसस्मार—वि+स्मृ+लिट् (प्र० पु० ए० व०) ।

शब्दार्थ—स्वरालापश्रवणेनैव=स्वरालाप सुनने से ही, परवशः=पराधीन, विलोक्य=देखकर, एनाम्=बालिका को, क्व=कहाँ, अखिलम्=सम्पूर्ण, यौगपद्येनैव=एक साथ ही, विसस्मार=विस्मृत कर दिया ।

हिन्दी—रघुवीर सिंह ने उस स्वरालाप के श्रवणमात्र से ही पराधीन होकर उस बालिका को देखकर 'मैं कौन हूँ ?' 'मैं कहाँ हूँ ?' 'यह कौन है ?' 'यह क्या है ?' इस प्रकार सब एक साथ ही विस्मृत कर दिया ॥ २० ॥

अहो ! आश्चर्यम्, य एष फणि-फणा-फूत्कारेष्वपि सक्रोधहर्य्यक्ष-जृम्भारम्भेष्वपि भल्ल-तल्लजाग्र-परिस्पर्धि-खर-नखर-भल्ल-धावनेष्वपि घन-घनाघन-घर्षण-विघट्टित-गैरिक-व्रात-जल-प्रपात-गिरि-गह्वरोत्फालेष्वपि तरलतर-तरङ्ग-तोयाऽऽवर्त्त-शताऽऽकुल-तरङ्गिणी-तीव्रतरवेगेष्वपि गण्डक-मण्डल-घोणा-घर्षण-घोण-घर्घराऽऽघोष-घोरतर-प्रान्तरेष्वपि च धैर्यं नाऽत्याक्षीत्, कार्यजातं न व्यस्मार्षीत्, आत्मानं च न न्यगकार्षीत्; तस्याऽधुना स्विद्यन्त्यङ्गानि, एजते गात्रयष्टिः, विमनायते हृदयम्, अञ्चन्ति रोमाणि, क्षुभ्यति च मनः। तत् कथमिदम् ? किमिदम् ? कुत इदम् ? अहह ! सत्यम् ! वीरबालोऽप्येष प्राप्याऽवसरम् आहतो मदन-मृगयुना ।

व्याख्या—अहो ! आश्चर्यम्=अहो ! विस्मयकरमिदम् । य एषः=रघुवीरसिंहः, फणिफणाफूत्कारेषु=पन्नगफणाफूत्कारेषु, सक्रोधहर्य्यक्षजृम्भारम्भेषु=कोपाविष्टसिंहजृम्भागमनेषु, भल्लतल्लजाग्रपरिपस्पर्धिखरनखरभल्ल-

धावनेषु = प्रशस्तभल्लाग्रभागप्रतिद्वन्द्वितीव्रकररुहभल्लूकगतिषु, अपि, घनघना-घनघर्षणविघट्टितगैरिकव्रातजलप्रपातगिरिगह्वरोत्फालेषु = सान्द्रजलपूरिताम्बुद-घट्टनविदलितप्रस्तरसमूहजलधारापर्वतगुहोत्कूर्दनेषु, अपि, तरलतरतरङ्गतोया-वर्त्तशताकुलतरङ्गिणीतीव्रतरवेगेषु = अतिचञ्चलवीचिजलासंख्यभ्रमिसङ्क्षोभित-नदीनितान्ततीव्रप्रवाहेषु अपि, गण्डकमण्डलघोणाघर्षणघोरघर्घराघोषघोरतर-प्रान्तरेषु = पशुविशेषव्रजनासिकाऽऽघट्टनभयानकघर्घरध्वनिनितान्तभीतिप्रद-विस्तृतजनशून्यमार्गेषु, अपि, न = नहि, धैर्यम् = साहसम्, अत्याक्षीत् = त्यक्तवान्, न = नहि, कार्यजातम् = निजकार्यव्रातम्, व्यस्मार्षीत् = विस्मृतवान्, न = नहि, आत्मानं न्यगकार्षीत् = आत्मानं पतितमकरोत्, तस्य = रघुवीरस्य, अधुना = इदानीम्, स्विद्यन्ति = सस्वेदानि भवन्ति, अङ्गानि = शरीरभागानि, एजते = कम्पते, गात्रयष्टिः = शरीरः, विमनायते = अन्यमनस्कं सम्पद्यते, हृदयम् = मनः, अञ्चन्ति = उद्गच्छन्ति, रोमाणि = लोमानि, क्षुभ्यति = क्षोभमनुभवति, मनः = चेतः, च। तत् = ततः, कथमिदम् = अहं मदनपीडितः कथमस्मि ? किमिदम् = इदं किमस्ति ? कुतः = कस्माद्, इदम् = एतत्, अहह = आश्चर्यम्, सत्यम् = यथार्थम्, बालः = बालकः, अपि, एषः = रघुवीरः, अवसरम् = उचित-कालम्, प्राप्य = लब्ध्वा, मदनमृगयुना = मनसिजव्याधेन, आहतः = पीडितः।

समासः—फणः अस्ति अस्य इति फणिः, फणिनां फणाः फणिफणाः, तेषां फूत्काराः, तेषु फणिफणाफूत्कारेषु। क्रोधेन सहितः इति सक्रोधः, जृम्भाणाम् आरम्भाः जृम्भारम्भाः, सक्रोधस्य हर्यक्षस्य जृम्भारम्भाः, तेषु सक्रोधहर्यक्ष-जृम्भारम्भेषु। भल्लतल्लजानाम् अग्राणि, तेषां प्रतिस्पर्धिनः खरनखराः येषां ते च ते भल्लाः, तेषां धावनेषु भल्लतल्लजाग्रपरिस्पर्धिखरनखरधावनेषु। घनानां घनाघनानां घर्षणं, तेन विघट्टिताः गैरिकव्राताः, तेषु जलप्रपाताः येषु तादृशानि गिरिगह्वराणि, तेषाम् उत्फालनं, तेषु घनघनाघनघर्षणविघट्टित-गैरिकव्रातजलप्रपातगिरिगह्वरोत्फालेषु। अतिशयेन तरलाः तरलतराः, तरल-तराः तरङ्गाः येषु तादृशानां तोयानाम् आवर्तशतैः आकुलाः तरङ्गिण्यः, तासां तीव्रतराः वेगाः, तेषु तरलतरतरङ्गतोयावर्त्तशताकुलतरङ्गिणीतीव्रतरवेगेषु। गण्डकानां मण्डलं, तस्य घोणाः, तासां घर्षणं, तेन घोरः यो घर्घराघोषः, तेन घोरतराः ये प्रान्तराः, तेषु गण्डकमण्डलघोणाघर्षणघोरघर्घराघोषघोरतर-प्रान्तरेषु। गात्रम् एव यष्टिः गात्रयष्टिः। विमना इवाचरति इति विमनायते। मदन एव मृगयुः, तेन मदनमृगयुना।

व्याकरणम्—व्यस्मार्षीत्—वि+स्मृ+लुङ् (प्र० पु० ए० व०)। अकार्षीत्—कृ+लुङ् (प्र० पु० ए० व०)। एजते—एज्+लट् (प्र० पु० ए० व०)। विमनायते—विमनस्+क्यङ् (नामधातु) (प्र० पु० ए० व०)। अञ्चन्ति—अञ्च्+लट् (प्र० पु० ब० व०)। क्षुभ्यति— क्षुभ्+लट् (प्र० पु० ए० व०)। प्राप्य—प्र+आप्+क्त्वा+ल्यप्। मृगयुः—मृग+या+कु। आहतः—आङ्+हन्+क्त।

शब्दार्थ—अहो! आश्चर्यम्=अहो! आश्चर्य है, य एषः=जो यह रघुवीर सिंह, फणिफणाफूत्कारेष्वपि=सर्पों के फणों की फुफकारों में भी, सक्रोधहर्यक्षजृम्भारम्भेष्वपि=क्रोधित सिंह की जम्हाई के आरम्भ में भी, भल्लतल्लजाग्रपरिस्पर्धिखरनखरभल्लधावनेष्वपि=उत्तम भालों के अग्रभाग के प्रतिस्पर्धी तेज नखों वाले भालुओं के दौड़ने के समय भी, घनघनाघनघर्षण-विघट्टितगैरिकव्रातजलप्रपातगिरिगह्वरोत्फालेष्वपि=घने एवं जल से भरे हुए मेघों के घर्षण से विदलित प्रस्तरसमूहों पर गिर रही जलधाराओं वाली पर्वत की गुफाओं को कूदने में भी, तरलतरतरङ्गतोयावर्त्तशताकुलतरङ्गिणी-तीव्रतरवेगेषु=अतिचञ्चल तरङ्गवाले जल में विद्यमान सैंकड़ों भँवरों से भरी हुई नदियों के तीव्रतर वेग में भी, गण्डकमण्डलघोणाघर्षणघोरघर्घराघोषघोर-तरप्रान्तरेष्वपि=गैंडों के समूह की नासिकाओं के घर्षण से उत्पन्न भयानक घर्घर शब्द से अत्यधिक भयावह, लम्बे और निर्जन भागों में भी, धैर्यम्=साहस को, न अत्याक्षीत्=नहीं त्यागा, कार्यजातम्=कार्यसमूह को, न व्यस्मार्षीत्=विस्मृत नहीं किया, आत्मानम्=स्वयं को, न्यक्=छोटा, न=नहीं, अकार्षीत्=किया, अधुना=इस समय, तस्य=उस रघुवीर सिंह के, अङ्गानि=शरीर के अङ्ग, स्विद्यन्ति=पसीने से तर हो रहे हैं, गात्रयष्टिः=शरीर रूपी छड़ी, एजते=काँप रही है, विमनायते=अन्यमनस्क हो रहा है, अञ्चन्ति रोमाणि=रोयें सीधे खड़े हो गये हैं, कुतः=कहाँ से, वीरबालः=वीर बालक, अवसरम्=उचित समय को, प्राप्य=प्राप्त करके, मदनमृगयुना=शिकारी कामदेव द्वारा, आहतः=घायल किया गया।

हिन्दी—अहो! आश्चर्य है। जिसने सर्पों के फणों की फुफकारों में भी, क्रोधान्वित सिंह की जम्हाई के समय भी, तेज भालों के अग्रभाग के प्रतिस्पर्धी तीव्र नाखूनों वाले भालुओं के दौड़ने पर भी, घने एवं जल से भरे हुए मेघों के घर्षण से अलग किये हुए प्रस्तर-समूहों पर गिर रही जलधाराओं वाली पर्वत

की गुफाओं को कूदने में भी, अतिचञ्चल तरङ्ग वाले जल में विद्यमान सैंकड़ों भँवरों से भरी हुई नदियों के तीव्रतर वेग में भी, गैंडों के समूह की नासिकाओं के घर्षण से घोर 'घर्घर' शब्द के कारण नितान्त भयानक, लम्बे एवं निर्जन मार्ग में भी धैर्य नहीं छोड़ा, कार्य को विस्मृत नहीं किया, अपने को पतित नहीं किया अर्थात् सदैव कर्तव्य का पालन किया, इस समय उसी रघुवीर सिंह के अङ्ग पसीने से तर हो रहे हैं, शरीर रूपी यष्टि काँप रही है, हृदय अनमना हो रहा है, रोम खड़े हो गये हैं और मन क्षुब्ध हो रहा है। तब यह कैसे? यह क्या? यह कहाँ से? अरे! सत्य है, यह वीर बालक भी समुचित अवसर प्राप्त कर शिकारी कामदेव द्वारा घायल कर दिया गया है ॥ २१ ॥

तावदकस्माद् "रघुवीर! रघुवीर! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि, गूढाऽभिसन्धिषु प्रेष्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणी तवाऽवस्था, खड्ग-धारावलेहनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अबहुदर्शि हृदयम्, सर्वत्र जागरूको राजदण्डः, अवितर्कणीया च भाविनी घटना। तन्मा स्म त्वं मुखचन्द्रावलोकनैरधर-सीधुतृषाभिः, कोमलाङ्गाऽऽलिलिङ्गि-षाभिः, मधुरालाप-शुश्रूषाभिश्चाऽऽत्मानं विक्रीणीष्व"—इत्यन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितो नेत्रे प्रमृज्य, स्तम्भावष्टम्भं परिहाय, लोचनयोरुपरि स्फुरतः कुञ्चित-कचानपसार्य, शीतलं निःश्वस्य च, आत्मनो दशां स्मर-न्नेव पुनस्तामेव कौमारात् परं वयश्चुचुम्बिषन्तीं कुसुम-कुड्मल-घूर्णन-व्याजेन यूनां मनो घूर्णयन्तीं सौन्दर्य-सारावतार-स्वरूपामैक्षिष्ट।

व्याख्या—तावद्=ततः, अकस्मात्=सहसैव, रघुवीर! रघुवीर! इति साम्रेडं सम्बोधनम्, त्वम्, शिववीरस्य=वीरशिवस्य, चरः=गुप्तचरः, असि=वर्तसे, गूढाभिसन्धिषु=गुप्तकार्येषु, प्रेष्यसे=नियोज्यसे, अल्पं=न्यूनम्, तव=रघुवीरस्य, वेतनम्=पारिश्रमिकम्, तव, अवस्था=आर्थिकी स्थितिः, साधारणी = सामान्या, खड्गधारावलेहनमिव = कृपाणाग्रभागास्वादनमिव, कष्टतरम्=कठोरम्, तव, कार्यम्=कर्म, कैशोरं वयः=किशोरावस्था, अब-हुदर्शि=अल्पज्ञम्, हृदयम्=चेतः, सर्वत्र=सर्वेषु स्थानेषु, जागरूकः=सतर्कः, राजदण्डः=दण्डविधानम्, अवितर्कणीया=अचिन्तनीया, च=पुनः, भाविनी= भविष्यत्कालिकी, घटना=भवितव्यता। तत्=अतः, मुखचन्द्रावलोकनैः= सुन्दरवदनस्य दर्शनादिभिः, अधरसीधुतृषाभिः=ओष्ठमदलालसाभिः, चुम्बने-

च्छाभिरित्याशयः, कोमलाङ्गाऽऽलिलिङ्क्षिषाभिः = मृदुतन्वाश्लेषवाञ्छाभिः, मधुरालापशुश्रूषाभिः = हृदयहारिवचनश्रवणेच्छाभिः, आत्मानम् = स्वम्, मा स्म विक्रीणीष्व = विक्रयं न विधेहि, इति = एवम्प्रकारेण, अन्तःकरणेन = हृदयेन, स्वयमेव = आत्मनैव, प्रबोधितः = जागरितः, नेत्रे = अक्षिणी, प्रमृज्य = प्रोञ्छ्य, स्तम्भावष्टम्भम् = जड़ताम्, परिहाय = परित्यज्य, लोचनयोः = नयनयोः, उपरि = ऊर्ध्वभागे, स्फुरतः = धावतः, कुञ्चितकचान् = अग्रे वृत्ताकारान् केशान्, अपसार्य = संहृत्य, शीतलं निःश्वस्य = स्वदशास्मरणखेदजन्यं दीर्घं निःश्वस्य, च, आत्मनः = स्वस्य, दशाम् = अवस्थाम्, स्मरन्नेव = विदन्नेव, पुनः = भूयः, कौमारात्परं वयः = युवावस्थाम्, चुचुम्बिषन्तीम् = चुम्बितुमभिलषन्तीम्, कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन = प्रसूनकलिकावलोकनच्छलेन, यूनाम् = युवकानाम्, मनः = हृदयम्, घूर्णयन्तीम् = दर्शयन्तीम्, सौन्दर्यसारावतारस्वरूपाम् = सशरीरं प्रकटितसौन्दर्यसाररूपाम्, तामेव = बालिकामेव, ऐक्षिष्ट = अपश्यत्।

समासः—चरतीति चरः। गूढाः अभिसन्धयः, तेषु गूढाभिसन्धिषु। खड्गस्य धारा, तस्याः अवलेहनं खड्गधारावलेहनम्। किशोरस्य भावः कैशोरम्। बहून् द्रष्टुं शीलमस्य तत् बहुदर्शि, न बहुदर्शि अबहुदर्शि। राज्ञः दण्डः इति राजदण्डः। मुखम् एव चन्द्रः इति मुखचन्द्रः, मुखचन्द्रस्य अवलोकनानि, तैः मुखचन्द्रावलोकनैः। अधरस्य सीधुः, तस्य तृषाः, ताभिः अधरसीधुतृषाभिः। कोमलानि अङ्गानि, तेषाम् आलिलिङ्क्षिषा, ताभिः कोमलाङ्गालिलिङ्क्षिषाभिः। आलिङ्गितुमिच्छा आलिलिङ्क्षिषा। मधुरश्चासौ आलापः, तस्य शुश्रूषा, ताभिः मधुरालापशुश्रूषाभिः। श्रोतुमिच्छा शुश्रूषा। चुम्बितुमिच्छन्तीं चुचुम्बिषन्तीम्। कुसुमस्य कुड्मलं, तस्य घूर्णनमेव व्याजः, तेन कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन। सौन्दर्यस्य सारः, तस्य अवतारस्वरूपा, तां सौन्दर्यसारावतारस्वरूपाम्।

व्याकरणम्—चरः—चर् + अच्। प्रेष्यसे—प्र + ईष् + लट् (म० पु० ए० व०)। अवलेहनम्—अव + लिह् + ल्युट्। कैशोरम्—किशोर + अण्। जागृ + ऊक्। अवितर्कणीया—अ + वि + तर्क + अनीयर्। अवलोकनम्—अव + लोक् + ल्युट्। तृषा—तृष् + क्विप् + टाप्। आलिलिङ्क्षिषा—आङ् + लिङ्ग + सन् + टाप्। प्रबोधितः—प्र + बुध + णिच् + क्त। प्रमृज्य—प्र + मृज् + क्त्वा + ल्यप्। स्फुरतः—स्फुर् + शतृ (प्र० वि० ब० व०)। परिहाय—परि + हा + क्त्वा + ल्यप्। अपसार्य—अप + सृ + क्त्वा + ल्यप्। चुचुम्बि-

षन्तीम्—चुम्ब्+सन्+शतृ+ङीप्। घूर्णयन्तीम्—घूर्ण + शतृ + ङीप्। ऐक्षिष्ट—ईक्ष+लुङ् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—तावत्=तब तक, शिववीरस्य=वीर शिवाजी के, चरः=गुप्तचर, असि=हो, गूढाभिसन्धिषु=गूढ कार्यों के लिए, प्रेष्यसे=भेजे जाते हो, अल्पम्=थोड़ा, तव=तुम्हारा, वेतनम्=पारिश्रमिक, तवावस्था=तुम्हारी दशा, साधारणी=साधारण है, खड्गधारावलेहनमिव=तलवार की धार को चाटने की तरह, कष्टतरम्=अतिदुःखदायक, कार्यम्=कार्य को, कैशोरम्=युवावस्था को, अबहुदर्शि=दूर तक न सोचने वाला, जागरूकः=सतर्क, राजदण्डः=दण्डविधान, अवितर्कणीया=अचिन्तनीय अथवा विचार के अयोग्य, भाविनी=भविष्य की, तत्=अतः, मुखचन्द्रावलोकनैः=मुखचन्द्र के अवलोकन से, अधरसीधुतृषाभिः=अधरवारुणी की तृष्णा से अर्थात् अधरपान की इच्छा से, कोमलाङ्गालिलिङ्गिषाभिः=कोमल अङ्गों के आलिङ्गन की इच्छा से, मधुरालापशुश्रूषाभिः=मधुर वाणी की सुनने की इच्छा से, आत्मानम्=अपने को, मा स्म=मत, विक्रीणीष्व=बेचो, अन्तःकरणेन=अन्तःकरण द्वारा, स्वयमेव=स्वयं ही, प्रबोधितः=उद्बुद्ध किया गया, नेत्रे=आँखों को, प्रमृज्य=पोंछकर, लोचनयोः=नयनों के, उपरि=ऊपर, स्फुरतः=लहराते हुए, कुञ्चितकचान्=घुंघराले बालों को, अपसार्य=हटाकर, शीतलं निःश्वस्य=ठण्डी साँस लेकर, आत्मनः=अपनी, दशां स्मरन्नेव=दशा का स्मरण करते हुए ही, तामेव=उसी बालिका को, कौमारात्परं वयः=युवावस्था को, चुचुम्बिषन्तीं=चुम्बन की इच्छा करती हुई को, कुसुमकुड्मलघूर्णनव्याजेन=पुष्पकलिका को देखने के बहाने, यूनाम्=युवकों के, मनः=मन को, घूर्णयन्तीम्=घूरती हुई को, सौन्दर्यसारावतारस्वरूपाम्=सौन्दर्य का सार एकत्रित होकर प्रकट हुई को, ऐक्षिष्ट=देखा।

हिन्दी—तब तक अकस्मात् 'रघुवीर! रघुवीर! तुम वीर शिवाजी के गुप्तचर हो, गोपनीय कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन (पारिश्रमिक) अल्प है, तुम्हारी स्थिति साधारण है, खड्ग की धार को चाटने की तरह नितान्त कठिन तुम्हारा कार्य है, किशोर अवस्था है, अल्पदर्शी हृदय है, राजदण्ड सर्वत्र सतर्क है और भावी घटना अनिश्चित है। अतः तुम मुखचन्द्र के अवलोकन से, अधरवारुणी की तृष्णा से, कोमल अंगों के आलिङ्गन की इच्छा से और मधुर वाणी को सुनने की आकाङ्क्षा से अपने को मत बेचो'। इस प्रकार

अन्तःकरण द्वारा स्वयं ही समुद्बुद्ध होकर, आँखों को मलकर, जड़ता को छोड़कर, नयनों के ऊपर लहराते हुए घुंघराले बालों को हटाकर तथा ठण्डी साँस लेकर अपनी दशा का स्मरण करते हुए पुनः यौवनावस्था के चुम्बन की आकांक्षिणी, कुसुमकली को घूरने के व्याज से युवकों के मन को घूरती हुई, सौन्दर्य के सार की अवतारस्वरूप उस कन्या को देखा ।। २२ ।।

अथ सा तु "सौर्वणि! सौर्वणि! तातस्त्वामाकारयति"—इति कस्यापि बटोरिव वाचमाकर्ण्य, "आम्! एषा आगच्छामि"—इति मधुरमुदीर्य, उत्थाय, वेदिकातोऽवतीर्य, वाटिकायामेव दक्षिणतः सुधाधवलमेकं गृहं प्राविशत् ।

व्याख्या—अथ=तदनन्तरम्, सा तु=सा बालिका, 'सौर्वणि ! सौर्वणि ! इति सम्बोधनम्, तातः=पिता, त्वाम्=बालिकाम्, आकारयति=आह्वानं करोति, कस्यापि, बटोरिव=ब्रह्मचारिणः इव, वाचम्, आकर्ण्य=श्रुत्वा, आम् !=समीचीनम्, आगच्छामि=आयामि, इति=एवम्प्रकारेण, मधुरम्=मनोहरम्, उदीर्य=उक्त्वा, वेदिकातोऽवतीर्य=चत्वरादवरुह्य, वाटिकायामेव=उद्याने एव, दक्षिणतः=दक्षिणभागे स्थितम्, सुधाधवलम्=चूर्णकशुभ्रम्, एकम्=केवलम्, गृहम्=आलयम्, प्राविशत्=प्रवेशमलभत् ।

समासः—सुधया चूर्णकेन धवलं सितमिति सुधाधवलम् ।

व्याकरणम्—आकारयति—आङ्+कृ+णिच्+लट् । वाचम्—वच्+णिच्+अच् । आकर्ण्य—आङ्+कर्ण+क्त्वा+ल्यप् । उदीर्य—उद्+ईर्+क्त्वा+ल्यप् ।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, सा तु=वह बालिका, तातः=पिता, आकारयति=बुलाते हैं, कस्या बटोरिव=किसी ब्रह्मचारी बालक की जैसी, वाचम्=वाणी, आकर्ण्य=सुनकर, आम्=अच्छा, एषा=यह, आगच्छामि=आती हूँ, मधुरम्=मनोहर, उदीर्य=कहकर, उत्थाय=उठकर, वेदिकायाः=वेदिका से, अवतीर्य=उतर कर, वाटिकायामेव=बगीचे में ही, दक्षिणतः=दक्षिण में, सुधाधवलम्=चूना पुतने से शुभ्र, एकं गृहम्=एक घर में, प्राविशत्=प्रवेश की ।

हिन्दी—इसके अनन्तर 'सौर्वणि ! सौर्वणि ! पिताजी तुम्हें बुला रहे हैं' इस प्रकार किसी ब्रह्मचारी बालक की वाणी को सुनकर 'अच्छा ! यह मैं आ

रही हूं" इस प्रकार मधुरता के साथ कहकर, उठकर, वेदिका से उतर कर, वाटिका में ही दक्षिण की ओर चूने से धवल एक गृह में वह प्रवेश कर गई ॥ २३ ॥

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमन-समये सचकितं सगति-स्तम्भं परिवृत्त-ग्रीवं "कोऽयम् ?" इत्येनं क्षणमवलोकयामास । परतश्च "स्यात् कोऽपि" इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपरोऽपि जातो वशीकार-प्रयोग-प्रचारः ।

रघुवीरश्च ततः प्रतिनिवृत्य, पुनः स्वाधिकृत-कोण-कोष्ठमेवाऽऽयातः ।

व्याख्या—रघुवीरसिंहस्य=एतन्नामकस्य, समीपतः=पार्श्वतः, एव, (सा) गता=याता, गमनसमये=गमनकाले, सचकितम्=साश्चर्यम्, सगतिस्तम्भम्=सावरोधगमनम्, परिवृत्तग्रीवम्=परिवर्तितकन्धरं यथा स्यात्तथा, कोऽयम्=अयं युवकः कः विद्यते, इति=एवम्प्रकारेण, एनम्=रघुवीरसिंहम्, क्षणम्=किञ्चित्कालम्, अवलोकयामास=अपश्यत् । परतश्च=तदनन्तरम्, स्यात्=भवेत्, कोऽपि=कश्चन जनः, इति=एवम्प्रकारेण, समुपेक्ष्य=उपेक्षयित्वा, गृहम्=निकेतनम्, प्रविष्टा=गता, इति, अपरः=द्वितीयः, अपि, वशीकार-प्रयोगप्रचारः=स्वायत्तीकरणविधिप्रसारः, जातः=समुत्पन्नः ।

रघुवीरश्च=एतन्नामको जनश्च, ततः=तस्मात्, प्रतिनिवृत्य=आगत्य, पुनः=भूयः, स्वाधिकृतकोणकोष्ठम्=स्वावासनिर्दिष्टप्रान्तकक्षाम्, एव, आयातः=आगतः ।

समासः—गमनस्य समयः, तस्मिन् गमनसमये । चकितेन सह वर्तते यस्यां क्रियायान्तत् सचकितम् । गत्या सह सगतिः, सगतेः स्तम्भः यस्यां क्रियायान्तत् सगतिस्तम्भम् । परिवृत्ता ग्रीवा यस्यां क्रियायां तत् परिवृत्तग्रीवम् । वशीकार-श्चासौ प्रयोगः, तस्य प्रचारः वशीकारप्रयोगप्रचारः । कोणस्य प्रकोष्ठं कोण-प्रकोष्ठम्, स्वस्य अधिकृतं कोणप्रकोष्ठं तत् स्वाधिकृतकोणप्रकोष्ठम् ।

व्याकरणम्—समीपतः—समीप+तसिल् । गता—गम्+क्त+टाप् । परिवृत्ता—परि+वृ+क्त+टाप् । अवलोकयामास—अव+लोक्+लिट् । परतः—पर+तसिल् । समुपेक्ष्य—सम्+उप+ईक्ष्+क्त्वा+ल्यप् । प्रविष्टा—प्र+विश्+क्त+टाप् । जातः—जन्+क्त । ततः—तत्+तसिल । प्रति-

निवृत्य—प्रति + नि + वृत् + क्त्वा + ल्यप् । अधिकृतम्—अधि + कृ + क्त । आयातः—आङ् + या + क्त ।

शब्दार्थ—समीपतः = समीप से, गता = गई, गमनसमये = जाने के समय, सचकितम् = आश्चर्य के साथ, सगतिस्तम्भम् = रुककर, परिवृत्तग्रीवम् = गर्दन घुमाकर, क्षणम् = एक क्षण तक, अवलोकयामास = देखी, परतश्च = बाद में, समुपेक्ष्य = उपेक्षा करके, प्रविष्टा = प्रवेश कर गई, अपरः = दूसरा, वशीकारप्रयोगप्रचारः = वशीकरण प्रयोग का अनुष्ठान, जातः = हुआ ।

ततः = तदनन्तर, प्रतिनिवृत्य = लौटकर, स्वाधिकृतकोणप्रकोष्ठम् = अपने निवास के लिए निर्दिष्ट कोने के कमरे में, आयातः = आया ।

हिन्दी—वह रघुवीरसिंह के समीप से ही गई । जाते समय उसने विस्मय के साथ, कुछ रुककर एवं गर्दन घुमाकर 'यह कौन है ?' इस प्रकार क्षणभर रघुवीरसिंह को देखा । बाद में 'कोई होगा' इस प्रकार उपेक्षा करके घर में प्रविष्ट हो गई । यह उस युवक के लिए दूसरा वशीकरण का प्रयोग हुआ ।

और तब रघुवीरसिंह वहाँ से लौटकर पुनः अपने अधिकृत किनारे के प्रकोष्ठ में चला आया ॥ २४ ॥

तत्र च गवाक्ष-जाल-प्रसारितै राजत-मार्जनी-निभैः कलानिधिकर-निकरैः समूह्य संशोधित इवाऽन्धकारे; पयः-पयोधि-फेनैरिवाऽऽस्तृते शयनीय-पीठे उपविश्य, कदाचिदध इव मुखं विदधत्, कदाचित् कपोलं करे कलयन्, कदाचिज्जालान्तरेण तारकमण्डलमवलोकयन्, कदाचित् किमिति मृषा-चिन्तनैरित्यात्मनैवाऽऽत्मानं सान्त्वयन्, कदाचिच्च 'निद्रे ! कुत इव विद्रुताऽसि ?' इत्यशान्ति बिभ्रत् पार्श्वतः पार्श्वे परिवर्त्तमानो होरामेकामयापयत् ।

व्याख्या—तत्र = तस्मिन् स्थाने, च = पुनः, गवाक्षजालप्रसारितैः = वातायनरन्ध्रप्रविष्टैः, राजतमार्जनीनिभैः = रौप्यमयीबहुकरीसदृशैः, कलानिधिकरनिकरैः = चन्द्रकिरणसमूहैः, समूह्य = सञ्चित्य, संशोधिते इव = निवारिते इव, अन्धकारे = तमसि, पयःपयोधिफेनैः = क्षीरसागरडिण्डीरैः, इव = यथा, आस्तृते = प्रसारिते, शयनीयपीठे = पर्यङ्के, उपविश्य = स्थित्वा, कदाचित् = [illegible] काले, अधः = नीचैः, मुखम् = आननम्, विदधत् = [illegible], करे = हस्ते, कलयन् = धारयन्, कदाचित्,

जालान्तरेण=जालरन्ध्रेण, तारकमण्डलम्=ताराव्रातम्, अवलोकयन्=पश्यन्, कदाचित्, मृषाचिन्तनैः=व्यर्थविचारैः, किम्=को लाभः, इति=एवम्प्रकारेण; आत्मनैव=स्वहृदयेनैव, आत्मानम्=स्वं मानसम्, सान्त्वयन्=समादधत्, कदाचित् च, निद्रे=स्वापः ! कुतः=कस्मात्, विद्रुताऽसि=पलायितोऽसि, इति, अशान्तिम्=व्याकुलताम्, बिभ्रत्=धारयन्, पार्श्वतः=समीपतः, पार्श्वे, परिवर्तमानः=परिचाल्यमानः, एकाम्, होराम्=घण्टाम्, अयापयत्=अत्यवाहयत् ।

समासः—गवाक्षस्य जालेन प्रसारिताः, तैः गवाक्षजालप्रसारितैः । रजतस्येयं राजती, मार्ज्यते अनया इति मार्जनी, राजती या मार्जनी तन्निभाः, तैः राजतमार्जनीनिभैः । कलानां निधिः कलानिधिः, कलानिधेः कराः, तेषां निकरः, तैः कलानिधिकरनिकरैः । पयसां पयोधिः, तस्य फेनाः, तैः पयःपयोधिफेनैः । जालम् अन्तरेण जालान्तरेण । तारकाणां मण्डलं तारकमण्डलम् । न शान्तिः अशान्तिः, ताम् अशान्तिम् ।

व्याकरणम्—राजती—रजत+अण्+ङीप् । मार्जनी—मृज्+ल्युट्+ङीप् । आस्तृते—आङ्+स्तृ+क्त (स० ए० व०) । उपविश्य—उप्+विश्+क्त्वा+ल्यप् । विदधत्—वि+धा+शतृ । कलयन्—कल्+शत । अवलोकयन्—अव्+लोक्+शतृ । सान्त्वयन्—सान्त्व+शतृ । कुतः—किम्+तसिल् । विद्रुता—वि+द्रु+क्त+टाप् । शान्तिः—शम्+क्तिन् । पार्श्वतः—पार्श्व+तसिल् (पञ्चम्यर्थे) । परिवर्तमानः—परि+वृत्=शानच् ।

शब्दार्थ—तत्र च=और वहाँ पर, गवाक्षजालप्रसारितैः=खिड़की के जालों से प्रविष्ट होने वाली, राजतमार्जनीनिभैः=चाँदी की झाड़ू के समान, कलानिधिकरनिकरैः=चन्द्रमा की किरणों के समूह द्वारा, समूह्य=एकत्रित करके, संशोधिते=दूर किये जाने पर, अन्धकारे=अन्धकार के, पयःपयोधिफेनैरिव=क्षीरसागर के फेन के सदृश, आस्तृते=बिछे हुए, उपविश्य=बैठकर, अधः=नीचे, विदधत्=करते हुए, कदाचित्=कभी, कपोलम्=गालों को, करे=हाथ पर, कलयन्=रखते हुए, जालान्तरेण=जालों के मध्य से, तारकमण्डलम्=तारासमूह को, अवलोकयन्=देखते हुए, मृषाचिन्तनैः=व्यर्थ चिन्तन से, किमिति=क्या लाभ है, आत्मना आत्मानमेव=अपने से अपने को, सान्त्वयन्=सान्त्वना देते हुए, विद्रुता=भाग गई, अशान्तिम्=व्याकुलता को, बिभ्रत्=धारण करते हुए, पार्श्वतः=समीप से, परिवर्तमानः

—करवटें बदलते हुए, एकां होराम्=एक घण्टे को, अयापयत्=व्यतीत किया।

हिन्दी—और वहाँ पर खिड़कियों के जाली से प्रविष्ट, चाँदी की झाड़ू के सदृश, चन्द्रमा की किरणों के समूह से एकत्रित करके मानो अन्धकार के दूर किये जाने पर, दुग्धसागर के फेन-सदृश बिछे हुए बिस्तर पर बैठकर, कभी नीचे की ओर मुख करते हुए, कभी कपोल को हाथ पर रखते हुए, कभी जालों के मध्य से तारा-समूह को देखते हुए, कभी 'व्यर्थ चिन्तन से क्या लाभ है ?' इस प्रकार अपने द्वारा ही अपने को समझाते हुए, कभी 'निद्रे ! कहाँ चली गई हो ?' इस प्रकार अशान्ति को धारण करते हुए, इधर-उधर करवटें बदलते हुए एक घण्टा व्यतीत किया ॥ २५ ॥

ततश्च "अहह ! शिववीरकार्येष्वसम्पादितमेकमवशिष्यते" इति किञ्चित् संस्मृत्येव, कशयेव ताडितः सपद्युत्थाय 'मन्दिरपुरोहितः क्व ?' इति कांश्चिदापृच्छ्य, केनचिन्निर्दिष्टमार्गस्तस्यामेव वाटिकायां तदेव बालिकया प्रविष्टचरं गृहं प्रविवेश।

व्याख्या—ततश्च=तत्पश्चात्, अहह !=अरे ! शिववीरकार्येषु=स्वामिनिर्दिष्टप्रयोजनेषु, असम्पादितम्=अकृतम्, एकम्=केवलम्, अवशिष्यते=शेषं विद्यते, इति=एवम्प्रकारेण, किञ्चित्=ईषत्, संस्मृत्येव=स्मरणं विधायेव, कशया=अश्वताडन्या, 'चाबुक' इति भाषायाम्, ताडितः=पीडितः, इव=यथा, सपदि=त्वरितम्, उत्थाय=शय्यात उत्थित्वा, मन्दिरपुरोहितः=देवालयपुरोहितः, क्व=कुत्र वर्तते, इति=एवम्प्रकारेण, कांश्चिद्=जनान्, आपृच्छ्य=पृष्ट्वा, केनचित्=जनेन, निर्दिष्टमार्गः=प्रदर्शितपन्थाः, तस्यामेव, वाटिकायाम्=उद्याने, तदेव=तद्गृहे एव, बालिकया=सौवर्ण्या, प्रविष्टचरम्=पूर्वप्रविष्टम्, गृहम्=निकेतनम्, प्रविवेश=प्रवेशं विहितवान्।

समासः—शिववीरस्य कार्याणि, तेषु शिववीरकार्येषु। न सम्पादितम् असम्पादितम्। मन्दिरस्य पुरोहितः मन्दिरपुरोहितः। निर्दिष्टः मार्गः यस्य सः निर्दिष्टमार्गः।

व्याकरणम्—कार्यम्—कृ+ण्यत्। सम्पादितम्—सम्+पद्+णिच्+क्त। अवशिष्यते—अव+शिष्+लट् (प्र० पु० ए० व०)। संस्मृत्य—सम्+स्मृ+क्त्वा+ल्यप्। ताडितः—तड्+णिच्+क्त। उत्थाय—उद्+स्था+

क्त्वा + ल्यप् । क्व—किम् + अत् 'किम्' को 'कु' आदेश । आपृच्छ्य—आङ् + पृच्छ + क्त्वा + ल्यप् । निर्दिष्टः—निर् + दिश् + क्त । मार्गः—मृज् + घञ् । प्रविवेश—प्र + विश् + लिट् (प्र० पु० ए० व०) ।

शब्दार्थ—ततश्च = तत्पश्चात्, अहह = अरे ! शिववीरकार्येषु = शिवाजी के कार्यों में, असम्पादितम् = न किया हुआ, अवशिष्यते = शेष है, इति = इस प्रकार, किञ्चित् = कुछ, संस्मृत्य = स्मरण करके, कशया = कोड़े से, ताडितः = मारा गया, सपदि = शीघ्र, उत्थाय = उठकर, मन्दिरपुरोहितः = मन्दिर का पुजारी, क्व = कहाँ, कांश्चित् = कुछ लोगों से, आपृच्छ्य = पूछकर, केनचित् = किसी के द्वारा, निर्दिष्टमार्गः = मार्ग बताया गया, तस्यामेव वाटिकायाम् = उसी बगीचे में, तदेव = उसी घर में, बालिकया प्रविष्टचरम् = बालिका सौवर्णी के द्वारा पहले प्रवेश किया गया था जिसमें, प्रविवेश = प्रवेश किया ।

हिन्दी—तदनन्तर 'अरे ! वीर शिवाजी के कार्यों में असम्पादित रूप में एक अवशिष्ट है' इस प्रकार कुछ स्मरण-सा करके कोड़े से मारे हुए के समान शीघ्र शय्या से उठकर 'मन्दिर के पुरोहित कहाँ हैं' इस प्रकार कुछ लोगों से पूछकर, किसी के द्वारा निर्दिष्ट मार्ग वाला वह रघुवीर सिंह उसी वाटिका में, जिसमें वह बालिका सौवर्णी गई थी, उसी घर में प्रवेश कर गया ॥ २६ ॥

तत्र चैकस्मिन् प्रकाण्ड-कोष्ठे निरैक्षिष्ट यद् एकस्यामारकूटदीपिकायां प्रदीप एको ज्वलति; कुश-काशासनान्यनेकानि आस्तृतानि, आरक्त-वेष्टनेषु बहुशः पुस्तकानि पीठिका अधिष्ठापितानि, नागदन्तिकासु धौत-वस्त्राणि पट्टाम्बराणि च लम्बन्ते, एकस्मिन् शरावे मसीपात्रम्, लेखनी, छुरिका, गैरिकम्, उपनेत्रं चाऽऽयोजितमस्ति । पात्रान्तरे च खादिरं चूर्णम्, आर्द्र-वस्त्र-वेष्टितानि नागवल्लीदलानि, पूगानि, शङ्कुला, देवकुसुमानि, एलाः, जाति-पत्राणि, कर्पूरं च विन्यस्तमस्ति । तन्मध्यत एव च महोपबर्हमेकं पृष्ठत आश्रित्य पादौ प्रसार्य उपविष्ट एको वृद्धः, सम्मुखस्थश्च छात्र एकः पादौ संवाहयति, अपरश्च किञ्चित् तालिपत्र-पुस्तकं दीप-समीपे पठति, वृद्धश्च किञ्चिन्निद्रा-मन्थरश्छात्रप्रश्नानुसारेण मध्ये मध्ये आलस्यमुन्मुच्य, किमप्यर्द्ध-विशिथिल-शब्दैरुत्तरयति—इति ।

व्याख्या—तत्र = तद्गृहे, च, एकस्मिन्, प्रकाण्डकोष्ठे = विशाले कक्षे,

निरैक्षिष्ट = अपश्यत्, यत्, एकस्याम् आरकूटदीपिकायाम् = पित्तलाधारे, प्रदीपः = दीपः, एकः = केवलः, ज्वलति = प्रकाशं विदधाति, अनेकानि = बहूनि, कुशकाशासनानि = कुशकाशविनिर्मितानि विष्टराणि, आस्तृतानि = प्रसारितानि, आरक्तवेष्टनेषु = ईषद्रक्तबन्धनवसनेषु, बहुशः = बहूनि, पुस्तकानि, पीठिकाः = वेदिकाः, अधिष्ठापितानि = उपवेशितानि, नागदन्तिकासु = कीलिकासु, धौतवस्त्राणि = स्वच्छाम्बराणि, पट्टाम्बराणि = दुकूलानि, च लम्बन्ते = अवलम्बितानि सन्ति, एकस्मिन्, शरावे = विस्तृतपात्रे, मसीपात्रम् = लेखनसाधनम्, लेखनी = कलमः, छुरिका = असिधेनुका, गैरिकम् = धातुरागम्, उपनेत्रम् = नेत्रयोः सहायकम्, आयोजितम् = स्थापितम्, अस्ति = विद्यते, पात्रान्तरे = तद्वत् अन्यपात्रे, खादिरम् = रसविशेषनिर्मितम्, चूर्णकम् = सुधा, आर्द्रवस्त्रवेष्टितानि = जलसिञ्चितवसनस्थापितानि, नागवल्लीदलानि = ताम्बूललतापत्राणि, पूगानि = क्रमुकानि, शङ्कुला = पूगकर्तनी, देवकुसुमानि = लवङ्गानि, एलाः = पृथ्वीकाः, जातिपत्राणि = जायफलानि, कर्पूरम् = घनसारः, च, विन्यस्तम् = स्थापितम्, अस्ति = वर्तते, तन्मध्यतः = तस्य प्रकोष्ठस्य मध्ये, एव, च, महोपबर्हम् = महदुपधानम्, एकम्, पृष्ठतः = शरीरस्य पृष्ठभागात्, आश्रित्य = आश्रयं गृहीत्वा, पादौ = चरणे, प्रसार्य = विस्तार्य, उपविष्टः = स्थितः, एकः, वृद्धः = जीर्णवयः, सम्मुखस्थः = अग्रे उपविष्टः, च, छात्रः = शिष्यः, एकः = केवलः, पादौ = चरणे, संवाहयति = मर्दयति, अपरश्च = अन्यश्च, किञ्चित्, तालिपत्रपुस्तकम् = तालतरुपत्रपुस्तकम्, दीपसमीपे = प्रदीपपार्श्वे, पठति = अधीते, वृद्धश्च = जीर्णवयश्च, किञ्चित्, निद्रामन्थरः = स्वापेनालसः, छात्रप्रश्नानुसारेण = शिष्यप्रश्नाननुसृत्य, मध्ये-मध्ये = अन्तराले-अन्तराले, आलस्यम् = अकर्मण्यताम्, उन्मुच्य = परित्यज्य, किमपि, अर्द्धविशिथिलशब्दैः = स्वल्पसुस्तैः पदैः, उत्तरयति = उत्तरं प्रयच्छति, इति ।

समासः—प्रकृष्टः काण्डः दीर्घः प्रकाण्डः प्रकाण्डकोष्ठः, तस्मिन् प्रकाण्डकोष्ठे । आरकूटस्य दीपिका, तस्याम् आरकूटदीपिकायाम् । प्रकर्षेण दीप्यते अनेन इति प्रदीपः । कुशानि च काशानि च कुशकशे, कुशकाशस्य आसनानि कुशकाशासनानि । ईषद् रक्तानि आरक्तानि, तानि च वेष्टनानि, तेषु-आरक्तवेष्टनेषु । धौतानि च तानि वस्त्राणि धौतवस्त्राणि । नेत्रयोः समीपवर्ति इति उपनेत्रम् । खदिरस्य इदं खादिरम् । आर्द्रं वस्त्रम्, तस्मिन् वेष्टितानि आर्द्रवस्त्रवेष्टितानि । नागस्य वल्ली, तस्याः दलानि नागवल्लीदलानि । जातेः

पत्राणि जातिपत्राणि। महान् चासौ उपबर्हः, तं महोपबर्हम्। सङ्गतं मुखं येन तत् सम्मुखम्, सम्मुखे तिष्ठतीति सम्मुखस्थः। ताल्याः पत्रैः निर्मितं पुस्तकं तत् तालिपत्रपुस्तकम्। दीपस्य समीपे इति दीपसमीपे। निद्रया मन्थरः निद्रामन्थरः। छात्रस्य प्रश्नाः, तेषाम् अनुसारेण छात्रप्रश्नानुसारेण अर्द्धं विशिथिलाश्च ये शब्दाः, तैः अर्द्धविशिथिलशब्दैः।

व्याकरणम्—निरैक्षिष्ट—निर्+ईक्ष्+लुङ् (प्र० पु० ए० व०)। प्रदीपः—प्र+दीप+णिच्+क। आस्तृतानि—आङ्+स्तृ+क्त। बहुशः—बहु+शस्। अधिष्ठापितानि—अधि+स्था+णिच्+क्त (प्र० ब० व०)। धौत—धाव्+क्त। लेखनी—लिख्+ल्युट्+ङीप्। छुरिका—छुर्+क्वुन्+टाप्। गैरिकम्—गिरि+ठञ्। नेत्रम्—नी+ष्ट्रन्। आयोजितम्—आङ्+युज्+णिच्+क्त। खादिरम्—खदिर्+अञ्। एलाः—इल्+अच्+टाप्। विन्यस्तम्—वि+न्यस्+क्त। उपबर्हः—उप्+बर्ह+घञ्। पृष्ठतः—पृष्ठ+तसिल्। आश्रित्य—आङ्+श्रि+क्त्वा+ल्यप्। प्रसार्य—प्र+सृ+ल्यप्। उपविष्टः—उप+विश्+क्त। संवाहयति—सम्+वह्+णिच्+लट् (प्र० पु० ए० व०)। उन्मुच्य—उद्+मुच्+क्त्वा+ल्यप्। उत्तरयति—उत्तर+क्यङ् (नामधातु)+तिप्।

शब्दार्थ—तत्र=वहाँ घर में, एकस्मिन्=एक, प्रकाण्डकोष्ठे=विशाल कक्ष में, निरैक्षिष्ट=देखा, यत्=कि, एकस्याम् आरकूटदीपिकायाम्=एक पीतल के दीवट पर, प्रदीपः=दीपक, ज्वलति=जल रहा है, कुशकाशासनानि=कुश और काश के आसन, आस्तृतानि=बिछे हुए हैं, आरक्तवेष्टनेषु=कुछ लाल वेष्टनों में, बहुशः=अनेक, पुस्तकानि=पुस्तकें, पीठिकाः=चौकियों पर, अधिष्ठितानि=रखी हुई हैं, नागदन्तिकासु=खूटियों पर, धौतवस्त्राणि=धुले वस्त्र, पट्टाम्बराणि=दुपट्टे, लम्बन्ते=लटके हैं, एकस्मिन् शरावे=एक प्याले में, मसीपात्रम्=दवात, लेखनी=कलम, छुरिका=चाकू, गैरिकम्=गेरु, उपनेत्रम्=चश्मा, आयोजितम्=रखा है, पात्रान्तरे=दूसरे पात्र में, खादिरम्=कत्था, आर्द्रवस्त्रवेष्टितानि=गीले वस्त्रों में बंधे हुए, नागदलानि=पान की लता के पत्ते, पूगानि=सुपारी, शङ्कुला=सरौता, देवकुसुमानि=लौंग, एलाः=इलायची, जातिपत्राणि=जायफल के पत्ते, कर्पूरम्=कपूर, विन्यस्तम्=रखा है, तन्मध्यतः=उस कमरे के मध्य में, महोपबर्हम्=बड़ा तकिया, पृष्ठतः=पीठ से, आश्रित्य=सहारा लेकर, पादौ=पैरों को, प्रसार्य=

फैलाकर, उपविष्टः=बैठे हुए, एको वृद्धः=एक वृद्ध, सम्मुखस्थः=सामने बैठा हुआ, संवाहयति=दबा रहा है, अपरश्च=और दूसरा, तालिपत्रपुस्तकम्=तालपत्र की पुस्तक को, दीपसमीपे=दीपक के पास, निद्रामन्थरः=निद्रा के कारण आलस्य युक्त, छात्रप्रश्नानुसारेण=छात्र के प्रश्नों के अनुसार, मध्ये-मध्ये=बीच-बीच में, आलस्यम्=आलस्य को, उन्मुच्य=छोड़कर, किमपि=कुछ अर्द्धविशिथिलशब्दैः=कुछ शिथिल शब्दों से, उत्तरयति=उत्तर देता है।

हिन्दी—वहां एक विशाल कक्ष में देखा कि—एक पीतल की दीवट पर एक दीपक जल रहा है। अनेक कुश और काश के आसन बिछे हुए हैं, किञ्चित् रक्तवेष्टनों में बहुत-सी पुस्तकें चौकियों पर रखी हुई हैं, धुले हुए वस्त्र एवं दुपट्टे खूंटियों पर लटक रहे हैं, एक प्याले में दवात, लेखनी, चाकू, गेरू और चश्मा रखा हुआ है। दूसरे पात्र में कत्था, चूना, गीले वस्त्र में लपेटे हुए पान, सुपारी, सरौता, लौंग, इलायची, जायफल के पत्ते और कपूर रखा है। उस कमरे के मध्य में ही एक बड़े तकिये पर पीठ टेके हुए, पैरों को फैलाये हुए एक वृद्ध बैठा है और उसके सम्मुख स्थित एक छात्र पैरों को दबा रहा है, दूसरा किसी तालपत्रपुस्तक को दीपक के समीप पढ़ता है और वृद्ध कुछ-कुछ निद्रा के कारण आलस्ययुक्त होकर छात्र के प्रश्नों के अनुसार बीच-बीच में आलस्य का परित्याग कर शिथिल शब्दों में कुछ उत्तर देता है॥ २७॥

अथैनं पाद-संवाहन-परश्छात्रोऽवलोक्य 'को भवान्' इत्यपृच्छत्। एष च 'श्रीमतां समर-विजयिनां महाराष्ट्र-राजानां भृत्योऽस्मि' इति मन्दमभ्यधात्। तदवधार्य वृद्धोऽपि नेत्रे विस्फार्य निद्रामन्थरेण स्वरेण 'आस्यतामास्यताम्' इति प्रणमन्तमुवाच। सोऽपि प्रणम्य, समुपविश्य, दत्त-निज-परिचयः, कुशलादि-वार्त्ता आलप्य, क्षणानन्तरं तदादेशानुसारेण करौ सम्पुटीकृत्य न्यवेदयत्—

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, एनम्=रघुवीरसिंहम्, पादसंवाहनपरः=चरणमर्दने लग्नः, छात्रः=शिष्यः, अवलोक्य=वीक्ष्य, को भवान्?=कस्त्वम्? इति=एवम्प्रकारेण, अपृच्छत्=प्रश्नमकरोत्, एषः=रघुवीरसिंह, च, 'श्रीमतां=गौरवशालिनाम्, समरविजयिनाम्=सङ्गरेष्वपराजितानाम्, महाराष्ट्रराजानाम्=महाराष्ट्रस्वामिनाम्, भृत्यः=सेवकः, अस्मि=वर्ते, इति=इत्थम्, मन्दम्=शनैः, अभ्यधात्=अकथयत्। तदवधार्य=रघुवीरकथनं समाकर्ण्य,

वृद्धोऽपि = वृद्धवयोऽपि, नेत्रे = लोचने, विस्फार्य = विस्तीर्य, निद्रामन्थरेण = स्वापशिथिलेन, स्वरेण = ध्वनिना, आस्यताम् = उपविश्यताम्, आस्यताम् = उपविश्यताम्, इति = एवम्प्रकारेण, प्रणमन्तम् = नमन्तम्, उवाच = जगाद। सोऽपि = रघुवीरसिंहोऽपि, प्रणम्य = नमस्कृत्वा, समुपविश्य = अध्यास्य, दत्तनिजपरिचयः = निवेदितात्मवृत्तान्तः, कुशलादिवार्ताः = कुशलतासम्बन्धिप्रश्नान्, आलप्य = आपृच्छ्य, क्षणानन्तरम् = किञ्चित्कालानन्तरम्, आलप्य = आपृच्छ्य, क्षणानन्तरम् = किञ्चित्कालानन्तरम्, तदादेशानुसारेण = वृद्धस्य आज्ञानुसारेण, करौ = हस्तौ, सम्पुटीकृत्य = संयोज्य, न्यवेदयत् = निवेदनमकरोत्।

समासः—पादयोः संवाहनम्, तस्मिन् परः पादसंवाहनपरः। श्री अस्ति येषां, तेषां श्रीमताम्। विजेतुं शीलमेषां ते विजयिनः, समरेषु विजयिनः, तेषां समरविजयिनाम्। महाराष्ट्राणां राजा महाराष्ट्रराजः, तेषां महाराष्ट्रराजानाम्। दत्तः निजपरिचयः येन सः दत्तनिजपरिचयः। कुशलादीनां वार्ताः कुशलादिवार्ताः। तस्य आदेशः तदादेशः, तस्य अनुसारः, तेन तदादेशानुसारेण। न सम्पुटम् असम्पुटम्, असम्पुटं सम्पुटमिव कृत्वा इति सम्पुटीकृत्य।

व्याकरणम्—अवलोक्य—अव् + लोक् + क्त्वा + ल्यप्। अवधार्य—अव + धृ + णिच् + क्त्वा + ल्यप्। विस्फार्य—वि + स्फुर् + क्त्वा + ल्यप्। आस्यताम्—आस् + यक् + लोट् (प्र० पु० ए० व०)। प्रणम्य—प्र + नम् + क्त्वा + ल्यप्। समुपविश्य—सम् + उप + विश् + क्त्वा + ल्यप्। आलप्य—आङ् + लप् + क्त्वा + ल्यप्। सम्पुटीकृत्य—सम्पुट + च्वि + कृ + क्त्वा + ल्यप्। न्यवेदयत्—नि + विद् + लङ् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—अथ = अनन्तर, एनम् = रघुवीर सिंह को, पादसंवाहनपरः = चरणों के मर्दन में संलग्न, अवलोक्य = देखकर, को भवान् = आप कौन हैं ?, इति = ऐसा, अपृच्छत् = पूछा, एषः = उस रघुवीर सिंह ने, श्रीमताम् = गौरवशाली, समरविजयिनाम् = युद्धों में विजयी होने वाले, महाराष्ट्रराजानाम् = महाराष्ट्र के राजा का, भृत्यः = सेवक, अभ्यधात् = कहा, तदवधार्य = यह सुनकर, वृद्धोऽपि = वृद्ध ने भी, नेत्रे = नयनों को, विस्फार्य = फैलाकर, निद्रामन्थरेण = निद्रा के कारण भारी, स्वरेण = स्वर से, आस्यताम् = बैठो, प्रणमन्तम् = प्रणाम करते हुए, सोऽपि = वह रघुवीर सिंह भी, प्रणम्य = प्रणाम करके, दत्तनिजपरिचयः = जिसने अपना परिचय दिया है, कुशलादिवार्ता =

कुशल आदि समाचार, आलप्य = बात करके, क्षणानन्तरम् = क्षणभर के बाद, तदादेशानुसारेण = उसके आदेशानुसार, करौ = हाथों को, सम्पुटीकृत्य = जोड़कर, न्यवेदयत् = निवेदन किया।

हिन्दी—इसके अनन्तर पैर दबाने में संलग्न छात्र ने रघुवीर सिंह को देखकर 'आप कौन हैं ?' ऐसा पूछा। मैं 'गौरवशाली, समरविजयी महाराष्ट्रराज का सेवक हूँ' ऐसा उसने धीरे से कहा। यह सुनकर वृद्ध ने भी नेत्रों को फैलाकर निद्रा के कारण मन्द स्वर में प्रणाम करते हुए रघुवीर सिंह से 'बैठो, बैठो' यह कहा। रघुवीर सिंह ने भी प्रणामपूर्वक बैठकर, अपना परिचय देकर, कुशल आदि की वार्ता करके, क्षणभर के बाद उस वृद्ध की आज्ञानुसार हाथ जोड़कर निवेदन किया॥ २८॥

'भगवन् ! प्रणम्य भवन्तं तत्रभवान् महाराष्ट्र-राजः कथयति यत्—साम्प्रतं शास्तिखान-द्वारा पुण्यनगरमपि हस्तितवता दिल्लीश्वरेण सह योद्धुमुपक्रान्तमस्ति, परमल्पीयसी अस्मत्सेना, असहयोगिनः पार्श्वस्थ-पृथिवीपतयः, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गेष्वपि समुद्धूत-ध्वजाः परिपन्थिनः, शैशवादेव यवनवराकैर्महाप्रवृद्धं मम वैरम्, सन्धेश्च कथामात्रमपि न सम्बोभवीति, यद्यप्यल्पेऽपि मामका युद्ध-विद्यासु कुशलाः सन्ति; तथाऽपि किं भावीति मध्ये मध्ये संशेते हृदयम्, भवांस्तु प्रसिद्धोऽस्मद्देशे दैवज्ञः तद् विचार्य कथ्यतां किं भावि ?' इति।

व्याख्या—भगवन् ! = हे प्रभो ! तत्रभवान् = आदरणीयः, महाराष्ट्रराजः = शिववीरः, भवन्तम् = त्वाम्, प्रणम्य = वन्दनं विधाय, कथयति = निगदति, यत्, साम्प्रतम् = अधुना, शास्तिखानद्वारा = यवनसेनानायकद्वारा, पुण्यनगरम् = पूनाप्रदेशम्, अपि, हस्तितवता = निजाधिकारे कृतवता, दिल्लीश्वरेण = दिल्लीप्रदेशाधीश्वरेण, सह = साकम्, योद्धुम् = समरं विधातुम्, उपक्रान्तम् = प्रारब्धम्, अस्ति = विद्यते, परमल्पीयसी = अतिन्यूना, अस्मत्सेना = अस्माकं बलम्, पार्श्वस्थपृथिवीपतयः = समीपवर्तिनो भूपतयः, असहयोगिनः = विरोधिनः, सन्तीति शेषः, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गेषु = एतन्नामकेषु प्रदेशेषु, अपि, समुद्धूतध्वजाः = समुद्गतपताकाः, परिपन्थिनः = रिपवः, शैशवादेव = बाल्यकालादेव, यवनवराकैः = नीचयवनैः, महाप्रवृद्धम् = अतिप्रकीर्णम्, मम = शिववीरस्य, वैरम् = शत्रुता, सन्धेश्च = परस्परसद्भावस्य च, कथामात्रम् = काचि-

दपि आशा, न=नहि, सम्बोभवीति=अतिशयेन वारं-वारं वा भवति, यद्यपि, अल्पेऽपि=न्यूना अपि, मामकाः=मदीयाः, युद्धविद्यासु=सङ्गरकलासु, कुशलाः=निपुणाः, सन्ति=विद्यन्ते, तथापि=तदापि, किं भावीति=किं भविष्यतीति, मध्ये-मध्ये=अन्तराले-अन्तराले, यदा कदा वा, हृदयम्=चेतः, संशेते=सन्दिग्धे, भवांस्तु=भवान् तु, अस्मद्देशे=मम राज्ये, दैवज्ञः=गणकः भविष्यद्रष्टा वा, प्रसिद्धः=प्रथितः, अस्तीति शेषः, तद्=तस्मात् कारणात्, विचार्य=ज्योतिषशास्त्रानुसारेण विचारं विधाय, कथ्यताम्=ब्रवीतु, किं भावि ?=किं भविष्यति ? इति ।

समासः—महाराष्ट्राणां राजा महाराष्ट्रराजः । हस्ते सञ्जातः हस्तितः, तदस्ति अस्येति तेन हस्तितवता । दिल्ल्याः ईश्वरः, तेन दिल्लीश्वरेण । अतिशयेन अल्पा अल्पीयसी, परमा अल्पीयसी इति परमल्पीयसी । मम सेना इति अस्मत्सेना । सहयोगं कर्तुं शीलमेषां ते सहयोगिनः, न सहयोगिनः असहयोगिनः । पार्श्वे तिष्ठन्तीति पार्श्वस्थाः, पृथिव्याः पतयः पृथिवीपतयः, पार्श्वस्थाः पृथिवीपतयः इति पार्श्वस्थपृथिवीपतयः । सम्यक् उद्धूताः ध्वजाः येषां ते समुद्धूतध्वजाः । शिशोः भावः शैशवम्, तस्मात् शैशवात् । यवनाश्च ते वराकाः, तैः यवनवराकैः । पुनः पुनरतिशयेन वा भवति इति बोभवीति, सम्यक् बोभवीति इति सम्बोभवीति । युद्धस्य विद्या, तासु युद्धविद्यासु । देवस्य इदं दैवम्, दैवं जानाति इति दैवज्ञः ।

व्याकरणम्—प्रणम्य—प्र+नम्+क्त्वा+ल्यप् । हस्तितवता—हस्त+इतच्+मतुप् । योद्धुम्—युध्+तुमुन् । उपक्रान्तम्—उप+क्रमु+क्त । अल्पीयसी—अल्प+इयसुन्+ङीप् । समुद्धूत—सम्+उद्+धूञ्+क्त । परिपन्थिनः—परि+पन्थ+णिनि । शैशवम्—शिशु+अण् । वराकः—वृ+षाकन् । विचार्य—वि+चर्+क्त्वा+ल्यप् । कथ्यताम्—कथ्+यक्+लोट् (प्र० पु० ए० व०) ।

शब्दार्थ—भगवन् !=प्रभो ! प्रणम्य=प्रणाम करके, भवन्तम्=आपको, महाराष्ट्रराजः=महाराष्ट्र के राजा, कथयति=कहते हैं, साम्प्रतम्=इस समय, शास्तिखानद्वारा=शाइस्ता खाँ के द्वारा, पुण्यनगरम्=पूना नगर को, हस्तितवता=हथिया लेने वाले, दिल्लीश्वरेण=दिल्ली के राजा के, सह=साथ, योद्धुम् उपक्रान्तम्=युद्ध आरम्भ हो गया है, अल्पीयसी=बहुत कम, अस्मत्सेना=मेरी सेना है, असहयोगिनः=सहयोग न देने वाले (विरोधी),

पार्श्वस्थपृथिवीपतयः=पड़ोसी राजा, अङ्ग-वङ्ग-कलिङ्गेषु=अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग में, समुद्धूतध्वजाः=ध्वजा फहरा रही है, परिपन्थिनः=शत्रुओं की, शैशवादेव=बाल्यकाल से ही, यवनवराकैः=दुष्ट यवनों के साथ, महाप्रवृद्धम्=अत्यन्त बढ़ा हुआ, वैरम्=शत्रुता, सन्धेः=सन्धि की, कथामात्रमपि=कथामात्र की भी अर्थात् कुछ भी, न सम्बोभवीति=सम्भव नहीं है, अल्पेऽपि=थोड़े होने पर भी, मामकाः=मेरे, युद्धविद्यासु=युद्धविद्या में, कुशलाः=निपुण, किं भावीति=क्या होने वाला है, ऐसा, मध्ये-मध्ये=बीच-बीच में, हृदयम्=हृदय, संशेते=संशय करता है, भवान्=आप, अस्मद्देशे=हमारे देश में, दैवज्ञः=ज्योतिषी, तद्=इसलिए, विचार्य=विचार करके, कथ्यताम्=बताइए।

हिन्दी—भगवन्! आपको प्रणाम करके आदरणीय महाराष्ट्रराज शिवाजी कहते हैं कि इस समय शाइस्ता खाँ के द्वारा पूना नगर को अधिकार में कर लेने वाले दिल्लीश्वर के साथ हमारा युद्ध प्रारम्भ हो गया है, हमारी सेना अत्यन्त अल्प है, समीपस्थ नृपतिगण विरोधी हैं, अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग में शत्रुओं की पताकाएँ फहरा रही हैं, बाल्यकाल से ही इन नीच यवनों के साथ मेरा वैर अत्यन्त बढ़ गया है, सन्धि की कुछ भी सम्भावना नहीं है, यद्यपि थोड़े होने पर भी मेरे सैनिक युद्धविद्या में निपुण हैं, तथापि 'क्या होने वाला है?' ऐसा बीच-बीच में हृदय सन्देह करता है। आप हमारे देश में प्रसिद्ध ज्योतिषी हैं, अतः विचार करके बतलाइये कि क्या होगा? ॥ २९ ॥

तदवगत्य, पादावाकुञ्च्य 'विजयतां शिवराजः' इत्यभिधाय, ताम्बूल-वीटिकां रचयितुं छात्रमेकमिङ्गितेनाऽऽदिश्य, पृष्ठस्थद्वाराभिमुखं ग्रीवां परिवर्त्य, 'वत्से! सौवर्णि! वत्से! सौवर्णि!' इत्याकार्य, 'इयमस्मि तात!' इत्यागतां च तां 'वत्से! तासां यूथिकामालिकानामेकां मालां प्रसाद-मोदकं चैकमानय'—इत्यभिधाय, बाढमित्युक्त्वा तथा विहितवत्यां च तस्याम्, रघुवीराभिमुखं 'गृहाण, भुङ्क्ष्वेदं प्रसादमधुरान्नं निद्रामनुभव, यादृशं च स्वप्नमवलोकयितासि, तथा प्रातरेव मां कथयितासि, व्येति रजनी, तद् गच्छ, शेष्व' इत्युदीर्य समागतां सौवर्णीमिव मोदकमर्पयितुं मालां च कण्ठे निक्षेप्तुमिङ्गितवान्।

व्याख्या—तदवगत्य=शिववीरस्य सन्देशं समाकर्ण्य, पादौ=चरणे,

आकुञ्च्य = मोटयित्वा, शिवराजः = शिववीरः, विजयताम् = विजयमधिगच्छतु, इति = एवम्, अभिधाय = निगद्य, ताम्बूलवीटिकाम् = नागवल्लीपत्रम्, रचयितुम् = निर्मातुंम्, छात्रमेकम् = शिष्यमेकम्, इङ्गितेन = सङ्केतेन, आदिश्य = आज्ञां प्रदाय, पृष्ठस्थद्वाराभिमुखम् = पश्चिमद्वारं प्रति, ग्रीवाम् = कन्धराम्, परिवर्त्य = तिर्यक् कृत्वा, वत्से = पुत्रि ! सौवर्णि ! = एतन्नामिके ! इति = इत्थम्, आकार्य = आहूय, इयमस्मि तात ! = आगच्छामि पितः, इति, आगताम् = आयाताम्, च, ताम् = बालिकाम्, वत्से ! तासाम्, यूथिकामालिकानाम् = मागधीस्रजाम्, एकाम्, मालाम् = हारम्, प्रसादमोदकम् = भगवदर्पितमिष्ठान्नम्, चैकम्, आनय = प्रापय, इति, अभिधाय = उदीर्य, बाढम् = सुनिश्चितम्, इति = एवम्, उक्त्वा = प्रोच्य, तथा = तदेव, विहितवत्याम् = सम्पादितवत्याम्, च, तस्याम् = बालिकायाम्, रघुवीराभिमुखम् = रघुवीरं प्रति, गृहाण = ग्रहणं कुरु, भुक्त्वा = जग्ध्वा, इदम्, प्रसादमधुरान्नम् = भगवदर्पितमोदकम्, निद्रामनुभव = शेष्व, यादृशं च = यादृग्विधां च, स्वप्नम् = सुप्तावस्थायां कथाम्, अवलोकयितासि = प्रेक्षिष्यसे, तथा, प्रातरेव = प्रभाते एव, माम्, कथयितासि = अभिधास्यसि, व्येति = अतियाति, रजनी = यामिनी, तद् = अतः, गच्छ = व्रज, शेष्व = स्वपिहि, इति, उदीर्य = निगद्य, समागताम् = समायाताम्, सौवर्णीमिव, मोदकम् = मिष्ठान्नम्, अर्पयितुम् = प्रदातुम्, मालाम् = हारम्, च, कण्ठे = ग्रीवायाम्, निक्षेप्तुम् = परिधापयितुम्, इङ्गितवान् = सङ्केतितवान् ।

समासः—तत् अवगत्य तदवगत्य । ताम्बूलस्य वीटिका, तां ताम्बूलवीटिकाम् । पृष्ठे तिष्ठतीति पृष्ठस्थम्, पृष्ठस्थं द्वारम्, तस्य अभिमुखं पृष्ठस्थद्वाराभिमुखम् । यूथिकानां मालिका, तासां यूथिकामालिकानाम् । प्रसादस्य मोदकम्, तत् प्रसादमोदकम् । रघुवीरस्य अभिमुखं रघुवीराभिमुखम् । मधुरं च तत् अन्नं मधुरान्नम्, प्रसादस्य मधुरान्नम् इति प्रसादमधुरान्नम् ।

व्याकरणम्—अवगत्य—अव + गम् + क्त्वा + ल्यप् । आकुञ्च्य—आङ् + कुञ्च + क्त्वा + ल्यप् । विजयताम्—वि + जि + लोट् (प्र० पु० ए० व०) । अभिधाय—अभि + धा + क्त्वा + ल्यप् । रचयितुम्—रच + णि + तुमुन् । इङ्गितेन—इङ्ग + क्त (तृ० ए० व०) । आदिश्य—आङ् + दिश् + क्त्वा + ल्यप् । परिवर्त्य—परि + वृत + क्त्वा + ल्यप् । आकार्य + आङ् + कृ + णिच् + ल्यप् । आगताम्—आङ् + गम् + क्त + टाप् । आनय—आङ् + नी + लोट् +

सिप्। उक्त्वा—वच्+क्त्वा। विहितवत्याम्—वि+धा+क्तवतु (स्त्री० स० ए० व०)। भुक्त्वा—भुज्+क्त्वा। अनुभव—अनु+भू+लोट् (म० पु० ए० व०)। स्वप्न—स्वप्+नन्। अवलोकयितासि—अव+लोक+णिच्+लुट्+असि। व्येति—वि+आङ्+इण्+लट् (प्र० पु० ए० व०)। गच्छ—गम्+लोट्। शेष्व—शीङ्+लोट्। उदीर्य—उद्+ईर्+क्त्वा+ल्यप्। समागताम्—सम्+आङ्+गम्+क्त+टाप्। अर्पयितुम्—अर्प+णिच्+पुक्+तुमुन्। इङ्गितवान्—इङ्ग+क्तवतु (प्र० ए० व०)।

शब्दार्थ—तदवगत्य=यह जानकर, पादौ=पैरों को, आकुञ्च्य=समेट-कर, विजयताम्=विजयी हों, शिवराजः=वीर शिवाजी, अभिधाय=कहकर, ताम्बूलवीटिकाम्=पान के बीड़ा को, रचयितुम्=तैयार करने के लिए, इङ्गितेन=संकेत से, आदिश्य=आदेश देकर, पृष्ठस्थद्वाराभिमुखम्=पीछे के द्वार की ओर, ग्रीवाम्=गर्दन को, परिवर्त्य=घुमाकर, आकार्य=बुलाकर, आगताम्=आयी हुई; यूथिकामालिकानाम्=जूही की मालाओं में से, प्रसाद-मोदकम्=प्रसाद का लड्डू, आनय=लाओ, अभिधाय=कहकर, बाढम्=अवश्य, उक्त्वा=कहकर, विहितवत्याम्=कर चुकने पर, गृहाण=ग्रहण करो, भुक्त्वा=खाकर, निद्राम्=निद्रा को, अनुभव=अनुभव करो, स्वप्नम्=स्वप्न को, अवलोकयितासि=देखोगे, प्रातरेव=प्रातःकाल ही, व्येति=व्यतीत हो रही है, गच्छ=जाओ, शेष्व=सो जाओ, उदीर्य=कहकर, समागताम्=आई हुई, अर्पयितुम्=देने के लिए, निक्षेप्तुम्=डालने के लिए, इङ्गितवान्=सङ्केत किया।

हिन्दी—यह जानकर पैरों को समेट कर 'शिवराज विजयी हों' यह कह-कर, पान का बीड़ा बनाने के लिए संकेत से शिष्य को आदेश देकर, पृष्ठभाग की ओर संस्थित द्वार की ओर गर्दन घुमाकर, 'पुत्रि सौवर्णि ! पुत्रि सौवर्णि !' इस प्रकार बुलाकर, 'आती हूँ पिताजी !' ऐसा कहकर आयी हुई उससे 'पुत्रि ! उन जूही की मालाओं में से एक माला और एक प्रसाद का लड्डू ले आओ' यह कहकर 'अच्छा' इस प्रकार उच्चरित करके उसके वैसा करने पर रघुवीर सिंह की ओर मुख करके 'ग्रहण करो, इस प्रसाद के मधुर मिष्ठान्न को खाकर सो जाओ, जैसा स्वप्न देखना, वैसा मुझे प्रातः बतलाना, रात्रि व्यतीत हो रही है, इसलिए जाओ, शयन करो', यह कहकर वृद्ध ने आई हुई सौवर्णी को ही मोदक देने और माला कण्ठ में पहनाने के लिए संकेत किया ॥ ३० ॥

सा चाऽवलोक्य तमेव पूर्वावलोकितं युवानम्, व्रीडा-भर-मन्थराऽपि ताताज्ञया बलादिव प्रेरिता ग्रीवां नमयन्ती, आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना, स्वपादाग्रमेवाऽऽलोकयन्ती, मोदक-भाजन-सभाजितं सव्येतर-करं तदग्रे प्रासारयत्। स चाऽऽत्मनो भावं कष्टेन संवृण्वंस्तद्धस्तादुदतूतुलत्। पुनश्च सा अञ्चलकोणं कटि-कच्छ-प्रान्ते आयोज्य, हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नत-कन्धरस्य रघुवीरस्य ग्रीवायां चिक्षेप, ईषत्कम्पि-गात्र-यष्टिश्च शनैर्यथागतं निववृते।

व्याख्या—सा=बालिका (सौवर्णी), च, अवलोक्य=वीक्ष्य, तम् एव, पूर्वावलोकितम्=पूर्वदृष्टम्, युवानम्=युवकम्, व्रीडाभरमन्थरा=त्रपाधिक्येन मन्दगमना, अपि, ताताज्ञया=पितुरादेशेन, बलादिव=हठादिव, प्रेरिता=प्रेषिता, ग्रीवाम्=कन्धराम्, नमयन्ती=अधः कारयन्ती, आत्मनाऽऽत्मन्येव निविशमाना=व्रीडया स्वाङ्गानि आकुञ्चन्ती, स्वपादाग्रम्=निजचरणाग्रभागम्, एव, अवलोकयन्ती=पश्यन्ती, मोदकभाजनसभाजितम्=मिष्ठान्नभाण्ड-सुशोभितम्, सव्येतरकरम्=दक्षिणहस्तम्, तदग्रे=रघुवीरसिंहस्य समक्षम्, प्रासारयत्=अवर्धयत्। सः=रघुवीरः, च, आत्मनः=स्वस्य, भावम्=अभिप्रायम्, कष्टेन=बलेन, संवृण्वन्=सङ्गोपयन्, तद्धस्तात्=तस्याः करात्, उदतूतुलत्=उत्थापितवान्। पुनः=भूयः, च, सा=सौवर्णी, अञ्चलकोणम्=वसनाग्रम्, कटिकच्छप्रान्ते=कटिकच्छभागे, आयोज्य=निवेश्य, हस्ताभ्याम्=कराभ्याम्, मालिकाम्=प्रसूनहारम्, विस्तार्य=प्रसार्य, नतकन्धरस्य=नत-ग्रीवस्य, रघुवीरस्य=एतन्नामकस्य, ग्रीवायाम्=कन्धरायाम्, चिक्षेप=न्यक्षिपत्, ईषत्=किञ्चित्, कम्पितगात्रयष्टिः=वेपितशरीरः, च, यथागतम्=येन प्रकारेण आगता, तथैव, शनैः=मन्दं मन्दम्, निववृते=निर्जगाम।

समासः—पूर्वम् अवलोकितः, तं पूर्वावलोकितम्। व्रीडायाः भरः, तेन मन्थरा व्रीडाभरमन्थरा। तातस्य आज्ञा, तया ताताज्ञया। स्वस्य पादस्य अग्रं स्वपादाग्रम्। मोदकस्य भाजनं, तेन सभाजितं, तत् मोदकभाजन-सभाजितम्। सव्यात् इतरः सव्येतरः, सव्येतरः करः, तं सव्येतरकरम्। तस्य अग्रे तदग्रे। तस्याः हस्तम्, तस्मात् तद्धस्तात्। अञ्चलस्य कोणम् अञ्चलकोणम्। कटि एव कच्छं, तस्य प्रान्तम्, तस्मिन् कटिकच्छप्रान्ते। नता कन्धरा यस्य, तस्य नतकन्धरस्य। गात्र एव यष्टिः गात्रयष्टिः, कम्पितुं शील-

मस्य कम्पिनी, ईषत्कम्पिनी गात्रयष्टिः यस्याः सा ईषत्कम्पितगात्रयष्टिः। आगतम् अनतिक्रम्य यथागतम्।

व्याकरणम्—अवलोक्य—अव + लोक + क्त्वा + ल्यप्। अवलोकितम्—अव + लोक् + क्त। प्रेरिता—प्र + ईर् + क्त। नमयन्ती—नम् + णिच् + शतृ + ङीप्। निविशमाना—नि + विश् + शानच्। प्रासारयत्—प्र + सृ णिच् + लुङ्। भावम्—भू + घञ्। संवृण्वन्—सम् + वृण् + शतृ। उदतूतुलत्—उद् + तुल + लुङ्। आयोज्य—आङ् + युज् + क्त्वा + ल्यप्। विस्तार्य—वि + स्तृ + क्त्वा + ल्यप्। निववृते—नि + वृत् + लिट् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—सा = वह सौवर्णी, अवलोक्य = देखकर, तमेव = उसे ही, युवानम् = युवक को, व्रीडाभरमन्थरः = लज्जा के आधिक्य के कारण मन्द गति वाली, ताताज्ञया = पिता की आज्ञा से, बलादिव = मानो बलपूर्वक, प्रेरिता = प्रेरित की गई, नमयन्ती = झुकाती हुई, निविशमाना = प्रवेश करती हुई, स्वपादाग्रम् = अपने पैर के अग्रभाग को, अवलोकयन्ती = देखती हुई, मोदकभाजनसमाजितम् = मिष्ठान्न के पात्र से सुशोभित, सव्येतरकरम् = दाहिने हाथ को, तदग्रे = रघुवीर सिंह के आगे, प्रासारयत् = फैलाया, आत्मनः = अपने, भावम् = भाव को, संवृण्वन् = छिपाते हुए, कष्टेन = कष्ट के साथ, तद्धस्तात् = उस सौवर्णी के हाथ से, उदतूतुलत् = उठा लिया, पुनश्च = इसके अनन्तर, अञ्चलकोणम् = आँचल के छोर को, कटिकच्छप्रान्ते = कमर में, आयोज्य = दबाकर, मालिकाम् = माला को, विस्तार्य = फैलाकर, नतकन्धरस्य = गर्दन झुकाये हुए, चिक्षेप = डाल दी, ईषत्कम्पितगात्रयष्टिः = कुछ काँपते हुए शरीर से, यथागतम् = जैसे आयी थी वैसे ही, निववृते = चली गई।

हिन्दी—उसी पूर्वदृष्ट युवक को देखकर, लज्जा के भार से मन्द गति वाली भी, पिता के आदेश से बलपूर्वक प्रेरित की गई, गर्दन को झुकाती हुई, अपने में अपने को प्रवेश कराती हुई, अपने पैर के अग्रभाग को ही देखती हुई उस सौवर्णी ने मोदक के पात्र से सुशोभित हाथ को रघुवीर सिंह के आगे बढ़ा दिया और रघुवीर सिंह ने कष्टपूर्वक अपने अभिप्राय को छिपाते हुए उस मोदकपात्र को उस कन्या के हाथ से ले लिया। पुनः सौवर्णी ने आँचल के कोने को कटिभाग में दबाकर हाथों से माला को फैलाकर शिर झुकाये हुए रघुवीर सिंह की गर्दन में डाल दिया और कुछ काँपती हुई गात्रयष्टि वाली जैसे आई थी वैसे ही धीरे-धीरे लौट गई ॥ ३१ ॥

सैवेयं गौर-श्यामसिंहयोरनुजा सौवर्णी; या शैशव एव यवनतनयेनाऽपहृता; यस्याश्च वास्तविकं नाम कोशलेति, स चाऽयं देवशर्म्मा ब्राह्मणः, यो गौरसिंहस्य कुल-पुरोहितः कोशलायाश्च रक्षकः।

ततः प्रणम्य, देवशर्म्मच्छात्रदत्तां वीटिकामादाय प्रतिनिवृत्य, रघुवीरोऽपि तथैव सुप्तः। को जानाति कोशलारघुवीरयोः काभिर्भावनाभिरत्यतनी रजनी व्यत्येतीति।

व्याख्या—सैव इयम्, गौरसिंहश्यामसिंहयोः=एतन्नामकयोः, अनुजा=लघुभगिनी, सौवर्णी='सौवर्णी' इति नाम्ना प्रथिता, या, शैशवे-बाल्यकाले एव, यवनतनयेन=यवनात्मजेन, अपहृता=बलान्नीता, यस्याः=सौवर्ण्याः; वास्तविकम्=यथार्थम्, नाम=अभिधानम्, कोशला, इति, सः=वृद्धः, अयम्, देवशर्मा, ब्राह्मणः=द्विजः, यः, गौरसिंहस्य=एतन्नामकस्य, कुलपुरोहितः=पारिवारिकपूजकः, कोशलायाः, च, रक्षकः=संरक्षकः (परिपालकश्चासीत्)।

ततः=तदनन्तरम्, प्रणम्य=नमस्कृत्य, देवशर्म्मछात्रदत्ताम्=देवशर्म्मशिष्यप्रदत्ताम्, वीटिकाम्=ताम्बुलम्, आदाय=गृहीत्वा, प्रतिनिवृत्य=स्वनिवासप्रकोष्ठमागत्य, रघुवीरोऽपि=एतन्नामकोऽपि, तथैव=तेनैव प्रकारेण, सुप्तः=निद्रामधिगतवान्, को जानाति=कोऽपि नावगच्छति, कोशलारघुवीरयोः=एतदाख्ययोः, काभिः, भावनाभिः=विचारैः, रजनी=यामिनी, व्यत्येति=व्यतीता भवति, इति।

समासः—गौरसिंहः श्यामसिंहश्च, तयोः गौरसिंहश्यामसिंहयोः। शिशोः भावः शैशवम्, तस्मिन् शैशवे। यवनस्य तनयः, तेन यवनतनयेन। कुलस्य पुरोहितः कुलपुरोहितः। देवशर्मणः छात्रः, तेन दत्तां देवशर्म्मच्छात्रदत्ताम्। कोशला च रघुवीरश्च, तयोः कोशलारघुवीरयोः।

व्याकरणम्—अनुजा—अनु+जन्+टाप्। शैशवम्—शिशु+अण्। अपहृता—अप+हृ+क्त+टाप्। रक्षकः—रक्ष्+ण्वुल्। आदाय—आङ्+दा+क्त्वा+ल्यप्। प्रतिनिवृत्य—प्रति+नि+वृत्+ल्यप्। सुप्तः—स्वप्+क्त। व्यत्येति—वि+अति+इण्+लट् (प्र० पु० ए० व०)।

शब्दार्थ—सैवेयम्=यही, गौरसिंहश्यामसिंहयोः=गौरसिंह और श्यामसिंह की, अनुजा=छोटी बहन, शैशवे=बाल्यकाल में, यवनतनयेन=यवनयुवक के द्वारा, अपहृता=चुरा ली गई, वास्तविकं नाम=यथार्थ नाम, यस्याः=जिसका, कुलपुरोहितः=कुल का पुरोहित, रक्षकः=रक्षा करने वाला;

ततः = तदनन्तर, प्रणम्य = प्रणाम करके, देवशर्मच्छात्रदत्ताम् = देवशर्मा के छात्र द्वारा दी हुई, वीटिकाम् = पान की बीड़ा को, आदाय = लेकर, प्रतिनिवृत्य = लौटकर, सुप्तः = सो गया, को जानाति = कौन जानता है अर्थात् कोई नहीं जानता है, कोशलारघुवीरयोः = कोशला और रघुवीर की, काभिर्भावनाभिः = किन भावनाओं के साथ, अद्यतनी = आज की, व्यत्येति = व्यतीत होती है।

हिन्दी—यही सौवर्णी गौरसिंह और श्यामसिंह की छोटी बहन है, जो बाल्यकाल में ही यवनात्मज द्वारा अपहृत कर ली गयी और जिसका नाम 'कोशला' है और यह वही देवशर्मा ब्राह्मण है, जो गौरसिंह के कुलपुरोहित और कोशला के रक्षक हैं।

तदनन्तर प्रणाम करके देवशर्मा के शिष्य द्वारा दिये गये पान के बीड़े को लेकर, लौटकर, रघुवीर सिंह भी वैसे ही सो गया। कौन जानता है कि कोशला और रघुवीर सिंह की आज की रात किन भावनाओं के साथ व्यतीत हो रही है ॥ ३२ ॥

अथोषस्येवोत्थाय नित्यकृत्यानि निर्वर्त्य, यावद् देवशर्म्मणः समीपमुपतिष्ठासते; तावद् दौर्गिक-दूतेनाऽऽकारितो दुर्गाध्यक्षमासाद्य, तद्दत्तं पत्रादिकं वाचनिक-सन्देशं चाऽऽदाय, पुण्यनगरमधिवसतः शास्तिखानस्य प्रकृत-वृत्तान्तं तत्प्रश्नानुसारं व्याहृत्य, निवृत्य, देवशर्म्माणं प्रणम्य, सङ्क्षिप्य स्व-स्वप्न-वृत्तान्तमकथयत् यत्—

"यथा मया प्रभुणा च खड्गः समुत्तोलितः शास्तिखानश्च दृष्ट्वैवैतत् पलायितः" इति।

स चाऽङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव प्रोवाच यद्—

"यवनैः सह विजयः आर्यैश्च पराजयः!"

व्याख्या—अथ = अनन्तरम्, उषसि = प्रातःकाले, एव, उत्थाय = निद्रां परित्यज्य, नित्यकृत्यानि = सन्ध्यादिकार्याणि, निर्वर्त्य = समाप्य, यावदेव = यदैव, देवशर्मणः, समीपम् = पार्श्वात्, उपतिष्ठासते = उपस्थातुमभिलषति, तावदेव = तदैव, दौर्गिकदूतेन = दुर्गाधीशसन्देशवाहकेन, आकारितः = आहूतः, दुर्गाध्यक्षम् = दुर्गस्वामिनम्, आसाद्य = प्राप्य, तद्दत्तम् = दुर्गाधीशप्रदत्तम्, पत्रादिकम् = लिखितसन्देशादिकम्, वाचनिकसन्देशम् = मौखिकसन्देशञ्च, आदाय =

गृहीत्वा, पुण्यनगरम् = पूनानगरम्, अधिवसतः=अधितिष्ठतः, शास्तिखानस्य = एतन्नामकस्य, प्रकृतवृत्तान्तम् = तात्कालिकवार्ताम्, तत्प्रश्नानुसारम् = दुर्गाध्यक्षप्रश्नानुसारम्, व्याहृत्य = प्रोच्य, निवृत्य = प्रत्यागत्य, देवशर्माणम् = एतन्नामकम्, प्रणम्य = प्रणामं विधाय, सङ्क्षिप्य = सङ्क्षेपं कृत्वा, स्वस्वप्नवृत्तान्तम् = निजस्वापावलोकितवृत्तम्, अकथयत् = अवर्णयत्, यत्—

'यथा = यदेव, मया = रघुवीरसिंहेन, प्रभुणा = शिववीरेण स्वामिना, च, खड्गः = असिः, समुत्तोलितः = धारितः, शास्तिखानः=एतन्नामकः, दृष्ट्वा = वीक्ष्य, एव, एतत्, पलायितः = अपसृतः' इति ।

सः = देवशर्मा, च, अङ्गुलिपर्वसु = करजावयवेषु, किमपि, गणयित्वा = गणनां विधाय, प्रोवाच = कथितवान्, यद्—

'यवनैः=म्लेच्छैः, सह = साकम्, विजयः = जयः (भविष्यति), आर्यैः = हिन्दुभिः, सह = सार्धम्, पराजयः', भविष्यतीति शेषः ।

समासः—दुर्गस्य अयं दौर्गिकः, दौर्गिकस्य दूतः, तेन दौर्गिकदूतेन । दुर्गस्य अध्यक्षः, तं दुर्गाध्यक्षम् । तेन दत्तं तद्दत्तम् । पत्रादयः सन्ति यस्मिन् तत् पत्रादिकम् । प्रकृतं वृत्तान्तं तत् प्रकृतवृत्तान्तम् । तस्य प्रश्नाः तत्प्रश्नाः, तेषाम् अनुसारं तत्प्रश्नानुसारम् । स्वस्य स्वप्नस्य वृत्तान्तं स्वस्वप्नवृत्तान्तम् । अङ्गुलीनां पर्वाणि, तेषु अङ्गुलिपर्वसु ।

व्याकरणम्—उत्थाय—उद् + स्था + क्त्वा + ल्यप् । निर्वर्त्य—निर् + वृत् + क्त्वा + ल्यप् । उपतिष्ठासते—उप + स्था + सन् + लट् । दौर्गिकः—दुर्ग + ठञ् । आकारितः—आङ् + कृ + णिच् + क्त । आसाद्य—आङ् + सद् + क्त्वा + ल्यप् । दत्तम्—दा + क्त । आदाय—आङ् + दा + क्त्वा + ल्यप् । अधिवसतः—अधि + वस् + शतृ (षष्ठी ए० व०) । व्याहृत्य—वि + आङ् + हृ + क्त्वा + ल्यप् । संक्षिप्य—सम् + क्षिप् + क्त्वा + ल्यप् । यथा—यद् + थाल् । समुत्तोलितः + सम् + उद् + तुल् + णिच् + क्त । दृष्ट्वा-दृश् + क्त्वा । पलायितः—परा + अय् + क्त । गणयित्वा—गण् + णिच् + क्त्वा । प्रोवाच—प्र + वच् + लिट् । विजयः—वि + जि + अच् । पराजयः—परा + जि + अच् ।

शब्दार्थ—अथ = उसके बाद, उषसि एव = प्रातःकाल ही, उत्थाय = उठकर, नित्यकृत्यानि = प्रतिदिन के सन्ध्यादि कार्यों को, निर्वर्त्य = समाप्त करके, यावदेव = जैसे ही, देवशर्मणः = देवशर्मा के, उपतिष्ठासते = पास जाने

की इच्छा करता है, तावद् = तब ही, दौर्गिकदूतेन = दुर्गाधीश के दूत द्वारा, आकारितः = बुलाया गया, दुर्गाध्यक्षम् = दुर्गाधीश को, आसाद्य = समीप जाकर, तद्दत्तम् = उसके द्वारा दिये गये, पत्रादिकम् = पत्र आदि को, वाचनिकसन्देशम् = मौखिक समाचार को, आदाय=लेकर, पुण्यनगरमधिवसतः = पूना नगर में निवास करते हुए, प्रकृतवृत्तान्तम्=अभीष्ट वृत्तान्त को, तत्प्रश्नानुसारम् = उसके प्रश्नों के अनुसार, व्याहृत्य = बताकर, निवृत्य = लौटकर, प्रणम्य = प्रणाम कर, संक्षिप्य = संक्षेप करके, स्वस्वप्नवृत्तान्तम् = अपने स्वप्न के समाचार को, मया प्रभुणा च = मेरे और स्वामी के द्वारा, समुत्तोलितः = उठाया गया, दृष्ट्वा = देखकर ही, पलायितः = भाग गया। अङ्गुलिपर्वसु = अंगुलि के पोरों पर, गणयित्वा = गिनकर, प्रोवाच = कहा, यवनैः सह = यवनों के साथ, विजयः = विजय (जीत), पराजयः = हार।

हिन्दी—तदनन्तर प्रातःकाल ही उठकर, नित्यक्रियाओं को समाप्त करके जब देवशर्मा के समीप जाना ही चाहता था, तभी दुर्गाध्यक्ष के दूत द्वारा बुलाया गया रघुवीर सिंह दुर्ग के स्वामी के पास जाकर, उनके द्वारा दिये गये पत्रादि और मौखिक सन्देश को लेकर पूना नगर में संस्थित शाइस्ताखान के वृत्तान्त को दुर्गाधीश के प्रश्नों के अनुसार बताकर, लौटकर, देवशर्मा को प्रणाम करके संक्षेप में अपने स्वप्न के वृत्तान्त को बताया कि—

'जैसे ही मेरे और स्वामी के द्वारा खड्ग उठायी गयी, शाइस्ताखान उसे देखते ही भाग गया'।

और उसने (देवशर्मा ने) अंगुली के पोरों पर गिनकर ही कहा कि—'यवनों के साथ युद्ध होने पर विजय और आर्यों के साथ पराजय' ॥ ३३ ॥

पुनश्च तं प्रणम्य, जिगमिषन्तमुवाच यत्—

"तावद् बहिरेवोद्याने पर्य्यट, यावद् हनूमत्प्रसाद-सिन्दूरं प्रेषयामि, यत्कृततिलको दुर्द्धर्षो भवति शत्रूणाम्" इति।

स च तथेत्युक्त्वा बहिरागत्य पर्य्यटन् पूर्वेद्युः सौवर्ण्या सनाथितां वेदिकां समायातः, स्मृतवांश्च पूर्वदिन-वृत्तान्तम्, अवालोकयच्च सौवर्ण्यध्युषित-चरं पाषाण-मञ्चम्, तावन्निपुणं निरीक्ष्य दृष्टवान्, यदेका एकयष्टिका मौक्तिकमाला तत्र पतिताऽस्तीति, तां चोत्थाप्य तस्या एवेयमिति निश्चित्य, तस्यै समर्पयामीति विचार्य इतस्ततश्चक्षुर्निचिक्षेप।

व्याख्या—पुनश्च = तदनन्तरम्, तम् = वृद्धजनम्, प्रणम्य = नमस्कृत्य, जिगमिषन्तम् = गन्तुमभिलषन्तम्, उवाच = जगाद, यत्—तावत्, बहिरेव = कुटीराद् बहिः एव, उद्याने = वाटिकायाम्, पर्य्यट = भ्रम, यावत्, हनूमत्प्रसाद-सिन्दूरम् = मारुतिप्रसादकुङ्कुमम्, प्रेषयामि = प्रापयामि, यत्कृततिलकः = यद्रचिततिलकः, दुर्द्धर्षः = अपराजेयः, भवति = सम्पद्यते, शत्रूणाम् = रिपूणाम्, इति ।

स च = रघुवीरश्च, तथेत्युक्त्वा = आमित्यभिधाय, बहिरागत्य = वाटिकां सम्प्राप्य, पर्य्यटन् = परिभ्रमन्, पूर्वेद्युः = पूर्वदिने, सौवर्ण्या = एतन्नामिकया बालिकया, सनाथिताम् = विराजिताम्, वेदिकाम् = चत्वरम्, समायातः = आगतः, स्मृतवांश्च = स्मरणं विहितवान् च, पूर्वदिनवृत्तान्तम् = प्रथमदिवस-वृत्तम्, अवालोकयत् = अपश्यत्, च, सौवर्ण्यध्युषितचरम् = सौवर्णिसनाथितपूर्वम्, पाषाणमञ्चम् = प्रस्तरासनम् । तावत्, निपुणम् = सम्यक्, निरीक्ष्य = अवलोक्य, दृष्टवान् = वीक्षितवान्, यत्, एका, एकयष्टिकाः = एकावली, मौक्तिकमाला = मुक्ताहारः, तत्र = मञ्चसमीपे, पतिताऽस्ति = स्खलिता वर्तते, ताञ्च = तां मालाम्, उत्थाप्य = उपगृह्य, तस्या एव = बालिकाया एव, इयम् = माला, इति = इत्थम्, निश्चित्य = निश्चयं विधाय, तस्यै = बालिकायै, समर्पयामि = ददामि, इति = एवम्, विचार्य = विचिन्त्य, इतस्ततः = यत्र तत्र, चक्षुः = दृष्टिः, निचिक्षेप = निदधे ।

समासः—हनूमतः प्रसादस्य सिन्दूरं हनूमत्प्रसादसिन्दूरम् । यस्य कृतः तिलकः येन सः यत्कृततिलकः ।

व्याकरणम्—प्रणम्य—प्र + नम् + क्त्वा + ल्यप् । पर्यट—परि + अट् + लोट् + सिप् । पर्यटन्—परि + अट् + शतृ । समायातः—सम् + आ + या + क्त । स्मृतवान्—स्मृञ् + क्तवतु (प्र० वि०) । निरीक्ष्य—निर् + ईक्ष् + क्त्वा + ल्यप् । दृष्टवान्—दृश् + क्तवतु (प्र० वि०) । उत्थाप्य—उत् + स्था + णिच् + पुक् + ल्यप् । विचार्य—वि + चर + णिच् + ल्यप् । निचिक्षेप—नि + क्षिप् + लिट् + तिप् ।

शब्दार्थ—पुनश्च = और फिर, तम् = उस वृद्ध पुरुष को, प्रणम्य = प्रणाम करके, जिगमिषन्तम् = जाने की इच्छावाले को, उवाच = बोले, उद्याने = बगीचे में, पर्यट = घूमो, हनूमत्प्रसादसिन्दूरम् = हनुमान्‌जी के प्रसाद का सिन्दूर, प्रेषयामि = भेजता हूँ, यत्कृततिलकः = जिसका तिलक लगानेवाला,

दुर्द्धर्षः=अविजित, तथा=ऐसी ही, इत्युक्त्वा=यह कहकर, बहिरागत्य=बाहर आकर, पर्यटन्=घूमता हुआ, पूर्वेद्युः=पहले दिन, सनाथिताम्=अलंकृत, समायातः=आया, स्मृतवान्=स्मरण किया, पूर्वदिनवृत्तान्तम्=पहले दिन की बात, सौवर्ण्यध्युषितचरम्=सौवर्णी जिस पर बैठी थी, पाषाणमञ्चम्=पत्थर के आसन को, निपुणम्=भली प्रकार से, निरीक्ष्य=देखकर, दृष्टवान्=देखा, एकयष्टिका=एकलड वाली, मौक्तिकमाला=मोतियों की माला, पतिताऽस्ति=गिर पड़ी है, उत्थाय=उठाकर, निश्चित्य=निश्चय करके, समर्पयामि=दे दूँगा, विचार्य=विचार करके, इतस्ततः=इधर-उधर, चक्षुः=नेत्र को, निचिक्षेप=डाला।

हिन्दी—फिर उनको प्रणाम करके जाने के इच्छुक रघुवीर सिंह से कहा कि—'तब तक बाहर ही बगीचे में घूमो, हनुमान्‌जी के प्रसाद का सिन्दूर भेज रहा हूँ, जिसका तिलक करनेवाला शत्रुओं के लिए अविजित हो जाता है'।

रघुवीर सिंह 'बहुत अच्छा' कहकर, बाहर आकर घूमता हुआ, पहले दिन सौवर्णी से विराजित वेदिका के पास आया और पूर्व दिन के वृत्तान्त का स्मरण करने लगा तथा सौवर्णी जिस पत्थर के आसन पर बैठी थी, उसको देखने लगा। तब तक भलीभाँति देखने पर देखा कि—एक मोतियों की एकलडी माला वहाँ पर गिरी हुई है, उसे उठाकर, 'यह उस बालिका की है' ऐसा निश्चय करके 'यह उसी को दे देता हूँ' इस प्रकार विचार करके इधर-उधर दृष्टि डाली ॥ ३४ ॥

अथ व्यलोकयद् यद्—वाटिकायामेव कोशलाऽपि कदलीदलपुटकमेकं वामकरे संस्थाप्य, दक्षिण-कर-पल्लवेन कुसुमपतङ्गान् उद्धूय कुसुमान्यवचिनोति।

ततश्च क्षणं विचार-भारैर्निरुद्ध-गतिरपि शङ्काऽऽतङ्कमपास्य, मालां हस्ते आदाय शनैस्तदभिमुखमेव प्रतस्थे। सा च तस्मिन्नतिसमीपमायाते पादाहतिमाकर्ण्य अवालुलोकत्। तस्यां चाऽतिचकितायामिव स्तब्धायामिव च रघुवीरोऽवादीत्—

"भगवति! भवत्या इयं मालिका तत्र पतिता, मया लब्धेति प्रत्यर्पयितुमायातोऽस्मि-इति, अनुमन्यसे चेदेनां यथास्थानं निवेशयामि"।

व्याख्या—अथ=अनन्तरम्, व्यलोकयत्=अपश्यत्, यत्, वाटिकायाम्=

उद्याने, एव, कोशलाऽपि=सौवर्णी अपि, कदलीदलपुटकम्=रम्भादलपुटकम्, एकम्, वामकरे=वामहस्ते, संस्थाप्य=सङ्गृह्य, दक्षिणकरपल्लवेन=वामेतर-हस्तपल्लवेन, कुसुमपतङ्गान्=प्रसूनभ्रमरिकाः, उद्धूय=दूरीकृत्य, कुसुमानि=पुष्पाणि, अवचिनोति=सङ्गृह्णाति ।

ततश्च=तदनन्तरम्, क्षणम्=किञ्चित्कालम्, विचारभारैः=विचारव्रातैः, निरुद्धगतिरपि=अवरुद्धगमनोऽपि, शङ्काऽऽतङ्कम्=संशयभीतिम्, अपास्य=दूरीकृत्य, मालाम्=एकावलीम्, हस्ते=करे, आदाय=गृहीत्वा, शनैः=मन्दम्, तदभिमुखम्=कोशलाभिमुखम्, एव, प्रतस्थे=चचाल, सा च=सौवर्णी च, तस्मिन्=रघुवीरे, अतिसमीपम्=नितान्तनिकटम्, आयाते=आगते, पादाहतिम्=पादध्वनिम्, आकर्ण्य=निशम्य, अवालुलोकत्=अपश्यत् । तस्याश्च=सौवर्ण्याश्च, अतिचकितायाम्=आश्चर्यसमन्वितायाम्, इव, स्तब्धा-याम्=जडीभूतायाम्, इव, च, रघुवीरः=एतन्नामकः सादी, अवादीत्=जगाद—

भगवति=देवि ! भवत्याः=तव, इयम्=एषा, मालिका=एकावली, तत्र=मच्चान्तिके, पतिता=स्खलिता, मया=रघुवीरेण, लब्धा=प्राप्ता, इति=अतः, प्रत्यर्पयितुम्=प्रतिदातुम्, आयातोऽस्मि=आगतोऽस्मि, इति, अनु-मन्यसे=स्वीकरोषि, चेत्=यदि, एनाम्=मालाम्, यथास्थानम्=समुचिते स्थाने, निवेशयामि=संस्थापयामि ।

समासः—निरुद्धा गतिः यस्य सः निरुद्धगतिः । शङ्कायाः आतङ्कं शङ्कातङ्कम् । तस्याः अभिमुखं तदभिमुखम् ।

व्याकरणम्—संस्थाप्य—सम्+स्था+णिच्+पुक्+ल्यप् । लब्धा—लभ्+क्त+टाप् । आयातः—आ+या+क्त ।

शब्दार्थ—अथ=इसके बाद, व्यलोकयत्=देखा, वाटिकायाम्=बगीचे में, कदलीदलपुटकम्=केले के पत्ते का दोना, वामकरे=बाँये हाथ में, संस्थाप्य=रखकर, दक्षिणकरपल्लवेन=दाहिने पल्लवरूपी हाथ से, कुसुम-पतङ्गान्=तितलियों को, उद्धूय=उड़ाकर, कुसुमानि=फूलों को, अव-चिनोति=चुन रही है ।

विचारभारैः=विचारों के भार से, निरुद्धगतिः=रुका हुआ, शङ्काऽऽ-तङ्कम्=शंका से जनित भय को, अपास्य=दूरकर, आदाय=लेकर, तदभि-मुखम्=उसकी ओर, प्रतस्थे=चल दिया, तस्मिन्=रघुवीर सिंह के, आयाते=

आने पर, पादाहतिम्=पैर के ध्वनि को, आकर्ण्य=सुनकर, अवलुलोकत्=देखा, अतिचकितायामिव=अत्यन्त चकित-सी हो जाने पर, स्तब्धायामिव=स्तब्ध-सी हो जाने पर, अवादीत्=बोला।

भवत्याः=आपकी, पतिता=गिरी हुई थी, लब्धा=प्राप्त की गई, प्रत्यर्पयितुम्=लौटाने के लिए, आयातः=आया हूँ, अनुमन्यसे=अनुमति हो, यथास्थानम्=यथोचित स्थान पर, निवेशयामि=रख दूँ।

हिन्दी—तदनन्तर उसने देखा कि वाटिका में ही कोशला भी केले के पत्ते का एक दोना लेकर दाहिने हाथ से तितलियों को उड़ाकर फूलों को चुन रही है।

तब विचारों के भार से अर्थात् अधिक सोच-विचार करने के कारण क्षण भर तक गतिशून्य होकर भी सन्देह की आशङ्का को दूर करके, माला को हाथ में लेकर धीरे से उसकी ओर चल पड़ा। रघुवीर सिंह के बहुत पास आ जाने पर उस बालिका ने उसके पैर की ध्वनि को सुनकर उसे देखा। कोशला के अत्यन्त चकित और स्तब्ध-सी हो जाने पर रघुवीर बोला—

'देवि ! आपकी यह माला वहाँ गिरी हुई थी, मैंने प्राप्त की है, इसी को लौटाने आया हूँ। यदि आपकी अनुमति हो तो इसे यथोचित स्थान पर रख दूँ' ॥ ३५ ॥

सा च व्रीडया कुलाङ्गनाङ्गीकृत-महाव्रतेन च स्तब्धवाक् न किञ्चन प्रावोचत्। रघुवीरश्च वाचंयमतामप्यङ्गीकारभङ्गीमङ्गीकृत्य तदन्तिकमागत्य, सौवर्णीचित्रं मानस-भित्तिकायामालिख्य नक्षत्रमालां तत्कण्ठे प्राक्षिपत्, पवित्रतमानि स्फुटतम-यौवनोद्भेद-लक्ष्म-रहितानि च तदङ्गानि नाऽस्प्राक्षीत्।

ततस्तस्यां मौनेनैवैकतः प्रयातायाम्, स्वयं पुनर्मन्दिरद्वारमागत्य देवशर्म्मणोऽन्यतमच्छात्रेणाऽऽनीतं सिन्दूरमादाय पुनरश्वमारुह्य, मारुतनन्दनं संस्मृत्य तोरणदुर्गात् सिंहदुर्गं प्रतस्थे।

इति चतुर्थो निश्वासः।

॥ इति प्रथमो विरामः समाप्तः ॥

व्याख्या—सा=बालिका (कोशला), च, व्रीडया=लज्जया, कुलाङ्गनाङ्गीकृतमहाव्रतेन=सद्वंशजस्त्रीस्वीकृतमहासङ्कल्पेन, च, स्तब्धवाग्=रुद्धवचना, न=नहि, किञ्चन, प्रावोचत्=अवादीत् । रघुवीरश्च=आगन्तुकश्च, वाचंयमताम्=तूष्णीभवनम्, अपि, अङ्गीकारभङ्गीम्=स्वीकारप्रकारम्, अङ्गीकृत्य=स्वीकृत्य, तदन्तिकम्=बालिकासमीपम्, आगत्य=सम्प्राप्य, सौवर्णीचित्रम्=तच्चित्रम्, मानसभित्तिकायाम्=चित्तभित्तिकायाम्, आलिख्य=विरच्य, नक्षत्रमालाम्=एकावलीम्, तत्कण्ठे=सौवर्णीकण्ठे, प्राक्षिपत्=चिक्षेप, पवित्रतमानि=नितान्तपवित्राणि, स्फुटतमयौवनभेदलक्ष्मरहितानि=अतिप्रकटतारुण्याविर्भावचिह्नशून्यानि, च, तदङ्गानि, न=नहि, अस्प्राक्षीत्=स्पृष्टवान् ।

ततः=तदनन्तरम्, तस्याम्=बालिकायाम्, मौनेनैव=तूष्णीमेव, एकतः=एकस्यां दिशि, प्रयातायाम्=गतायाम्, स्वयम्=रघुवीरः, पुनः=भूयः, मन्दिरद्वारम्=देवालयाभिमुखम्, आगत्य=सम्प्राप्य, देवशर्मणः, अन्यतमच्छात्रेण=एकच्छात्रेण, आनीतम्, सिन्दूरम्=कुङ्कुमम्, आदाय=गृहीत्वा, पुनः, अश्वम्=घोटकम्, आरुह्य=उपविश्य, मारुतनन्दनम्=हनूमन्तम्, संस्मृत्य=स्मरणं विधाय, तोरणदुर्गात्=एतन्नाम्नः दुर्गात्, सिंहदुर्गम्=शिवाधिष्ठितमन्यदुर्गम्, प्रतस्थे=प्रस्थितवान् ।

समासः—कुलाङ्गनाभिः अङ्गीकृतेन महाव्रतेन कुलाङ्गनाङ्गीकृतमहाव्रतेन । वाचं यच्छतीति वाचंयमः, तस्य भावः, तां वाचंयमताम् । स्फुटतमस्य यौवनस्य उद्भेदः, तस्य लक्ष्मभिः रहितानि स्फुटतमयौवनोद्भेदलक्ष्मरहितानि । तस्याः अङ्गानि तदङ्गानि ।

व्याकरणम्—वाचंयमताम्—वाच् + यम् + खच् (अम्) + तल् (ता) । आलिख्य—आ + लिख् + क्त्वा + ल्यप् । अस्प्राक्षीत्—स्पृश् + लुङ् + तिप् । प्रयातायाम्—प्र + या + क्त + टाप् (स० ए० व०) । आनीतम्—आ + नी + क्त । आरुह्य—आङ् + रुह् + क्त्वा + ल्यप् । संस्मृत्य—सम् + स्मृ + क्त्वा + ल्यप् । प्रतस्थे—प्र + स्था + लिट् + त ।

शब्दार्थ—सा=वह कोशला, व्रीडया=लज्जा से, कुलाङ्गनाङ्गीकृतमहाव्रतेन=कुलाङ्गनाओं के द्वारा स्वीकृत महाव्रत के कारण, स्तब्धवाक्=मौन हुई, न किञ्चन प्रावोचत्=कुछ न बोली, वाचंयमताम्=न बोलने को, अङ्गीकारभङ्गीम्=स्वीकृतिसूचक संकेत, अङ्गीकृत्य=मानकर, तदन्तिकम्=उस बालिका के समीप, मानसभित्तिकायाम्=मन की दीवार पर, आलिख्य=

चित्रित कर, नक्षत्रमालाम् = एक लड़ हार को, प्राक्षिपत् = डाल दिया, पवित्र-तमानि = अत्यन्त पवित्र, स्फुटतमयौवनोद्भेदलक्ष्मरहितानि = नितान्तरूप से प्रकट होने वाले यौवन के आविर्भूत चिह्न से रहित, तदङ्गानि = उसके शरीर को, न = नहीं, अस्प्राक्षीत् = छुआ, मौनमेव = मौन ही, एकतः = एक ओर, प्रयातायाम्=चली जाने पर, मन्दिरद्वारम् = मन्दिर के द्वार पर, देवशर्मणः = देवशर्मा के, अन्यतमच्छात्रेण = किसी एक छात्र के द्वारा, आनीतम् = लाया गया, आरुह्य = चढ़कर, मारुतनन्दनम् = हनुमान् को, संस्मृत्य = स्मरण करके, तोरणदुर्गात् = तोरण दुर्ग से, सिंहदुर्गम्=शिवाजी-सनाथित सिंहदुर्ग को, प्रतस्थे = प्रस्थान कर दिया।

हिन्दी—लज्जा और कुलाङ्गनाओं के महाव्रत से मौनभाव धारण किये हुए वह कोशला कुछ न बोल सकी। रघुवीर सिंह उसके मौन को स्वीकृति का ही सूचक मानकर उस बालिका के पास जाकर सौवर्णी के चित्र को अपने मानसभित्ति पर बनाकर उस मुक्ताहार को उसके गले में डाल दिया। किन्तु पवित्रतम तथा स्फुट यौवन के स्पष्ट चिह्नों से रहित उसके अङ्गों का स्पर्श नहीं किया।

तदनन्तर मौनपूर्वक ही कोशला के दूसरी ओर चले जाने पर, स्वयं पुनः मन्दिर के द्वार पर आकर, देवशर्मा के एक छात्र द्वारा लाये हुए सिन्दूर को लेकर, पुनः घोड़े पर चढ़कर, हनुमान् जी का स्मरण करके तोरण नामक दुर्ग से शिवाजी द्वारा सनाथित सिंह दुर्ग की ओर प्रस्थान कर दिया॥ ३६॥

॥ शिवराजविजय का चतुर्थ निश्वास समाप्त॥

॥ प्रथम विराम समाप्त हुआ॥

GRAN

11 Dece

SANTUSHT

A Complete M

में सभी कक्षाओं का रिजल्ट घोषित किया जा चुका है।

कहा कि एमए मध्यकालीन इतिहास का रिजल्ट दीक्षांत समारोह के दो दिन पहले घोषित हुआ है। उन्होंने बताया कि विद्यापीठ की वेबसाइट न खुलने के कारण रिजल्ट अपलोड नहीं किया जा सका। माना कि दीक्षांत की व्यस्तता के कारण इतिहास विभागाध्यक्ष को इसकी जानकारी नहीं दी जा सकी।